सुलभ साहित्य-माला

मुंशी-साहित्य

(छठा, सातवाँ, आठवाँ भाग)

राजाधिराज

मूल लेखक—

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

गिरगांव, बम्बई

प्रकाशकका निवेदन

सुलभ साहित्य-मालामें गुजरातीके सुप्रसिद्ध लेखक कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीका यह तीसरा उपन्यास प्रकाशित हो रहा है। इसके पहले 'पाटनका प्रभुत्व' और 'गुजरातके नाथ' प्रकाशित हो चुके हैं। ये तीनों ऐतिहासिक हैं और इनका कथानक एलेक्जंडर ड्यूमाके ऐतिहासिक उपन्यासोंकी तरह परस्पर सम्बद्ध है। इनमें चालुक्य राजा जयसिंहके कालका इतिहास ग्रथित किया गया है जो गुजरातका स्वर्णयुग माना जाता है। यद्यपि ये तीनों स्वतंत्र और अपने आपमें सम्पूर्ण हैं, इसलिए अलग अलग पढ़कर भी इनका आनन्द लिया जा सकता है परन्तु इनका कथानक एकका दूसरेसे और दूसरेका तीसरेसे जुड़ा हुआ है। इसलिए ये जिस क्रमसे प्रकाशित हुए हैं उसी क्रमसे पढ़े जाने चाहिए। जहाँ तक हम जानते हैं भारतीय भाषाओंमें मुंशीजीको छोड़कर और किसी लेखकने इस तरहके एक ऐतिहासिक सूत्रमें ग्रथित हुए उपन्यास नहीं लिखे।

इन तीनों उपन्यासोंको हिन्दीमें लानेका मुख्य श्रेय सीतामऊके साहित्यप्रेमी राजकुमार डा० रघुवीरसिंहजी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मोहनकुमारीजीको है जिन्होंने इसके लिए प्रेरणा ही नहीं की, बल्कि अपने खर्चसे इनके अनुवाद भी कराके दिये और साथ ही प्रकाशित करनेके सारे अधिकार भी। इसके लिए उक्त दम्पतिको जितना धन्यवाद दिया जाय उतना थोड़ा है।

अबसे लगभग सात आठ वर्ष पहले इस ग्रंथका भी अनुवाद करवा लिया गया था। प्रकाशकको भेजनेसे पहले जब इस अनुवादकी पाण्डु-लिपिकी ध्यानपूर्वक जाँच की गई, तो यह देखकर आश्चर्य हुआ कि प्रथम खंडके २० वें प्रकरणका, तीसरे खण्डके नवेंसे लेकर २४ वें तक १४ प्रकरणोंका और अन्तके उपसंहारका अनुवाद किया ही नहीं गया है। ये प्रकरण छूटे हुए थे, फिर भी अनुवादकी कापीके पेजोंके नम्बर बराबर थे। अनेक बार लिखे जानेपर भी जब अनुवादकने अपना यह अनुवाद सम्पूर्ण नहीं किया तब विवश होकर अनुवादकी प्राप्त पाण्डु-लिपि प्रकाशकके पास भेज दी गई। उसके बाद दो-ढाई वर्षकी बारंबार प्रार्थनाका भी जब कोई फल नहीं हुआ तब एक और सज्जनसे उन छूटे हुए अंशोंका अनुवाद करवाना पड़ा।

अनुवादको प्रेसमें दे देनेके बाद जब उसके प्रूफ आने लगे तब उसमें भी अथसे इति तक संशोधन करना आवश्यक जान पड़ा। अतएव पहले सारी कापी सुधार-सुधार कर दी गई और उसके बाद तीन-तीन चार-चार बार प्रूफ देखने पड़े, जिनमें हर बार नए-नए संशोधन हुए, फिर भी पूरा संतोष संशोधकको नहीं हुआ और राम-रामकर यह पुस्तक कोई सात महीनेमें छपकर तैयार हो सकी। अनुवादमें भी इतने अधिक संशोधन और परिवर्तन हुए हैं कि एक तरहसे उसका काया पलट ही हो गया है। ऐसी दशामें इसपर अनुवादक महाशयका नाम देना न तो उचित ही होता और न वे स्वयं ही इसे पसन्द करते। इसके सिवाय संशोधकके प्रति भी यह न्याय न होता जिसने केवल इसी आशासे यह परिश्रम किया है कि मुंशीजीकी एक सुप्रसिद्ध कृति हिन्दी पाठकोंके समक्ष यथासंभव शुद्ध-रूपमें उपस्थित हो।

'गुजरातके नाथ' के प्रकाशनके बादसे हिन्दी पाठक भी मंजरीके भविष्यको जाननेके लिए व्यग्र हो रहे थे, फिर भी उन्हें 'राजाधिराज' के इस अनुवादके छपनेके लिए अबतक बाट देखनी पड़ी। उसके अबतक न प्रकाशित होनेसे उन्हें आश्चर्य ही हुआ होगा और उनकी उत्सुकता-पूर्तिके लिए ही उसके प्रकाशनमें उठनेवाले इन सारे व्यवधानोंका संक्षेपमें यहाँ उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

—प्रकाशक

पढ़नेवालोंसे

'पाटनका प्रभुता' को शुरू किये ग्यारह वर्ष और मंजरीकी सृष्टि किये आठ वर्ष हो गये। तीन वर्षसे मुझे ऐसा लग रहा है कि मंजरीकी कथा, कथा नहीं वास्तविक जीवनका एक खंड है। वे पात्र, वह जीवन, वे राज्य-प्रपंच, वह आशिकमिजाज किन्तु कुलीन आँबड़, वृद्ध किन्तु विचक्षण महा अमात्य मुंजाल, बहादुर किन्तु मतलबी काक, महत्वाकांक्षिणी लीलादेवी और तेजस्विनी, पति-परायणा, प्रेरणामूर्ति मंजरी—ये सब केवल नाम ही नहीं, मेरी समझमें सजीव मनुष्य हैं, इसलिए इन्हें विदा करते समय मुझे भी वेदना हुई।

बहुत-से लोग इस कथाको मंजरीकी मृत्युसे पूरा करनेमें दोष मानते हैं परन्तु कलाके नियमकी रक्षा करनेके लिए ही, स्वयं कुछ आघात सहकर भी, मुझे यह करुण परिणाम लाना पड़ा है। मंजरी पहलेसे ही बहुत लोकप्रिय हो रही थी, इसलिए उसके जीवनमें पाठकोंको इतनी दिलचस्पी हो गई थी कि कुछ लोगोंने तो मुझसे पत्र लिखकर पूछा कि आखिर उसका क्या होनेवाला है? मुझसे अनेक लोगोंने कहा है और लिखा भी है कि इस करुण परिणामसे उनको चोट पहुँची है। एक अपरिचित सज्जनके पत्रसे कुछ अंश यहाँ देता हूँ;—

"......मंजरीपर जो दुःखोंका दरिया बहाया गया है, उसे तो हमने इस आशासे सहन कर लिया कि आप काकको ठीक समयपर पहुँचा देंगे और फिर आनन्दकी बौछारोंसे सबको भिगो देंगे। परन्तु आप तो यमराजसे भी अधिक निर्दय निकले। काक और मंजरीका मिलाप कराके हमारी आँखें प्रेमसे गीली और हृदय आनन्दसे सराबोर कर देनेके बदले आपने दयाहीन होकर

निष्ठुरतासे भयानक प्रसंग चित्रित किये और हमारी छाती चीर-कर निराशाके समुद्रमें बड़ी क्रूरतासे ढकेल दिया। दुःख, त्रास और शोककी हद कर दी। दयाका बिन्दु भी आपमें नहीं है।" (१३-२-२५)

जो पाठक इतनी दिलचस्पीसे मंजरीका विकास देखनेके लिए उत्सुक थे, उनके मनपर चोट पहुँचना स्वाभाविक है, परन्तु कलाके दृष्टि-बिन्दुसे चूक जाना मुझे ठीक नहीं लगा। यदि यह दृष्टिबिन्दु ग़लत हो, तो भी विधाताकी कलाकी उस निश्चल पद्धतिका मैंने अनुसरण किया है जो सोने जैसे अच्छे भले जीवन छिन्न-भिन्न कर दिया करती है और यह देखते हुए उक्त अपराध अक्षम्य तो नहीं गिना जायगा।

इस पुस्तकके साथ गुजरातके इतिहासकी कथा-मालाका तीसरा 'मनका' समाप्त होता है। मेरी इस मालाका जो स्वागत हुआ है उसे देखकर मुझे जान पड़ता है कि गुजराती प्रजामें गुजरातके गत गौरवके प्रति दिलचस्पी पैदा कर देनेका मेरा प्रयत्न सर्वथा निरर्थक नहीं हुआ।

इन पुस्तकोंका जैसा स्वागत हुआ है वैसा ही पुरानी दृष्टिसे नये साहित्यका अवलोकन करनेवालोंके जीव अकुला उठे हैं और उन्होंने मेरे इन अल्प प्रयासोंका अनेक आक्षेपोंसे सत्कार किया है। परन्तु मुझे उन आक्षेपोंका जवाब देनेकी जरूरत नहीं मालूम होती। प्रकट की हुई कृतियोंके विषयमें हर किसीको अधिकार है कि वह अपनी चाहे जो राय बना ले। यदि इन पुस्तकोंमें जीव (प्राण) नहीं है, तो ये अपने आप भुला दी जायँगी और यदि जीव होगा और इनकी अग्निनारायणको आहुति दी जायगी, तो अवश्य ही घृतके समान ये 'जीवित' बनेंगी।

बाबुलनाथ रोड, बम्बई
फाल्गुन वदी १२
सं० १९८१

—कन्हैयालाल मुंशी

राजाधिराज

१—नव आगन्तुक

विक्रम सं० ११६९ के चैत्र महीनेका प्रातःकाल था।

पुराना भृगुकच्छ (भड़ोंच) अपने काम-काजमें लगने लगा था, परन्तु अबतक किलेका दरवाजा न खुला था। जो लोग किलेमें जानेको उत्सुक थे, वे पुराने नगर और किलेके बीच जो खाई थी, उसे लाँघकर, टेकरीपर चढ़कर, परकोटेका द्वार खुलनेकी प्रतीक्षामें थे।

भृगुकच्छ दो थे। एक लाटके प्राचीन राजाओंका पुराना नगर, और [illegible] त्रिभुवनपाल सोलंकीके बनवाये हुए गढ़के भीतरका नया नगर।

इस नये नगरके चारों ओर एक नया कोट बनवाया गया था और उसके तथा पुराने नगरके बीच एक गहरी चौड़ी खाई, नदीके जोरदार प्रवाहके कारण स्वाभाविक रूपमें बन रही थी और जिसने नये नगरको लगभग चारों ओरसे घेर लिया था।

इस खाईका मुख उस जगह था, जहाँ इस समय बाहरकी गहराई है। वहाँ पहले बड़े बड़े जहाज लंगर डाला करते थे और यात्री वहाँसे नगरमें आया करते थे।

इस जगह एक ऊँची टेकरीपर तीन-चार जैन साधु खड़े थे। ऐसा ज्ञात होता था, जैसे वे बड़ी दूरसे मंजिल दर-मंजिल आ रहे हैं। उनमेंसे एक सबसे दूर, टेकरीके एक किनारे खड़ा था।

वह लगभग बीस-पचीस वर्षका था। उसके मुखका सौन्दर्य, नेत्रोंकी तेजस्विता और चमकते हुए ललाटका गौरव, असाधारण थे। देखनेवाला यह नहीं समझ पाता था कि इस कच्ची उम्रमें, ऐसे सुन्दर पुरुषने अखंड वैराग्यका कठोर जीवन क्यों स्वीकार किया है।

उसके नेत्र विशाल, तेजस्वी और गहन थे। उसने कुछ देर, ऊँचे गढ़के

बुर्जोंकी ओर देखा; फिर नौकामें बैठकर खाई पार करते हुए मनुष्योंकी ओर नजर डाली। फिर घूमकर, त्रिभुवनपाल सोलंकीके नये बनते हुए सोमनाथ महादेवके भव्य मंदिरके शिखरकी ओर देखा। और तब जैसे उसे इन सबसे संतोष न हुआ हो इस तरह वह नदीकी ओर देखने लगा। वह जिस ओर खड़ा था, उसके नीचे गंभीर गौरवशीला रुद्रकन्या नर्मदाकी पतितपाविनी तरंगें, सूर्यकी बाल-किरणोंके साथ नृत्य कर रही थीं और सर्वदाकी उल्लासपूर्ण आतुरतासे भृगुके इस पवित्र धामका आलिंगन कर रही थीं।

किसी त्रिकालज्ञको उन तरंगोंकी अनन्त आरसीमें, आर्यावर्तमें हुए अनेक परिवर्तनोंके प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ते थे।

इन तरंगोंने नागलोकके वीरोंको आर्य नामसे भी अनभिज्ञ इतिहास-कालमें स्नान कराया था, हैहयश्रेष्ठ सहस्रार्जुनकी प्रचंड भुजाओंको पानी चढ़ाया था, हैहयोंको मारकर तृप्त हुए परशुको साफ करते हुए परशुरामकी कालाग्निके समान मुख मुद्राको शान्त किया था और समस्त भारतको ऐक्य अर्पण कर वानप्रस्थ बने हुए भगवान् कौटिल्यके पाप धोकर उनकी मुमुक्षु आत्माको विशुद्ध किया था। उनकी नजरमें मस्त यादवोंकी रासेक जल-क्रीड़ा, भोजोंकी सुकुमार भार्याओंका अंग-लालित्य और ग्रीकोंका स्नायुबद्ध सौंदर्य आया था। उन्होंने सिकन्दरकी थकी हुई सेनाके निःश्वास सुने थे; दद्दकी दुर्जय सेनाओं तथा त्रिलोचनपालके गजराजोंका दर्शन किया था और दुर्धर्ष सेनापति बारपका बल देखकर वे आश्चर्यचकित हुई थीं।

उन्होंने लाट देशके स्वातन्त्र्यका अन्त होते देखा था और पाटनके सोलंकी मूलराजके पुत्र चामुंडकी विजयी सेनाकी गर्वपूर्ण गर्जना सुनी थी।

परन्तु इस समय तो वे केवल सूर्यकी लाल किरणोंके साथ नाच रही थीं और उस साधुको यह सब विचार करनेका अवकाश नहीं था। वह तो केवल त्रिभुवनपालकी लाटको गुजरात बनानेकी राजनीतिका और वह जिस कारण लाटमें आया था, उसपर ही विचार कर रहा था। फिर भी उसकी दृष्टि, नीचे लंगर डाल कर खड़े हुए एक बड़े जहाजपर पड़ी। इस जहाजपरसे उतरे हुए एक यात्रीको देखकर साधुके मुखपर संतोष छा गया। प्रसन्नता झलक आई।

एक यात्रीको देखकर इस साधुका एक साथी भी उसके समीप आया।

"सूरिजी, मेहताका आँबड़—" तरुण साधुका मुख देखकर बोलनेवाला रुक गया।

"विजयचन्द्रजी, किसीका नाम क्यों लिया जाय?" तरुण साधुने मधुरतासे, परन्तु तलवारकी धारकी तरह तीक्ष्णतासे कहा।

जिसको विजयचन्द्रने 'मेहताका आँबड़' नामसे पहचाना था, वह सुन्दर सुडौल शरीरका तरुण योद्धा था। उसके कानोंके कुंडल और हाथोंकी पहुँचियाँ उसकी समृद्धिकी और उसका लम्बा भाला और उसके पीछे एक सेवकके हाथमें थमा हुआ धनुष उसके शौर्यकी साक्षी दे रहे थे। उसके पीछे दो तीन सैनिक उसकी गठरियाँ लिये आ रहे थे।

आँबड़ या आम्रभटके साथ एक काला ठिंगना और मोटा ब्राह्मण चल रहा था। उसकी चमड़ी पक्के काले संगमरमरकी थी और चंदनका त्रिपुंड लगा हुआ कपाल, काले पत्थरके शिवलिंगका स्मरण करा देता था। उसके एक कंधेपर झोली और लोटा-डोर, दूसरेपर कम्बल और माथेपर कनटोपी थी।

"हर हर भोलानाथ। आखिर जीते जी भृगुकच्छ देखा तो!"

"ठीक कह रहे हो—" हँसकर आम्रभटने कहा—"महाराज, अब हम लोग अलग होते हैं। हो सके तो फिर मिलिएगा।"

"घबरानेकी आवश्यकता नहीं है, विधिका विधान होगा, तो अवश्य मिलेंगे।" ब्राह्मण देवताने कहा—"यहाँसे ऊबा कि खंभात जरूर आऊँगा। ईश्वरने चाहा तो फिर सोरठ नहीं जाना है। बहुत हो गया।"

आम्रभट हँस पड़ा—"मणिभद्रजी, अपनी बहनके यहाँ कबतक रहोगे?"

"कब तक? भगवान सोमनाथ करें कि जीवनभर रहना पड़े।"—ब्राह्मणने आत्म-संतोषसे कहा—"ओह, बहन भी क्या ऐसी वैसी है! हमारा एक दूसरेके बिना चल ही नहीं सकता।"

आम्रभटने विचार किया कि इस सुन्दर रूपवान् (?) भाईकी बहन भी कैसी होगी! "परन्तु आपके बहनोई!—"

वाक्य पूरा करनेसे पहले ही आम्रभटने उस साधुको देखा और दोनों कुछ ऐसे लगे कि अभी हँस देंगे। परन्तु साधुका मुख एक ही क्षणमें फिर ज्योंका त्यों स्वस्थ हो गया और वह इस प्रकार देखने लगा, जैसे आम्रभटको

पहचानता ही न हो। आम्रभटने भी कुछ प्रयत्न करके अपरिचितताका डौल किया।

उस ब्राह्मणने यह सब फेरफार नहीं देखा, वह तो अपनी बातोंमें ही मशगूल था।

"मेरे बहनोई! अरे! परन्तु भला करें भगवान् भोलानाथ, ये कैसे शकुनमें मिले!"—कहकर साधुकी ओर अँगुलीसे संकेत करके वह हँस पड़ा। आम्रभटने उसकी बातपर ध्यान नहीं दिया और उन साधुओंको नमस्कार किया।

"महाराज, दरवाजे कब खुलेंगे?"

"खुलने ही वाले हैं।" उस तरुण साधुने कहा, "आप कहाँसे आ रहे हैं?"

"मैं वंथलीसे आ रहा हूँ, महाराज जयसिंहदेवका सुभट हूँ और भृगुकच्छके दुर्गपालका संदेश लाया हूँ। आपका विहार कहाँसे हुआ है?"

"हम लोग वटपद्र (बडौदा) से आ रहे हैं।" कहकर साधु ब्राह्मणकी ओर घूमा।

"विप्रवर, आप कहाँसे आए हैं।"

"अजी, हम आए हैं—" विप्रवरने हाथ उठाकर कहा—"बहुत दूरसे।" सब लोग हँस पड़े।

"मणिभद्रजी तो सोमनाथ पाटनसे आये हैं।" आम्रभटने कहा—"बड़े ही आनन्दी जीव हैं।"

"सारा जगत् ही बस आनन्द—आनन्द है।" मणिभद्रजीने हँसकर अपना तत्त्वज्ञान सुनाया।

"क्यों साधु महाराज, समझे? हमारे लिए तो बस जहाँ गये वहीं घर है। खाना पीना, आनन्दसे रहना और तीनों काल गायत्रीका जप करना—बस फिर सारी दुनिया झख मारती है। हरहर भोलानाथ। अच्छा चलता हूँ महाराज, जय सोमनाथ!" कहकर, अपने मोटे भारी शरीरको लेकर मणिभद्र अस्वाभाविक तेजीसे पुराने भृगुकच्छकी ओर घूम पड़े।

क्षण-भरके लिए वह तरुण साधु और आम्रभट चुपचाप खड़े रहे। ऐसा

प्रतीत हो रहा था, जैसे दोनों विचार कर रहे हों कि जान पहिचान प्रकट की जाय या नहीं।

"आप कहाँ ठहरिएगा?" आम्रभटने पूछा। तरुण साधुने उत्तर दिया, "देवभद्र सूरिके उपासरेमें, और आप?"

"नगर सेठके यहाँ।" कहकर आम्रभटने नमस्कार करके छुट्टी

२—आम्रभट सब कुछ भूल जाता है

आम्रभटने कुछ दूर खड़े हुए मनुष्यसे पूछा "क्यों भाई, दुर्गपाल दरवाजा कब खोलेंगे?"

"अभी खोलेंगे। कहाँसे आये हैं?"

"वंथलीसे। दुर्गपाल महाराज इस समय दुर्गमें होंगे?"

"नहीं, अब तो वे नगरमें रहते हैं।"—कहकर उसने पुराने भृगुकच्छकी ओर इशारा किया।

"किस जगह?"

"साम्बा बृहस्पतिके बाड़ेमें।"

"कितनी दूर है?"

"वह जो रास्ता दिख रहा है, उससे जाओ। दाहिनी ओर एक चौक मिलेगा, वहाँ पूछोगे, तो कोई भी बतला देगा।"

"और नगर सेट कहाँ रहते हैं?"

"वे जरा दूर रहते हैं, पट्टनी चौकमें। मैं वहीं जा रहा हूँ।" उस नागरिकने कहा।

"तो मेरे साथके लोगोंको वहाँ पहुँचा दोगे? हमीर," आम्रभट्टने अपने सैनिकको बुलाया—"तुम लोग इनके साथ जाओ और सेठ तेजपालजीको मेरे आनेकी खबर दे दो। मैं दुर्गपाल महाराजसे मिलकर आता हूँ।"

आज्ञाके अनुसार सैनिक जब उस नागरिकके साथ चले गए, तब आम्रभटने चारों ओर देखा।

वह छोटा था। उसे जीवनमें रस भी जितना चाहिए उतना था। माता पिताने उसे लाड़ लड़ाया था, सिखाया था, अतएव उस समय मिलनेवाली सारी शिक्षा उसे मिली थी और इधर कोई पाँच वर्षसे वह युद्धोंमें भी भाग लेने लगा था। फिर भी उसका रसिक स्वभाव, शान्तिका सुख भोगनेको आतुर था। सामने कल्लोल करती हुई नर्मदा, समीप ही आकाशसे बातें करते हुए मंदिर-शिखर, प्रातःकालके आनन्दमें डूबा हुआ नगर और सेठ तेजपालकी पुत्री, अपनी भावी पत्नीसे मिलनेकी आशाने उसके हृदयमें न जाने क्या क्या उर्मियाँ उत्पन्न कीं। परन्तु महाराजाकी और अपने पिताकी आज्ञाके भारने उनको उत्पन्न होते ही कुचल दिया और वह निःश्वास छोड़कर नगरमें जाने लगा।

उसके तेजस्वी मुख, आभूषणोंसे दमकते हुए अंग और संस्कारशील तथा प्रभावशाली व्यक्तित्वके कारण दुकान खोलते हुए व्यापारी घूम घूमकर उसे देखने लगे। परंतु आम्रभट उनकी परवाह न करके साम्बा बृहस्पतिके बाड़ेको पूछता हुआ आगे बढ़ने लगा।

उस समयके रिवाजके अनुसार वह बंदरपर रुका होता और अपने आदमीके साथ दुर्गपालको संदेशा भेज देता, तो अपने और अपने पिताके रुतबेके अनुकूल वह पालकीमें बैठाकर लाया जाता। परन्तु आम्रभटके सरल तथा उमंगी स्वभावको यह सब झंझट पसंद नहीं थी। इस स्वभावका परिणाम यह हुआ कि विचारोंमें मग्न होकर चलते चलते थोड़ी ही देरमें, इस अपरिचित नगरमें वह रास्ता भूल गया।

कुछ देरमें साम्बा बृहस्पतिके बाड़ेकी पूछताछ करते करते वह एक ब्राह्मणोंके मुहल्लेमें जा पहुँचा। वहाँके मकान छोटे छोटे और साज-सजारहित थे। एक मकानमेंसे वेदोच्चारके स्वर सुनाई पड़ रहे थे। आम्रभटको आश्चर्य हुआ। क्या इसी मुहल्लेमें, लाटका दुर्जय भटराज, भृगुकच्छका दुर्गपाल, त्रिभुवनपाल महाराजका परम मित्र और मेरे पिताके समान प्रतापी मंत्रीका शत्रु रहता होगा? वह जरा तिरस्कारसे हँसा। कहाँ उसके पिताका पाटनका महल, कर्णावती तथा खंभातके प्रासाद और कहाँ इस सत्ताधीशका झोंपड़ा?

इस ओर दरवाजे खुले पड़े थे, परन्तु गलीमें कोई दिखाई न पड़ता था। प्रत्येक दरवाजेके आगे गौएँ बँधी थीं और वे इस नव आगन्तुककी और नीरस

भावसे देखती थीं। आम्रभटको सूझा नहीं कि दुर्गपालका पता किससे पूछे।

कुछ दूर एक छोटेसे शिवालयसे घंटनाद सुनाई पड़ा। आम्रभट यह विचार कर उस ओर गया कि कदाचित् वहाँ कोई हो।

ज्यों ही उसने मंदिरकी ओर बढ़ना चाहा, त्यों ही वह इस प्रकार खड़ा रह गया, जैसे भूमिसे चिपक गया हो। मंदिरके गर्भद्वारसे एक स्त्री निकल रही थी।

आम्रभटकी आँखें आश्चर्यसे फटीकी फटी रह गईं। वह स्त्री नहीं देवांगना थी। थी तो वह तीसेक वर्षकी, परन्तु नागके फनके समान केशोंकी सुंदरतासे लेकर, अंगूठोंमेंसे निकलती हुई कमलकी डंडियों जैसी पैरकी अँगुलियों तक, बेचारे आम्रभटको वह अपूर्व और अद्भुत मालूम हुई। उसके प्रत्येक अंगमें लालित्य था और प्रत्येक रेखामें आकर्षण। उसके नेत्रोंमें मेनकाका मद और ऋषियोंके भी मनको लुभानेवाली मनोहरता थी। बेचारे गरीब युवकका भावना-ओंसे भरा हुआ हृदय मूर्च्छित हो गया।

उषाके समान उज्ज्वलताका प्रसार करती हुई वह आई और आम्रभटकी आँखोंमें समा गई। केवल दो कदम दूर वह खड़ी हो गई, उसके नेत्रोंमें आश्चर्य था। उसने पूछा—" किससे काम है ? "

आम्रभटके कानोंमें गंधर्व गान करने लगे। निर्बलतासे उसने पीछे दीवार-पर हाथ टेक दिया।

वह देखती रही और जरा हँसी। युवकके अचेत मस्तिष्कमें उस हास्यके प्रतापसे फिर जीवन आ गया।

" मैं—साम्बा बृहस्पतिका बाड़ा—" " हाँ यही। "—कहकर वह सुंदरी समीपके एक मकानमें अदृश्य हो गई। आम्रभटको मालूम हुआ कि पृथ्वीपर प्रलयकालका अंधकार उतर आया है। वह बंद होते हुए द्वारके भीतर अदृष्ट होती हुई मोहिनीकी ओर देखता रह गया।

उसे अपने शरीरका भी भान नहीं रहा। वह कहाँ था, किस लिए यहाँ खड़ा था, किस उद्देश्यसे भृगुकच्छमें आया था—सब कुछ भूल गया। उसे केवल यही लगा कि उसका चित्त, उसका जीवन, उसकी आशाएँ उस द्वारके भीतर बंद हो गई हैं।

" ए भाई !—ए भैया !—वहाँ क्यों खड़े हो ?—" एक आवाज आई। समीपके दूसरे घरमेंसे एक विद्यार्थी हाथमें पंचपात्र और आचमनी लेकर

निकला था, उसे लगा कि वह उससे कुछ पूछ रहा है।

आम्रभट बड़े परिश्रमसे अपने चित्तको पृथ्वीपर लाया, कपाल परसे पसीना पोंछा और नेत्रोंको उस लड़केपर स्थिर करके बोला "एं।"

"एं! क्या! आपको किससे काम है?"

यह प्रश्न पहले जिस स्वरमें हुआ था, उसकी मिठासका स्मरण करते हुए आम्रभटने कहा—"दुर्गपालसे।"

"ओहो दुर्गपाल महाराजसे, वे तो उस ओर रहते हैं।"

"तब साम्बा बृहस्पतिका बाड़ा यह नहीं है?"

"यह पुराना बाड़ा है। महाराज तो नए बाड़ेमें रहते हैं। चलो, रास्ता दिखा दूँ।"

आम्रभटका पैर नहीं उठा। उसने बड़ी कोशिशसे पूछा, "और यह घर किसका है?" कहकर जिस घरमें वह स्त्री गई थी, उस ओर इशारा किया।

"वह तो पाठशाला है। क्यों?"

"नहीं, यों ही।"

३—भृगुकच्छका दुर्गपाल

चकित हुआ आम्रभट उस विद्यार्थीके पीछे पीछे चला और कुछ ही दूर जानेपर साम्बा बृहस्पतिका नया बाड़ा आ गया।

वहाँ घर छोटे छोटे होनेपर भी नए थे। वेद-ध्वनिके बदले घोड़ोंकी हिनहिनाहट सुनाई दी और जुगाली करती हुई गायोंके बदले तेजीसे चलते हुए राजपुरुष दिखे।

"भटजी, उस दरवाजेसे होकर जाओ तो महाराज मिल जायँगे।" कहकर विद्यार्थीने अपना रास्ता लिया।

आम्रभटमें आगे बढ़नेका उत्साह न रहा। उसे तो पीछे जाना था और हृदयहारिणी सुन्दरीको खोजना था। इस समय राजकीय प्रपंच उसे बिलकुल नीरस लगे। सत्ता और सम्पत्तिका योग उसे क्षुद्र-सा प्रतीत हुआ। जीवनका सर्वस्व उसे दो जादूभरे नेत्रोंके स्मरणमें समाया लगा। उसे यह याद नहीं रहा कि वह कब तक खड़ा रहा। एक सुभटने आकर जब पूछा तब चेत हुआ।

" भटजी, यहाँ क्यों खड़े हैं ? "

" मैं–मैं–दुर्गपाल महाराजसे मिलना चाहता हूँ। "

" तो भीतर बाड़ेमें आइए।"—कहकर वह सुभट उसे अंदर ले गया।

दरवाजेके अन्दर चारों ओर लिपा हुआ चबूतरा था, और उसपर जहाँ तहाँ कुछ लोग बैठे हुए बातें कर रहे थे। अधिकतर सैनिक ही थे।

वह सैनिक आम्रभटको एक अधेड़ सुभटके पास ले गया।

"रुद्रमल्लजी, महाराज क्या कर रहे हैं ? "

" सोमनाथ पाटनसे एक ब्राह्मण आया है, उससे बात कर रहे हैं।"

" सोमनाथ पाटनसे आये हुए ब्राह्मणका नाम सुनकर आम्रभटने ध्यान दिया। क्षणभरमें उसके शून्य—सुत—हृदयमें चेतना लौट आई।

" ये भटजी कौन हैं ?—" रुद्रमल्लने पूछा और नमस्कार किया।

" मुझे दुर्गपाल महाराजसे मिलना है।"

" कहाँसे आये हैं ? "

" वंथलीसे, महाराजकी आज्ञासे आया हूँ।"

" महाराज आ गये ? "

" हाँ, महाराज, मीनलदेवी आदि सभी आ पहुँचे हैं।"

" आपका नाम ? "

" मेरा नाम आम्रभट। दुर्गपाल महाराजसे कहो कि उदा मेहताके पुत्र संदेश लेकर आए हैं।"—

" उदा मेहता—मंत्री महाराज ? " रुद्रमल्लने सन्देहसे पूछा; परन्तु आम्रभटके रूप, संस्कारशील व्यक्तित्व और आभूषणोंका ठाट देखकर उसे विश्वास हो गया और वह तुरन्त सम्मानके साथ बोला—" पधारिए, पधारिए। परन्तु इस प्रकार अकेले क्यों ? कब आये ? "

" मैं सीधा बन्दरसे आ रहा हूँ। मेरे आदमी नगरसेठके यहाँ चले गये हैं।"

" आइए, विराजिए। मैं भटराजसे अभी कहे आता हूँ, एक क्षण भी न लगेगा।"

" चिन्ता नहीं। " आम्रभट पास ही पड़े हुए तकिएसे लगकर बैठ गया और रुद्रमल्ल उतावलीसे अंदर चला गया।

आम्रभटका चित्त फिर उस सुन्दरीकी ओर लौटे कि उससे पहले ही रुद्रमल्ल आ गया।

" भटजी, चलिए ।"

राजकीय प्रपंचोंके कठोर जीवनपर एक निःश्वास छोड़कर आम्रभट उठ खड़ा हुआ। अन्दर जानेसे पहले उसने अपने चित्तको सावधान किया। भृगुकच्छके इस दुर्गपालके शौर्यके विषयमें उसने बड़े बड़े योद्धाओंसे अनेक कथाएँ सुनी थीं। इसकी उस्तादीके विषयमें उसके पिता जैसे राजनीतिज्ञ मंत्रीने भी उसे अनेक बार सावधान किया था।

सारे देशमें जिसका डंका बज रहा था, ऐसे महामात्य मुंजाल जैसे महापुरुषको भी इसकी मुक्तकंठसे प्रशंसा करते देखा था और त्रिभुवनको वश करनेवाले स्वयं महाराज जयसिंह देवको इसका नाम कुछ भयके साथ लेते सुना था।

ऐसे मनुष्यके पास वह एक अनुभवहीन युवक जा रहा था, और ऐसे कार्यके लिए, कि जिसे करनेके लिए जाते हुए बड़े बड़े महारथी भी काँप जायँ। बड़े प्रयत्नसे उसने क्षोभको दबाया। वह उदा मेहताका पुत्र था; अतएव महापुरुषोंसे मिलना उसके लिए खिलवाड़ था। अतएव, यह प्रयत्न तुरन्त सफल हो गया।

वह जिस कमरेमें पहुँचा, उसमें प्रकाश कम था, और उस प्रकाशमें उसकी आँख बराबर देख सके कि उसके पहले ही हिंडोलेपर बैठा हुआ पुरुष स्नेहसे आगे आया और उसने उसके दोनों हाथ थाम लिए।

" कौन उदा मेहताके चिरंजीवि आँबड़ ?"

आम्रभट इन शब्दोंका उच्चारण करनेवाले पुरुषको भली भाँति देखे, कि इसके पहले ही उसकी नजर कमरेके दरवाजेकी तरफ गई और अंदर जाती हुई स्त्रीके पैरोंकी एड़ी और उसपर लटकते हुए वस्त्रका पिछला छोर दिखा। पलभरके लिए वह अपरिचिता सुन्दरी उसकी दृष्टिके आगे आ गई; पर उसने होठ काटकर अपना स्वागत करनेवालेकी ओर ध्यान दिया।

ऊँचा, स्नायुबद्ध, गौरवर्ण शरीर, कंधोंपर फैली शिखासे मंडित गौरवपूर्ण मुख, छोटी काली मूछें, गरुडकी-सी नुकीली नाक, बड़ी बड़ी चमकीली चंचल आँखें—यह सब विशेषताएँ उसने क्षण ही भरमें देख लीं, पर इसके पहले उस स्नेहपूर्ण स्वागतमें समाविष्ट उमंगको देखकर उसे आश्चर्य हुआ।

' गुजरातके नाथ ' के पाठकोंको इसमें आश्चर्य न होगा। आज पंद्रह वर्षोंके पश्चात् भी काक पहले ही जैसा सीधा, सशक्त तथा स्नायुबद्ध था।

केवल उसका मुख कुछ अधिक मांसल हो गया था और अधेड़ उम्रकी रेखाएँ खिंच गई थीं।

" भटराज—"

" आँबड़, " काकने कहा—" मेरे मित्रका पुत्र आज मेरे घर ! आओ बेटा ! "—कहकर काकने आम्रभटको गले लगा लिया।

" कौन आँबड़ भाई ! "—एक कोनेसे आवाज आई। काककी भुजाओंसे छूटकर आम्रभटने देखा, तो कोनेमें मणिभद्र महाराज मुँह फाड़े हँस रहे हैं।

आम्रभट चौंका।—" ओहो, ब्रह्मदेव, आप यहाँपर ? "

" मैंने क्या कहा था ? यही तो मेरी बहनका घर है। "

आम्रभटने काककी ओर देखा और उसे यह विचार आया कि इस आबनूसी ब्राह्मणकी बहन, इस तेजस्वी योद्धाका घर किस प्रकार सुशोभित करती होगी ! और, केवल एक पैरकी एड़ी देखकर उसे जो उस सुन्दरीका स्मरण हो आया था, सो याद आ जानेसे वह मन ही मन जरा हँसा।

काकने तीक्ष्णतासे दोनोंकी ओर देखा।

" आप दोनों एक ही नावमें आए हैं ? "

" जी हाँ। "—आम्रभटने कहा।

" अच्छा, मणिभद्रजी, आप नहा धोकर तैयार हो जाओ। मैं आँबड़के साथ बात कर लूँ। आओ बेटा आबड़ ! "—कहकर, काकने आम्रभटका हाथ पकड़कर अपने पास हिंडोलेपर बैठा लिया। मणिभद्र और रुद्रमल्ल दोनों वहाँसे चले गये।

" क्यों बेटा, तुम्हारे बापू बंथली आ गये ? "

" हाँ।—" आम्रभटके मुखसे निकल गया और वह कुछ हिचका। यह बात कहनी नहीं चाहिए थी, पर अचानक निकल गई।

" महाराज और मीनलबा कब बंथली आये ? "

" मेरे रवाना होनेसे चार-पाँच दिन पहले। "

" सब कुशल है ? "

" हाँ, महाराजने यह पत्र दिया है। " कहकर आम्रभटने कमरबन्द खोला, उसमेंसे एक पत्र निकाला और काकको दिया।

काकने पत्र खोला और पढ़ा—

" भृगुकच्छके दुर्गपाल भटराज काकको, वामनस्थलीसे समस्त राजावली-विराजित बर्बरकजिष्णु परमभट्टार्क महाराजाधिराज जयसिंहदेववर्माकी आज्ञा है कि जूनागढ़के घेरेमें योग देनेके लिए, यह पत्र देखते ही आप यहाँ आवें और भृगुकुच्छका दंडनायकत्व इस पत्रवाहकको सौंप दें। विक्रमार्क ११६९

हस्ते शोभ मेहता।"

पत्र पढ़ लेनेपर भी काक क्षणभर उसकी ओर देखता रहा।

जयसिंहदेव पंद्रह वर्षोंसे उसपर रुष्ट हैं; अतएव अचानक इस प्रकार उससे सहायता माँगनेमें कोई रहस्य है।

" मुझे बुलानेका कारण?"

" महाराज अब बड़े अधीर हो गये हैं। उन्होंने दादाक मेहता और आपको कर्णावती बुलाया है। मेरे पिताको भी।"

" पंद्रह वर्षोंतक यह सब क्यों नहीं किया?"

" इसका एक किस्सा है।"

" क्या?"

" उस बार जब रा' खेंगारने वंथलीसे महाराज परशुरामको निकाल दिया, तब महाराज बड़े क्रोधित हुए और खेंगारसे शरणमें आनेके लिए कहलाया।"

" हाँ—"

" तब खेंगारने अपनी देवड़ी रानीकी चोली और लहँगा महाराजको—"

" भेंट भिजवा दिया। यह तो मुझे मालूम है। खेंगार तो मसखराका मसखरा ही रहा। परन्तु साधलासे वंथली तक जीत कर आया और अब काकका क्या काम पड़ा?"

" महाराजने प्रतिज्ञा की है कि इस मासके अन्त तक या तो पाटन नहीं या जूनागढ़ नहीं।"

काक हँसा, " मेहताजी मिले थे?"

" हाँ, उन्होंने भी मुझसे कहलाया है कि पंद्रह वर्ष पहले महाराजको आपने जो वचन दिया था, उसके पालनेका अब अवसर है।"

" क्या?"

" कि महाराज आज्ञा दें, तो आप जाकर खेंगारको नीचा दिखावें।"

" इस समय वहाँ और सब कैसे चल रहा है?"

" जिस दिन मैं रवाना हुआ, उसके एक दिन पहले ही खेंगारने एक छापा मारा और हमारे पाँचसौ सैनिक मारे। परशुराम स्वयं बड़ी कठिनाईसे बचे।"

" ऐसा ? अच्छा, और कुछ ? कुछ सेना भी मँगवाई है ? "

" नहीं। मुंजाल मेहताने कहा है कि आप अकेले ही आवें, ज्यादह आदमियोंकी जरूरत नहीं। और लीलादेवी—"

" हाँ—"

" लीलादेवीने भी संदेश कहलवाया है।"

" क्या ? "

" कि आप न आएँगे तो वे स्वयं भृगुकच्छ आएँगी।"

" इतना सब क्यों ? "

" मुझे बुलाया, तब बड़ी चिन्तातुर दिखती थीं।"

लीलादेवी लाटके सोलंकियोंकी वंशज थीं और लाटको गुजरातके साथ मिला देनेके लिए, काकने उसे जयसिंह देवके साथ ब्याह दिया था।

' मेरी कीमत बढ़ गई दिखती है।"

" कब नहीं बढ़ी थी ? " आम्रभटने कहा और वह काककी ओर सम्मानसे देखता रहा।

तलवारकी धारके समान तीक्ष्ण दृष्टिसे काकने उसकी ओर देखा। परन्तु वाक्यको बिल्कुल स्वाभाविक रूपसे बोला हुआ समझकर वह हँसा। " तुम्हारा सामान कहाँ है ? "

" मैंने अपने आदमियोंको नगरसेठके यहाँ भेज दिया है।"

" हाँ, ठीक है। तुम तो उनके जँवाई बननेवाले हो, न ? जाओ, मैं जानेकी तैयारी करता हूँ। रुद्रमल्ल, आँबड़ मेहताके लिए पालकी मँगाओ।" कहकर काक उठ खड़ा हुआ और आम्रभटने बिदा ली।

कुछ देर काक वहीं खड़ा रहा और शिकारीकी जैसी सावधानतासे मुद्दा खोजता रहा। " इसमें तो भाई उदाका कुछ हाथ जान पड़ता है।"

" गहरा विचार करता हुआ भृगुकच्छका दुर्गपाल धीरे धीरे अन्दर चला गया।

४—मणिभद्र कैसे आया ?

जब मणिभद्र महाराज भीतरके कमरेमें पहुँचे, तब उनके हृदयमें अनेक उमंगें उठ आईं।

पहले उनका जीवन भंग और ब्रह्मभोज, इन दोनोंके बीच बराबर बराबर बँटा रहता था। परन्तु इस शान्त तथा सरल जीवनमें एक बार खलबली मच गई। उनके गुरुकी दोहती मंजरी, कुछ समयके लिए किसी कारण अपने पतिको छोड़कर जूनागढ़ आई। विवाहिता युवतीपर दृष्टिपात न करना, धर्मका निश्चित सिद्धान्त है। गुरुकी लड़कीकी लड़की, अपनी भानजीके समान होती है, यह भी शास्त्रका वचन है। फिर भी इन विप्रवर्यके हृदयमें विचित्र उर्मियोंका संचार हो गया। उन्हें जीवन सरस प्रतीत होने लगा; भंग और मोदकोंसे अरुचि हो गई और गुरु-दौहित्रीके दर्शन सोते जागते होने लगे।

परन्तु जैसे वह आई, वैसे ही पतिके साथ चली भी गई; परन्तु बादलोंसे छाये हुए आकाशके अन्धकारमें जैसे ध्रुवतारा चमकता रहता है, मणिभद्रके भंग तथा भूखसे ग्रसित जीवनमें वैसे ही वह चमकती रही।

कुछ दिनोंके बाद उन्होंने सुना कि वह अपने पतिके साथ भृगुकच्छ गई है। यह सुनकर मणिभद्र महाराजके मस्तिष्ककी नौकाको दिशा मिल गई। वे भृगुकच्छ जानेको तरसने लगे; उन्हें रात दिन भृगुकच्छके सपने आने लगे। परन्तु जीवनभर उन्होंने कभी जूनागढ़से बाहर पैर नहीं रखा था; सारी यजमान-वृत्ति जूनागढ़में थी। उन्हें परदेशका बड़ा ही भय था। अतएव, अपने जगत्को छोड़कर, पराये जगत्के अज्ञात प्रदेशमें विचरण करनेका उन्हें साहस न हुआ।

इस प्रकार वर्षों बीत गये। भृगुकच्छवाली मंजरीसे मिलकर मोक्ष प्राप्त किया जाय, या जूनागढ़के ब्रह्म-भोजोंका विलास भोगा जाय, इन दो लक्ष्योंके बीच फँसा हुआ यह ब्राह्मण मुमुक्षु आत्माओंकी भाँति धीरे धीरे विलास ही भोगने लगा।

पंद्रह वर्षके बाद जूनागढ़के खेंगारकी रानीने आज्ञा दी कि तुम्हें भृगुकच्छ जाना होगा। जिस प्रकार ध्रुवको सौतेली माताके बोल सुनकर, ईश्वर-प्राप्तिका मार्ग मिला था, उसी प्रकार यह आज्ञा सुनकर मणिभद्र-को मोक्षका मार्ग मिल गया। वे आनन्दसे विभोर होकर नाच उठे। जूनागढ़

छोड़नेके लिए वे एक पैरसे तैयार हो गये और ऐसी स्फूर्तिसे जो उनके गोल-मटोल शरीरके साथ जरा भी मेल न खाती थी। उन्होंने रानीका हुक्म सिर-माथे चढ़ा लिया।

और इस समय वे मंजरीसे मिलनेके लिए अन्दर गये। अन्दरके भागमें एक छोटी-सी बालिका पालना झुला रही थी। मणिभद्रने इसे पहले नहीं देखा था, तो भी तुरन्त पहचान लिया और वे हर्षसे फूलकर देखने लगे।

सातेक वर्षकी इस बालिकाकी आकृतिमें, उसके अन्तरमें रमी हुई गुरु-दौहित्रीकी आकृति दिखलाई पड़ रही थी। वही नाक, वही आँखें, केवल रंग कुछ साँवला था। मणिभद्रको भास हुआ कि फूल फिरसे कलीके रूपमें दिखा है।

"बेटी, तेरी मा कहाँ है ?"

"तुम कौन हो ?"—बालिकाने चौंककर ऊपर देखा।

"मैं ? मैं तुम्हारा मामा हूँ।"—कहकर मणिभद्र हँसे और अपने स्वरूपसे घबराई हुई भानजीको छातीसे लगा लिया।

"अरे, परन्तु भैया जाग जायगा ?" बालिकाने घबराकर कहा।

"अरे, यह तेरा भाई है ?" मणिभद्रने बालिकाको छोड़कर पालनेमें सोते हुए बालकको उठा लिया।

"आओ बेटा, बिटिया, इसका नाम क्या है ?"

"इसका नाम हमने तो 'वौसरि' रखा है।" इस बघूले जैसे उत्पाती और भौंरे जैसे काले मामाके भयसे भागती हुई बालिकाने कहा।

"वौ–वौ–वौ–स–रि"—धीरेसे इस विचित्र नामको मस्तिष्कमें उतारनेका प्रयत्न करते हुए मणिभद्र बोले।

परन्तु इस नामको धारण करनेवालेमें अपनी बहनका-सा धैर्य नहीं था। उसने आधी आँखोंसे इस नये मामाको देखा और उसकी मुखमुद्रामें रिश्तेका कोई भी चिह्न दिखाई न पड़नेसे वह उच्च स्वरमें आपत्ति कर उठा—"उंआँ—आँ—आँ—"

विशाल हास्यसे वातावरणको प्रेमपरिपूरित करके, अपने हाथकी झोली बनाकर मणिभद्रने उत्तर दिया—"ओरे मेरे लल्लू रे !"

परन्तु यह वार्तालाप आगे बढ़े, इसके पहले ही अन्दरसे आवाज़ आई—"महाश्वेता, क्या हुआ ?"

मणिभद्रजी मुड़े और पंद्रह वर्षके बाद उन्होंने फिर मंजरीको देखा—"बहन! बहन!—"

मंजरी पहले थी, वैसी ही तेजस्विनी और सुंदर थी। पंद्रह वर्षोंके प्रतापसे उसके शरीरकी आकृति भरावदार हो गई थी। उसके मुखका लालित्य पूर्णिमाके चंद्रमाके समान सम्पूर्ण हो गया था; और उसके गर्वीले नेत्र अमृत वर्षा करना सीख गये थे।

वह मणिभद्रको देखकर कुछ विस्मित हुई, परन्तु उसके मुड़ते ही पहचान गई।

"कौन, भैया मणिभद्र?"

"हाँ, बहन, मैं ही हूँ।" कहकर दौड़ते हुए जाकर मणिभद्रने भानजा मंजरीको सौंप दिया।

"भैया, बैठो।"—कहकर मंजरी चौकी बिछाने लगी गई परंतु मणिभद्र ऐसे सम्मानका भूखा न था।

"रहने दो बहन। मैं तो यह बैठ गया।—" कहकर मणिभद्र पाँवपर पाँव चढ़ाकर बैठ गया।—"आओ बेटी, मेरे पास आओ।"

परंतु वह बालिका तो मंजरीके पीछे साड़ीमें जा छिपी थी और आश्चर्यसे इस नव आगन्तुककी ओर देख रही थी।

"यह तो न आएगी। कहो, कुशल तो हो। और सब तो आनन्दमें हैं?"

"आनन्द तो क्या? हर हर भोलानाथ। जूनागढ़पर तो जमराज कोपे हैं, बहन!—" मणिभद्रने दुःखसे माथा हिलाते हुए कहा—"चारों ओरसे खेंगार महाराजको घेर लिया है। भोलानाथ जो कुछ करें सो ठीक।"

"तब यहाँ चले आना था—"

"बहन, इच्छा तो नित्य ही होती थी; परन्तु किया क्या जाय? यजमान-वृत्ति ठहरी। और लड़ाईके कारण मृत-श्राद्धोंका पार नहीं रहा। लो, यह भटजी आ गये—"

"कहिए मणिभद्रजी, अपनी बहनसे मिल लिये?" काकने पूछा।

"हाँ।—कहकर मणिभद्रने अपनी कनटोपी उतारकर भूमिपर रख दी।

"मंजरी, मुझे जाना होगा।"

"कहाँ?"

"वंथली।"

" क्यों ? ".

काकने चुपचाप जयसिंहदेवका आज्ञापत्र दे दिया। मंजरीने उसे पढ़ा और लौटा दिया। पागलकी तरह मणिभद्रने काक और मंजरीकी ओर क्रमशः देखा और उतावलीसे पूछा—" क्या आप वंथली जा रहे हैं ?

काकने कुछ सख्तीसे इस गड़बड़िया ब्राह्मणकी ओर देखा। दूसरोंकी बातोंमें माथा मारनेकी मणिभद्रकी टेव उसे नहीं रुची—" क्यों ? "

" दुर्भाग्य। "

" किसलिए ? "

" मैं भी आमंत्रण लेकर आया हूँ। "—मणिभद्र बोला और फिर भान आ जानेसे चारों ओर भयाकुल दृष्टिसे देखने लगा।

" यहाँ और कोई सुननेवाला नहीं है। किसका आमंत्रण लेकर आये हो ? "

" राणकदेवीका। " मणिभद्रने धीरेसे कहा।

" राणक—" चौंककर काक कुछ कहना चाहता था कि रुक गया—" क्या क्या ? "

" आपको जूनागढ़ बुलाया है। "

कुछ घबराकर काक पीछे हटा—" ऐं ! "

" हाँ, सारी बात कहूँ ? "

काकने नेत्रोंके संकेतसे स्वीकृति दे दी। "मुझे रानीने बुलाया—चुपचाप। मैं जप कर रहा था, वहाँसे उठा और ब्रह्मभोजका एक निमंत्रण था, तो भी महलमें पहुँचा। उस समय महाराज और रानीजीमें कुछ झगड़ा हो रहा था। महाराजके नेत्र लाल हो रहे थे और रानीके नेत्रोंमें जल था। हर हर भोलानाथ ! मैं तो ऐसा घबराया—मैंने भंग भी तो नहीं पी थी। "

" अच्छा, फिर ? " काकने अधीरतासे कहा।

" महाराज तो क्रोधित होकर चले गये और खवासिन मुझे अन्दर ले गई। मैं थर थर काँप रहा था। हर हर भोलानाथ ! मुझसे रानीने पूछा—'तुम्हारा नाम मणिभद्र शुक्ल ?' मैंने कहा—'हाँ।' 'तुम आचार्य जटानाथजीके शिष्य हो ?'—रानीने पूछा। मैंने कहा 'हाँ।' उन्होंने पूछा 'उनकी दोहतीके पतिको पहचानते हो ?' मुझे हँसी आ गई। हर हर भोलानाथ ! भला मैं आपको ही न पहचानूँ ? "

" फिर ? " काकने बातका सिलसिला जारी रखनेको कहा।

" मैंने कहा—'हाँ।' फिर रानीने कहा—'महाराज,' यह देखिए कि मुझसे—'महाराज' कहा! 'आप चुपचाप उनके पास जा सकेंगे?' मैं तो भई, घबरा गया। हर हर भोलानाथ! जूनागढ़का ब्राह्मण भृगुकच्छ कैसे जा सके? 'शुक्लजी, मेरा इतना काम कर दो, और मैं यदि सोरठकी रानी बनी रही, तो तुम्हारा जीवनभर उपकार न भूलूँगी।' रानीने कहा और उनके नेत्रोंसे टपटप आँसू टपक पड़े। हरहर भोलानाथ! मुझे भी रोना आ गया। मैंने कहा कि 'मैं प्राण देनेको तैयार हूँ।' हरहर भोलानाथ!" कहकर भोले ब्राह्मणने अपनी आँखोंसे आँसू पोंछकर काककी ओर देखा। काककी आँखें स्थिर हो गई थीं। उसने केवल आँखकी पलकसे ही मणिभद्रको बात पूरी करनेके लिए कहा। मंजरीके नेत्र भी भीग गये। खखार कर मणिभद्र आगे कहने लगा।

" रानीने कहा—'शुक्लजी, प्रभास होकर तुरन्त भृगुकच्छ जाओ। वहाँ जाकर काक भटसे मिलना और अलग बुलाकर कहना।' "

" क्या ? " काकने पूछा।

" रानीने मुझे यह संदेश कहनेके लिए कहा है, 'काक भटजी, तुमने मुझे बहन बनाया है। एक बार तुमने मेरी लाज रखी थी, और अनेक बार मेरे रा'की रखी है। आज तुम्हारे बिना मेरा काम अटका है; अतएव जहाँ भी होओ, वहाँसे तुरन्त आकर मुझसे मिलो।' फिर रानीजीने मुझे एक सामन्तके साथ कर दिया। वह मुझे प्रभास तक पहुँचा गया और मैं यहाँ आ गया। हरहर भोलानाथ ! "

मंजरीने काककी ओर देखा। काक विचार कर रहा था। कोई भी कुछ न बोला। मणिभद्र सावधान हो गया कि अब उसे यहाँसे चल देना चाहिए; और वह उठ खड़ा हुआ।

" और कुछ ? " काकने पूछा।

" अरे हाँ—"

" क्या ? "

" अन्तमें रानीजीने कहा—'काक भटसे कहना कि मैं पाटनका द्रोह रकनेवाली नहीं'। "

"मैं रानीजीसे कैसे मिलूँ ?"

"प्रभासके समीप ही चोरवाड़ है।"

"हाँ।"

"वहाँ मोती अहीर रहता है। उससे कहना कि मैं मणिभद्र शुक्रका आदमी हूँ; अतएव वह सब व्यवस्था कर देगा।"

"अच्छा, आप उस बाड़ेमें जाइए। वहाँ सेवक हैं। स्नान ध्यान कर लीजिए।" कहकर काकने मणिभद्रको बिदा किया।

५—मंजरीकी महत्त्वाकांक्षा

मणिभद्रके चले जानेपर मंजरीने वौसरिको तो महाश्वेताके हाथ बाहर भेज दिया और वह काकके पास आकर, उसके कुछ कहनेकी प्रतीक्षामें खड़ी रही।

"मंजरी, कोई उपद्रव अवश्य है।"

"मुझे भी ऐसा ही लगता है।"

"नहीं तो एक साथ तीन जनोंको काक याद नहीं आता।"

"तीसरा और कौन ?"

"लीलादेवी।"

मंजरी हँसी। उसने जरा मजाकमें काककी ओर आँखें नचाई। "अरे वाह! उन्होंने भी बुलाया है क्या ?"

काक भी हँसा। "हाँ, आम्रभट संदेश लाया है; परन्तु क्या तुम्हें लीला-देवीसे ईर्ष्या होती है ?"

"मुझे ! किसलिए ? ईर्ष्या करे लीलादेवी कि उसे काकभट नहीं मिले।" मंजरीने गर्वसे कहा।

"राम राम" काकने नाकपर अँगुली रखी।

"तुम ऐसी पगली बातें मत करो। कोई सुन लेगा। उसने भी इतने समयके बाद मुझे बुलाया, अतएव इसमें कोई रहस्य होना चाहिए।" काकने गंभीरतासे कहा।

" क्या जान पड़ता है ?"

" सो समझमें नहीं आता। और सब तो कुछ कुछ समझमें आ रहा है।"

" क्या ?"

" जयदेव महाराजको जूनागढ़ जीतना है; इसलिए काककी आवश्यकता हुई; उदा मेहताको भृगुकच्छ लेना है, अतएव मुझे यहाँसे खिसकाना है।"

" उदाको ?" कुछ चौंककर मंजरीने पूछा। भूत कालमें उदाके दिये हुए दुःखोंका स्मरण हो आनेसे मंजरीके कपालपर बल पड़ गये।

" हाँ, इसीसे अपने पुत्र आम्रभटको यह आज्ञा पत्र लेकर भेजा है। मेरे बदले वह दुर्गपाल बनेगा।"

" एं।" मंजरीका मुख कुछ फीका पड़ गया। उसके स्वरमें कुछ कंप था।

" घबरानेका कोई कारण नहीं। और यह लड़का तो बेचारा बालक है, एक चुटकीमें मसला जा सकता है। भृगुकच्छमें इसकी कुछ नहीं चलनेकी।"

" और वहाँ तुम्हें—"

" मुझे क्या होगा ?" काक गर्वसे हँस पड़ा। " मैं कितना उपयोगी हूँ यह सब जानते हैं। और लीलादेवी तथा महाराज त्रिभुवनपाल मेरा बाल भी बाँका न होने देंगे। और इतने वर्षोंमें मैं कुछ अशक्त थोड़े ही हो गया हूँ। अपने अकेले हाथों मैंने कितने लोगोंसे त्राहि त्राहि कहलवाया है, भूल गई ?" कहकर काकने मंजरीके गाल पर धीरेसे चपत लगा दी। मंजरीने काकका हाथ थामकर दबाया। कुछ देर दोनों मौन रहे; केवल उनके हृदयोंके बीच संवाद चलता रहा।

" और यह तीसरा बुलावा—"

" इसहीकी सारी उलझन है। यह समझमें नहीं आता कि राणकदेवीको मेरी सहायताकी क्या आवश्यकता पड़ गई। मेरी परिस्थिति जरा बेढंगी हो जायगी।"

" परन्तु, बिना उनसे मिले कैसे चलेगा ?"

" मिलूँगा अवश्य। फिर जैसी विगत, वैसी बात। तुम अब मेरे जानेकी तैयारी कर दो। मैं और सब कुछ ठीक किये आता हूँ।"

मंजरीने स्नेहसे काकके हाथपर हाथ रख दिया और वह उसकी ओर देखती रही ।

" मैं जा रहा हूँ, क्या यह तुम्हें नहीं सुहा रहा है? घबरा रही हो ? "

" तनिक भी नहीं । " मंजरीने कहा—" मेरे कैलास जैसे दुर्धर्ष और कालाग्निके समान दुःसह पतिको क्या हो सकता है ? और किसकी मकदूर है कि उनकी मंजरीकी ओर अँगुली भी दिखाये ? प्रसन्नतासे जाओ । मैं राह देखती बैठी रहूँगी कि तुम दंडनायक कब होते हो । "

" इस जीवनमें तो मैं दंडनायक होनेका नहीं । "

" यह कैसे जाना ? "

" मुझसे जयदेव महाराज डरते हैं और पाटनके मंत्री घबड़ाते हैं । "

" अच्छा, देखना । " हँसकर मंजरीने कहा—" एक जनीने तो तुम्हें लाटका राजा बननेका निमंत्रण दिया था, जिसे तुमने स्वीकार नहीं किया और मुझे पसंद कर लिया । तब मुझे तो तुम्हें दंडनायक बनाना ही है । "

मंजरीके नेत्र गर्व तथा प्रशंसासे चमकने लगे ।

" और न बना तो ? " काकने हँसकर पूछा ।

" तो समझना कि पाटनसे मुत्सद्दीगीरी बिदा हो गई

" परन्तु तुम्हारे प्रणका क्या होगा ? "

" मेरा प्रण तो कभीका पूरा हो गया । मेरे मनसे तो तुम [illegible] रहोगे । "

काक हँसा और उसने मंजरीका हाथ दबा [illegible] देवभद्रसूरिके उपाश्रयमें हो आऊँ । वहाँ कुछ समचार मिलेगा । "

काकने सिरपर पगड़ी रखी और तलवार बाँधकर बाहर आया । सुभटोंके नमस्कारका उत्तर देता हुआ काक घोड़ेपर बैठा और दो चार सवारोंके साथ उपाश्रयकी ओर चल दिया ।

६—नगर सेठके यहाँ

जब आम्रभट साम्बा बृहस्पतिके वाड़ेसे पालकीपर बैठकर नगर सेठके घरकी ओर चला, तब भी उसके मस्तिष्कमें वह अज्ञात सुंदरी रम रही थी ।

उसे दुर्गपाल सज्जन प्रतीत हुआ। वह जल्दी ही सोरठ जायगा, तब मैं स्वयं भृगकच्छका दुर्गपाल बनूँगा और यहाँ चैनसे रह सकूँगा—इसमें भी उसे कोई संदेह नहीं रहा। उसके पिताने सावधान रहनेकी जो सीख दी थी वह उसे निरर्थक मालूम हुई और वह समझ न सका कि भृगुकच्छकी सत्ताको अधिकृत करना उन्होंने क्यों कठिन समझ लिया है।

तो अब केवल उस सुंदरीको खोजनेका काम रह गया। उसने बाजारसे जाते हुए चारों ओर देखा; परन्तु उस आकार प्रकारकी कोई अन्य स्त्री नहीं दिखी। ऐसे अद्वितीय सौन्दर्यकी प्रतिमाको खोजना, इस नगरमें सहज तो हो जाय, परन्तु कठिनाइयाँ बहुत थीं। वह एकदम बड़ा आदमी बन गया था। नगरसेठ तेजपालकी पुत्रीके साथ उसकी सगाई हुई थी और भृगकच्छसे परिचित कोई विश्वस्त मनुष्य उसके पास था नहीं; इसलिए यह काम बड़ा कठिन हो गया।

माथा तकियेपर रखकर आँखें मीच कर, उसने उस सुंदरीके अंगोंका लालित्य आँखोंके आगे लानेका प्रयत्न किया। होठोंमें कैसा आकर्षक माधुर्य—नाककी कैसी मदभरी मरोड़—नेत्रोंमें कैसी हृदयभेदक मोहिनी! स्तनोंकी आकृतिकी आधी दिखती हुई अपूर्वता, कमरकी लचककी छटा, पैरों तककी आकृतिमें स्पष्ट होती हुई भव्यता, इन सब खूबियोंका सूक्ष्म पृथक्करण उसने एक आजन्म-विलासीकी सूक्ष्मतासे किया और उसका माथा घूम गया।

उसने जन्मसे लेकर अब तक कभी अनादरका अनुभव नहीं किया था। जो वस्तु वह माँगता, वह तुरन्त हाजिर हो जाती। उदा मेहताका धन और अधिकार दिनों दिन इस प्रकार बढ़ते जा रहे थे कि उसके पुत्रसे इनकार करनेका सामर्थ्य पाटनमें भी किसीका नहीं था, तब यह तो विजित देशकी, थोड़ी देहात जैसी राजधानी थी और वह स्वयं यहाँका दुर्गपाल था—तब और क्या चाहिए?

वह स्त्री विवाहिता तो है ही। हुआ करे, इससे क्या? परन्तु उसके बिना कैसे काम चले? अतएव वह मिलनी ही चाहिए। वेप और स्थान परसे वह ब्राह्मणी-सी लगती थी। किस वेदिया गँवारके भाग्यमें यह अप्सरा जुटी होगी? जो भी हो, परन्तु कौन-सा ब्राह्मण दान और मोदकसे नहीं लुभा जाता? उसमें ब्राह्मणोंके प्रति एक श्रावक-श्रेष्ठके पुत्रके योग्य ही तिरस्कार था। इन विचारोंमें उलझा

हुआ था, फिर भी आम्रभटकी दृष्टिमे नगरका सारा व्यापार आये विना न रहा। भृगुकच्छमें घर छोटे और रास्ते सकरे थे। मंदिर छोटे और जीर्ण थे। उनमें पाटनके मंदिरों जैसे ठाटबाट नहीं थे; मोढेराके मंदिरोंकी-सी भव्यता नहीं थी। फिर भी लाटकी इस राजधानीमे, पाटनके समस्त नगरोंकी अपेक्षा एक विशेषता थी, सारा नगर छोटी छोटी दूकानोंका बना मालूम होता था।

प्रत्येक चौकमें व्यापारियोंकी भीड़ थी। मुनीम गुमास्ते कानोंमें कलम खोंसे, कंधोंपर रुपयोंकी थैलियाँ टाँगे दौड़ रहे थे और मालसे लदी हुई गाड़ियोंकी कतारें चल रही थीं। खंभातमें इस प्रकारका जीवन कुछ अंशोंमें था; प्रस्तु इस नगरकी दौड़ धूपके आगे खंभातका कोई हिसाब ही न था।

इन कारणोंसे आम्रभटकी पालकीवाले तेजीसे नहीं चल सकते थे और उन्हें जगह जगह रुकना पड़ता था। इससे आम्रभटकी विचारमाला हरघड़ी टूट जाती और उसका जी असंतुष्ट हो जाता।

आम्रभटको इस नगरमें कई वातें विचित्र मालूम हुईं। उसके जैसा बड़ा आदमी पालकीमें बैठकर जा रहा है; पर किसीको देखनेका भी अवकाश नहीं, तब नमस्कार करनेका तो होता कहाँसे? क्या यहाँके लोग विनयहीन हैं, या काममें फँसे रहनेके कारण और किसी बातपर ध्यान ही नहीं दे सकते?

फिर उसे विचार आया कि खंभातमें तो धन समाता नहीं है, पर उससे तिगुने बड़े इस बन्दरपर, कुछ भी नहीं दिखाई देता। कहाँ तो उसके पिताकी दूकानका वैभव और कहाँ भृगकच्छके पट्टनी चौककी दुकानें!

इतनेमें उसे अपने पिताकी एक बात समझमें आ गई। उसके पिताने खंभात बंदरको अपने अधिकारमें करके अपार धन कमाया था; और उसे इस नये देशके बड़े बन्दरको अपने अधिकारमें करनेके लिए भेजा था। आम्रभट मन ही मन हँसा। वह भी अपने पिता जैसी समृद्धि और सत्ता पा लेगा।

इस प्रकार हवाई किले बनाता हुआ आम्रभट, नगरसेठ तेजपालके यहाँ जा पहुँचा। सेठजी तो बाहर गये हुए थे; परन्तु उनका पुत्र रेवापाल आगत स्वागतके लिए हाजिर था।

रेवापाल लगभग तीसेक वर्षका, सुन्दर ठिगना और मजबूत पुरुष था। उसके मुखपर घावोंके चिह्न थे। उसकी भुजाओंमें शस्त्रोंके व्यवहार करनेका बल

दिखलाई पड़ता था। उसके नेत्र निश्चल और मुख गंभीर था। उसे देखते ही मनुष्यकी उमंगें दब जातीं।

जब आम्रभट पालकी परसे उतरा, तब रेवापालने स्वागत किया... "पधारिए आँबड़ सेठ, पिताजी बाहर गये हुए हैं।"—उसके नेत्रोंमें स्नेह और आदर नहीं था, उसके स्वरमें भी हर्ष या उमंग नहीं थी। शायद विवश होकर ही वह स्वागत कर रहा था।

उमंगोंसे भरा हुआ आम्रभट, इस भावी सालेका आचार-व्यवहार देखकर ठंडा पड़ गया।

"मेरे सेवक आये?" उसने बड़े प्रयत्नसे हँसकर पूछा।

"हाँ।" रेवापालने गंभीरतासे उत्तर दिया।

"कहिए, आपकी तबीयत तो ठीक है न?"

"हाँ, ठीक है।" कहकर वह मौनमुख आगे बढ़ा और आम्रभट उसके पीछे। वह इस गांभीर्य और मौन तिरस्कारका कारण न समझ सका। कारण, उसे रेवापालके पहलेके जीवनके विषयमें जानकारी नहीं थी।

रेवापाल लाटकी नष्ट हुई स्वतंत्रता और सत्ताका भक्त था—और दोनोंके चले जानेपर, वह जीवित ही मृतकके समान हो रहा था।

७—जंबूसरका घेरा

लाटके इतिहासके कुछ भूले हुए पन्ने।

इस कथाको और रेवापालके गांभीर्यको समझनेके लिए लाटके इतिहासके कुछ पिछले पन्ने पलटने पड़ेंगे।

लाटका अंतिम प्रतापी राजा बारप था। परन्तु, लाटके भाग्यसे, पाटनके सिंहासनपर, उससे भी अधिक प्रतापी सोलंकी मूलराज आरूढ़ हो गया। बारपने मूलराजको हराया; मूलराजने बारपको हराया; पर परिणाम कुछ न हुआ। अंतमें बारपके बाद मूलराजके पुत्र चामुंडने भृगुकच्छको ले लिया और अनहिलवाड़ पाटनकी सत्ताको लाटमें स्थापित करनेका आरंभ किया।

चामुंडके पीछे भीमदेवने लाटपर अधिक ध्यान नहीं दिया; पर कर्णदेवके समयमें, लाटको सर करनेका प्रयत्न पाटन करने लगा।

जिन्हें 'गुजरातके नाथ' में दिये हुए मुंजाल और त्रिभुवनपालकी पत्नी काश्मीरादेवी—मामा और भानेज-बहू—के प्रशंसनीय निर्णयोंका पता होगा, उन्हें याद हो आएगा कि मुंजालने तरुणावस्थामें लाटपर आक्रमण किया था और वहाँके पद्मनाभ महाराजाको मारा था।

परन्तु इससे पाटनको कुछ भी न मिला। महाराजा पद्मनाभके पुत्रने युद्धमें प्राण खो दिए, तो भी सेनापति ध्रुवसेन महीसे लेकर कावेरी[1] तक लाटका झंडा फहराता रहा। उसने अनेक बार भृगुकच्छको हस्तगत किया और खोया; हार खाई और हराया।

इस समय दो व्यक्ति परम मित्र थे। दोनों थे बालक; परन्तु रूप और गुणमें समान थे। दोनों युद्धमें कुशल थे। एक था गरीब ब्राह्मण और दूसरा था धनवान् नगरसेठका बेटा। ब्राह्मण, पाटनके दंडनायक त्रिभुवनपालकी सेनामें भर्ती हो गया और वणिक ध्रुवसेनकी ही सेनामें रहा। एक काक और दूसरा रेवापाल।

काक उस्ताद था। उसे विश्वास था कि ध्रुवसेन कुछ भी करे, पर पाटनकी सत्ताके आगे उसकी कुछ चल नहीं सकती। महाराज पद्मनाभकी पुत्री मृणालकुमारीको, ध्रुवसेन अपने साथ रखता था और वह लाटकी अस्तप्राय सत्ता तथा स्वातंत्र्यकी मूर्ति समझी जाती थी; अतएव उसकी दिनों दिन घटती हुई सेना हिम्मत नहीं हारती थी। फिर भी आखिरमें उसे विजयके कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ते थे। काकको इस कठिनाईमें एक रास्ता सूझा। यदि सोलंकी त्रिभुवनपाल मृणालकुमारीसे विवाह कर लें, तो वे लाटके स्वतंत्र राजा बन जायँ, लाटकी महत्ताकी रक्षा हो जाय, ध्रुवसेनकी प्रतिष्ठा बनी रहे और पाटनकी पीड़ा जाय।

यह रास्ता जैसे मिला, वैसे ही बंद हो गया। सोलंकी त्रिभुवनपाल दूसरा विवाह करें यह संभव नहीं और करें भी तो उनकी स्त्री काश्मीरादेवी, नहीं करने दें। यदि ऐसा हो जाय, तो भी त्रिभुवनपाल स्वातंत्र्यका झंडा नहीं उठा सकते थे। कदाचित् उठा भी लें, तो मुंजाल मेहता उनके उस स्वातंत्र्यको टिकने नहीं दें।

---

१ दमणके समीपवाली नदी, जो लाटकी दक्षिण सीमामें थी।

इन कठिनाइयोंकी खातिरी करनेके लिए काकने पंद्रह वर्ष पहले पाटन जानेका काम अपने सिर लिया था।

जब उसे विश्वास हो गया कि अन्तमें लाटको पाटनके अधीन हुए बिना छुटकारा नहीं है, तब उसके राजनीतिज्ञ मस्तिष्कमें विचार आया कि लाट जहाँ तक भी हो शीघ्रतासे गुजरातमें मिल जाय। तुरन्त उसने अपनी चातुरीसे ध्रुवसेनकी सत्ताको नष्ट करनेके प्रयत्न आरम्भ कर दिये।

लाटके तीन चौथाई लोगोंने पाटनकी सत्ता स्वीकार कर ली थी। ध्रुवसेनकी सेना पाटनकी सेनासे केवल दशमांश थी, और वह भी दिनों दिन क्षीण होती जा रही थी। लाटका धनिक वर्ग, युद्धसे ऊबकर, उदयोन्मुख सूर्यके उत्तापमें आनन्द ले रहा था। परन्तु, ध्रुवसेनने परिश्रम करनेमें कुछ भी उठा न रखा। अपनी भव्य दाढ़ीके बालोंको दाँतोंमें दबाये वह ध्रुवके समान अटल होकर खड़ा रहा। उसकी छोटी-सी सेनाने भृगुकच्छको तथा उसकी राज्यलक्ष्मी जैसी राजकन्या मृणालकुमारीको न छोड़ा।

रेवापाल इस सेनामें सबके आगे था। वह लाटके स्वातन्त्र्यका पुजारी था और पाटन और पाटनवासियोंको अपना कट्टर शत्रु समझता था। भृगुकच्छका अंतिम कंगूरा बचा, तब तक वह लड़ा; और उसके जाने पर वह ध्रुवसेनके साथ जंबूसर भाग गया।

उस दिन उसके हृदयमें आग लग गई। काकने भृगुकच्छ लिया और उसके पिता तेजपालको समझाकर उससे देशद्रोह कराया। वह बाल्यकालसे काकको मित्र मानता था; अब उसे देशद्रोहियोंका शिरोमणि समझने लगा। इस काकने ही पाटनवालोंका पक्ष लिया; त्रिभुवनपालको विजय दिलवाई, भृगुकच्छ लिया, नगरसेठ तेजपालको फुसलाकर अपनी मुट्ठीमें कर लिया। देशके शत्रुकी ओर प्रकट हुए इस उन्मादमें मित्रता जलकर भस्म हो गई।

जंबूसरका घेरा, इस पराक्रमके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंसे अंकित है। ध्रुवसेनकी सेना छोटी थी। लाटके स्वातन्त्र्यमें श्रद्धा रखनेवाले गिने चुने थे। लाटके सोलंकियोंके वंशमें केवल एक लड़की थी। हाथसे गई हुई इस बाजीका अडिग खिलाड़ी ध्रुवसेन, जंबूसरको वर्षों टिकाये रहा। हज़ार घावोंसे सुशोभित इस वीरने पाटनकी समस्त सेनासे त्राहि त्राहि कहलवाया और त्रिभुवनपाल तथा काक दोनोंको थका दिया।

अन्तमें भृगुकच्छके घेरेसे बचे हुए सात सौ योद्धाओंमेंसे इकतालीस रह गये। इस छोटी-सी, परन्तु अटल सेनाके लोगोंकी परिस्थिति बड़ी गंभीर थी। यमराज उनको निवाला बनाये बैठा था। उनकी आशाएँ नष्ट हो गई थीं। ध्रुवसेनकी एक विधवा पुत्री तथा अन्य आठ-दस स्त्रियाँ, जो उनके साथ थीं, उनका क्या होगा—यह किसीको नहीं सूझ रहा था। मरते हुए वीरकी निश्चयात्मक बुद्धिसे ध्रुवसेनने इन सबका विचार करना, इस भवमें स्थगित कर दिया था। इस महान् अंधकारमें भी थोड़ी-सी प्रकाशकी किरण जब तब दिख जाती थी। कामरेज और गांधारसे सेना और भोजन-सामग्रीकी सहायता समुद्रमार्गसे जब तब आ जाती थी।

ध्रुवसेनकी अपेक्षा मृणालकुमारी अधिक अटल थी। होंठ पीसकर, वह बाला सेनाको प्रोत्साहित कर रही थी और लाटके सोलंकियोंके शौर्यको अन्त तक प्रकट करते रहनेके निश्चयपर आ रही थी। सारा लाट और गुजरात इस अडिग शौर्यको पागलपन मान रहा था। दिनों दिन ध्रुवसेनकी मृत्यु—कारण कि वह नत हो जानेवाला नहीं था—निकट आ रही थी। और उसकी निर्बलता, इतनी स्पष्ट दिखलाई पड़ रही थी कि सन्धि-समझौता करनेका तनिक भी अवसर अब नहीं रह गया था।

अचानक दुर्गपाल काक घेरा छोड़कर पाटन चला गया। क्यों गया, यह कोई न समझ सका। महाराज जयसिंहदेव मालवामें थे। वह महा अमात्य मुंजाल और राजमाता मीनलदेवीसे मिलकर लौट आया। दूसरे दिन ध्रुवसेनके पास संदेश पहुँचा कि काक और नगरसेठ तेजपाल विष्टि लेकर आना चाहते हैं। ध्रुवसेन अपने पुराने शिष्य और दस वर्षसे बने हुए शत्रुके नायक काकके शौर्य तथा कौशलसे अपरिचित नहीं था। वह उसे अपना कट्टर शत्रु तथा देश-द्रोही समझता था। इस समय यह विष्टि लानेमें उसकी कौन-सी चातुरी है, इसे वह न समझ सका। अब जंबूसर तो केवल कुछ ही घड़ियोंका प्रश्न था, तब काक किस लिए यहाँ आ रहा है? जो परिस्थिति इस समय थी, उससे अधिक बुरी हो जानेका भय तो था नहीं; अतएव ध्रुवसेनने काकसे मिलना स्वीकार कर लिया।

८—स्वतंत्र लाटका अंतिम अधिकारी

एक टूटे फूटे घरके चबूतरेपर स्वतंत्र लाटकी फहराती हुई ध्वजाके नीचे, इस हतभागी देशका अंतिम अधिकारी एक पत्थरपर बैठा था। उसकी सफेद दाढ़ीके बिना सँवारे हुए बाल मरते हुए सिंहकी बिखरी हुई अयालके समान उसके वृद्ध मुखको भव्यता प्रदान कर रहे थे। उसके नेत्र रक्ताभ थे। उसके सिकुड़न पड़े हुए कपालपर निराशाके चिह्न थे; फिर भी, उसके नेत्रोंमें तथा कपालपर एकाग्रता ही दिखाई पड़ रही थी।

उसके शरीरपर जहाँ-तहाँ पट्टियाँ बँधी थीं। फिर भी अपने हाथमें उसने एक बड़ा भाला थाम रखा था। क्षण-क्षणमें उसके मुखसे लाटकी जय-घोषणा—'जय गंगनाथ[1]'—के शब्द निकल रहे थे। लगभग बीस योद्धा, उसको चारों ओरसे घेरे खड़े थे। उनके शरीरपर भी पट्टियाँ बँधी थीं। उनके नेत्रोंमें भी मरते हुए सिंहका-सा खूनी तेज था। सभी भूखे प्यासे विश्रामके बिना सूख गये थे और फिर भी उनके अंग अंगसे अटल शौर्य टपक रहा था।

शस्त्रहीन काक, तेजपालको लेकर एक योद्धाके पीछे पीछे आया। चारों ओर श्मशानसे भी बढ़कर शून्यता थी; केवल मरे हुए योद्धाओंके मुख चाटते हुए कुत्तोंका भयानक भौंकना दूरसे सुनाई पड़ रहा था। इस डरावनी जगहमें जब उसने लाटकी नष्ट हो रही राज्यलक्ष्मीके अंतिम रक्षकोंको यमराजको डराते खड़े देखा, तब उसके हृदयपर आघात हुआ। ध्रुवसेनसे वह शस्त्र चलाना सीखा था, रेवापालके साथ खेला था, खाया था, सोया था। और सब लोग भी उसके परिचित थे। यह सब इस समय देशकी स्वतंत्रताके लिए प्राण दे रहे थे। वह विजयी परदेशकी सेनाका नायक, परदेशी राजाका मानीता, स्वयं इतने वर्षोंसे स्वदेशका भला कर रहा था या बुरा? पल-भरके लिए उसका श्वास अवरुद्ध हो आया, व्यथासे उसने आँखें मींच लीं, और एक बार वह काँपा। उसकी नजर ऊपर फहराती हुई गंगनाथकी ध्वजापर पड़ी। पराये देशकी विजय-घोषणाके परिचित शब्दोंको भूलकर वह बुदबुदाया, "भगवान्

१—महादेवका यह प्राचीन मंदिर अभी तक भड़ौंचमें वर्तमान है।

गंगानाथ जो करें सो ठीक।" दूसरे ही क्षण वह प्रकृतिस्थ हो गया, आगे बढ़ा और ध्रुवसेनके समीप आकर उसने साष्टांग दंडवत प्रणाम किया—"गुरुदेव, प्रणाम।" काकने जिस योद्धासे शस्त्रविद्या प्राप्त की थी, उसे असली नामसे सम्बोधित किया। ध्रुवसेनने मौनमुख, पर गौरवसे पैर पीछे खींच लिये और काकको चरणस्पर्श करनेसे रोक दिया। इससे स्पष्ट हो रहा था कि इस स्पर्शसे वे दूषित हो जायँगे। काक अदबसे कुछ दूर हटकर खड़ा हो गया।

"काक," कुछ देरमें उस वृद्ध वीरने उपवास और अपार परिश्रमसे वैठी हुई आवाजमे कहा, "कैसे आए हो, हमारी निर्बलता देखनेके लिए?"

"गुरुदेव," काकने सम्मानसे, नम्रतासे कहा, "महाराज, आप न कभी निर्बल थे और न होंगे। मैं तो आपसे एक प्रार्थना करने आया हूँ।"

"प्रार्थना!" रेवापाल बीचमें बोल उठा। उसका गला बैठ गया था, उसकी आँखें पागलों जैसी चमक रही थीं। "हमें गुलाम बनानेके लिए आये हो?"

"नहीं भाई," अपमानको पीकर स्नेह-पूर्ण स्वरमें काकने कहा,—"मैं तो लाटके अमर योद्धाओंके दर्शन करके कृतार्थ होने और प्रार्थना करने आया हूँ कि अब आग्रह छोड़ दीजिए। जो कुछ आपने किया, वह किसीने कभी नहीं किया, और न किसीसे होगा; परन्तु जिस लाट और जिन मृणालकुमारीके लिए यह सब किया है, उन्हींके लिए अब हठ छोड़ दीजिए।"

"और वह तेरे कहनेसे?" ध्रुवसेनने कठोर तिरस्कारपूर्ण हास्यसे पूछा। "तेरे कहनेसे? तू कौन-सा मुँह लेकर आया है? तुझे खबर है कि तू कौन है? परदेशी पट्टणियोंका किरायेका सेवक। तुझे न अपने देशका खयाल हुआ न अपने अन्नदाताकी लाज आई। अपने बन्धु बान्धवोंका प्रेम भी तेरे आड़े न आया। तू स्वयं बिक गया और भृगुकच्छको बेच दिया। अब मुझे खरीदने आया है?"

कुछ देर तक ये कठोर शब्द काक सुनता रहा और फिर स्वस्थ होकर पहलेके समान ही नम्रतासे बोला, "गुरुदेव, आप कह तो ठीक रहे हैं, परन्तु मेरी बात भी सुनेंगे? जब मैं पाटनकी सेनामें दाखिल हुआ, तब कहाँ था लाटका बल और कहाँ थी उसकी सत्ता? आप मानते थे कि दोनों हैं; पर मुझे विश्वास था कि दोनों मृगजल समान हैं।"

"देशद्रोह करनेकी अपेक्षा इस मृगजलके पीछे मरना हमें प्रिय है।" रेवापाल अधीरतासे बोला।

"भाई रेवापाल, तुम पट्टणियोंको नहीं पहिचानते। उनकी ओर यदि मैं न होता, तो भृगुकच्छ मैदान हो जाता, तुम न जाने कबके कुचल गये होते। और लाटकी सत्ता तथा गौरवकी रक्षाका जो अवसर मैं आज लाया हूँ, वह कभी न आता।" काकने सख्तीसे कहा।

"यह सत्ता और यह गौरव!" ध्रुवसेनने काककी अंतिम बातपर टीका करते हुए आसपास हाथसे दिखाया।

"जी हाँ, यह सत्ता और यह गौरव! छः माससे आप कैसे टिके हुए हैं, कुछ खबर है? गांधारसे अन्न किसने भिजवाया खबर है? कामरेजसे मनुष्य भिजवानेका संदेश किसने कहलाया, पता है?"

"किसने?" रेवापालने तिरस्कारसे पूछा।

"मैंने।" काकने गर्वसे कहा।

"किस लिए?"

"किस लिए? आप तो मुझे शत्रु समझते हैं, पर यह भूल है। गुरुदेव, लाट पाटनके हाथों जायगा, यह निश्चित है। परन्तु मै एक अभागे बेचारेकी भाँति उसे नहीं जाने देना चाहता, अपनी इच्छासे सम्मानके साथ जाने देना चाहता हूँ। और यह आप कर सकते हैं; इसीसे आपको टिकाए चला आ रहा था, और इस समय यह प्रार्थना करने आया हूँ।"

कोई न बोला। किसीकी समझमें न आया कि काक डींग हाँक रहा है, या सच कह रहा है। वह आगे कहने लगा—

"आप राजकन्या मृणालकुमारीको लाटके सिंहासनपर बिठाना चाहते हैं? मेरी भी यही कामना है। आप लाटकी सत्ता हाथमें लेना चाहते हैं? यह भी मुझे स्वीकार है। आप भृगुकच्छका झंडा चारों दिशाओंमें फहराना चाहते हैं? मैं भी यही चाहता हूँ। और इसीसे आपके पास आया हूँ।" काक आवेशके साथ तेजीसे बोले जा रहा था। उसके नेत्र चमक रहे थे।

"परन्तु किस प्रकार?"

"महाराज जयसिंहदेव, मृणालकुमारी देवीसे विवाह करनेको तैयार हैं। आपको भृगुकच्छका दुर्गपाल नियत किया है, और मेरी लाटकी सेनाको भाई

रेवापालके अधीन कर देनेका आदेश दिया है। आप यदि यह स्वीकार करें, तो प्रातःकाल त्रिभुवनपाल और मैं पाटनकी सेनाको लेकर यहाँसे रवाना हो जायँ।" कहकर काकने पाटनसे आया हुआ शासन सामने रख दिया।

ध्रुवसेन तथा उसके साथी चकित होकर देखने लगे।

"इसका अर्थ यह कि हम लोग पाटनकी दासता स्वीकार कर ले?" रेवापालने क्रोधसे कहा। मेरे पिताको तो परदेशी लोगोंका पालतू बना लिया, अब मुझे बनाना चाहते हो? यह कभी नहीं हो सकता।" रेवापालने दृढ़तासे कहा।

"भाई रेवापाल," काकने कहा, "यह समय उतावली करने या क्रोधित होनेका नहीं है। गुरुदेव महाराज," काक बहुत ही विनयपूर्वक गिड़गिड़ाकर कहने लगा "आप वृद्ध हैं, अनुभवी हैं। मुझे देशद्रोही समझें, किरायेका समझें, दास समझें, पर इससे लाटका भला नहीं होनेका।"

ध्रुवसेनने मौनमुख माथा हिलाया। काक आगे कहने लगा, "आप मुट्ठीभर हैं। मैं चाहूँ, तो कल प्रातःकाल ही जंबूसरको ले लूँ। आप तो भीष्म पितामहके समान स्वेच्छासे मृत्युका आह्वान कर सकते हैं। अतएव आप प्राण दे देंगे। पर परिणाम क्या होगा, यह नहीं देखते? लाटका पुरातन गौरव अस्त हो जायगा, राजकुमारीका कोई सहारा न रहेगा, लाटके सोलंकियोंका नाम निशान न रहेगा, और पाटनका राजा लाटको भूमिसात् करनेका अभिमान करेगा।" काक कुछ रुका और, रेवापाल बीचमें कुछ बोलने जा रहा था कि उसे रोककर बोला "भाई रेवापाल, मुझे कह लेने दो। शान्त हो जाओ, विचार करो। जैसी तुम्हारी धारणा है, वैसा पापी या देशद्रोही मैं नहीं हूँ। गुरुदेव, आप मेरे पिताके समान हैं, रेवापाल मेरे छोटे भाई हैं। भृगुकच्छमें जन्मा हूँ और भव भवमें यहीं जन्म लेना चाहता हूँ। आप तनिक विचार तो करो कि आपकी ऐसी परिस्थितिमें भी मैं पाटनसे ये शर्तें किस प्रकार ले आया हूँ? मैं देशद्रोही होता, तो ऐसा किस लिए करता? आपके पराजयसे प्रसन्न न होता? मैं राजकुमारीका हितैषी न होता, तो उन्हें गुजरातकी स्वामिनी बनानेकी चिन्ता क्यों करता? मैं तो लाटको गुजरातके माथेका मणि बनाना चाहता हूँ।"

कोई भी न बोला। सब स्तब्ध होकर खड़े रहे। निःश्वास लेकर पट्टियाँ बँधा हुआ हाथ ध्रुवसेनने कपालपर रख लिया।

"कहो गुरुदेव, बोलो सेनापति महाराज, आपके बोलपर ही इस समय लाटका गौरव लटक रहा है।"

धीरेसे ध्रुवसेनने माथा ऊपर उठाया, "भाइयो, यह हमारी अपनी बात नहीं है। पाटनकी चाकरी मैं तो कभी लेनेवाला नहीं। ऐसा अवसर आनेके पूर्व ही मैं जान दे दूँगा। परन्तु मेरे स्वामीकी कन्याका कौन है? उससे बिना पूछे मैं कुछ न करूँगा। यदि वह 'ना' कहेगी तो कल ही केसरिया।" कहकर वह उठ बैठा।

"राजकुमारीसे इसी समय पूछेंगे?" काकने कहा।

"मैं नहीं पूछता। रेवापाल, तू काकको मृणालकुमारीके पास ले जा।"

"परन्तु वे पूछें कि आपका क्या विचार है, तो?" रेवापाल बोला।

वृद्ध योद्धा कुछ देर ठहरा और माथा ऊँचा करके बोला, "कहना कि काककी बात वास्तविक लगती है।"

काकका हृदय हर्षसे उछल पड़ा। लाटके योद्धा हताश होकर एक दूसरेकी ओर देखने लगे।

२—लाटकी राज्यलक्ष्मी

जब काक रेवापालके पीछे पीछे गया, तब उसके मनमें अनेक शंकाएँ पैदा हुईं। एक मुत्सद्दी योद्धाको समझाना एक बात है और एक बीस वर्षकी स्त्रीकी हठको वशमें करना दूसरी बात। और उसे ज्ञात हुआ था कि इस युद्धमें जैसा अटल साहस ध्रुवसेनने दिखलाया था, वैसा ही इस सोलंकी-कुमारीने भी।

जंबूसरकी सूनी श्मशान जैसी गलियोंको पार करते हुए काक इस कुमारीके स्मरण मन ही मन ताजा करने लगा। महाराज पद्मनाभके समय जब वह और रेवापाल साथ साथ पाठशाला जाते थे, उसे याद आया कि तब उसका जन्मोत्सव हुआ था। फिर दो एक बार उसे तब देखा था जब वह पाँच वर्षकी छोटी गुड़ियाके समान बालिका थी। आज वह कैसी होगी? कैसे कैसे दुःखों और

भयंकर संयोगोंमेंसे वह पार हुई होगी ? और इस समय पाटनका राजमुकुट हाथमें लेकर वह उसे देने जा रहा है, सो क्या वह ले लेगी ?

उसने रेवापालकी ओर देखा। होठ पीसता हुआ वह आगे जा रहा था। उसने सुना था—कान अपराधी थे—कि रेवापाल जितनी ज़हमत लाटकी स्वतंत्रताके लिए उठा रहा था, उससे अधिक जोखिम राजकुमारीको रिझानेके लिए उठाता था; और उसकी सेवामें जितना परमार्थ था, उतना ही स्वार्थ था। परन्तु ये तो लोगोंकी गप्पें थीं।

कुछ देरमें वे एक खंडहर जैसे महलमें पहुँचे। वहाँ एक सैनिक पहरा दे रहा था।

" जय गंगनाथ भोला ! " रेवापालने कहा।

" जय गंगनाथ ! " सैनिकने उत्तर दिया " क्या आज्ञा है ? "

" राजकुमारी क्या कर रही हैं ? "

" बैठी होंगी। "

" जाओ, पूछ आओ कि रेवापाल और पाटनके भटराज काक मिलना चाहते हैं। " रेवापालके शब्द-शब्दमें दाह था। काकने उसे मौनमुख सह लिया। भोला गया और कुछ देरमें लौट आया।

" चलिए, राजकुमारी बुलाती हैं। "

गंदे बरामदे, और बिल्कुल अँधेरे खंडसे होकर भोला काक और रेवापालको पीछेकी ओरके एक कमरेमें ले गया। एक हिंडोलेपर काली साड़ी पहिने मृणालकुमारी बैठी थी। दो छिद्रोंमेंसे आते हुए नाम-मात्रके प्रकाशमें काकने सोलंकी-राजकन्याको देखा। वह छोटी और नाज़ुक दिखती थी। शायद ही कोई उसे सोलह वर्षकी कहे। परन्तु उसके पतले और सुघड़ होठ सख्तीसे बन्द थे और उसके नेत्रोंमें गहरा और स्थिर तेज चमक रहा था। उसकी छोटी पर झुकी हुई नाक और मोहक पर हठीली ठोड़ी उसके प्रभावका कुछ आभास करा रही थीं। उसने दोनों पैर भूमिपर टिकाकर एकदम हिंडोलेको रोक दिया और एक तीक्ष्ण दृष्टि इन दोनोंपर डाली।

" ये काक भट हैं ? " उसने पूछा। उसके स्वरमें कुछ विचित्र-सी शान्ति और निश्चयात्मकता थी। रेवापालने माथा हिलाकर ' हाँ ' कहा।

" आइए, कैसे आए हैं ? " उसके स्वरमें तनिक भी भावावेश नहीं था।

"बहिन," रेवापालने कहा "काक पट्टणी दंडनायकका संदेश लाये हैं।"

"क्या?"

"यदि गुरुदेव समझौता कर लें, तो पाटनका राजा आपसे विवाह करने तथा गुरुदेवको भृगुकच्छका दुर्गापाल बनानेको राजी है।" रेवापालने तिरस्कारभरे स्वरमें काकका सन्देश सुनाया।

"अच्छा!" जैसे किसी दूसरेकी बात हो रही हो, इस प्रकार मृणालने कहा, "और गुरुदेव क्या कहते हैं?"

"कहते हैं कि उन्हें काककी बात वास्तविक लगती है; फिर आप जो कहें, वह ठीक। आपकी आज्ञा हो, तो कल केसरिया करनेको भी हम राजी हैं।"

राजकुमारी एकदम काककी ओर मुड़ी और जैसे कोई मामूली बात करती हो, इस तरह पूछा—"आपही काक भट हैं? वही जिन्होंने लाटको जीता है?"

"हाँ बहिन।" कहकर काकने हाथ जोड़े।

"आप मुझे पाटनकी रानी बनाना चाहते हैं?"

"जी हाँ।"

"किस लिए?"

"इस लिए कि इसीमें लाटका सुख और गौरव है।"

"और मैं अस्वीकार कर दूँ, तो?" राजकुमारीने पूछा।

"तो कल ही जंबूसर हाथसे निकल जायगा, मेरे गुरुदेव जो अभीतक दुर्जय रहे हैं, हार जायँगे और महाराज पद्मनाभकी पुत्रीका न जाने क्या होगा।" काकने भी जरा सख्तीसे कहा। न जाने क्यों उसे इस लड़कीका मुद्दा समझमें न आया।

"रेवापाल, तुम्हारा क्या खयाल है?" कुमारीने पूछा।

"आपकी जो आज्ञा हो।" रेवापालने हठसे थोड़ेमें कह दिया।

"तुम्हें यह योजना वास्तविक लगती है?"

"लाटका पराये हाथों जाना मुझे तो कुछ वास्तविक नहीं जान पड़ता।"

मृणाल कुछ देर मौन रही। "रेवापाल, गुरुदेव चबूतरेपर हैं?"

"हाँ।"

" जाओ, जरा बुला लाओ।"

" जो आज्ञा।" कहकर रेवापाल चला गया। काक इस छोटी-सी राजकुमारीका रोब और शान्ति देखकर जरा चकित हुआ। मीनलदेवीमें भी उसने ऐसी निश्चयात्मिका बुद्धि और एकाग्रता नहीं देखी थी। ज्यों ही रेवापाल गया कि वह काककी ओर मुड़ी; उसके होठ अधिक सख्तीसे बन्द हो गये।

" भटजी, आप मुझसे क्या कराना चाहते हैं, खबर है ?"

" हाँ।"

" नहीं है।" राजकुमारीने इस प्रकार कहा जैसे कोई अनुभवी योद्धा खातिरीसे तलवारका घाव करता है। " कल सवेरे अपने दादाका मुकुट पहिनकर, और हाथमें तलवार लेकर अपनी सेनाके साथ मैं केसरिया करने तुमपर टूट पड़ूँगी। मेरा तो सिर जायगा; पर मैं अमर हो जाऊँगी। मेरे शौर्यसे भूमंडल गूँज उठेगा और भविष्यमें लोग मुझे रणचंडी अंबिकाकी भाँति पूजेंगे।" उसके स्वरमें कम्पन नहीं था, नेत्रोंमें असाधारण तेज नहीं था। थी केवल वही अस्वाभाविक निश्चयात्मकता और लापरवाहीभरी शान्ति। काकके आश्चर्यका पार न रहा।

" तुम चाहते हो कि मैं यह लाभ खो दूँ ?"

" हाँ।"

" किसलिए ?"

" इसलिए, कि आप गुजरातकी राजमाता बन जायँ।"

" तुम्हारे राजाके कितनी स्त्रियाँ हैं ?"

" तीन।"

" और मैं चौथी ? इनमें पटरानी कौन ?"

" मीनलदेवीने वचन दिया है, आप पटरानी होंगी।"

" काकभट मैं तो चाहती हूँ कि स्वयम्वरा होऊँ, स्वयं अपना वर चुनूँ।"

" सोलंकी जयसिंहदेवसे अधिक योग्य और कौन वर मिलेगा ?"

" जो समस्त गुजरातको जीतकर आए वह।"

" पर यह भी किससे हो सकता है ?"

" बताऊँ, कह दूँ ?" उसने कुछ झुककर होठ दबाकर, धीमी, पर स्वस्थ

आवाजसे पूछा। काक काँप गया। यह लड़की तो बुढ़ियों जैसी चतुराईसे बोल रही है।

" एक आदमीकी मैंने बड़ी ख्याति सुनी है। उसने मुंजालको मात किया, खेंगारके छक्के छुड़ा दिये, अकेले हाथों नवघणको पकड़ा, उदाकी स्त्री ले आया, और आज वह त्रिभुवनको अँगुलियोंपर नचाता है। जिसे आज इतने वर्षोंसे देखनेको तरस रही हूँ, बोलो, उससे यह होगा ? "

काक काँप उठा। कैसा भयंकर प्रश्न ! कैसा इस स्त्रीका पागल जोश ! क्षण-भरके लिए उसकी भी स्वस्थता जाती रही।

" बोलो, ये सब पराक्रम सत्य हैं या झूठ ? "

" परन्तु मैं—मैं—"

" हाँ, तुम गुजरातको जीत सकते हो। "

" क्या कह रही हैं ? पागल हो गई हैं ? "

" नहीं। इसी समय स्वीकार करो। तुम्हारे पास लाटकी कितनी सेना है ? पाँच हज़ार, छह हज़ार ? "

" हाँ। "

" त्रिभुवनपाल घड़ी भरमें समाप्त हो जायगा। कल सवेरे तुम्हारी सेना भृगुकच्छको वापस ले लेगी और परसों महीसे तापी तक लाट तैयार हो जायगा। महाराज पद्मनाभका सिंहासन सूना है। हम दोनों उसपर बैठेंगे। फिर गुजरातकी क्या गिनती है ? " उसने शान्तिसे पूछा। उसके लिए तो यह केवल सौदेका सवाल था।

काक इस प्रकार चौंक पड़ा, जैसे पैरोंके आगे साँप दिख गया हो। यह गहरा विचार, यह भावहीन योजना, कैसी दृढ़ता और कैसी हिम्मत ! और वह इस बालिकामें !

काकको क्षणभर यह भी न सूझा कि वह क्या कहे।

" राजकुमारी, " काकके स्वरमें क्षोभ था—" आप मुझसे क्या कराना चाहती हैं, सो समझती हैं ? "

" हाँ। संसारमें सबसे श्रेष्ठ राज्य पद है, वही दिलाती हूँ। "

" नहीं। मित्रद्रोह करूँ, स्वामीद्रोह करूँ, पत्नीद्रोह करूँ, वर्णभ्रष्ट हो जाऊँ ? नहीं, मुझसे यह न होगा। " काक धीरेसे बोला।

" तुमसे तो केवल देशद्रोह ही होगा। मुझे खबर नहीं थी कि तुम इतने कायर हो ! " मृणालने तिरस्कारसे कहा । उसके स्वरमें पहली ही बार निराशाका भाव आया।

" जैसी आपकी धारणा है, वैसा साहस मुझमें नहीं है । परन्तु जयसिंह-देवके साथ विवाह करो, तो तुम्हें जगतकी महारानी बना दूँ । महाराज पद्मनाभकी कुमारीकी आन दशों दिशाओंमें फैला दूँ । फिर और क्या चाहिए ? "

" ये सब तो बातें हैं। पाटनकी रानी बननेमें मुझे कोई सार नहीं दिखाई देता।"

" और फिजूल ही केसरिया करनेमें मुझे सार नहीं नजर आता । "

" परन्तु तुम्हारा जी नहीं ललचाता ? " कुमारीने पूछा।

" अपना संकल्प मैंने कह दिया । इससे अधिक मुझसे नहीं हो सकता । "

" तब इसके सिवाय दूसरा रास्ता लेनेमें मुझे तुम्हारी परवा नहीं। " मृणालने शान्त भावसे कहा ।

" जी। " काकने उत्तर दिया।—" लो, ये गुरुदेव आ गये । "

दूसरे ही क्षण ध्रुवसेन और रेवापाल आ गए। सब चिन्तातुर मुखसे राज-कुमारीकी ओर देखने लगे । उसने तीनों ओर क्रमशः देखा और फिर शान्ति-से कहा " गुरुदेव, जयसिंहदेवसे विवाह करनेको मैं तैयार हूँ । "

रेवापाल चौंक पड़ा । काकको चैन मिली ।

" आप क्या करेंगे ? "

" मैं ? " ध्रुवसेनने कहा " मैं कल संन्यास लूँगा। रेवापालको दुर्गपाल नियत करना होगा । " ध्रुवसेनने काकसे कहा ।

" जी। " काकने कहा ।

" रेवापाल परदेशी लोगोंका दास कदापि न बनेगा । " रेवावालने होंठ पीसकर कहा ।

" तो आप ये शर्तें स्वीकार करते हैं ? " काकने अन्तिम प्रश्न किया ।

" हाँ । " ध्रुवसेनने कहा । मृणाल शान्तिसे और रेवापाल क्रोधसे देखता रहा ।

* * * *

आखिर ध्रुवसेनने संन्यास ले लिया । कुमारी जयसिंहदेवसे विवाह करके

लीलादेवी बनीं और रेवापालके लिए संसारमें रस नहीं रहा।

*　　*　　*　　*

इस बातको चार वर्ष बीत गये।

१०—परिचित होनेपर भी अजान मुख

भृगुकच्छका दुर्गपाल तेजीसे देवभद्र सूरिके उपाश्रयमें जा पहुँचा।

कितने ही वर्ष हो गये, देवभद्र सूरि अपने चातुर्मास भृगुकच्छमें बिताते थे और कमज़ोरी होनेके कारण दूसरी ऋतुओंमें भी वे बहुत दूर विहार नहीं करते थे, जरूरत पड़नेपर यहीं आ पहुँचते थे।

इनकी ख्याति दशों दिशाओंमें फैली हुई थी। संवत् ११५८ में जब इन्होंने 'कथारत्नकोष' लिखा, तबसे तो इनकी विद्वत्ताका डंका ऐसा बज रहा था कि चारों दिशाओंके जैन साधु और पंडित आकर्षित होकर भड़ौंच आते और इनके वचनामृतका स्वाद चखनेकी लालसा रखते थे।

देवभद्रकी विद्वत्ता जैसी बेजोड़ थी, हृदय भी उनका वैसा ही विशाल था। भूत-दयाके वे भक्त थे। जन-समाजका उद्धार ही उनकी प्रवृत्तिका लक्ष्य था। जैन और जैनेतर मतोंके झगड़ों, या राजपुरुषोंकी खींचातानमें उन्हें रस नहीं था। उनके उपाश्रयमें श्रमण और ब्राह्मण दोनोंका स्वागत होता था। उनका उपदेश गृहस्थ और विरागी दोनोंके काम आता। फिर भी, वे राजनीतिक क्षेत्रमें, अन्य साधुओंकी भाँति सिर नहीं खपाते थे।

इस समय सूरिजी अस्वस्थताके कारण भृगुकच्छमें ही थे और त्रिभुवनपालके औदार्यसे बने हुए उनके उपाश्रयमें लोगोंका आवागमन विशेष दिखलाई पड़ता था।

काक उस बरामदेमें पहुँचा, जहाँ स्वयं देवभद्र विराजे थे। वह दुर्गपाल था और ब्राह्मण था, फिर भी जब तब यहाँ आनेसे न चूकता था। अतएव लोगोंको कोई आश्चर्य न हुआ।

एक बरामदेमें देवभद्र सूरि अपने अस्वस्थ शरीरको हाथपर टिकाये बैठे थे।

नगरके दो एक श्रावक भी वहाँ थे। कुछ दूरीपर एक लेखक उनके नये लिखे हुए ' पार्श्वनाथचरित ' की प्रतिलिपि कर रहा था।

उनका मुख सूखा और साधारण दर्शकको निस्तेज-सा लगता था। उनके नेत्रोंमें मृदुता थी; और वादविवादमें भी उनकी दृष्टि कठोर नहीं होती थी। वे हँसते, पर कम और मीठा। बुद्धि-प्रभाव या विजयका गर्व उनमें दिखाई नहीं देता था। उनका शरीर छोटा और निर्बल था। और अक्सर वे बोलते बोलते रुक जाते और बड़े प्रयत्नसे श्वास लेते।

जब काक उस बरामदेकी सीढ़ियाँ चढ़ा, जहाँ ये सब बैठे थे, तब देवभद्र सूरि अध्यापनके दीर्घ अभ्यासी अध्यापककी भाँति अँगुलियाँ रखकर बोल रहे थे।

" अमारी (अहिंसा) और राज्यपद इन दोमें परस्पर विरोध है। राज्याधिकारी या तो हिंसक होता है, या हिंसासे बचनेका साधन। फिर अहिंसाके उपासकको अधिकारीका उपयोग कैसे हो सकता है ? " सूरिजीने सामने बैठे हुए साधुसे पूछा और काकको देखकर उसकी ओर झुककर कहा, " ये हैं हमारे दुर्गपाल! यदि हम अहिंसाका ही प्रवर्तन करें, तो यह किससे हमारी रक्षा करेंगे ? " फिर हँसकर सूरिजीने बात पलट दी " भटराज, इन सूरिजीको पहचानते हो ? "

काकने साधुके साथ देवभद्रजीकी ओर नजर डाली। उसका मुख परिचित-सा तो मालूम हुआ पर ध्यानसे देखनेपर भी पहचाना न जा सका।

इस साधुका स्वरूप देवभद्रके स्वरूपसे उलटा ही था। यह तरुण और तेजस्वी था। नेत्रोंमें चमत्कार था, हास्यमें वैविध्य था। शरीर इकहरा था, फिर भी निर्वीर्य नहीं दिखता था।

इस तरुण साधुको कहाँ और किस अवसरपर देखा था, काकको स्मरण नहीं आया। वह मस्तिष्ककी भीतरी तहमें स्मरण करनेका यत्न करता हुआ सबको नमस्कार करके बैठ गया।

" ये महाराज कौन हैं ? " काकने पूछा।

" ये महाराज नहीं हैं, सूरि हैं। " देवभद्रने कुछ हँसकर उत्तर दिया। " यह हेमचन्द्र सूरि हैं और विहार करते हुए आज ही आये हैं। " देवभद्रने कहा, " उम्रमें जितने छोटे हैं, ज्ञान और तपस्यामें उतने ही वृद्ध हैं। "

" मेरा भी अहो भाग्य कि एक महात्माके दर्शनको आया और दोके दर्शन हुए। महाराज, मैं वंथली जा रहा हूँ। "

" क्यों ? "

" महाराज जयसिंहदेवकी आज्ञा हुई है। " काकने हेमचन्द्रकी ओर देखकर कहा। उस साधुका मुख निश्चल था।

" क्यों, एकदम ? " देवभद्रसूरिने पूछा।

" कुछ समझमें नहीं आता। उदा मेहताका पुत्र आँबड़ आज्ञा लेकर आया है। "

" अच्छा। कब ? "

" आज प्रातःकाल। "

" कोई सबल कारण होना चाहिए। "

" ऐसा लगता है कि महाराज जूनागढ़ लेनेके लिए आतुर हो रहे हैं। "

" अरेरे! " देवभद्रने कहा " राजा बड़ेसे बड़े हिंसक हैं। मैं सूरिजीसे कह रहा था कि राजाओंको समझायें। अहिंसाका प्रवर्तन नहीं हो सकता। इनका अस्तित्व, इनका आडंबर, ये सब हिंसापर रचे गये हैं। "

" और इनके जैसे लोग उसमें सहायता कर रहे हैं। " हेमचन्द्रने हँसकर कहा।

काक सावधान था। उसने धीरेसे दाव खेला—" उदा मेहता जैसे श्रावक-शिरोमणि जब हिंसा नहीं छोड़ते, तब मुझ जैसे सैनिक क्या कर सकते हैं ? "

परन्तु उस साधुकी मुखमुद्रा निर्दोष और विशुद्ध ही थी। उसने कहा—

" सभी राजपुरुष उलटे रास्ते जा रहे हैं। न जाने ये कब सीधे मार्गपर आयेंगे ? "

" जब हम सच्ची तपस्या करेंगे तब। " देवभद्र सूरिने कहा।

" महाराज, " काकने कहा, " मैं आज ही कलमें जाऊँगा, कुछ कहना-कहलवाना है ? "

" हाँ, मीनलदेवीसे मेरा धर्मलाभ कहना। तुम वापस कब तक लौटोगे ? "

" जहाँ तक होगा, जल्दी। भगवान् सोमनाथका मंदिर तैयार होनेको आया है। मुझसे बना तो ज्यों ही महाराज जयसिंहदेवने जूनागढ़ लिया कि कलश चढ़ाने उन्हें तुरन्त ही यहाँ बुला लाऊँगा। "

" तब तो बहुत ही अच्छा । "

" महाराजाने अभी तक भृगुकच्छको पवित्र नहीं किया ? " हेमचन्द्रने कहा ।

" जी नहीं । " काकने उत्तर दिया—" इसीसे मुझे इस अवसरपर उन्हें यहाँ बुला लानेका उत्साह है । तब तक आप यहीं रहेंगे ? "

" यह तो इस बातपर निर्भर है कि आपको लौटनेमें कितना समय लगता है । "

काक हँसा । उसने देखा, या तो यह मनुष्य बिलकुल निर्दोष है, या सच्चा खिलाड़ी है ।

इसका और पाटनका क्या संबंध है, यह जाननेको वह उत्सुक हो रहा था और आम्रभटके साथ बातचीत करते हुए उसे जो सम विषम विचार आये थे, वे उसके मनमें फिर खड़े हो गये ।

" अधिक समय नहीं लगेगा । रेवापाल आपसे मिल गये ? " काकने कुछ देवभद्र तथा कुछ हेमचन्द्रकी ओर देखकर पूछा ।

" नहीं । " देवभद्रने कहा, " नगरसेठ अभी अभी घर गए हैं । "

" ठीक है, तब मैं भी जाऊँ, मुझे उनसे मिलना है । " कहकर काक उठ खड़ा हुआ ।

" मैं भी थोड़ी देरको जा आऊँ । आज्ञा है ? " कहकर हेमचन्द्र भी उठे ।

" महाराज, आज्ञा है ? " काकने प्रणाम करके पूछा ।

" बेटा, धर्मलाभ । " देवभद्रने कहा । हेमचन्द्र भी देवभद्रको प्रणाम करके काकके साथ जाने लगे ।

११—काककी पुरानी पहिचान ताजा होती है

जब हेमचन्द्रके साथ काक बरामदेसे नीचे उतरा, तब उसे ऐसा लगा कि वे दोनों एक दूसरेकी ओर अविश्वासकी नजरसे देख रहे हैं । शिष्टाचारी सैनिक मायासे वर्तता था, त्यागी साधु नम्रतासे बोलता था । दोनोंके मुखपर एक भी नई रेखा नहीं थी, फिर भी दोनों एक दूसरेका माप कर रहे थे ।

काकने बहुत प्रयत्न किया। यह मुख परिचित था, इस आवाज़में भी एक परिचित सी झंकार थी; परन्तु यह स्मरण नहीं आया कि इस साधुको कहाँ देखा था।

हेमचन्द्र भी काकके साथ सावधानी बर्त रहे थे और फिर भी उनके मुखपर विशुद्धता इतनी स्पष्ट थी कि काकका भ्रम लगभग जाने लगा।

"आपका और सूरिजीका क्या मतभेद था?"

"मतभेद कुछ नहीं। सूरिजी समझते हैं कि राज-कार्योंमें अहिंसाका प्रसार नहीं हो सकता।"

"कैसे हो सकता है? राजकार्यमें ईर्ष्या, सत्ता, बल और धूर्तता तो रहती ही है। वहाँ अहिंसा कैसे संभव हो?"

"यह तुम्हारी भूल है।" तरुण सूरिने प्रतापी स्वरमें कहा।

"क्यों? कैसे?"

"जब राजकार्योंमें धर्मका राज्य होगा, तभी ये पापाचार जायँगे।"

"मुझे तो ऐसा लगता है कि ऐसी संगतिमें स्वयं धर्मराजा भी पलट जायँगे।"

"तो वह धर्मराजा नहीं।"

"पाटनमें चन्द्रावर्ताके एक यति आये थे, उनकी बात सुनी है?"

"दस हजार महात्मा हार जायँ, तब एक सच्चा वीतराग होता है।" साधुने कहा।

"वीतराग" शब्दका उच्चारण सुनकर काकके मस्तिष्कका एक तार झंकार कर उठा। अचानक एक घटना स्मरण हो आई, एक छोटेसे बालकका सुन्दर मुख नजरके आगे आ गया। वह मन ही मन हँसा और इस साधुको आखिर उसने पहचान लिया।

"देखिए।" काकने मन ही मन कहा और फिर अपनी खूबी आजमाई।—"सूरिजी, हम बहुत वर्षों बाद मिले। याद है?"

हेमचन्द्र चौंके। उनके शान्त मुखपर कुछ क्षोभ छा गया।—"हम?"

"जी हाँ।" कहकर काक हँसा। "आपको उदा मेहताने दीक्षा दिलाई थी, याद है? उस समय आप 'चांगा' थे और मैं एक साधारण

सैनिक। आपके दादाके आग्रहसे मैं आपको रात्रिके समय उठा ले जानेको गया था—स्मरण है ?"

आश्चर्यसे हेमचन्द्रने कपालपर हाथ फेरा। पंद्रह वर्ष पहलेकी घटनाका स्मरण धुँधला था, फिर भी वह नजरके आगे खड़ा हो गया और आदरसे वे काककी ओर देखने लगे। काक यह परिवर्तन देखकर हँसा।

"सूरिजी, आपने मुझसे क्या कहा था, याद है ? मैं तो वीतराग बनूँगा। आपका लक्ष्य सिद्ध हुआ ?" काकने कुछ कटाक्षसे कहा।

"भटराज, वीतराग होनेकी बातें करना सहज है, परन्तु होना बड़ा कठिन है।"

"उदा मेहता कैसे हैं ?" काकने बिलकुल निर्दोष और स्नेहपूर्ण स्वरमें पूछा।

"मैं उनसे बहुत समयसे नहीं मिला।" हेमचन्द्रने भी वैसे ही निर्दोष स्वरमें उत्तर दिया।

"आज सवेरे आम्रभट आया है, उससे तो आप मिले होंगे ?" काकने हँसकर कहा।

"वह यहाँ मिलनेको नहीं आया। मिले, तो कहना कि आकर मुझसे मिल जाय।"

"अवश्य। अब तो वह भृगुकच्छका दुर्गपाल होगा।"

"अच्छा ? वह तो बेचारा मौजी जीव है।"

"फिर भी उदा मेहताका पुत्र है। मोरके अंडोंको कुछ चित्रित थोड़े ही करना पड़ेगा ?"

"इतना अच्छा है कि भृगुकच्छ शान्त है, नहीं तो बेचारेको मुश्किल जाता।"

काकने देखा कि इस बातचीतका कोई उद्देश है; अतएव उसने कहा- "सूरिजी, मेरी नीतिसे चलेगा, तो सब कुछ ठीक होगा--"

"नहीं तो ?"

"नहीं तो अभी लाटको वशमें रखना बड़ा कठिन होगा। आप जरा समझावें। आपसे तो अच्छी पहचान होगी ?" काकने कहा और बातको बदल दिया—"अब मैं जाऊँगा, आज्ञा है ?"

" धर्मलाभ। जिन भगवान् आपको विजयी करें। " वृद्ध साधु जैसे गांभीर्यसे हेमचन्द्रने कहा। काक मन ही मन हँसा।

हेमचन्द्र दूसरी ओर गए और काक अपने घोड़ेपर सवार हो गया। कुछ आगे बढ़कर काकने अपने सुभटसे उसका घोड़ा अपने घोड़ेके साथ चलानेको कहा।

" सोमेश्वर भट ! "

" जी। "

" तुमने तरुण साधुको देखा ? "

" जी हाँ। "

" बड़े विद्वान् और समर्थ हैं। उदा मेहताके परम मित्र हैं। कुछ समय यहीं विहार करना चाहते हैं। नित्य इनकी सेवामें उपस्थित रहना—ध्यानसे।" काकने धीरेसे कहा। सोमेश्वर चतुर था। काकके शब्द-चातुर्यका उसको पूरा ज्ञान था। उसने दृष्टि फेरकर हेमचन्द्रको देखा और उनके मुखको अन्तरमें अंकित कर लिया।

१२—नेरा तोतला

आम्रभटको चैन नहीं था। उसका चित्त चंचल हो गया था और उस सुंदरीको खोजनेके लिए तड़प रहा था। भृगुकच्छका अधिकार, सेठ तेजपालकी कन्या, अपना आनन्द विलास—यह सब उसे एकदम अप्रिय हो गये।

आम्रभट संयम तो सीखा ही नहीं था। राजदरबारके आचार-व्यवहार भी पूरी तौरसे नहीं सीखा था। उसने अपने सेवकको बुलाया।

" हमीर ! "

" महाराज ! "

" तुम पहिले भृगुकच्छ आ चुके हो ? "

" जी हाँ। "

" एक जरूरी काम है। " आम्रभटने चारों ओर देखकर कहा।

" क्या ? "

" साम्बा बृहस्पतिका पुराना बाड़ा है। "

" जी हाँ, जहाँ दुर्गपाल महाराज पहले रहते थे।"

" हाँ, वही । वहाँ मैंने एक स्त्रीको देखा था। "

" जी। " हमीरने जरा मूँछोंमें हँसकर कहा।

" उसका नाम और ठाम मुझे चाहिए। "

" परन्तु वहाँ तो तीन सौ स्त्रियाँ होंगीं।"

" वह तो तुरन्त पहचानी जा सकेगी। "

" किस प्रकार ? "

" युवती है, सुन्दरी है--" आम्रभट रुक गया।

" महाराज, सभी युवती स्त्रियाँ सुन्दरी मालूम होती हैं और सभी सुन्दरी स्त्रियाँ युवती दिखती हैं। पर वह मिले कैसे ? "

" अरे मूर्ख, वह तो अप्सरा जैसी है। ऊँची और संगमर्मरके समान अद्भुत। वहाँ शिवालय है, उसीके आसपास किसी जगह रहती है। "

" महाराज, इस गरीबकी बात मानेंगे ? " हमीरने कहा।

" क्या ? " आम्रभटने अधीरतासे पूछा।

" हम अभी तो यहाँ आये हैं, और मेहताजीने आवश्यक कार्यसे भेजा है। इस पंचायतमें पड़ेंगे, तो फँस जायँगे। "

आम्रभटने मिजाजमें आकर हमीरकी ओर देखा " तुम्हें यह सलाह देनेका शौक कबसे हो गया ? "

हमीर मौन रहा। उसने झुककर हाथ जोड़े " जो आज्ञा। "

" मुझे शामको उसका नाम, ठाम, उसके पतिका नाम, पिताका नाम, सब चाहिए।"

" हो सके, तो पहिचान भी करता आऊँ ? " हमीरने कुछ कटाक्षसे कहा।

" इसका तो मुझे विश्वास है।" आम्रभट्टने हँसकर कहा, " परन्तु देख, कोई जाने नहीं। "

" जाने भी तो क्या। ये लाटवाले क्या कर लेंगे ? "

" हाँ, वे तो क्या करेंगे ?" आम्रभट्टने गर्वसे कहा। पर "सेठ तेजपाल जान जायँ, तो उन्हें बुरा लग जाय। अच्छा तो वह तुझे याद रहेगी। "

" आप तो ऐसी निशानी दे रहे हैं कि उससे मिले ही नहीं। "

" पागल, ऐसी दूसरी स्त्री तो मैंने देखी ही नहीं। "

" आप तो हर बार ऐसा ही कहते हैं । "

" इस बार तो तू भी कहेगा । ओह, कैसा उसका रंग है ! मानो बेलेकी कली हो ! " कहते कहते आँबड़के मुँहमें पानी आ गया ।

" किस वर्णकी है ? "

" ब्राह्मण । उस बाड़ेमें कहीं बनियानी मिल सकती है ? जा, अब देर न कर । "

" काम हुआ कि आया । " हमीरने कहा और तलवार बाँधकर बाहर निकल गया ।

हमीर अपने स्वामीकी खासियतें जानता था । ऐसे अनेक अवसरोंपर उसने आँबड़की सहायता की थी और अनेक संकटोंसे उसे बचाया था । वह जानता था कि इस समय आँबड़पर साहस सवार है और इनकार करनेसे कुछ नहीं होगा । वह विचार करता हुआ बाहर गया । नाम ठामका पता लगाना कोई कठिन काम नहीं था । और वह बहुत ही सावधानीसे किया जाय तब भी उससे कुछ होने-जानेवाला नहीं था ।

हमीर चतुर था और अहंकारी भी । जगतका स्वामी पाटन, पाटनका स्वामी जयसिंहदेव, और लगभग जयसिंहदेवका स्वामी उदा मेहता—ये उसके सिद्धान्त थे । और वह स्वयं उदा मेहताका मानीता सुभट और उसके लाड़ले दुलारे पुत्रका विश्वस्त मित्र था; अतएव सारी दुनियाको वह कुछ गिनता ही न था । उसने पहले लाटके साथ होनेवाले कई युद्धोंमें भाग लिया था और लाटके जीते जानेके बाद भी दो वर्ष तक वह पाटनकी सेनामें रह गया था । इन कारणोंसे वह लाटकी ओर बहुत ही तिरस्कारसे देखता था ।

उसने एकदम साम्बा बृहस्पतिके बाड़ेमें जाना ठीक नहीं समझा । अतएव उसने अपने एक पुराने मित्रको खोज निकालनेका निश्चय किया ।

उसके मित्र नेरा तोतलेको पाटनकी सेनामें ऐसा कोई न था, जो न पहचाने । वह डींग हाँकनेवाला था और लड़नेकी अपेक्षा, लड़ाई पूरी होनेपर उसके विषयमें डींगें मारनेमें ही वीरता समझता था । आनन्द और आरामके सिवाय उसे और कुछ अच्छा न लगता था । भोजन और हास्य-विनोदके बिना वह जी नहीं सकता था । जहाँ रहता, वहाँ सारे नगरके लोगों और विशेषतया

स्त्रियोंसे परिचय करनेमें वह नहीं चूकता और जहाँ-जहाँ पाटनकी सेना छावनी डालती, वहाँ एक दो स्त्रियोंसे ब्याह कर लेनेसे भी नहीं चूकता था।

हमीरको लगा कि इस महारथीकी सहायताके बिना कुछ न होगा, अतएव, उसने थानेपर जाकर पता लगाया। त्रिभुवनपाल सोलंकीके डेरेको खोजना भले ही कठिन हो; पर नेराका झोंपड़ा कोई भी बता देता। तेलियोंके मुहल्लेके नाकेपर एक नई विवाहिताके भाग्यशाली मकानमें उसका निवास है, यह जानकर हमीर उस ओर मुड़ा।

नेराका घर छोटा और गंदा था। एक ओर कोल्हू चलता था और दूसरी ओर एक तेलिन गंदी पीली रेवड़ियाँ बेचती थी। गन्दे रास्तेमें हर तरहकी सड़ी गली चीजें नजर आती थीं।

हमीरने दरवाजेकी कुंडी खटखटाई; परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। पुकार लगाई; पर किसीने द्वार नहीं खोला। आखिर उसने पासकी दूकानपर बैठी हुई तेलिनसे पूछा।

"नेरा भाई यहीं रहते हैं?"

"हाँ।"

"तब जवाब क्यों नहीं देते?"

"सबेरे लुगाईको घरसे निकालकर अन्दर घुसे बैठे हैं।"

"तब क्या किया जाय?"

"पीछेका द्वार खुला होगा।"

"कहाँसे जाना होगा?"

"इधर इस ओरसे।"

हमीर झपटकर पीछे गया। पड़ोसिनके कहे माफिक पिछला दरवाजा खुला था। उसे ढकेलकर हमीर वाड़ेमें गया और वहाँसे अन्दर घुसा।

उसके पैरोंकी आहट सुनकर समीपकी कोठरीसे आवाज आई—फि...फि...फि...र...आ...ऐसा लगा जैसे कोई मुँहमें कुछ भरे है और बोल रहा है। हमीरने आवाज पहचानी।

"अरे ओ तोतले, तू कहाँ है?" हमीर पूछता हुआ अन्दर गया।

"कौ...कौ...न..." बड़े प्रयत्नसे गलेसे नीचे कुछ उतारते हुए तोतलेकी आवाज आई।

" अकेले बैठे क्या कर रहे हो ? पुकारते पुकारते मेरा तो गला बैठ गया।" हमीरने अन्दर पहुँचकर कहा।

अन्दरका दृश्य अच्छे अच्छोंको चकित कर देनेवाला था।

नेराको मनुष्य नहीं गढ़ा था। हाथी बनाते बनाते भूलसे वह मनुष्यके आकारका बन गया था। वह ऊँचा था, और इतना मोटा था जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। उसकी नाक नुकीली और झुकी हुई, आँखें शीतलादेवी जैसी बड़ी बड़ी, तोंद बड़ी गागरको भी शरमावे ऐसी अपूर्व गोलाकर। हाथ और पैर मोटे और गोल। उसे देखकर अर्द्धदग्ध कारीगरके पुराने मापके गढ़े हुए प्रचंड गणेशजीका स्मरण हो आता था।

यह वीर पुरुष उकड़ूँ बैठा हुआ था और बड़े परिश्रमसे आगे रखी हुई थालीमेंसे लड्डू ले लेकर मुखमें रख रहा था। यह प्रयोग इतनी तेजी और सफाईसे हो रहा था कि लड्डू कब मुँहमें गया और कब गलेसे नीचे उतरा, यह निश्चय करना असंभव था। और यह उतावला वीर इस प्रकार हाँफ रहा था, जैसे धौंकनी चल रही हो।

उसने आँखें फाड़कर हमीरकी ओर देखा और उसे पहचान लिया। तुरन्त उसकी उतावली चली गई, उसके चिन्तातुर मुखपर हास्य छा गया। उसने फटती हुई धौंकनीकी भाँति निश्चिन्तताका निःश्वास लिया।

" कौ...कौ...न हमी...मी...र ? "

" अरे हाँ। "

" हा—हा—हा " नेराने कहा—" हो हो अ...अ...अच्छा हुआ कि तू सामने आया। मैं तो समझा, मेरी वह आई है। मैं तो यह करछुली लेकर मारने उठ रहा था। "

" अरे बैठ बैठ ! यह नहीं कहता कि उसके आनेसे पहले लड्डू उड़ानेका विचार कर रहा था ? "

" हो-हो-हो। " नेराके हास्यसे सारा घर गूँज उठा। " क्या करूँ ? दो दिन तक मुझे भूखों मारा और आज सबेरे ऐंठकर पीहर चली गई। इसलिए अपने सामने यह किया। हमीर, तू कब आया ? ले, यह एक लड्डू तो खा... खा। " कहकर नेराने बचे हुए ग्यारह लड्डूओंमेंसे एक हमीरके आगे रख दिया।

" मुझे नहीं खाना। तू भूखा है, खा ले।" हमीरने उदारता दिखलाई, अतएव नेराने बिना आग्रहके लड्डू अपने मुखमें रख लिया। " मैं आज सबेरे ही आया। तुमसे एक काम है मित्र!" "खा...खा...खा लेने दे।" नेरा तोतला नहीं था, केवल हकलाता था और वह भी शब्दके शुरूमें ही। एक बार उसकी जीभ खुली कि फिर तो उसे रोकना कठिन हो जाता।

" कोई बात नहीं, खा ले।"

नेराने दबादब लड्डुओंको हाथसे सीधे, मुँह या गलेमें रोके बिना, पेटके हवाले करना शुरू कर दिया और ग्यारहके ग्यारह पूरे करके, हाथ धोकर, हमीरके पास आकर–"क...क...क्यों मित्र!" कहकर नेराने हमीरकी जाँघपर हाथ मारा। मित्रताका यह प्रमाण ऐसी कठोरतासे दिया गया कि हमीर चीख उठा, परन्तु उसे गरज थी इसलिए कुछ बोला नहीं।

" देखो, मुझे एक स्त्री खोज निकालना है।"

" क्या ब्याह करोगे? मेरी स्त्रीकी एक बहन—"

" नहीं, सुन तो सही। एक स्त्रीका पता चाहिए।"

नेराने माथा हिलाया और कानोंपर हाथ रख लिये—" तू...तू...तू ऐसी बात न कर।"

" क्यों?"

" मैं...मैं...मैंने तो कसम खाली है।"

" किस बातकी?"

" प...प...पराई स्त्रीकी बात करनेकी।" नेराने कहा।

" अरे पागल, तुझे पराई स्त्रीकी बात थोड़े ही करनी है। तुझे तो पता लगाना है। देख, हम सब भट हो गये, और तू रह गया।"

" तु...तु...तुम्हीं सबके कारण रह गया। जब मैं लड़ाईमें होता, तब भी तुम चुगली किया करते कि मैं पीछे रह गया, भाग गया।"

" पर अब मौका है।"

" कि...कि...कि...किस तरह?"

" एक स्त्रीका पता लगा दो तो आम्रभट तुम्हें भट बना देंगे।"

" आ...आम्रभट—"

" अरे मूरख उदा मेहताके पुत्र और भृगुकच्छके दुर्गपाल।"

" ऍं !—" मुँह फाड़कर नेराने पूछा—" काकका क्या हुआ ? "

" वे तो वंथली जा रहे हैं। क्या उनसे घबड़ाता है। "

" मैं...मैं...घबरा—ऊँ ?" छाती तानकर नेराने पूछा—" मैं...मैं किसीसे घबराया हूँ ? "

" नहीं रे; पर अब मेरी मदद करता है या नहीं ? "

" क्या...क्या...क्या करूँ ? मुझ जैसे योद्धाको कोई भट नहीं बनाता। मैं कितनी लड़ाइयाँ लड़ा, मुझे कितने कितने घाव लगे, फिर भी मैं भट नहीं बना ! "

" मैंने आम्रभटसे बचन ले लिया है। तेरी मैं मुलाकात करा दूँगा, इसलिए इतना तो कर दे। "

" अ...अ...अभी लो ! " नेरा चुटकी बजाकर बोला और खड़े होकर तलवार बाँधने लगा।—" वह है कौन ? "

" साम्बा बृहस्पतिके बाड़ेमें रहती है। "

" सां...सां...सां...बा—कहकर वह तलवार खोलने लगा। वहाँ तो दुर्गपाल रहते हैं। "

" तो क्या हुआ ? हमें तो केवल नाम जानना है। "

"...प...प...पर—परन्तु वह जाना कैसे जाए ? किसकी लड़की है ? "

" यही तो पता लगाना है। "

" प ..प...पर काकने जान लिया तो ? "

" कैसे जानेगा ? और फिर हम भी तो पट्टनी योद्धा हैं, क्या यों ही डर जायँगे ? "

" ड...ड—ड–डरनेकी तो बात ही क्या है ? "

" और तू तो बड़े बड़ोंको पानी कर डाले, ऐसा है। "

" तो...तो...मैं इनकार कब करता हूँ ? "

" तब तैयार हो जा।" हमीरने कहा। नेरा तलवार बाँधने लगा—" प...पर पता कैसे लगाऊँगा ? "

" य...य...यह काम मेरा। व...व...वहाँ अविमुक्तेश्वरका मन्दिर है—"

" हाँ, वहीं। " हमीरने हँसकर कहा।

" उसके प...पी...पीछे कुआँ है, वहाँ—वहाँ जाकर बैठा कि तुरन्त सारा पता लगा।"

" शाबाश दोस्त। अभी तक तेरी बुद्धि वैसीकी वैसी है।"

" य...य...यह कहो कि और भी बारीक होती जा रही है।"

" ठीक कहता है। मोटा तो केवल शरीर ही होता है।"

" हा...हा...हा..." करके हँसते हुए नेराने सिरपर पगड़ी रखी और दोनों सैनिक वहाँसे बाहर निकले पड़े।

१३–अनजानीकी खोजमें

दोनों आदमी एक दूसरेका हाथ थामे, हँसते बोलते, रास्ता चलनेवालोंकी दिल्लगी उड़ाते चले। उनके विचारसे ये सब स्त्री पुरुष पाटनके अर्थात् उनके दास थे और उन्हें रिझानेको ही बने थे।

लोगोंमें भी आज कुछ क्षोभ था। उन्होंने उड़ती हुई गप सुनी थी कि आज भृगुकुच्छके दुर्गपालके पदपर काकके बदले कोई पाटनका व्यक्ति बैठनेवाला है· सब लोग चारों ओर शंका तथा भयसे देख रहे थे। नेराके गजाननसे तो सभी परिचित थे। परन्तु उसके साथ फिरते हुए साफ सुथरे कपड़ोंवाले एक नये पट्टनी सैनिकको देखकर, लोग कुछ घबराये।

हमीर बड़ा चतुर था; परन्तु एक विजित नगरके असहाय स्त्री-पुरुषोंके बीच सजधजसे शानके साथ चलनेमें हिचकनेकी भी कोई जरूरत उसे नहीं दिखलाई पड़ी और इसी प्रकार शिष्ट समाजकी बस्तीमें जाकर स्त्रियोंके देखनेमें भी उसे हीनता नहीं प्रतीत हुई। पाटन या खंभातमें ऐसा करनेका उसे स्वप्नमें भी साहस न होता। परन्तु यह तो बेचारा गरीब भृगुकच्छ था। यहाँ तो पट्टनी कुछ भी कर सकते हैं। सुधरे हुए पाटनके नियम इस गाँवके लिए कैसे लागू हो सकते हैं?

हमीर और नेरा दोनों उल्टे सीधे रास्तेसे होते हुए, निर्विघ्न साम्बा बृहस्पतिके पुराने बाड़ेके अविमुक्तेश्वर मन्दिरके आगे जा पहुँचे। सवेरे आम्रभटके आनेके समयकी-सी शून्यता इस समय वहाँ नहीं थी। यह मन्दिर प्राचीन, पूज्य और

मानीता था; इसलिए लोग आ-जा रहे थे और उसके पीछेवाले कुँएपर कई स्त्रियाँ पानी भर रही थीं।

हमीर और नेराने जाकर दर्शन किये और मंदिरके पीछेके चबूतरेपर जल भरनेवाली स्त्रियोंको निरखने बैठ गये। निकम्मे बैठे बैठे आने जानेवाली स्त्रियोंको केवल देखते ही रहें, यह, दोमेंसे एकसे भी नहीं बन सकता था और लम्बी तथा अप्सराके समान स्त्री तो कोई आ नहीं रही थी, अतएव वे कुछ ऊब-से गये और उनकी अधीरताने नया ही रूप धारण कर लिया।

नेरा पलथी मारकर बैठ गया, चारों ओर भयंकर कटाक्ष फेंकने लगा; और जो आती जाती थीं, उनकी ओर आँखें मार मारकर हँसने लगा। उसका जीवन हलकी जातिके लोगोंमें बीता था, इसलिए वहाँ सीखी हुई रीतियोंको ही वह यहाँ आजमाने लगा।

अन्तमें हमीर भी आने-जाने-वालियोंकी टीका करने लगा। टीकासे मजाक पर आया और मजाक शुरू होनेपर नेराकी भलमंसी हाथसे निकल गई। उसने जोर जोरसे पानी भरनेवाली स्त्रियोंके लक्षणोंका पृथक्करण करना शुरू कर दिया।

इन दो अपरिचित पुरुषोंको इस प्रकार बातें करते देखा कि कुँएपर पानी भरनेवाली स्त्रियोंमें घबडाहट फैली और कुछ ही देरमें, कुछ स्त्रियाँ जलभरकर तथा कुछ बिना जल भरे ही वहाँसे जाने लगीं।

"य—य—ये तो सब चलीं। " नेराने कहा।

"जाने दो।" ऊबकर हमीरने कहा।

"प—प—पर तेरी अप्सरा तो आई नहीं?"

"कौन जाने कब आए!"

"अ—आ—आई—ठुमक—" कहकर नेराने एक जवान स्त्री आ रही थी, उसकी ओर आँखें नचाई। वह स्त्री गर्वसे ऐंठकर ठिठक गई और गुस्सेमें लौट पड़ी।

"क...क...क्या हुआ?" नेराने कहा।

वह स्त्री लौटी ही थी कि सामने मंदिरसे रुद्री करके बाहर निकलता हुआ मणिभद्र मिला। वह दुर्गपालके घरमें आश्रय पाई हुई स्त्री थी। मणिभद्रको देखकर साहस करके खड़ी हो गई। कुछ दूरीपर दो एक स्त्रियाँ और भी खड़ी हो गईं।

"भैया, पीछे दो बदमाश बैठे हैं, उन्हें हटा दो, हमसे मज़ाक करते रहे हैं।"

"ऐं ?" मणिभद्रने पूछा।

"हाँ, किसीको जल नहीं भरने देते।" दूर खड़ी स्त्रियोंमेंसे एकने पास आकर कहा।

"ठहरो, मैं अभी हटा देता हूँ।" कहकर मणिभद्र धीरे धीरे चबूतरेपर होकर पीछेकी ओर गया "अरे भाई, तुम कौन हो ? यहाँ क्यों बैठे हो ?"

हमीरने मणिभद्रको पहिचान लिया और असभ्यतासे पूछा "अरे पंडित, तू यहाँ कहाँसे ?"

"कौन आम्रभटका सेवक ? यहाँ क्यों बैठा है, और इन सबसे मज़ाक क्यों करता है ?"

अपने मालिकके सामने हमीर मणिभद्रका सम्मान करता था; परन्तु इस समय उसका मिजाज हाथसे बाहर हो गया।

"अरे पंडित, तू अपना काम कर, हमारी बातोंसे तुझे मतलब ?" हमीरने कहा।

"तुम इन सबको हैरान कर रहे हो सो ?"

"ब—ब-बम्हन, ये सब हमें हैरान कर रही हैं, सो ?" नेराने कहा।

मणिभद्र साधारणतः घी जैसा नरम था, परन्तु भटराज काकके सालेके रूपमें उसे अपनी शान रखनी थी।

"खबरदार," मणिभद्रने डाँटकर कहा, "यदि अपनी बेशर्मी इन स्त्रियोंके सामने दिखाई तो !"

अधीरतासे, निष्फलतासे हमीर घुट रहा था। अब वह अपनेको रोक न सका। वह एकदम उठा और मणिभद्रकी गर्दन पकड़कर बोला, "जाता है कि नहीं बम्हन !"

हमीरकी फूली हुई छाती और मणिभद्रपर होते हुए अत्याचारको देखकर स्त्रियाँ कीक देकर भागने लगीं और नेरा खड़ा खड़ा खिलखिलाकर हँसने लगा।

मणिभद्रका न जाने कहाँ छिपा हुआ पित्त उबल पड़ा। उसने दाँत किट-किटाकर हमीरकी नाकपर जोरसे एक घूँसा जमा दिया।

हमीर सशक्त योद्धा था। उसने एक धक्का देकर मणिभद्रको चबूतरेसे गिरा दिया और भूमिपर पड़े हुए ब्राह्मणको लातें लगाना शुरू कर दिया। फिर अपने

मुखसे गालियों, अपशब्दोंकी वर्षा भी करने लगा। पीछे नेरा खिलखिलाता हुआ खड़ा रहा।

इस गड़बड़ीकी आहट पाकर आसपासकी दो चार खिड़कियोंसे लोग देखने लगे। भूमिपर पड़े हुए मणिभद्रको हमीरने तीसरी लात जमाई। इसी समय पीछेसे अविमुक्तेश्वरके दर्शन करने रेवापाल आया, उसने भागती हुई स्त्रियोंको देखा, खिड़कियोंपर खड़े, घबराते हुए नगर-जनोंको देखा और भूमिपर पड़े हुए ब्राह्मण और उसपर परदेशी पट्टनी सैनिकके होते हुए लत्ता-प्रहारको देखा।

उसका कठोर मुख और कठोर हो गया। उसके नेत्रोंमें बिजली चमकी, और वह एक पलमें कूद पड़ा—उसके हाथकी तलवारने हमीरके ठोकर मारने-वाले पैरके इस प्रकार दो टुकड़े कर दिये, जैसे वह कदली-स्तम्भ हो।

हमीर चक्कर खाकर भूमिपर गिर पड़ा। लोगोंमें हाहाकार मच गया और नेरा पिछली गलीसे पौबारह हो गया।

"महाराज, आप कौन हैं?" रेवापालने मणिभद्रसे पूछा।

मारसे हाँफते हुए मणिभद्रने कहा—"भैया, मैं दुर्गपाल महाराजके घर रहता हूँ।"

"पूछना अपने दुर्गपालसे, कि इन परदेशी हरामियोंको लाकर उन्होंने क्या लाभ उठाया?"

रेवापालने कटुभावसे कहा "और उनके आदमियोंसे कहना कि इसे उठाकर मेरे यहाँ पहुँचा दें।"

"किसके यहाँ?"

"नगरसेठ तेजपालके यहाँ।" कहकर रेवापाल मंदिरमें चला गया।

१४—आम्रभट और रेवापाल

नेरा गलीमें अधिक दूर नहीं गया था। गड़बड़ी कम हुई कि वह धीरे धीरे फिर लौट आया और सिर उठाकर देखने लगा। रेवापालको दर्शन करके लौट जाते देख उसे हिम्मत आई।

रेवापालके अन्तिम शब्दोंसे उसने अनुमान किया कि आम्रभट रेवापालके

" और तू भी ? " काकने नेरासे पूछा।

" न...न...नहीं—नहीं—महाराज !"

" नेरा, " काककी आवाजमें जो रौद्ररस था, उससे आम्रभट भी डर गया। " देख, फिर कभी मेरे हाथों चढ़ा, तो यह माथा धड़पर न रहेगा। सोमेश्वर ! "

" जी ! " कहकर बाहर खड़ा सुभट आ गया।

" इस हरामखोरको लात लगाकर बाहर निकाल दे। "

" जो आज्ञा। " कहकर सोमेश्वरने नेराको नजरसे ही आज्ञा दी। नेरा धीरे धीरे बाहर हो गया।

" भटराज,—" आम्रभटने धीरेसे काकसे कहा—" इस बेचारेकी—"

काक आम्रभटकी ओर लौटा—" आम्रभट, जानते हो, यह कौन है ? यह पाटनका अधमसे अधम सैनिक है। "

" पर मेरे हमीरको ले आया है। "

" न लाया होता, तो कोई सूरज नहीं डूब जाता। रेवापालने तो पैर ही काटा, मैं होता, तो सिर काट देता। "

आम्रभट कुछ बोल न सका। काक कुछ नरम हुआ, " हाँ, भाई, यहाँपर तुम परदेशी हो। यहाँके लोगोंके मन नहीं दुखाने चाहिए। "

रेवापाल, काकपर एक तिरस्कारपूर्ण दृष्टि डालकर घरमें चला गया। काक आम्रभटको लेकर अटारीपर गया।

" आम्रभट , अपने जानेसे पहले एक सलाह दे दूँ ? "

" हाँ। " लज्जित हुए आम्रभटने कहा।

" लाट और गुजरात भिन्न हैं, यह बात यहाँके लोग भूल जायँ, ऐसा काम करना है। नहीं तो—"

" क्या ? "

" क्या ? तुम्हें खबर नहीं कि ध्रुवसेनके अनुयायी केवल अवसरकी प्रतीक्षामें बैठे हैं ? "

" क्या कह रहे हैं ? " आम्रभटने हँसकर कहा।

काकके मुखपर गांभीर्य छा गया।

" आम्रभट, ऐसी बातोंमें हँसोगे, तो किसी दिन पाटनको रोना पड़ेगा।

तुम तो आते ही रेवापालका अपमान करने लगे। वह कौन है, खबर है ?"

"हाँ, है।"

"नहीं, नहीं है। अन्यथा उसके साथ ऐसी तुच्छ-सी बातके लिए जबान नहीं लड़ाते। आम्रभट, वह जैसा सीधा सादा है, वैसा निर्बल नहीं है। लाटकी राज्यसत्ता जयदेव महाराजकी है, पर उसकी आत्मा और उत्साह दोनों रेवापालमें हैं। वह लाटके गौरवका अवतार माना जाता है। उसका अपमान होनेसे सारा देश गरज उठेगा।"

"तो यह पाटनका शत्रु है ?"

"यह समझना हो, तो भले समझो। परन्तु उसे छेड़ने जाओगे, तो लाट खो बैठोगे। इसलिए उसके साथ बिगाड़ नहीं करना। नहीं तो इतने दिनोंका करा कराया मिट्टी हो जायगा।" काकने कहा, "अब मैं जाता हूँ। आज तुम्हारा और नगरसेठका मेरे ही यहाँ भोजन होगा, अतएव नगरसेठके आते ही आ जाना।"

१५—काककी चिन्ता

काकने अपनी स्वाभाविक विचक्षणतासे अनुभवहीन आम्रभटका अविचार और रेवापालके उसके प्रति तिरस्कारको पहचान लिया और जब वह भृगुकच्छको छोड़कर जायगा, तब क्या क्या होगा, इसका कुछ कुछ आभास उसे हो गया। इससे उसके दूरदर्शी मस्तिष्कके आगे एक बड़ी चिन्ता खड़ी हो गई।

इस चिन्ताके द्वारा चित्रित भीषण चित्रको देखकर उसे कँपकपी आ गई। वह अपनी मंजरीको अकेली छोड़े जा रहा था। कहीं मैं मर जाऊँ, या लाटमें उत्पात हो जाय, तो उसका क्या होगा ? उदा मेहताके कराए हुए कटु अनुभव उसकी नजरके आगे खड़े हो गए। फिर वैसा ही संकट आ जाय, तो इस बेचारीका कौन रक्षक होगा ?

आम्रभट या पट्टनी भटराज माधवको उसे नहीं सौंपा जा सकता था और लाटमें ऐसा कोई न था जो संकटके समय उसे आश्रय दे।

क्षण भरके लिए काककी आँखोंके आगे अँधेरा-सा छा गया। वर्षों तक

उसने अनेक आदर्श सेए थे, उनको सिद्ध करनेके लिए कष्ट उठायें थे और उन सबका फल इस समय तो भला मालूम होता था। उसकी प्रियतमा आनन्दसे जीवन व्यतीत कर रही थी। उसका लाटदेश, स्वातंत्र्य नष्ट हो गया था फिर भी, गौरवशाली था। उसके स्वीकार किए हुए स्वामी जयसिंह देवकी सत्ताके साथ साथ उसकी भी ख्याति चारों ओर फैल रही थी।

परन्तु यह सारे फल इस समय कल्पनाकी डालीपर लटकते हुए दिखलाई पड़े। यदि वह सोरठ जाय, और वहाँ किसी कारण बन्दी हो जाय, या प्राण गँवा बैठे, तो मंजरी दुःखी और निराधार हो जाय; लाटमें उपद्रव, उत्पात, क्लेश, अनीति, विजेताकी क्रूरता और पराजितोंके दुःख फिरसे दिख पड़ें, अपनी कीर्ति फुलझड़ीके समान जलते ही बुझ जाय और उसकी राख धूलमें मिल जाय। इस परिणामकी सारी सामग्री इस समय तैयार थी। जयदेवको उससे द्वेष था। उदा इस समय राजाका मानीता बनकर अपने वैरका बदला लेनेकी फिराकमें था। विनाशकी अनीपर आई हुई राणकदेवी उसे भागतेका साथी बननेका निमंत्रण दे रही थी। यहाँसे वह जायगा, और मूर्ख, अनुभवहीन और अभिमानी आम्रभटके हाथ लाटका मुश्किल मामला जा पड़ेगा।

पलभरके लिए उसके वीर हृदयमें निराशा प्रकट हुई और पलभरमें ही जयसिंहदेवके आदेशका अनादर करनेकी इच्छा हो आई, परन्तु दूसरे ही पल उसे भान हुआ कि भृगुकच्छसे गये बिना निस्तार नहीं है।

वह बाहर जा रहा था कि लौट पड़ा और नगरसेठके घर गया, "भाई रेवापाल ऊपर हैं क्या?" उसने स्त्रीसे पूछा।

"हाँ, अभी अभी ऊपर अटारीपर गये हैं।" बाल्यकालमें उसने और रेवापालने सारा घर खूँद डाला था, अतएव वह तुरन्त रेवापालकी अटारीपर जा पहुँचा। रेवापालकी अटारी सबसे दूर, घरके एक छोरपर थी।

उसने ज़ीना चढ़ते हुए पुकारा, "भाई रेवापाल!" कोई उत्तर नहीं मिला। काक झपटकर अटारीमें पहुँचा, तो वह खाली थी। उसने खिड़कीसे बाहर सिर निकाल कर देखा, तो कोई दिखा नहीं। वह चिल्लाया, पर कोई उत्तर नहीं मिला।

काकको कुछ अजब-सा लगा। रेवापाल घरके लोगोंके साथ अधिक बोलता

बताता नहीं था। बाहरके दरवाजेसे वह लौटकर गया नहीं था और उसकी पगड़ी और दुपट्टा वहाँ थे नहीं।

पिछली खिड़की खुली थी। काक उस ओर गया और चौंक पड़ा। पीछेकी ओर उतरनेके लिए वहाँ नसैनी रक्खी थी। वह छिपता हुआ खिड़कीके समीप पहुँचा और उसने बाहरकी ओर देखा।

पीछेके इस छोटे बाड़ेमें कुछ वृक्ष थे, और गौशाला थी। काकने ध्यानसे सुना, तो दो एक व्यक्ति चुपचाप बातें करते मालूम हुए। उनमें रेवापालका स्वर भी सुनाई पड़ा। यदि वह भृगुकच्छमें न होता या यहाँका दुर्गपाल न होता, तो आगे बढ़कर वह निश्चय कर लेता कि रेवापाल किसके साथ बात कर रहा है। परन्तु इस समय उसे ऐसा लगा कि और आगे बढ़नेमें सार नहीं है। इतना तो स्पष्ट था कि रेवापाल जैसा मनुष्य बिना किसी प्रबल कारणके, इस प्रकार पिछले रास्ते बात करने नहीं जाता। ऐसा लगता था कि रेवापालने कोई खेल खेलना शुरू किया है और पाटनकी सत्ता मिटानेके सिवाय दूसरा कोई खेल रेवापाल खेल नहीं सकता। इतनेमें पीछेकी ओर पैरोंकी आहट सुनाई पड़ी। काक स्वस्थ होकर द्वारकी ओर जाने लगा। वह द्वार तक पहुँचा और एक स्त्री आई। "वेनां भाभी!"

रेवापालकी स्त्री वेनां चौंक पड़ी। "कौन काक! तू–तुम–यहाँ?"

"हाँ भाभी, मैं ही हूँ।" काकने हँसकर कहा "इस घरके सिवा कहीं निस्तार हो सकता है?"

बेनां दुबली पतली और लम्बी थी। रेवापालकी शुष्क घर-गृहस्थीकी पतवार थामकर वह सहनशील और एकनिष्ठ बन गई थी। जैसा रेवापाल अमानुष था, वैसी ही बेनां थी। उसने प्रेम और आदर, मौज और मजा, लिप्सा और सुख-भोग सबको भुला दिया था। केवल पतिकी सेवाके लिए वह जीती थी। अनेक दिनोंतक रेवापाल उससे न बोलता, और वह भी उसे नहीं बुलाती। रेवापाल पहरों नहीं सोता, तो वह भी पलक गिराये बिना पलंगके पास बैठी रहती। अक्सर रेवापाल उपवास करता, तो बेनां भी अन्न-जलका त्याग कर देती। जंबूसरका पतन हुआ, तबसे रेवापालने काकसे मिलनेका व्यवहार बंद कर दिया था। और, तभीसे बेनांने भी काकके साथ अबोला ले लिया था। बेनां इस समय चौंक पड़ी और उसका अबोला व्रत टूट गया।

" तुम कैसे आये ? "

" मुझे भाईसे और तुमसे मिलना था। "

" मुझसे ? " बेन ने दयनीयतासे हँसकर पूछा।

" हाँ। अच्छा हुआ कि मिल गई। तुम्हारी बहनको मैं तुम्हें सौंप जाना चाहता हूँ। "

" मुझे ? मैं क्या कर सकती हूँ ? और तुम—"

" मैं सोरठ जाता हूँ, इसीलिए भाईको और तुम्हें सौंप जाना चाहता हूँ। "

बेनाने सिर हिला दिया " मैं कुछ नहीं जानती, तुम जानो और तुम्हारे भाई। "

" परन्तु भाई हैं कहा ? इसीलिए मैं आया हूँ। अब वे कहाँ मिलेंगे ? "

" तुम कब जाओगे ? "

" कल। आज शामको मिलेंगे ? " " शामको तो दर्शन करने जायँगे। "

" गंगनाथ महादेवके मंदिरमें सेनापति ध्रुवसेनके दर्शनार्थ जाते हैं, क्यों ? हाँ, यह ठीक है। कहना कि मैं उन्हें वहाँपर शामको मिलूँगा। और मैंने जो कहा है, वह भी कहोगी ? "

" यदि उन्होंने पूछा तो, अन्यथा नहीं। "

" काक इस स्त्रीकी त्यागवृत्तिका विचार करने लगा और उसने चुपचाप नमस्कार करके बिदा ली। आनेवाली विटम्बनाकी अस्पष्ट प्रतिध्वनि उसके कानोंसे टकराने लगी।

१६—आम्रभटकी आँखोंके आगे अँधेरा

आम्रभटको बड़ी बेचैनी हो गई। उसने भृगुकच्छ आकर खूब मजा मौज उड़ानेकी बात सोच रखी थी; परन्तु यहाँ पैर रखते ही अपना एक नौकर खोया, अपमान सहा, और हृदय एक अपरिचिता चुरा ले गई। इतनी-सी उम्रमें इतने सब दुःखोंकी इतनी लम्बी परम्परा उसने अनुभव नहीं की थी।

इतनेमें नगर सेठ आ गए।

" ओ हो, खंभातके मंत्रीजीके चिरंजीवी ! " तेजपालने कटाक्ष करते हुए कहा—" मेरे धन्य भाग ! " और आम्रभटको गले लगा लिया। " मुझे सबेरेसे ही कुछ ऐसा लग रहा था कि आज सोनेका सूर्य उदय होगा। मेहताजीकी बड़ी कृपा ! "

आम्रभट इस व्यक्तिको समझ न पाया। उसके शब्दोंमे मिसरी घुली थी, पर आवाजमें कटाक्ष था। वह यथार्थ कह रहा है, या मजाकमें, उसके मुँहकी चेष्टासे यह नहीं परखा जा सकता था। वह अपनी तिरछी आँखके कोनेसे आम्र-भटको देखता रहा। "अरे ओ शंकरा!" उन्होंने चिढ़कर नौकरको पुकारा।

"इन भटजीसे कुछ पूछा? भिखारी गाँवके इन बेगारियोंमें कौड़ीकी भी अक्ल नहीं। न जाने किस फुर्सतकी घड़ीमें ये गढ़े गये हैं। कहिए, भटजी, तबीयत तो खुश है? हमारे यहाँ पाटन जैसी मौज तो कहाँ!"

"मुझे तो आपका भृगुकच्छ बहुत अच्छा लगा।"

"अजी, कहीं पाटनकी होड़ कर सकता है? आज तो काक भटजी चले। चलो, उनके पैरोंको भी शनिकी दशा लगी।" नगरसेठने कहा।

"हाँ, महाराजने बुलाया है।"

"क्यों नहीं?" फिरसे, समझमें न आवे ऐसी आवाजमें तेजपालने कहा, "ऐसे पुरुष महाराजके पास न हों, तो कहाँ हों? महाराजकी भी कैसी कीर्ति है! दुनियाके जीव-जन्तु तक उनकी ही कीर्ति गाया करते हैं।"

आम्रभट देखता रहा। बोला, "जी।"

"अच्छा अब चलो, नहा लो। आज दुर्गपालके यहाँ भोजन हैं। मैं तो सवेरे ही नहा चुका हूँ। चलो, नहीं तो ब्राह्मणके घरकी रसोई ठंडी हो जायगी।"

इस तीखी वाणीकी प्रसादीसे दंग होकर आम्रभट नहा धोकर तैयार हो गया और नगरसेठके साथ पालकीमें बैठकर दुर्गपालके घरकी ओर रवाना हुआ।

साम्बा बृहस्पतिके बाड़ेके पाससे जाते हुए आम्रभटका चित्त उस सबेरे मिली हुई सुन्दरीके स्मरणमें जा चिपका और नगरसेठकी बातोंसे हट गया। वह अद्भुत स्त्री कौन होगी? किसका घर सुशोभित करती होगी? मेरे नेत्रोंको फिर कब पवित्र करेगी?

पालकी एकदम बाड़ेमें जा पहुँची और आम्रभटका श्वास रुद्ध हो गया। दो छोटे बालक दौड़ते हुए, समीपके एक घरमें घुस रहे थे। उनमेंसे एक बालिकाके पैरकी एड़ीपर उसकी दृष्टि जम गई। सबेरे मंदिरके समीप देखी हुई एड़ियाँ उसे याद आ गईं। दुर्गपालके घरमें देखी हुई एड़ियोंका भी स्मरण हो आया। इस समय, वही एड़ियाँ दिखलाई पड़ रही थीं सुघड़, गुलाबी और चित्तभेदक। उसने एड़ियोंपरसे दृष्टि ऊपर की। इस एड़ीमेंसे तो एक कोमल, सुन्दरी कन्या उग

रही थी। "क्या ?" उसकी आँखोंके आगे अँधेरा छा गया। क्या उस सुन्दरीने चित्तभ्रम कर दिया है कि जहाँ-तहाँ वह उसे ही देख रहा है।

इतनेमें काकका घर आ गया, और वे पालकीसे उतर पड़े। वहाँ काक और भटराज मिले। माधव नागर दादाक मेहताका भतीजा था और बहुत वर्षोंसे त्रिभुवनपालका मित्र और सेवक था।

राजकार्योंकी, भृगुकच्छके झगड़ोंकी, ध्रुवसेनके पक्षकारोंकी, पाटनकी राजनीतिकी और खेंगारकी पराजयकी बातें होती रहीं। सबने भोजन किया और घर जानेका समय हो गया। परन्तु, आम्रभटका चित्त किसी भी बातमें न था, वह उसी सुंदरीपर जम गया था। इन्हीं एक दो गलियोंमें वह थी, और इतने पास थी, फिर भी दूर और दुष्प्राप्य थी। उसे खोजनेका काम छोड़कर, ये राजकाजके झगड़े उसे क्यों अच्छे लगने लगे!

अन्तमें अतिथि विदा हुए और काक आम्रभटकी मूर्खता, अभिमान और छिछोरेपनपर विचार करने लगा

१७—रेवापालका हृदय

जब भृगुकच्छका दुर्गपाल चिन्ताग्रस्त होकर रेवापालसे मिलने गंगनाथ महादेव जानेका विचार कर रहा था, तब रेवापाल महादेवके पीछेकी एक झोंपड़ीके द्वारके आगे बैठा था।

झोंपड़ीमें ब्रह्मानंदजी सरस्वती ध्यानस्थ थे। रेवापाल अधीर हो रहा था और उसकी आँखें नदीकी तरंगोंको एकाग्रतासे देखती हुई अक्सर झोंपड़ीके द्वारकी ओर घूम जाती थीं। उसके मुखका भाव कुछ अधिक कठोर दिखलाई पड़ रहा था। उसके श्वासोच्छ्वासकी अनियमितता ही उसके आन्तरिक क्षोभका परिचय देती थी।

झोंपड़ीमें पैरोंकी आहट हुई कि रेवापाल खड़ा हो गया। कुछ देरमें द्वार खुला, और एक वृद्ध संन्यासी बाहर आया।

"बेटा रेवापाल, आज इतनी जल्दी ?" ब्रह्मानंदने पूछा।

ब्रह्मानंदके दाँत गिरने लगे थे और खाल लटकने लगी थी, परन्तु उनके नेत्र निस्तेज नहीं हुए थे और उनके स्नायुओंका जोर ज्यादा न घटा था। वे

संन्यासी पूर्वाश्रममें सेनापति ध्रुवसेन थे; और इस समय कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि एक वक्त था जब उनकी गर्जनासे पाटन और धाराके नरेश काँप उठते थे। रेवापालने दंडवत प्रणाम किया और वह झोपड़ीमें दाखिल हुआ।

"बैठो बेटा," ब्रह्मानंदने कहा।

"जी" जरा काँपते स्वरमें रेवापालने कहा

"महाराज, द्वार बंद कर दूँ?"

"खुशीसे।" रेवापालने द्वार बंद कर दिया।

"गुरुदेव, आज इतने वर्षों बाद आज्ञा माँगने आया हूँ।"

"कैसी?"

"अपने हृदयकी आग बुझानेकी।"

"इसमें आज्ञाकी क्या बात है? रेवापाल, तुम्हारे हृदयमें शान्ति हो, यही प्रार्थना मैं नित्य किया करता हूँ।"

"गुरुदेव, आप मुझे समझे नहीं। आप जिस शान्तिकी प्रार्थना करते हैं, वह मुझे नहीं चाहिए।"

"तब?"

"पट्टनी वापस लौट जायँ, तभी मुझे शान्ति मिल सकती है।"

"अभीतक तुम यह नहीं भूले? रेवा, कितनी बार कहूँ? मृणालकुमारी पाटन ब्याही गई तो पाटन हमारा स्वामी हो गया। इतने बरसों बाद अब कुछ हो सकता है?"

"गुरुदेव, आप इस प्रकार निराश होंगे तो—"

"भाई, जबतक आशाकी एक बूँदतक रही, तबतक मै डिगा नहीं; परन्तु अब तो आशा रखना पागलपन मालूम होता है।"

रेवापालने उछलते आवेशके भारसे आँखें मींच लीं। उसके होठ खिंचकर कठोर हो गये।

"गुरुदेव, आप तो संसार त्याग बैठे हैं; इससे आपको पागलपन मालूम होता है, परन्तु जैसा आज है, वैसा दिन फिर नहीं आनेका।"

"मैं नहीं मानता।"

"भले ही आप न मानें। और ऐसा दिन न हो, तो भी मैं अब थक

गया हूँ। अब मुझसे यह सहन नहीं होता। नहीं देखा जाता। अब तो ऐसा लगता है कि या तो मैं नहीं या पट्टनी नहीं।" आँखोंसे आँसू पोछते हुए रेवापालने कहा।

"क्यों, क्या है?" ब्रह्मानंदने कुछ आतुरतासे पूछा।

"गुरुदेव! गुरुदेव! जहाँ देखता हूँ, वहाँ लाटकी टेक और सुखका विनाश होते दिखलाई पड़ता है। आज ही एक घटना हो गई। अविमुक्तेश्वरके शिवालयके आगे, मैंने पाटनके दो सैनिकोंको धौले दिन लाटकी स्त्रियोंसे मज़ाक करते देखा और एक सैनिकके हाथों एक पवित्र ब्राह्मणको मजेसे कुचले जाते देखा। और यह आज ही नहीं हुआ, प्रतिदिन इसी प्रकार कुछ न कुछ होता है। अब तो नीचताकी हद हो गई है। नरक भी इससे ज्यादा भयंकर न होगा।"

"काक क्या कर रहा है?"

"काक क्या कर सकता है? वह तो खिलौना है। वह समझता है कि उसकी चलती है; पर ज्यों ही उसने पीठ फेरी कि अत्याचार होने लगते हैं। और वह तो कल चला भी जायगा।"

"कहाँ?"

"वंथली। उसके महाराजका हुक्म आया है। और लाटकी सत्ता किसके हाथोंमें आयगी, खबर है?"

"नहीं तो।"

"एक मंत्रीका लड़का है। न तो बुद्धि है और न नीति-रीति ही जानता है। शूरवीर भी नहीं है। उसके हाथ नीचे रहनेसे तो कट मरना भला। इसीसे कहता था कि दिन बहुत अच्छा है।"

"वह कहाँ ठहरा है?"

"मेरे ही यहाँ। पिताजी तो उसे मेरी बहन देना चाहते हैं।"

"अच्छा?"

"जी। परन्तु मेरा बस चला तो आँबड़ मेहता जैसा आया है वैसेका वैसा साजा बेदाग बचकर न जा पायेगा। गुरुदेव, जरा विचार करो। भगवान् भोलेने कैसा बढ़िया अवसर दिया है। त्रिभुवनपाल नहीं, काक नहीं, पाटनकी सेना भी नाममात्र और आँबड़ तथा माधवके

हाथोंमें लाट! गुरुदेव, आपकी तो एक हाँकसे ही लाट वापस हमारे हाथों आजाएगा।" रेवापालने आतुरतासे ब्रह्मानंदकी ओर देखते हुए कहा। "गुरुदेव, जरा विचार करो। पद्मनाभका लाट आज कुचला रौंधा जा रहा है। असहाय लाटको आप ही सहारा न देंगे तो कौन देगा?"

"बेटा, मैंने तो संन्यास ले लिया है; इसलिए मैं तो अलग रहा। परन्तु तुम्हारा भी कोई उपद्रव खड़ा करना मुझे बुद्धिमानीका काम नहीं जान पड़ता।" ब्रह्मानंदने सिर हिलाते हुए कहा।

"तब क्या बैठा रहूँ? गुरुदेव, एक हजार योद्धा तत्पर हो रहे हैं। पन्द्रह दिनोंमें पाँच हज़ार पैदल सिपाही यहाँ आ पहुँचेंगे।" बिल्कुल धीमे स्वरमे रेवापालने कहा।

"क्या कहते हो?"

"पन्द्रह दिनसे मुझे कुछ खबर थी। आज आम्रभट आया और मुझे विश्वास हो गया कि यह अवसर चूकनेका नहीं है। मैंने चारों ओर आदमी भेजे हैं। अक्षय तृतीयासे पहले, भृगुकच्छसे मांडवी तकका प्रदेश हमारे हाथमें आ जायगा।" उतावलीसे, पर धीरेसे, रेवापालने कहा।

"तब तो तुमने सब कुछ आरंभ कर दिया है।"

"जी हाँ, परन्तु आपकी आज्ञाके बिना कुछ न करूँगा।"

"बेटा, जो कुछ तुम करो, उसमें तुम्हें विजय प्राप्त हो, यह सदासे मेरा आशीर्वाद है।"

"देव, इस समय तो ऐसी आज्ञा दो कि या तो विजय प्राप्त करूँ या देह ही छोड़ दूँ।"

"रेवापाल, तुम्हारी ऐसी एकनिष्ठता है तो विजय प्राप्त हुए बिना न रहेगी।"

रेवापाल एकाग्र दृष्टिसे देखता रहा।

"देव, एक और याचना करूँ?"

"हाँ, कहो!"

"आप यह भगवाँ छोड़ दीजिए।"

ब्रह्मानंद चौंककर पीछे हट गये। "क्या?"

"देव, सेनापति ध्रुवसेनके बिना सारे लाटका शौर्य निकम्मा है। किसके

बलपर हम यह साहस करेंगे ? किसकी वाणीपर हम प्राणोंकी बाजी लगायेंगे ? ”

“ रेवापाल, अब यह कैसे हो सकता है कि मैं भगवाँ उतार दूँ ? ”

“ देव, आपने न कहा था कि हाथसे खोये हुए लाटमें अब मेरा कोई स्थान नहीं है ? सो महाराज, अब आप अपना स्थान सँभाल लें, तो लाट फिर अपने हाथ आ जावेगा। एक बार आप फिर बाहर आओ, एक बार अपने धनुषकी टंकारसे लाटको गुँजा दो। ”

“ बेटा, तेरी बातें मेरे मनको ललचाती हैं। ”

“ तब कहो, आओगे ? अक्षय तृतीयाके दिन यह भगवाँ उतारोगे ? ”

“ नहीं। ”

“ देव, यह क्या कह रहे हो ? ”

कुछ देर ब्रह्मानंद मौन रहे।

“ रेवापाल, एक वचन दे सकता हूँ ? ”

“ क्या ? ”

“ यदि तुम्हें सच्ची जरूरत मालूम हो, यदि मेरी हाजिरीके बिना ही तुम्हारा प्रयास मिट्टी हो रहा हो, तो संदेश भेजना। मैं यह भगवाँ उतारकर आऊँगा। अब तो ठीक हुआ ? ” कुछ हँसकर ध्रुवसेनने कहा।

रेवापालने नीचे झुककर ब्रह्मानंदके पैरोंमें मस्तक टिका दिया। वह अपनी कृतज्ञता और किसी प्रकार प्रकट न कर सका। गुरुदेवने शिष्यके मस्तकपर हाथ रखा। कुछ देर तक कोई कुछ न बोला।

“ देव, तब एक काम करोगे ? ” रेवापालने पूछा।

“ कहो। ”

“ अपना ‘पद्मविजय’ दोगे ? ”

“ खुशीसे। दूसरा कौन योद्धा उसका व्यवहार करेगा ? ”

“ देव, आपने हँसते-हँसते इस धनुषको ‘ पद्म-विजय ’ नाम दिया था स्मरण है ? जहाँ इसकी टंकार होगी, वहाँ जीत अवश्य होगी। ”

“ बेटा, वह वहाँ उस मड़वेपर रखा है, ले लो और जब मेरी जरूरत हो, तब इसकी प्रत्यंचाका फुँदना भिजवा देना। महाराज पद्मनाभकी पट्टरानीनें उसे बाँधा था। ” रेवापाल उठ खड़ा हुआ और उसने मड़वेपर पड़ा हुआ धनुष निकाल लिया और अपने शालसे झाड़कर, एक सिरा भूमिपर टिका कर

उसे झुकाकर देख लिया। उसकी स्थिति-स्थापकता ज्योंकी त्यों थी।

" यह तो अद्भुत है। "

" बेटा, भगवान गंगनाथका प्रताप है। जाओ, विजय प्राप्त करो। "

रेवापालने फिरसे दंडवत प्रणाम किया। ब्रह्मानंद सरस्वतीने फिरसे चुपचाप आशीर्वाद दिया। दोनों मौन मुख, पर भारी हृदयसे अलग हुए। दोनोंको ऐसा प्रतीत हुआ कि नियति उनके जीवनका नया पृष्ठ खोल रही है।

१८—काककी याचना

जब रेवापाल झोंपड़ीसे बाहर निकला, तब सन्ध्या हो रही थी। अदृष्ट होता हुआ दिनका प्रकाश, और थोड़ा-सा अँधेरा, आकाशमें तैरते हुए तारे, रेवाके तीरको गंभीर रूप दे रहे थे। रेवापाल बड़े भक्ति भावसे नर्मदाके शान्त तटको देखता रहा और धीरे धीरे, विचार करता हुआ छतपर गया।

इस समय उसके हृदयका भार कम हो गया था। उसके निराशासे निश्चेतन बने हुए हृदयमें आज नई आशाका उल्लास पैदा हुआ था। वर्षोंसे दबाई हुई उसकी हविस आज पूरी होती दिख रही थी। लाटके स्वातन्त्र्यके लिए एक भयानक विग्रह करना, उसके जीवनका लक्ष्य था। वह लक्ष्य आज सिद्ध होनेकी तैयारीमें था।

जंबूसरके पतनके बाद, इस लक्ष्यको सिद्ध करनेकी आशा उसने बिलकुल छोड़ नहीं दी थी। और लाटकी ग्रह दशापर उसको श्रद्धा थी; अतएव उसने यह कभी विचार ही नहीं किया था कि पाटनके लोगोंको निकाल बाहर करना असंभव है। महान् परिश्रमसे महान् संकटमें पाल-पोसकर बड़ी की हुई यह आशा, आज सिद्धिका रूप ले रही थी।

यह आशा करते हुए उसने व्यावहारिक नीति भुलाई नहीं थी। उसकी नजर लाटकी चारों दिशाओंपर फिरती रहती थी। चारों ओरके विद्रोहियों और असन्तुष्ट योद्धाओंसे वह संबंध बनाये हुए था, और सारे लाटमें उसकी एकनिष्ठा तथा देशभक्तिके प्रति इतना अधिक सम्मान था कि लोगोंकी दृष्टिमें, सेनापति ध्रुवसेनके संन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् उसीका प्रथम स्थान था।

वह नर्मदाकी तरंगोंकी ओर देखता रहा। उसने अपने सच्चे हृदयसे इस जागती जोग-मायाको अर्घ्य दिया और उससे आशीष माँगी। उसे ऐसा लगा कि इन तरंगोंमें स्वरूप ग्रहण करती हुई माताके काल्पनिक करोंसे उसे आशीर्वाद मिल रहा है।

आधा जागता और आधा नींदमें वह 'पद्मविजय' के प्रचंड धनुष-दंडपर हाथ टिकाये खड़ा रहा। तुरन्त उसके कंधेपर किसीने हाथ रखा। वह चौंककर पीछेकी ओर घूमा और तलवारपर हाथ डाला। पीछेकी ओर दुर्गपाल हँसता हुआ खड़ा था।

रेवापालने क्रोधसे होंठ चबा लिये। उसके दुर्भाग्यका दूत सामने खड़ा हुआ था और इस समय भी निश्चिन्ततासे विचार नहीं करने दे रहा था। संभव है, वह उसके पीछे किसी प्रपंचमें भी आया हो।

"रेवाभाई, आख़िर भेंट हो ही गई!" काकने कहा।

"क्यों आये हो?" क्रोधसे भर्राये हुए स्वरमें, दाँत पीसकर रेवापालने पूछा।

"मैंने सबेरे भाभीसे कहा था कि इस समय मैं तुमसे मिलनेको आऊँगा। तुमसे उन्होंने नहीं कहा?" काकने निर्दोष आवाजमें पूछा। रेवापाल अपने पुराने मित्रको पहचानता था, वह उसकी मधुर वाणीसे मोहित हो जानेवाला नहीं था। वह कुछ देर आँखें निकालकर देखता रहा।

"क्यों आये हो?" रेवापालने अधीरतासे पूछा।

"मैं कल वंथली जा रहा हूँ।"

"तो इससे मुझे क्या?"

"मैं एक याचना करने आया हूँ।"

"किसीको दान करनेकी मुझमें शक्ति नहीं है। और हो भी, तो तुम्हें न करूँगा।" रेवापालने तिरस्कारसे कहा।

"परन्तु मैं याचना करूँगा, तो तुम्हारे ही पास। और दान भी तुम्ही दे सकते हो।" काकने नम्रतासे कहा।

"दान माँगो अपने पाटनके स्वामीसे।" हठसे गर्दन हिलाकर रेवापालने कहा।

" कुछ दान ऐसे होते हैं जो बाल-मित्र ही दे सकते हैं, उन्हें दुनियाका स्वामी भी नहीं दे सकता। "

" मैं तुम्हारा मित्र नहीं हूँ और मुझे तुम्हारी मैत्री नहीं चाहिए।" कहकर रेवापाल जाने लगा।

" परन्तु मुझे तुम्हारी मैत्रीकी गरज है। जरा सुन तो लो कि मैं क्या माँगता हूँ। फिर भले ही इनकार कर देना। मुझे एक स्त्री तुम्हारे संरक्षणमें सौंपना है। रेवाभाई, आखिर इतनी भी टेक न रखोगे?" काकने कुछ हँसकर कटाक्षमें पूछा।

काककी बातसे रेवापाल रुक कर खड़ा हो गया और उसकी ओर घूमा। उसकी सख्त आँखें कुछ कोमल हो गईं। काकने देखा कि रेवापाल कुछ पिघला है।

" भैया, मुझे अपनी, भृगुकच्छकी या पाटनकी जरा भी परवा नहीं है। उनका जो होना हो, हो जाय, तुम्हें जो कुछ करना हो करते रहना।" काकने रेवापालके हाथके धनुषकी ओर देखते हुए कहा। " यह तो एक गरीब गौकी रक्षा करनेकी बात है। लाटमें तुम ही इतना न करोगे, तो फिर कौन करेगा?"

" तुमसे नहीं होती?"

" मैं तो कल जा रहा हूँ। और संभव है, फिर न भी न लौटूँ।" काकने कहा।

" कौन है?"

" एक विद्वान् ब्राह्मणकी लड़की।"

" कौन, तुम्हारी स्त्री?" रेवापालने चकित होकर पूछा।

" और वही हो, तो?"

" उसे मैं क्यों सँभालूँ?"

" मेरा कोई अनिष्ट हो जाय, तो—"

" तुम्हारा और तुम्हारे कुटुम्बियोंका कुछ भी हो, इससे मुझे क्या?" रेवापालने सख्तीसे कहा।

" मैं तुम्हारे स्थानपर होता, तो ऐसा न कहता।"

" काक, तुम्हें मैं पहचानता हूँ। तुम जैसा हरामखोर मैंने और नहीं देखा।

इस समय भृगुकच्छमें सब कुछ बिगड़ गया है, इसलिए तुम किसी भी बहाने अपना भला खोज रहे हो।"

"रेवाभाई, मुझे अपनी चिन्ता नहीं है; परन्तु इस बेचारीको मैं परदेशसे यहाँ ले आया हूँ और यहाँ मेरे सिवा इसका कोई सगा-संबंधी नहीं है। मान लो कि तुमने लाटको फिर ले किया—" कुछ तीक्ष्ण दृष्टिसे रेवापालकी ओर देखते हुए काकने कहा —"तो उसका कौन रक्षक होगा?"

"अपने मालिकको क्यों नहीं सौंप जाते?"

"अपना जीवन सर्वस्व अपने मित्रको ही सौंपा जा सकता है, मालिकको नहीं।" काकने उत्तर दिया।

"ऐसे तो कितनोंका ही जीवन-सर्वस्व तुमने लुटाया है।" रेवापालने कहा। काकको लगा कि उसकी बातोंका असर तेजीसे रेवापालपर हो रहा है; परन्तु अभी उसके हृदयको पिघलानेके लिए तेज चिनगारीकी जरूरत थी। उसने क्षणभर विचार करके एक भयंकर ब्रह्मास्त्र छोड़ा।

"रेवाभाई, तुम्हारे जीवन-सर्वस्वको पाटन भेज दिया, क्या यह उसीका बदला है?"

रेवापाल बाल्यावस्थासे ही लीलादेवीके पैर पूजता था। वह स्वामि-भक्ति थी या और कुछ, यह कोई समझ न सका था। लीलादेवीके पाटन ब्याहे जानेसे रेवापालके हृदयमें स्वदेशकी आगके सिवा और भी कोई भावना थी या नहीं, कोई नहीं जानता था। परन्तु काककी नजरसे बाहर कोई बात न थी। बहुत वर्षोंके छिपे हुए व्रणमें उसने ऐसा चुटीला आघात किया कि वह ताजा हो गया।

"क्या?" चौंककर, चिल्लाकर रेवापालने कहा। उसके नेत्रोंसे आग निकलने लगी। आवेशमें तलवार खिंच गई, "तेरी मौत आई है?"

"तुम्हारे हाथों मौत हो, इससे अच्छा भला और क्या होगा?" शान्तिसे हँसकर, तबीयत सँभालकर काकने कहा, "परन्तु लीलादेवीको सोलंकीसे ब्याह दिया, उसका वैर ले रहे हो?"

"चुप रहो।" धीमे स्वरमें, किन्तु खुनससे रेवापालने कहा।

"क्या यह झूठ है? परन्तु मृणालकुमारी यहाँ रहतीं, तो भी तुम्हारा मनोरथ पूरा न होता।" काकने कृत्रिम तिरस्कारसे कहा। "चांडाल बम्हन,"

काँपती आवाजमें रेवापालने कहा—" तेरी मौत आ चुकी है। अब या तो तू नहीं या फिर मैं नहीं। निकाल अपनी तलवार, तुझे ऐसे न मारूँगा। चल अब तेरी पापी जीभको एक शब्द भी न बोलने दूँगा। निकाल।" रेवापालके मुखमें झाग आ गए।

शान्तिसे हँसकर काकने सिर हिलाकर इंकार किया।

" रेवाभाई, मैं तुम्हारे सामने शस्त्र न निकालूँगा।"

" कायर! डरपोंक!"

" मैं कायर डरपोंक नहीं हूँ, पर यदि हम लड़े तो तुम्हारी मृत्यु अवश्य होगी। मैं तुमसे दूना बली हूँ और मुझे अपना बाल-मित्र मारना नहीं है।"

रेवापालके क्रोधका पार न रहा। वह ज्ञान खो बैठा। काक ही उसका शत्रु था। उसकी आकांक्षाओंकी पूर्तिमें वही बाधक था। इस समय उसे मार डालनेमें ही उसे अपना और लाटका मोक्ष दिखाई दिया।

" पापी, तो तू भले ही इस प्रकार खड़ा रह, मैं अभी तेरे दो टुकड़े करता हूँ।" कहकर वह तलवार खेंचकर आगे बढ़ा। काक सख्तीसे, तिरस्कारसे देखता रहा।

" याचक ब्राह्मणकी हत्या करके रेवापाल अपनी टेक छोड़ दे, यही तो मुझे देखना है।" काकने गौरवसे कहा।

" रेवापालकी टेक?" इन शब्दोंके कानोंमें पड़ते ही रेवापाल ठिठककर खड़ा रह गया। उसकी खिंची हुई तलवार अधरमें रह गई।

" रेवापाल टेक कभी छोड़ ही नहीं सकता।" पासहीसे एक मीठी आवाज आई।

दोनों घूम पड़े। पास ही ब्रह्मानंद सरस्वती, तारोंके मंद प्रकाशमें तेजस्वी और गौरवशील दिखते खड़े थे। काकने साष्टांग प्रणाम किया। रेवापालका उठा हुआ हाथ नीचे गिर गया, उससे तलवार छूट पड़ी। वह भूमिपर बैठ गया और दोनों हाथ सिरपर रखकर सिसकने लगा।

१९—काककी राजनीति

" रेवापाल, यह क्या ? काक, दो पुराने मित्रोंको क्या यह शोभा देता है ?" ब्रह्मानंदने पूछा।

रेवापालने हाथोंमेंसे सिर ऊँचा न किया। काक मुस्कराता हुआ देखता रहा।

" गुरुदेव, हम पुराने मित्र हैं, तभी इस प्रकार लड़ते और फिर एकत्र बैठते हैं। मैं कल जानेवाला हूँ सोरठ, इसलिए भाई रेवापालको सौंपने आया था। "

" किसे ? "

" अपनी स्त्रीको। मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है कि उस बेचारीका क्या होगा ? " काकने कहा।

" बेटा, " ब्रह्मानंदने कहा, " तुम्हें क्या हो सकता है ? "

" गुरुदेव, रेवाभाईको तो मैं जरा चिढ़ा रहा था; पर आपसे तो सच सच कहता हूँ। रेवाभाई तो राह देखते बैठे हैं; और भृगुकच्छके नये दुर्गपालमें कौड़ीकी भी अक्ल नहीं है। इसलिए लाटमें बलवा होगा, यह निश्चित है। आप 'ना' न कहें; कारण मैं माननेवाला नहीं। मैं आपको और रेवाभाई दोनोंको जानता हूँ। "

" तो अपने साथ ले जाओ। "

" यह भी नहीं बन सकता। जयदेव महाराजके पास मेरा कट्टर बैरी बैठा हुआ है। और महाराज या महारानी मेरी स्त्रीको आश्रय देंगे नहीं। यदि कल ही मुझे कुछ हो गया, तो फिर उसकी क्या दशा होगी ? "

" काक, " ब्रह्मानंदने कहा, " तब तो तुम धोबीके कुत्ते हो रहे हो। न घरके न घाटके। "

" ऐसा ही है। "

" तब अपने घरके ही क्यों नहीं होते ? पाटनमें तुम्हारा कौन है ? अपने रेवाभाईके साथ क्यों नहीं रहते ? तुम दोनों बाल्यकालके मित्र हो, इस प्रकार परस्पर लड़-कट मरनेमें क्या लाभ ? "

" हाँ काक, " रेवापालने एकदम खड़े होकर कहा, " आओ, मेरे साथ। हम पाटनको भी सर करेंगे। "

" भैया, गुरुदेव, " काकने खिन्न स्वरमें कहा, " यह नेवता आजका नहीं

है। बहुतोंने बहुत वर्षोंसे दे रक्खा है। परन्तु मुझे आप लोगोंकी योजनामें श्रद्धा नहीं है। अकेला लाट पाटनके सामने क्या कर सकता है? एक दूसरी बात और है, जो मुझे स्पष्ट दिखाई देती है, पर आपको नहीं दिखती।"

"क्या?" ब्रह्मानंदने पूछा।

"गुरुदेव, अकेला लाट, सोरठ या गुजरात अब नहीं टिक सकते। मालवा और सपादलक्ष * भी अलग नहीं टिक सकते। ये सब मिलकर एकचक्रसे न चलेंगे, तो हम नष्ट-भ्रष्ट हो जायँगे। अनेक युगोंसे लाट और गुजरात लड़ रहे हैं—गुजरात और मालवा लड़ रहे हैं, गुजरात और सपादलक्ष लड़ रहे हैं। इस प्रकार लड़ाइयाँ होती रहेंगी, तो हम निर्वीर्य और निस्सहाय हो जायँगे। और गुरुदेव, आप तो लाटमें बैठे बैठे कुछ जानते ही नहीं।"

"क्या?"

जिन विधर्मी यवनोंने महाराज भीमदेवके समय सोमनाथको लूटा था, वे बराबर आगे बढ़ रहे हैं। प्रति वर्ष उनकी बातें कानोंसे आ आकर टकराती हैं। हम आपसमें लड़ेंगे, तो फिर हमारा क्या होगा? गुरुदेव, पाटनमें एक सनकी यति आया था—बहुत वर्षों पहले। लोग कहते हैं, वह कहा करता था कि सब धर्मोंको त्याग कर एक धर्म स्वीकार करो, नहीं तो यवन तुम्हारे प्राण ले लेंगे। मुझे भी ऐसा ही प्रतीत होता है कि यदि कोई चक्रवर्ती राजा भारतको अधीन नहीं करता है, तो हमारा सत्यानाश हो जायगा।"

"और अपने जयदेवको चक्रवर्ती बनानेके लिए तुम सोरठ जा रहे हो?" रेवापालने तिरस्कारसे कहा।

"यदि उन्होंने मेरी बात मानी होती, तो वे आज चक्रवर्ती बन गये होते। परन्तु हमारे उनके ग्रह नहीं मिलते।" काकने कहा।

"तो लाटको तुम स्वतंत्र न होने दोगे?" ब्रह्मानंदने पूछा।

"मेरा वश चला, तो नहीं।"

"तुमने क्यों छोड़ दिया?" रेवापाल बड़बड़ाया।

"रेवाभाई, अभीतक तुमने बात पूरी तरहसे समझी नहीं। तुम जैसा सोचते हो, मैं वैसा सबल नहीं हूँ। आज मैं न होऊँ, तो क्या लाट पराधीनतासे

* अजमेरके समीपका प्रदेश, सवालख।

मुक्त हो जायगा ? भूल है गुरुदेव, एकचक्र राज करनेके लिए तो पाटन ही बना है।"

"यह कैसे जाना ?" ब्रह्मानंदने पूछा।

"कारण कि विधाताने उसे एक बलियोंका भी बली दिया है।"

"कौन जयदेव ?" ब्रह्मानन्दने पूछा। "नहीं, जयदेव चाहे जैसी फुंकार मारे परन्तु वह छूछी है। गुरुदेव, उस फुंकारके पीछे, सेनाओंकी घोषणाओंके पीछे, पाटनके कुक्कुट-ध्वजके पीछे, मुंजाल मेहता हैं। मेरे जैसा भले ही मर जाय; पर जब तक वह हैं, तब तक पाटनका सितारा चढ़ता ही रहेगा।"

"तो अब तक उसने क्यों कुछ नहीं किया ?"

"जब कर्णदेव स्वर्गवासी हुए, तब तो पाटन भी सोलंकियोंका नहीं था। आज कावेरीसे श्रीमाल तक सोलंकियोंका डंका बज रहा है, वह क्या इन जयदेवके प्रतापसे ? मुंजालको जैसे चाहिए वैसे साधन नहीं मिलते। पहले मंडलेश्वरोंने झगड़ा किया, फिर पाटनके धनिक बिफर गये। श्रावक लोग तो अब भी सीधे नहीं चलते। नागर मंत्री घबराते हैं, और फिर राजा बेढंगा है। नहीं तो अब तक न जाने क्या हो जाता।"

"तब तुम क्यों जा रहे हो ?"

"मुंजाल मेहताका यह खेल मैं ठीक ठीक नहीं समझ पाता। परन्तु मेरा बश चला, और जीता रहा, तो जूनागढ़ सर होगा, और जैसा आज लाट है, वैसा ही सोरठ होगा।"

"शाबाश !" रेवापालने कठोर हास्यसे कहा,—"ऐसे गुमास्ते न हों, तो धनी गरजें कहाँसे ?"

"रेवाभाई अभी नरम नहीं हुए। गुरुदेव, कुछ ऐसा कीजिए कि मेरी स्त्रीकी रक्षा हो।"

"काक, तुम्हारे उद्देश्य देखते हुए, तो तुम्हें जीतेजी रेवा माताको सौंप देना चाहिए।"

"तो गुरुदेव, रेवा माता भी मुझे अभयदान देंगी।" काकने गर्वसे कहा। "जब पाटनका स्वामी रेवा माताकी शरण आयेगा, जब इस लाटकी जननी-मेंसे जगतकी जननी होगी, तब मेरा उद्देश्य पूरा होगा। उस समय आपके बिना कहे ही मैं अपनी इस सनातन अंबिकाकी गोदमें सो जाऊँगा।"

"जीते रहते तो लाटको चुल्लू-भर पानी नहीं दे रहे हो, और मरनेपर मसानमें गैया लानेका विचार कर रहे हो!"

"आप भले ही ऐसा मान लें; परन्तु गुरुदेव, रेवाभाईसे इतना-सा वरदान–दिलवाकर मुझे चिंतासे मुक्त कीजिए।"

"रेवापाल, काककी स्त्री तुम्हारी भाभी है। उसकी रक्षाका वचन दे दो।"

"मैं कैसे दूँ? इस पापीको तो मेरे हाथों मरना होगा।"

"उसके लिए मैं कहाँ 'ना' कहता हूँ; परन्तु पीछे मेरी स्त्री मुट्ठीभर अन्नके लिए भूखों न मर जाय, असहाय होकर न रोवे। मेरा पुत्र बिना शिर छत्रके कुम्हला न जाय—बस, इतना ही बचन दो।"

"दे दो रेवापाल, इसमें कुछ बुराई नहीं है।"

"अच्छी बात है। जाओ काक, अपने मनका तुमने कर लिया। तुम्हारी स्त्री और पुत्रको निराधार न रहने दूँगा। अब जाओ। तुमसे मैं थक गया। अब इस भवमें अपना मुँह न दिखाना।"

"भाई, यह कौन जानता है कि भाग्यमें अभी क्या क्या लिखा है?" कहकर काकने दोनोंको नमस्कार किया।

"काक, जहाँ भी जाओ, ऐसा करना कि तुम्हारे गुरुको शोभा दे।"

"गुरुदेव, निश्चिन्त रहिए। अब आज्ञा है?"

"अच्छा बेटा!"

काक फिरसे नमस्कार करके चला गया।

"रेवापाल, यह लड़का बड़ा जबर्दस्त है।" ब्रह्मानन्दने कहा।

"स्वार्थ-साधनामें एक ही है।" रेवापालने जवाब दिया।

---

२० मित्र-बधुएँ

काक शीघ्रतासे बन्दर पर पहुँचा और पता लगाया कि उसकी धारणाके अनुसार जहाजका प्रबंध हुआ या नहीं। वहाँसे लौटकर, और सब व्यवस्था करके, वह मंजरीके पास गया।

मंजरीने गृहस्थी स्वीकार कर ली थी, फिर भी वह शरीर और बुद्धिसे ज्योंकी त्यों मनोहर थी। पहले ही जैसी गर्विष्ठ थी और पहलेसे अधिक विदुषी थी।

जो जो लोग उसके समागममें आते, उनपर वह अपनी मोहिनी फैलाती थी। उसके पांडित्यका विद्वानोंमें सम्मान होता था। जो परदेशी विद्वान् भृगु-कच्छमें आते, वे उससे भेंट करते और प्रशंसासे आर्द्र हुए हृदयसे पराजय स्वीकार करके उसे सरस्वतीकी उपमा देकर 'अष्टक' लिखा करते। चारों ओरसे जो योद्धा आते, वे दुर्गपालका आतिथ्य स्वीकार करके, उसकी राजनीतिज्ञता भूलकर उसकी स्त्रीके पूजक हो जाते। भृगुकच्छके साधारण लोग, उससे परिचित होकर उसे देवी समझने लगते। वृद्ध लोग उसे रेवा माताका अवतार मानकर उसके दर्शनसे कृतार्थ होते। अधेड़ उम्रके लोग, अपनी गृहस्थीका जंजाल भूलनेके लिए, किसी न किसी प्रकार उससे वार्तालाप करते और केवल एक ही सुधा-पूरित दृष्टिपातके याचक युवक, उसकी एक अकल्पित दृष्टिके प्रोत्साहनसे, उसे रिझानेके लिए भव-सागर पार करने लग जाते थे।

पर जो स्त्री-पुरुष उसके समागममें न आते थे, वे इस गर्विता, स्वस्थ तथा सुरूपा सुन्दरीकी ख्याति सुनते और उसकी ओर अस्पष्ट तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते थे। मंजरी यह बात जानती थी। परन्तु वह उनकी ओर बहुत ही स्पष्ट तिरस्कारसे देखती थी।

अपने पतिपर और अपनी शक्तिपर उसे इतनी श्रद्धा थी कि जब काकने रेवापालके दिये हुए वचनकी उससे बात की, तब उसके नेत्रोंसे चिनगारियाँ निकल पड़ीं।

"तुम क्यों उसके पास भिक्षा माँगने गये?" महारथियोंके शिरोमणिको यह याचना करते लज्जा नहीं आई? इतने ज्यादा अधीर क्यों हो गये हो?"

काक अपनी लाड़ली सुन्दरीका क्रोध देखकर कुछ हँस दिया।

"मैं न होऊँ और कोई उपद्रव खड़ा हो जाय तो?"

"तो मुझे क्या होगा? किसकी मकदूर है कि मेरा कुछ कर सके?"

काक फिरसे हँसा, "हाँ, यह तो मुझे खबर है। भृगुकच्छका एक एक जवान तुम्हारे लिए मरनेको तैयार हो जायगा!"

"जी नहीं, तब लोग केवल तुमपर ही मोहित हो जाते होंगे!" मंजरीने हँसकर उत्तर दिया—"परन्तु रेवापालके मिजाजका तो कोई पार ही नहीं। उससे शरण माँगनेके पहले, तो मैं मर जाना पसंद करूँगी।"

"पगली, अभी तक तुम ज्योंकी त्यों हो। मेरे कानोंमें उपद्रवकी भनक

पड़ रही हैं और सारे लाटमें, वचनका पालन करनेवाला यदि कोई है तो एक रेवापाल। इस आँबड़को सौंपना किसी अर्थका नहीं। ”

“ आँबड़ ? जैसा बाप, वैसा बेटा। मुझे तो उसका नाम भी नहीं रुचता। परन्तु तुम व्यर्थ ही चिन्ता कर रहे हो। सोमेश्वर है, मणिभद्र है, फिर क्या चिन्ता है। तुम अपनी ही चिन्ता करो और जिस प्रकार पंद्रह वर्ष पहले पाटन जीतकर आये थे, उसी प्रकार इस बार भी जीत कर आओ। ”

“ और साथमें किसीको ले आऊँ ? ”

“ मंजरीसे अधिक अच्छी मिले, तो अवश्य लाओ। तुम्हें कसम है। ” मंजरीने हँसकर कहा। काकने तेजस्विनी, सुकुमारी और स्फटिकसे भी श्वेत मोहिनीकी गर्विष्ठ वाणी कानोंसे सुनी और वह सब कुछ भूल गया। क्षण भरके लिए वह उसके मुखकी अपूर्व रेखाओं तथा उसके हास्यकी विद्युत्प्रभाकी ओर हर्षसे देखता रहा और फिर उसने योग्य जवाब दिया—मंजरीको चूम लिया।

गर्विता मंजरी मान त्याग कर काककी भुजाओंमें छिप गई।

“ भटराज, ” उसने धीरेसे, अन्तरकी अभिलाषा प्रकट की “ जल्दी ही तो लौटोगे न ? ”

“ तुरन्त। घबराना मत। मुझे कुछ न होगा। ”

* * * *

दोनोंने आत्मश्रद्धाके आनन्दमें चिन्ताको भुला दिया।

* * * *

दूसरे दिन दुर्गपाल बिदा हो गया। आम्रभट, नगरसेठ, माधव और मणिभद्र बन्दरगाह तक पहुँचाने आये। एक मंदिरकी छत परसे मंजरी क्षितिजमें अन्तर्धान होते हुए जहाजपर खड़े काकको देखती रही। जब जहाज दृष्टिसे ओझल हो गया, तब उसने अंचलसे आँसू पोंछ लिये और वौसरीको छातीसे चिमटा लिया।

दो तीन सखियाँ साथ थीं। उन्होंने इस स्नेही हृदयकी व्यथाको चुपचाप देखा; पर मंजरीसे एक शब्द भी कहनेका किसीको साहस न हुआ।

उसने वौसरीको एक सखीको दे दिया और वह मंदिरमें दर्शन करनेको मुड़ी। एक विद्यार्थीने आकर दीपक जलाया। वृद्ध पुजारी लँगड़ाता आया और हँस

हँसकर खबर पूछने लगा । हास्यकी किरणें विकीर्ण करती हुई मंजरीने अपने तेजसे अँधेरे मंदिरको भी तेजोमय कर दिया ।

वह मंदिरसे बाहर निकली और देनांके साथ नगरसेठके घरकी कई स्त्रियाँ आ पहुँचीं । रेवापाल उसे तिरस्कारकी दृष्टिसे देखता है, यह मंजरीको विदित था । बेनांको भी उसका साहचर्य पसन्द न था । अतएव उसकी गर्दनकी मरोड़का गर्व बढ़ गया । उसकी हँसीमें जरा अभिमान आया ।

"मंजरी बहिन, कैसी हो ?" बेनांने कहा ।

"सब ठीक है । कहो, तुम तो प्रसन्न हो ?"

"देवर चले गये, क्या ?"

"हाँ ।"

"मंजरी बहिन, इधर आओ, एक बात कहूँ ?"

"क्या ?" मंजरी कुछ दूर बेनांके पास गई और तन कर खड़ी हो गई । उसके नेत्र अधिक बड़े हो गये । वह एक भी शब्द न बोली ।

"उन्होंने कहलाया है" पतिपरायणा बेनांने मंजरीका गर्व देख कर उत्पन्न हुए क्रोधको दबाकर कहा—"कि कोई काम पड़े, तो उनसे कहला देना ।"

"क्षणभरके लिए मंजरीके होंठ काँप गये । उसने जवाब दिया, "बेनां बहिन, उनसे कहना कि भटराजकी पत्नीको किसीके संरक्षणकी जरूरत नहीं ।"

मंजरीकी आँखोंमें तलवारकी धारके ऐसी तीक्ष्णता थी । उसकी संस्कारशील आवाजमें, अपमानके 'सा-री-ग-म' के सब सुर थे ।

बेनांको इन शब्दोंसे गहरा घाव लगा । पतिभक्तिसे सीखी हुई नम्रताको क्षणभरके लिए वह भूल गई और अपमानिता स्त्रीके हृदयमें बसनेवाला—विषैले सर्पके विषसे भी तीक्ष्ण विष उसके अन्तःकरणमें व्याप्त हो गया ।

"हाँ हाँ, मैं भूल गई । तुम्हें कहाँ किसीकी कमी है, कि उनके संरक्षणकी आवश्यकता पड़े !" कहकर बेनां वहाँसे चली गई । शब्द निर्दोष थे; पर उनमें भरे हुए विषको मंजरीने परख लिया । एक भयंकर दृष्टि बेनांकी ओर डालकर गौरवसे मस्तक ऊँचा किये, वह वहाँसे चली गई । उसकी आँखोंमें क्रोधके आँसू आ गये ।

उसकी सखियाँ कुछ न जान सकीं । वह मंदिरको छोड़कर बाहर निकली । सांबा बृहस्पतिके बाड़ेमें जानेसे पहले उसे थोड़ा-सा मुख्य राजपथ लाँघना पड़ता

था। वह ज्यों ही राजपथपर पहुँची कि दूसरी ओरसे कुछ गुरुओंके साथ एक युवक साधुको आते देखा। मंजरी अपनी सखियोंको साथ लिये पासकी गलीमें तेजीसे चली गई; परन्तु उसने उस साधुके तेजस्वी मुखको देखा और अपनी एक सखीसे कहा, "यह वही नया साधु है, जो अभी आया है? बड़ा विद्वान् कहा जाता है?"

"हाँ, मैंने भी यही सुना है। अच्छे अच्छे पंडित इसके आगे कुछ नहीं हैं।"

हेमचन्द्रसूरिकी चंचल दृष्टि मंजरीपर पड़ी थी। काकने पहले दिन परिचय दिया था, वह उन्हें स्मरण हो आया। बिल्कुल, बचपनमें खंभातमें जिस युवतीके समीप ठहरे थे, और जिसे काक उठा ले गया था उसकी विस्मृत तेजस्विता याद आ गई।

यह स्त्री दुर्गपालको किस प्रकार मिली, और उसके पांडित्यके विषयमें क्या क्या किंवदन्तियाँ प्रचलित थीं इसका तो उन्हें पता था। उन्होंने साथके श्रावकसे पूछा, "यह दुर्गपालकी भार्या बड़ी शास्त्रविशारदा समझी जाती है?"

"जी हाँ।" युवक साधुकी सर्वज्ञातापर मुग्ध होकर श्रावकने कहा।

२१—अजानीकी खोज

आँबड़, तेजपाल, माधव और सोमेश्वर काकको विदा करके बन्दरगाहसे लौटे। आँबड़में अब कुछ हिम्मत आई। काकसे वह डरता था, इसलिए उसकी हाजिरीमें उसे चैन नहीं थी। अब तो, जब तक जूनागढ़ सर न हो जाए और कोई दूसरा दंडनायक या दुर्गापाल न आए, तब तक वह भृगुकच्छका स्वतंत्र स्वामी था, इसलिए, उसके आनन्दका पार न था। सोमेश्वर काकके घर गया और बाकी भटराज माधवके यहाँ भोजनको जानेवाले थे, इसलिए वे अपनी अपनी पालकियोंकी ओर गये। आम्रभटकी पालकीके आसपास कुछ चाटुकार और कुछ नये दुर्गापालको देखनेके लिए उत्सुक लोग एकत्र हो गये थे। एक सैनिकने सबको धक्के देकर अलग हटाया और आम्रभट पालकीमें जा बैठा; परंतु पालकी उठे इसके पहलेही आसपासकी भीड़को बलपूर्वक चीरता हुआ एक

मोटा सा मनुष्य बढ़ आया और आम्रभटके पास आकर, नीचे झुकझुककर नमस्कार करने लगा।

आम्रभटने नेराको पहचाना और काककी चेतावनी याद आ गई। नेरा लहजेसे कह रहा था—" म—म—महाराज, घणी खमा। द—द—दुर्गपाल म—महाराजकी जय! ब...बापूको नमस्कार।" उसका गोरा वृक्षके तने जैसा शरीर, नीचे झुकते हुए कुछ ऐसा लगता था, जैसे कोई हाथीका बच्चा खुशीसे झूम रहा हो। आसपास खड़े हुए लोग हँसने लगे।

आम्रभटको तुरन्त वह सुन्दरी याद आ गई। हमीर मृत्युशय्यापर पड़ा था और वीरा इतना होशियार नहीं था, नेराके बिना उसे और कौन खोज निकालेगा?

आम्रभटने काककी चेतावनीकी परवा न की और वह नेराकी ओर देखकर हँसा।—" क्यों नेरा?"

" घ—घ—घणीं खमा बापू। आपकी कृपासे आनन्दमें हूँ।"

आम्रभटने देखा, नेरा कुछ कहना चाहता है। उस अपरिचिताका पता तो नहीं लगा लाया है? " चल, मेरे साथ।"

" ज...ज...जो आज्ञा महाराज! जीते रहें सौ बरस अन्नदाता।"

कहता हुआ वह पालकी थामे चलने लगा। पालकी ज्यों ही आगे बढ़ी कि नेराने आम्रभटके कानमें कहा " म—म—महाराज? प—प—पता लग गया।"

" ऐं!" आम्रभटने हर्षित होकर कहा। उसका हृदय उछलने लगा। नेराने आँखसे ही उसे सावधान रहनेको कहा। " ऊँची है?"

आम्रभटने सिर हिला दिया।

" सफेद दूधके ऐसा रंग है?"

आँबड़ने जोरसे माथा हिलाया।

" अ—अ—और जी लुभानेवाली जादूभरी आँखें—" नेरा अपनी वाक्-पटुता आजमाने लगा। आँबड़ कुछ कठोरतासे मौन रहा। अपनी प्रियतमाके विषयमें एक नौकरका इस प्रकार कहना उसे रुचा नहीं।

" ब—ब—बायें हाथमें रुद्राक्षका कंगन?" आँबड़ने आँखें मींच लीं और प्रियतमाकी प्रतिमाको मस्तिष्कमें लानेका प्रयत्न किया।

" क...क...क्यों, क्या बात है ? " नेराने चिंतासे पूछा ?

" कुछ नहीं । हाँ, और ? "

" भू...भू ..भूल गया ब—ब—बापू, एक एक रुद्राक्ष और एक एक स्फटिक । "

आँबड़ पालकीमें उछल पड़ा, " हाँ । "

" त—त—तब मिल गई । "

" कहाँ है ? "

" ब-ब-बापू, मैं ग...ग...गरीब मारा न जाऊँ । मेरे छ—छ—छ—स्त्रियाँ हैं । "

आँबड़ अधीर हो गया, " बोल हरामखोर ! "

" अन्नदाता, सरस्वती जैसी विद्वान् है । "

" क्या कहता है ? "

" ब-ब-बापू, मैं तो अभी भट भी नहीं हूँ । "

" तुझे भट बनना है ? "

" हाँ, ब-बापू ! आपकी सेवामें ही मरना चाहता हूँ । "

" अच्छा । "

" व—व—वचन ! अन्नदाता, म-म-मैं मारा न जाऊँ । "

" बोल कायर ! घबरा क्यों रहा है ? "

" ब-ब-बापू, मुझे भट बनाएँगे ? "

" हाँ—हाँ—हाँ । "

" त...त...तब कहूँ, प...प...परन्तु बापू, हाथपर नहीं चढ़ सकती । "

" इससे तुझे मतलब ? " आँबड़ने कहा ।

' त...तब आप जानें । म—महाराज, वह तो भटराजकी ब्याहता है । "

" ऐं ! किसकी, माधवकी ? "

" ज...ज...जी नहीं, उस द...द...दूसरेकी । "

आम्रभटके हृदयकी गति रुक गई, " जो चला गया, उसकी ? "

नेराने जोरसे माथा हिला दिया ।

आम्रभट चुप हो रहा । उसका मस्तिष्क स्तब्ध हो गया । उसके कानोंमें धमधम आवाज होने लगी ।

अन्नदाताओंके हृदय परखनेका नेराने खास तौरसे अभ्यास किया था। वह मन ही मन फूल उठा। अब उसके बिना इस नये दुर्गपालका निस्तार नहीं था।

"म...म...महाराज, ब-ब-बात बने ऐसी नहीं है" उसने धीरेसे कहा।

"नेरा, इसमें कुछ भूल होगी।" मणिभद्रका रूप रंग याद आनेसे आम्रभटको फिर संशय पैदा हुआ।

"त—तो-खुद अपनी आँखों देखकर निश्चय कर लीजिए।"

आम्रभटको कोई रास्ता न सूझा। नेराके पास तरकीब तैयार थी।

"म—म—महाराज, अब आप दुर्गपाल हो गए हैं। भ-भ-भटराजके घरकी खोज खबर लेनी चाहिए।"

आम्रभटने कृतज्ञतासे नेराकी ओर देखा—"तू मुझे शामको मिलना।"

"ज—ज—जो आज्ञा।"

आम्रभटके मस्तिष्कमें दो परिस्थितियाँ तैर गईं। एक तो अजानीके पता लगनेका हर्ष, और दूसरी, उसे सिंहके पंजेसे छुड़ानी होगी, इस विचारसे उत्पन्न हुआ डर। भृगुकच्छमें आनेसे पहले, उसने इस नये शहरके स्त्री-पुरुषोंके विषयमें कुछ पूछताछ नहीं की थी। जो कुछ बातें मालूम हुई थीं, वे केवल उसके पिताने कही थीं और मंजरीके विषयमें तो पिताकी जीभ खुल नहीं सकती थी। मणिभद्र भी ऐसी स्थितिमें नहीं था कि कुछ अधिक बातें बतला सके। इससे आँबड़ मेहता मंजरीको एक साधारण स्त्री समझ रहा था। इस समय नेराने ऐसी अकल्पित बात कही थी, कि उसे माननेको जी नहीं हुआ।

परन्तु इस अजानी जादूगरनीका वह ऐसा गुलाम बन गया था कि अनिश्चित दशासे छूटनेके लिए, वह छटपटाने लगा। ज्यों ही माधवका घर आया कि उसने तेजपाल और माधवसे कहा, "कुछ देर हो तो मुझे जरा-सा काम है।"

"क्या?"

आम्रभट क्षण-भरके लिए हिचका, "बात यह है कि काकभट चले गए हैं, इसलिए मुझे उनके घर जरा हो आना चाहिए। उनके घरके सब लोगोंको यह ठीक मालूम होगा।"

" भोजन करके चले जाइए।" माधवने कहा।

" फिर तो सेठजीके यहाँ हेमचन्द्रसूरि आनेवाले हैं और बिल्कुल शामको जाऊँ, तो ठीक न मालूम होगा।"

सेठ तेजपाल अपनी बाँकी आँखसे इस शिष्टाचारके हिमायतीकी ओर देखते रहे और आधे गंभीर और आधे मजाकके स्वरमे बोले, " बात सची है। काककी बहूको भी बिल्कुल निराधारता नहीं लगनी चाहिए। तुम जैसे भले आदमी रीति-भाँति नहीं पालेंगे, तो फिर कौन पालेगा? जाओ, जरूर जाओ।"

आम्रभट बूढ़ेकी ओर देखने लगा। क्या यह भेद भाँप गया? पर, नगरसेठके मुखपरसे कुछ परखा नहीं जा सकता था।

" तो ठीक है, मैं अभी आया।" कहकर आम्रभट फिर पालकीमें बैठ गया। " जल्दी चलो, साम्बा बृहस्पतिके बाड़ेमें। मेरे साथ किसीके आनेकी जरूरत नहीं।" उसने अपने रिसालेके घुड़सवारको हुक्म दिया।

२२—आम्रभट बड़ा भला मानस है

बढ़प्पन जानेका डर न होता, तो आम्रभट पालकी उठानेवालोंको दौड़ाता, यदि पागलोमें गिने जानेका खयाल न होता, तो वह खुद दौड़ता; और यदि उसके पर होते, तो वह उड़ जाता। माधवके घरसे सांबा बृहस्पतिके बाड़े तकका रास्ता उसे अनेक योजनका मालूम हुआ।

इतने अल्प समयमें ही मदांध प्रेमीका सम्मोह उसके मस्तिष्कमें व्याप्त हो गया था और इससे उसका ऐसा कुछ खयाल हो गया था कि काकका घर उसका अपना ही घर है। इससे आज सबेरे जिस घरके आगे सैनिकों और खुशामदी लोगोंकी धमा-चौकड़ी थी, वहाँ इस समय निर्जनता देखकर, उसे मनुष्य-जीवनकी व्यर्थतापर, दो चार बहुत ही उत्तम विचारोंका स्फुरण हो आया और इस निस्तेज सूने घरमें रहनेवाली सुन्दरीपर दया आ गई। उस बेचारीके हृदयमें क्या क्या हो रहा होगा?

जब वह घरके अगले चौकमें पहुँचा, तब कुछ लोग दालानमें इधर उधर चैनसे लम्बी ताने पड़े थे।

एक कोनेमें भगवे कपड़ेपर जरीसे काढ़ा हुआ कुक्कुट-ध्वज भूमिपर पड़ा हुआ था, दूसरी ओर नगाड़ोंवाली साँड़नी आलस्यसे जुगाली कर रही थी। आम्रभटको अपनी नई सत्ताका गर्व हुआ। कलसे, जहाँ वह होगा वहाँ यह ध्वजा फहरायेगी और नगाड़े गड़गड़ायेंगे।

वह चौकमें होकर, अन्दरके खंडके बंद दरवाजे तक आया और हिचककर खड़ा हो गया। उसका हृदय धड़क उठा। परदेशमें, पराये नगरमें, लोकप्रिय और प्रतापी वीरश्रेष्ठके घर, दिन दहाड़े, उसकी स्त्रीसे मिलनेके लिए—बिना-कारण—आकर वह खड़ा था। काककी स्त्रीको उसके आश्वासन या सहायता-की जरूरत? यह कारण कैसा हास्यास्पद है! माधव और तेजपालने अपने मनमें क्या सोचा होगा? उसे यहाँसे लौट जानेकी इच्छा हुई।

परन्तु लौटा कैसे जाय? पालकीवाले क्या सोचेंगे? माधव और तेजपाल क्या समझेंगे? गाँववाले क्या कहेंगे? इन्हीं सम–विषम विचारोंमें उलझा वह खड़ा रह गया।

अन्दर कोई बोल रहा था। उसकी आवाज एक जालीसे सुनाई पड़ रही थी। लकड़ीकी महीन छिद्रोंवाली जालीसे देखनेका प्रयत्न किया; परन्तु स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ा। चार-पाँच आदमी बैठे दिखाई दिये।

परन्तु आम्रभटके हृदयमें, वह आवाज एक अजब झंकार पैदा कर गई। यह तो अविमुक्तेश्वर मंदिरके आगे मिली हुई सुन्दरीका ही स्वर है। 'ओह भगवान्,' उसने धीरेसे निःश्वास छोड़ा।

उस संस्कार-शील स्वरमें कुछ अनोखा ही भाव और मिठास थी।

"पुराणी काका! वह गूढ़ककी प्रशंसा याद है? यह सोमेश्वर कमीसे सिर खा रहा है। इसे सुनाओगे? मैं भूल गई हूँ।"

वृद्ध हँसा। बोला, "क्या सिर खा रहा था?"

"यह कहता है कि आपके भतीजे लाटकी सत्ता भोगना छोड़कर पाटनकी सेवा करते हैं।" उस सुन्दरीकी आवाज़ आई।

"तब क्या महाराज जयदेव बैठे बैठे उन्हें एक घड़ीमें बुला लेते? वे क्या तीन कौड़ीके अनुचर हैं?" सोमेश्वरकी आवाज़ आई। "उनके हाथमें राज-दण्ड तो शोभा देता है, छड़ी नहीं।"

"तुम क्या जानो?" उस स्त्रीकी आवाज़ फिर आई, "ऐसा होता, तो भीष्म पितामह धृतराष्ट्रको सिंहासन क्यों सौंप देते? श्रीकृष्ण उग्रसेनको किस लिए यादवेश्वर होने देते?"

"तभी तो, धृतराष्ट्रने राज किया और अठारह अक्षौहिणियोंका नाश हो गया—और उग्रसेनके कारण यादवस्थली बनी।" सोमेश्वरकी आवाज़ सुन पड़ी।

वह स्त्री हँसी। कैसा मधुर हास्य था! आम्रभटके मुँहमें पानी आ गया।

"काकाजी, इस लड़केको आदि कवि वाल्मीकिकी वाणी तो सुनाओ।"

कुछ देर, पुराणी गला साफ करते रहे और फिर कर्कश स्वरमें बोले—

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले।
अयत्नादागतं राज्यं यतस्त्वं त्यक्तुमिच्छति ॥ *

"समझे?" उस स्त्रीकी आवाज़ आई। "भरतने बिना यत्नके आये हुए राज्यको त्याग दिया; इसलिए भूतलपर वह अद्वितीय हो गया। ऐसे ही लोग धन्य हैं, तेरे जैसे लोभी नहीं।" वह हँसी और उस हास्यके माधुर्यको फिर चखकर, आम्रभट अधीर हो गया।

"ठीक।" सोमेश्वरने हँसकर कहा, "हम लोभी ही सही। हमारे नसीबमें न भरत होना लिखा है, न रामचन्द्र होना।"

"यह कैसे जान लिया?" उस स्त्रीने पूछा।

आम्रभटका अधीर हृदय और न ठहर सका। उसने जाकर कुंडा खटखटा दिया। उसके मस्तिष्कमें उस सुन्दरीके शब्द रम रहे थे।

इतनेमें उसकी नजर उस साँढ़नी हाँकनेवालेपर पड़ी। वह साँढ़नीको उठानेका प्रयत्न कर रहा था। संभव है, वह डंका निशान यहाँसे ले जा रहा हो। जैसे आदि कविके मस्तिष्कमें काव्यका स्फुरण हुआ था, वैसे ही उनका श्लोक सुनकर आँबड़ मेहताको भी एक स्फूर्ति-हुई, यहाँ आनेका कारण मिल गया—"बिना यत्नके हाथमें आये हुए राज्यको जो जाने दे, वह अद्वितीय।"

---

* तुम्हें धन्य है, तुम्हारे समान जगतमें कोई नहीं देखा। क्योंकि बिना यत्नके आये हुए राज्यको भी तुम छोड़ना चाहते हो।—

रामायण।

"ओ हो, कौन, आँबड़ भाई ! आप कहाँसे ?" कहकर मणिभद्रने द्वार खोलकर स्वागत किया।

आम्रभट कल जिस खंडमें काकसे मिला था, वहीं बैठ गया। झूलेपर पुराणी काका और सोमेश्वर बैठे थे। अन्दरके खंडकी देहलीपर वह सुंदरी शाक सँवारती हुई बैठी थी।

आम्रभट अभिभूत होकर देखने लगा। वही मुख, वही नेत्र, वही रौब, वही आकृति। सारे खंडमें अखंड यौवनके अधिकारी देवताओंके नृत्यसे डोलते हुए स्वर्गका उल्लासजनक मादक वातावरण भरा हुआ था। दो बड़े बड़े तेजस्वी नेत्र उसपर स्थिर हो रहे थे। संगमर्मरके ऐसे श्वेत कपालपर, उलझनोंके बल पड़े हुए थे।

दो दिनसे जिसके लिए प्रतिक्षण प्राण तरस रहे थे, वह रमणी यहाँ थी। उसका रोम रोम खड़ा हो गया। वह स्वस्थता खो बैठा और आगे न जा सका। उसकी सारी सुध बुध, और ज्ञान चली गई।

सोमेश्वर, तरुण और सुन्दर लाटका योद्धा था। उसके विचारसे काक शिव था और मंजरी पार्वती। इन दोनोंके बीच उसका हृदय, उसकी भक्ति और उसकी सेवा विभाजित थी और शिवकी अनुपस्थितिमें अरक्षिता पार्वतीकी अवगणना करनेको आनेवालेकी ओर जिस दृष्टिसे नन्दी देखता, उसी दृष्टिसे वह आँबड़को देखने लगा। वह काकका शिष्य था, और गुरुके प्रसादसे, वह स्वस्थता और समय-सूचकता दोनों ही साध सकता था। उसने मंजरीके कपालपर पड़े हुए बल देखे, शान्त, सभ्य परन्तु सख्त। वह झूले परसे उठा, द्वारके समीप आया और आँबड़ तथा मंजरीके बीच खड़ा हो गया।

"कहिए भटजी, इस समय यहाँ कैसे ?"

डूबते हुए तारेको जैसे जोर आ जाता है उसी तरह आँबड़को साहस आ गया।

"सोमेश्वर, मुझे बहनजीसे बात करनी है।" वह देहलीके अन्दर आ गया। और ज्यों ज्यों बोलता गया, त्यों त्यों उसका साहस बढ़ता गया। "बहनजी, क्षमा कीजिए बाहर कोई था नहीं, इसलिए मैं पहिलेसे सूचित न करा सका।"

संस्कार-शीला स्त्रीकी स्वाभाविक सभ्यतासे मंजरी बोली, "आओ भाई, बठो, इस समय कैसे ?"

आम्रभट जाकर झूलेपर बैठ गया। उसे जो स्फुरणा हुई थी, उसका उसने उपयोग किया। " बहनजी, मैं एक याचना करनेके लिए आया हूँ। "

" क्या ? " गौरवसे ऊपर देखते हुए मंजरीने पूछा। आम्रभट उसके नेत्रोंकी दीप्तिको ध्यानसे देखने लगा।

" भटराज कुछ दिनोंमें वापस आयेंगे, और मैं तो केवल उनका दास हूँ। ये डंका-निशान सब यहीं रहने दिये जायँ, तो कैसा ? मैं नगरसेठके यहाँ भी अतिथिके ही रूपमें हूँ। आपकी आज्ञा होगी, तो मैं और माधव नित्य प्रातःकाल आ जाया करेंगे और बाहर बैठकर कुछ लोगोंसे मिल लिया करेंगे। यह समस्त शोभा काक भटराजके यहाँ ही शोभती है। मैं तो केवल उनका बच्चा हूँ। "

मंजरी और सोमेश्वरने एक दूसरेकी ओर देखा। दोनोंमेंसे किसीको भी इस सौजन्यका मतलब समझमें न आया। और सच्चा मतलब तो दोमेंसे एक भी नहीं समझ सका।

" भाई, " मंजरीने कहा, " जहाँ तुम रहते हो, वहीं यह सारी साहबी शोभा देगी। "

" मैं यहाँसे यह साहबी ले जाऊँगा, तो लोग कहेंगे कि इस परदेशीने आकर लाटका बढ़प्पन छीन लिया। मेरा काम लाटको रिझाना है—उसके दिलको दुखाना नहीं। " आम्रभटकी जिह्वाने अकल्पित खूबी दिखाई। ज्यों ज्यों वह बातें करता गया त्यों त्यों उसके स्वरमें और मुखपर, निष्कपटताकी सच्ची अनुभूतिके भाव प्रकट होते गये।

" बाहर जहाँ भटराज बैठते थे, वहाँ हम घड़ी-भर बैठेंगे, आपको तनिक भी असुविधा न होने देंगे। " आम्रभटने अपनी याचना आगे बढ़ाई।

" संभव है, बहनजीको भला न लगे। "

" नहीं, मुझे कुछ आपत्ति नहीं है। मैं तो उस अगले चौकको व्यवहारमें ही नहीं लाती। "

" तब मेरी प्रार्थना स्वीकार करके कृतार्थ कीजिए। "

" ठीक है, अभी जैसा चलता है वैसा चलने दीजिए। "

आम्रभटका हृदय मुस्कराया। उसने अपना लक्ष्य सिद्ध कर लिया।

" तब सोमेश्वर, निशानदारसे कह दो कि डंका-निशान यहीं रहने दे। मैं दूसरा हुक्म दे दूँगा। अच्छा बहनजी, अब मैं आज्ञा लूँगा। क्षमा कीजिए।"

" आँबड़ भाई, जरा पान तो खा लो।" मणिभद्रने कहा।

" जी। माधव प्रतीक्षा कर रहे होंगे। आज उनके यहाँ भोजन करना है।—" कहकर मंजरीकी ओर देखकर वह हँसा।

मंजरी नीची नजर किये शाक सँवार रही थी।

आम्रभटने पानका बीड़ा लेकर नमस्कार किया और बिदा ली।

" कहो या न कहो, पर आँबड़ भाई सवा लाख रुपयोंका आदमी है।" मणिभद्रने प्रमाण-पत्र दिया।

" लड़का अच्छा तो लगता है।" मंजरीने कहा।

" जो कहता है, वे सब बातें सत्य हों, तो बुरा नहीं है।" सोमेश्वरने कहा—" और एक बात बड़ी अच्छी होगी। महाराज (काक) हेमचन्द्र सूरिकी और इसकी साँठ-गाँठ समझते थे। यहाँ, बैठक होगी तो मेरी भी दृष्टि रहेगी।"

२३—हेमचन्द्र सूरि चकित होते हैं

आँबड़के मस्तिष्कमें, पहली बार जोते गये घोड़े जैसा तैश आया। उसे ऐसा लगा कि वह महान् पुरुष है, लाटका सत्ताधारी अधिकारी है; और ये सब लोग उसकी आज्ञाके अधीन हैं। मंजरीके समान मनोहर स्त्रीके लिए उत्पन्न हुए मोहका उत्साह उसकी रग-रगमें नाच रहा था; और आज प्रथम प्रयासमें विजय प्राप्त हुई थी; इसलिए उसका जी मौजमें था। अपने प्रतापका पूरा पूरा विश्वास उसे पहली ही बार हुआ।

वह एकदम कच्चा नहीं था। एकाएक तेजपाल और माधवके आगे नई योजना प्रकट कर देना, उसे समझदारीका काम नहीं मालूम हुआ। उसका आनन्द बाहर अवश्य दिखाई दिया परन्तु तेजपाल और माधवने उसे नई सत्ताके नशेका परिणाम समझा।

अन्तमें माधवके यहाँ भोजन समाप्त हुआ और तीनों जने सेठ तेजपालके यहाँ आ गये।

इन तीनोंके आनेसे कुछ ही देर पहले हेमचन्द्र सूरि आये थे। रेवापाल घर ही था। उसने युवक साधुका स्वागत सत्कार करके उन्हें चौरेपर बिठा दिया। साथ आये हुए लोग सूरिजीके आसपास बैठ गये।

रेवापाल इन नये साधुसे अगले दिन मिल आया था और वे भृगुकच्छ किस लिए आये हैं, इसका हेतु समझनेका प्रयत्न भी उसने किया था। परन्तु इस बालक साधुका व्यक्तित्व विचित्र था। वाक्य वे ऐसे बोलते कि उनका अभिप्राय स्पष्ट समझमें न आ सके, फिर भी यह धारणा हो जाय कि उन्होंने कोई अर्थ सूचित किया है। और उनकी बातचीतमें इस प्रकारकी अस्पष्ट विद्वत्ता थी कि श्रोताको उनके ज्ञानकी अगाधताका खयाल तुरन्त आ जाय। उनकी बात करनेकी शान्त और अपरोक्ष रीतिमें सत्ता और जोश दिखते नहीं थे, परन्तु वे थे अवश्य, ऐसा सुननेवालेको तुरन्त लगता।

" रेवापालजी, तुम्हारी ख्याति सुनकर मैं प्रसन्न हुआ हूँ। अपने कुल और अपने पिताकी कीर्तिको तुमने दिपाया है। असन्तोषकी बात केवल यही है कि जैसे रणवीर हो, वैसे धर्मवीर नहीं। "

" मुझसे जो कुछ होता है, करता हूँ। " रेवापालने कहा। उसे साधुओंसे बातचीत करनेमें अरुचि थी।

" परन्तु शिवमंदिरकी तरफ कुछ पक्षपात है, क्यों ? " हेमचन्द्र सूरिने पूछा। इसी उम्रसे उन्होंने जैन और शैव सम्प्रदायके बीच विरोध है, ऐसा आंदोलन धीरे धीरे और खूबीसे आरंभ कर दिया था। —

"तुम जैसे योद्धामें वैराग्यात्मक शुद्ध वृत्ति आनेमें देर लगेगी और राजसिक वृत्तिकी ओर झुकाव भी तुम्हारा रहेगा; परन्तु तुम तो लाटके श्रावकश्रेष्ठ हो। तुम्हें तो सबसे पहले अपने धर्मका पोषण करना चाहिए। "

रेवापाल इस सयाने युवकका उपदेश कुछ अधीरतासे सुनता रहा; परन्तु उसने जवाब नहीं दिया। सूरि आगे कहने लगे—" अच्छा, तब शस्त्रोंको किस लिए बाँधते हो ? तुम तो अहिंसा धर्म सरलतासे स्वीकार कर सकते हो ? "

" मुझे अहिंसा धर्म नहीं रुचता। " " अरेरे ! " साधुने मिठाससे हँस-कर कहा। " तुम एक बार खंभात आओ, तुम्हारा भी मत बदल जायगा। "

" मैंने लाटको नहीं छोड़नेका व्रत लिया है। "

" अच्छा ! किसलिए ? "

" लाटका सौभाग्य चला गया है। उसकी दुर्दशामें मैं उसे छोड़ जाऊँ ? यदि लाटकी विजयी सेना खंभात जाती तो मैं अवश्य आता।" निराशाभरे स्वरमें रेवापालने कहा।

" मैं नहीं समझ पाता कि महाराज जयदेवके राज्यमें तुम्हें ऐसी क्या कमी मालूम होती है।"

" आपकी समझमें न आए, यह स्वाभाविक है।" रेवापालने कुछ कठोरतासे कहा। दूसरे ही क्षण उसे ख़याल आ गया कि सूरि उससे बात नहीं कर रहे थे, उससे बात निकलवा रहे थे। उसने तुरन्त बात पलट दी, " आप कब तक रहेंगे ? लीजिए, वे पिताजी और आँबड़ मेहता आ गए।" कहकर वह चुप हो गया और एक ओर हटकर बैठ गया।

" ओ हो प्रभुजी, क्षमा करें। माधवभटने तो ऐसा जिमाया कि समयका ध्यान ही न रहा। आज इस रंकका घर पवित्र हो गया।" कहकर सेठ तेजपालने दंडवत प्रणाम किया। आँबड़ने भी प्रणाम किया। माधवने नमस्कार किया और सूरिजीने सबको 'धर्मलाभ' दिया। पाटनकी राज्यसत्ताके प्रतिनिधियोंकी इस त्रिपुटीकी ओर एक तिरस्कारभरी नजर डालकर रेवापाल वहाँसे चला गया।

" सूरिजी महाराज, हम लोग जरा ऊपर चलें। मुझे कुछ पूछना है।" वहाँ कुछ तिन्हाइत लोग बैठे थे उन्हें दूर करनेके विचारसे तेजपालने कहा।

" नहीं, आप क्यों कष्ट करें, हम अब जायँगे।" कहकर वे सब उठे और सूरिजीके पद स्पर्श करके चले गये।

" आँबड़ !" हेमचन्द्रने कहा, " अब बताओ क्या करना है ?"

" दूसरा क्या करना है ? जैसा चल रहा है, वैसा ही चलेगा।"

हेमचन्द्रने कुछ आश्चर्यसे आम्रभटकी ओर देखा। " अर्थात् ?"

" सेना तो उन भटराजके हाथमें है। और सब कारबार सेठजी और मैं दोनों करेंगे।"

" परन्तु तुम्हें किसलिए यहाँ भिजवाया है, यह मालूम है ?"

" हाँ।"

" तो अब लाटकी सत्ता काकके हाथसे अपने हाथमें ले लेनी चाहिए। देखो— "

" हेमचन्द्रने तेजपाल तथा माधवकी ओर घूमकर कहा—" यहाँ काककी सत्ता त्रिभुवनपालने ऐसी जमा दी है कि मालूम होता है लाट वास्तवमें उसीका है, महाराजका नहीं। इसीसे महाराजने काकको बुला लिया और आँबड़को नियत किया। अब आप तीनों ही पाटनकी सत्ताके प्रतिनिधि हैं। अब तुम तीनोंको ऐसी युक्ति रचनी चाहिए कि जिससे काककी एकहत्थी सत्ता फिर महाराजके हाथमें आ जाए। "

" परन्तु अब वह कहाँ है ? " माधवने कहा।

" हाँ, वह चला तो सचमुच गया। महाराजका तो खयाल था कि वह उनकी आज्ञाका अनादर करके यहाँसे टलेगा ही नहीं। "

" जी हाँ। इसीसे मुझे भी आज्ञापत्र मिला था कि काकको किसी भी तरह कलसे या बलसे—यहाँसे रवाना किया जाय। " माधवने कहा।

" आँबड़ मेहता मेरे नाम भी ऐसा ही आज्ञा-पत्र लाये थे। " तेजपालने कहा।

" काक तो चला गया, " आम्रभटने कहा " अब और क्या बाकी रह गया ? "

" उसकी अनुपस्थितिसे ही क्या होता है ? उसकी सत्ताको सचमुचमें तोड़नी चाहिए। नहीं तो कल वह फिर लौट आए तब ? " सूरिने पूछा। बूढ़े तेजपालकी तिरपट आँख हेमचन्द्रसे आम्रभट तथा आम्रभटसे हेमचन्द्रकी ओर घूमती रही। ऐसे समय एक अक्षर भी बोलकर अपना मत प्रकट कर दे, ऐसा कच्चा वाणिक वह था नहीं।

" परन्तु अब बाकी क्या रह गया ? " कुछ अधीरतासे आँबड़ने पूछा।

" प्रथम तो यह कि उसके आदमियोंको अलग करके, उनके हाथकी सत्ताको अपने हाथमें लेना चाहिए। "

" परन्तु अब किसके हाथमें सत्ता रह गई है ? "

" सोमेश्वर नये गढ़का किलेदार है। उसका मित्र भाभा सेठ कोठारी है और उसका घरका आदमी रुद्रमल्ल लाटकी सेनाका नायक है। ये तीनों जाने चाहिए। "

तेजपाल और माधव, इस बाल-सूरिकी जानकारी और शक्ति देखकर दंग हो गये। केवल आँबड़के मगजमें, सोमेश्वरके नामसे मंजरीका स्मरण आरम्भ

हो गया। उसे ऐसा लगता था कि मंजरी उसकी अपनी है। उसका मान-मरातब बढ़ानेका उसने निश्चय किया था। और ये तो उसके आदमियोंको अलग करने, उसकी साहबी छीन लेने और उसके पतिकी प्रतिष्ठा भंग करनेकी बातें हो रही हैं। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे ये बातें उसकी अपनी ही साहबी छीन लेनेकी हो रही हैं। उसे ऐसा लगने लगा जैसे कोई उसका अपमान कर रहा हो।

"और डंका निशान भी" शान्त सूरि आगे कहने लगे "जो काकके यहाँ हैं, उन्हें मँगवा लो।"

आँबड़के माथेपर चोट पड़ी। डंका निशान तो काकके यहाँ ही रहने देनेका वह मंजरीको बचन दे आया था। क्या उन्हें वहाँसे मँगा लिया जाय? क्या मंजरीके घरको निस्तेज बना दिया जाय? क्या लाटकी सम्राज्ञी जैसी सुन्दरी एक सामान्य घरकी गृहिणी बना दी जाय? आँबड़के मस्तिष्कमें उसके घरके कमरेका मादक वातावरण छा गया। उस वातावरणमेंसे दो बड़े बड़े तेजस्वी जादू-भरे नेत्र उसकी ओर निराधारीमें उलहना देते हुए देख रहे थे। ये नेत्र स्पष्ट रीतिसे पूछ रहे थे, 'आँबड़ मेहता, तुम वचन देकर भी मेरे घरको निस्तेज करोगे? लाटमें मिले हुए मेरे पदको छीन लोगे?' अधीर प्रणयीका उत्साही हृदय इस प्रार्थनाको अस्वीकार न कर सका। जब तक वह है, तब तक किसकी मकदूर है कि उसकी—हाँ उसकी मंजरीकी साहबीकी ओर अँगुली भी दिखा सके?

"आँबड़, किस विचारमें पड़े हो?" सूरिका शान्त स्वर सुनाई पड़ा।

आम्रभट कल्पना-जगतसे फिर लौट आया। परन्तु उस जगतमें किये हुए निश्चयको साथ लाया।

"आपने अन्तमें क्या कहा था?" कुछ जरा तैशमें उसने पूछा।

"काकके यहाँसे डंका-निशान मँगा लो।" हेमचन्द्रके स्वरमें कुछ सख्ती थी।

"किसलिए?" आँबड़ने क्रोधसे काँपते हुए स्वरमें पूछा।

"इसलिए कि महाराजकी आज्ञा है।"

"महाराजने मुझे ऐसी आज्ञा नहीं दी।" तेजपाल और माधव दोनों देखते रहे। वे दोनों, आँबड़ और हेमचन्द्रको तो एक ही समझ रहे थे।

"अर्थात्? तुम डंका-निशान काकके यहाँ ही रखोगे?"

" जी हाँ।"

" तुम क्या कह रहे हो? तब तो लोग समझेंगे कि काक ही सत्ताधीश है।"

" इससे हानि क्या है?" आँबड़ने पूछा। " महाराजको भ्रम हो गया है कि काक नमकहराम है। उसीने तो महाराजको लाट दिलाया, और अब पाटन कृतघ्न होकर, बिना अपराध उसकी सत्ता छीन ले?"

" परन्तु उदा मेहताने तो यही करनेके लिए कहा है।" असन्तुष्ट स्वरमें हेमचन्द्रने कहा।

" भृगुकच्छका दुर्गपाल मैं हूँ, उदा मेहता नहीं।" आँबड़ने कहा।

हेमचन्द्र सूरिका मुख फीका पड़ गया। तेजपाल काकका शत्रु नहीं था। आम्रभटका यह मत देखकर उसने भी कहा, " आँबड़ मेहताकी बात तो सच है। नहीं तो लाटकी जनता तूफान मचा देगी।"

" आँबड़," सूरि कहने लगे। परन्तु दूसरा विचार हो आनेसे, उन्होंने नगरसेठ और माधवसे कहा, " तुम मुझे अकेलेमें कुछ बातें करने दोगे? आँबड़को भान नहीं है कि वह क्या कर रहा है।"

उस ओर आँबड़का ध्यान नहीं था। वह तो कल्पना-जगत्‌में एक सुन्दरीके नेत्र-युगलसे झरती हुई कृतज्ञताको स्वीकार कर रहा था। तेजपाल और माधव दोनों उठकर जरा दूर हो गये।

" पागल, तू क्या बक रहा है, कुछ भान है?"

" सूरिजी, दुर्गपाल मैं हूँ, आप नहीं। आपको मेरी बातोंके बीचमें न आना चाहिए।"

" परन्तु इसीके लिए तो मैं खंभातसे यहाँ आया हूँ।"

" मैंने तो बुलाया नहीं।" आँबड़ने जवाब दिया। " पिताजीने भेजा है; तो पूछ आइए उनसे।"

" तू राजद्रोह कर रहा है, समझा?" सूरिने कठोरतासे कहा।

" मैं तो एक पुराने राजसेवककी प्रतिष्ठा भंग नहीं होने दे रहा हूँ।"

" तब उसके आदमियोंको भी रहने देगा?"

" जैसा चलता आया है वैसा ही चलाऊँगा।" आँबड़ने आश्वासन दिया।

" तो अब मैं यहाँसे चला जाऊँगा।" सूरिने अन्तिम धमकी दी।

" जब आपकी इच्छा हो तब जा सकते हैं।"

" अच्छी बात है । " हेमचन्द्र सूरिने कुछ तिरस्कारसे कहा और तुरन्त उनका सुन्दर स्वर पलट गया। जैसे कुछ हुआ ही न हो, इस तरह शान्त भावसे उन्होंने उच्च स्वरमें कहा, " भाई, तुम जानो। जो तुम्हारे ध्यानमें आए, करो। मुझे तो जो ठीक लगा, वह कह दिया। "

नगरसेठ और माधव यह सुनकर समीप आगए। आँबड़को लगा, जैसे उसने बहुत बड़ी विजय प्राप्त कर ली। उसने कहा, " महाराज, कल सबेरे हम मिलेंगे, पर सांबा बृहस्पतिके बाड़ेमें ही। "

सूरि हँसे। " हाँ ठीक है, लोगोंको वहीं जानेकी टेव है तो वहीं मिलना। अच्छा अब मैं जाऊगा। सेठ तेजपालजी, अब मैं थोड़े दिनोंमें यहाँसे विहार करूँगा। ".

" यह क्यों ? एक दम ? "

" हाँ, जरा इधर तो आओ। " उठकर सूरिने तेजपालको बुलाया। तेजपाल गये।

" ये जती बीचमें माथा न मारा करें, तो बहुत अच्छा हो। " नागर माधवके मुँहसे उद्गार निकला।

" और क्या ! " आम्रभटने कहा। उसे अपनी कल्पनामें दो ललित मनोहर होठ उसे शाबाशी देते हुए दिखाई दिये।

" सबेरेके बाद आँबड़ किसीसे मिला था ? " सूरिने पूछा।

" यह काककी पत्नी मंजरीसे मिल आया है। " सेठने जवाब दिया। कोई कुछ बोला नहीं। सूरिने मनमें निश्चय किया कि उस स्त्रीसे मिलना चाहिए।

२४—भृगुकच्छका नया गढ़

आँबड़ मेहताके सुकुमार मुखपर संतोष छा रहा था। आखिर भृगुकच्छ आन कोई बुरा न हुआ। वह सचमुच ही दुर्गपाल बन गया था, और मंजरीके समाना अपूर्व सुन्दरी भी मिल गई थी। वह अकेला पड़ा पड़ा हँसा। विधिको करना होता है तो क्या नहीं हो जाता !

ओह, क्या उसका रूप था ! कैसा मोहक स्वर था ! कैसी उसके नेत्रोंकी दीप्ति थी ! और उसके साथ उसने बातचीत की थी, वह बैठा था। वह कुछ हँसी भी थी और कल प्रातः काल उसके घर जाकर वह अपनी नई सत्ताकी शान भी दिखा सकेगा।

ऐसा लगता था, जैसे स्वप्नका-सा मनोहर वातावरण चारों ओर छा रहा हो। और यह भी जान पड़ता था जैसे उसकी रग रगमें जादूकी झंकार हो रही हो। सूर्य और आकाशके रंगमें, सृष्टिकी रचनामें, कुछ अवर्णनीय आकर्षण दिखलाई पड़ रहा था। पक्के विलासीकी रसिकतासे आँखें मीचकर वह इन सबका अनुभव करने लगा। एकदम, अचानक, उसकी आँखोंके आगे मंजरीका ऊँचा रूपवान् शरीर आ खड़ा हुआ। उसके अंग अंगसे उभरते हुए मोहने उसे अभिभूत कर दिया। जैसे अचेत अवस्थामें हो इस तरह वह केवल उसके विकसित नेत्रोंकी ओर ही देखता रहा।

मंजरी, उसकी कल्पना-दृष्टिमें वैसी ही दिखाई पड़ी जैसी प्रातःकाल दिखी थी—गर्विता, प्रतापी और विदुषी। वह उसके जैसे व्यक्तिसे लजाई नहीं थी, हिचकिचाई नहीं थी, अभिभूत नहीं हुई थी। उसकी समझमें प्रशंसा करनेवाले अनेक युवकोंमेंसे वह भी एक था।

उसके मोहमत्त हृदयपर पानी पड़ गया। उदा मेहताके पुत्रकी पदवीका उस सुंदरीके नजरमें कोई मूल्य नहीं, श्रावक-श्रेष्ठके रुतबेका उसके निकट कोई सम्मान नहीं। खम्भातकी युवतियोंके हृदय-हारकी उसे परवा नहीं। पाटनकी सेनाके महारथी उसकी सेवा करते और भृगुकच्छके विद्वच्छिरोमणि उसकी पूजा करते। उसके और इसके बीच अभेद्य अन्तरपट था और इस पारदर्शक पटमेंसे जैसे एक मूर्ख बच्चा उस ओर रखी हुई खाँड़की एक अद्भुत मूर्ति देखकर मुखमें पानी ले आता है, उसी प्रकार वह कर रहा था।

उसका आत्म-संतोष चला गया, हर्ष नष्ट हो गया, आशाके महल ढह गये। अभी तक उसकी एक मधुर दृष्टिसे अनेक युवतियाँ प्राण देनेको तैयार हो जातीं, पर यह युवती तो ऐसी है कि वह उसके पैरोंके आगे जा पड़े, तो भी आँखोंकी पलक न हिलाए। आँबड़ पसीने पसीने हो गया।

कुछ देरमें उसका अभिमान सतेज हुआ। प्रणयीकी कला प्रतापीको नहीं

आती, इस सूत्रका उसे ध्यान हुआ और रसीली सुन्दरियाँ महत्ताके पीछे ही नहीं मर मिटतीं, इस सिद्धान्तने उसे आश्वासन दिया। किसीके मनको रिझानेकी कठिन कला तो उसके जैसे किसी अद्भुत कलाकारके ही हाथ चढ़ी होती है। उसे ऐसा लगा कि इस समय उसकी सच्ची परीक्षा हुए बिना न रहेगी।

इस प्रकारके तर्क-वितर्कोंमें, आम्रभटने सारी दोपहरी बिता दी। वह सोच-रहा था कि मंजरीके दर्शन फिरसे किस प्रकार किए जायँ। इतनेमें एक पार्श्वकने खबर दी कि सोमेश्वर भट मिलने आये हैं। आलसी आम्रभट तन कर बैठ गया। उसकी अपनी मंजरीका सेवक! विधि कैसा उसके अनुकूल है! क्या मंजरीने नये दुर्गपालको बुलानेके लिए उसे भेजा है? उसने सोमेश्वर भटके द्वारा कोई सन्देश भेजा है?

सोमेश्वर आया और नमस्कार करके विनयपूर्वक बैठ गया। आम्रभटने नमस्कार स्वीकार किया। कुछ देर दोनों एक दूसरेकी ओर देखते रहे।

"कहिए भटजी!" आम्रभटने पूछा।

"महाराज," विनयपूर्वक शान्त भावसे सोमेश्वरने कहा, "आपको नया दुर्ग देखनेके लिए ले जानेको आया हूँ।"

"अच्छा।" हँसकर आम्रभटने कहा "दुर्गकी तालियाँ तुम्हारे पास हैं, यह मैंने सुना है। चलो।" कहकर आम्रभट कपड़े पहिनकर तैयार हो गया। मंजरीकी सेवामें रहनेवाले सोमेश्वरके साथ घूमना भी आम्रभटको सुखदायक लगा।

"सोमेश्वरजी।" जब वे पालकीमें बैठकर दुर्गकी ओर जाने लगे, तब आम्रभटने बात उठाई, "तुम भटराज काकके कोई संबंधी हो?"

"बहुत दूरका। वे मेरे गुरु हैं।"

"बड़े जबर्दस्त आदमी है?" काकसे मंजरीकी बातपर किस प्रकार पहुँचा जाय, यह विचार करते हुए आम्रभटने पूछा।

"आप सब केवल उनके साधारण व्यवहारोंसेही परिचित हैं; इसलिए उनकी सच्ची महत्ताका खयाल कदापि नहीं कर सकते।"

"नहीं नहीं, ऐसी क्या बात है?"

"मेहताजी, उनका पूरा मूल्य आँकनेके लिए, तो मेरे समान आपको उनकी चरण-सेवा करनी चाहिए। उनकी युद्धकला और बुद्धि, उनके

आचार और विचारका तभी खयाल आ सकता है। यह तो कलियुग है, और भृगुकच्छ पराधीन है, इसलिए काकभट दुर्गपालके रूपमें पड़े पड़े सड़ रहे हैं।"

"तो पाटन क्यों नहीं आते ?"

सोमेश्वरने एक तीक्ष्ण दृष्टि आँबड़पर डालकर कहा "आपके राजा या मंत्रियोंमें साहस ही कहाँ है कि उन्हें वहाँ आने दें। उन बेचारोंको भागनेके लिए रास्ता न मिले।"

आम्रभट खिलखिलाकर हँस पड़ा और इस लड़केके अभिमान और अज्ञानको देखकर सोमेश्वर भी कुछ दयनीय भावसे हँसा।

"सोमेश्वर, तुमने पाटन देखा है ?"

"नहीं।"

"महाराजको, मेरे पिताजीको और मुंजाल मेहताको देखा है ?"

"नहीं, देखा तो नहीं, परन्तु उनके विषयमें सुना बहुत है।"

"तो उन सबसे तुम्हारा गुरु जबर्दस्त है ?"

"मैं तो इतना जानता हूँ कि अनेक वर्ष बीत गए, पर आप लोगोंसे न जूनागढ़ सर किया जाता है, न लिया जाता है। और जिसने लाटको सर किया, अपने अकेले हाथों नवघन राको पकड़ा, और शेषनागके पाससे जिसने मुंजाल मेहताके पुत्रको ला दिया, उस महारथीको पाटनमें रखनेका आपके महाराजा और मंत्रियोंमें साहस नहीं है और उसका अनादर करनेकी प्रामाणिकता नहीं है।"

"तुम भी अपने गुरुके ही ढंगसे बातें करते हो," आम्रभटने हँसकर कहा, "या गुरुपत्निसे यह सब सीख आये हो ?"

पलभरके लिए सोमेश्वरके नेत्रोंमें शंका झलक आई। "आपने किसी दिन माताजीकी विद्वत्ता देखी है ?" सोमेश्वरने कुछ तिरस्कारसे कहा।

"नहीं, सुनी तो बहुत है।"

"जाकर किसी पंडितसे पूछ आइए।"

आम्रभटके मुँहमें पानी आ गया, "तुम तो गुरु और गुरु-पत्नी दोनोंके ही बड़े भक्त हो।"

सोमेश्वरका आन्तरिक पूज्यभाव प्रकट हो गया, "भटजी, उन दोनोंकी चरण-सेवा करनेके सिवाय मेरी और कोई इच्छा नहीं है।"

"तो इन दोनोंमें जबर्दस्त कौन ?" कुछ हँसकर आँबड़ने पूछा।

"इस प्रश्नका उत्तर आज बारह वर्षोंमें भी मुझे नहीं सूझा। आम्रभटजी, भटराज मुर्दोंसे महारथी बनाते हैं और माताजी पत्थरोंको पंडित बनाती हैं। तब इन दोमें बड़ा कौन, यह कैसे समझा जा सकता है ?"

आम्रभटको हेमचन्द्र सूरि याद आ गये। उन्होंने उसपर अपनी सत्ता जमानेका प्रयत्न किया था, यह उसे अखर रहा था; और हो सके, तो जरा उनकी हँसी उड़ानेका उदात्त विचार उसके मस्तिष्कमें आया।

"तुम्हारी गुरानी पंडितोंके साथ विवाद करती हैं ?"

"हाँ, यदि उन्हें रुचे तो।"

"हमारे खंभातके एक शास्त्र-विशारद यहाँ आये हैं, वे तुम्हारी गुरानीसे मिलनेको कह रहे थे।" आम्रभट्टने गप्प लगाई।

"वे इस प्रकार चाहे जिससे नहीं मिलतीं।" सोमेश्वरने उत्तर दिया।

"क्या हम यहीं उतरेंगे ?" आम्रभट्टने दुर्ग और पुराने नगरके बीचवाली खाईके समीप पालकी पहुँचनेपर कहा।

"हाँ।"

इतनेमें नये और पुराने नगरके बीचकी खाईके आगेवाले घाटपर वे आ पहुँचे। पालकी ठहर गई और आस पास खड़े हुए लोगोंका नमस्कार स्वीकार करते हुए वे दोनों घाटपर प्रतीक्षा करती हुई नौकामें जा बैठे। कुछ देरमें वे नये दुर्गकी ओर उतर पड़े और उसमें जानेके लिए टेकरीपर चढ़ने लगे।

सोमेश्वर परिचित था, इसलिए शीघ्रतासे चढ़ने लगा। पीछे पीछे हाँफता हुआ आम्रभट चला।

"सोमेश्वर, यह नया नगर तो अभी बसा है ?"

"जी हाँ। पहले छोटा दुर्ग था, उसे तुड़वाकर भटजीने नया बनवाया है।"

"बड़ा मजबूत दिखलाई पड़ता है।"

"महाराज, यह दुर्ग चालीस वर्षतक घिरा रहे तो भी टिका रहेगा।"

"एं ?" आम्रभटने चकित होकर पूछा।

"हाँ !" कुछ देर दोनों चढ़ते रहे। अन्तमें वे द्वारके समीप जा पहुँचे।

"यह दरवाजा इस समय बन्द क्यों है ? सवेरे तो खुला था।"

" जब भटराज गये, तब कह गए हैं कि केवल उस ओरका ही द्वार खोला जाया करे।"

" उन्हें भृगुकच्छकी बड़ी चिन्ता रहती दिखती है ?" आम्रभटने पूछा।

" उन्हें न होगी, तो और किसे होगी " तिरस्कारपूर्ण दृष्टिसे सोमेश्वरने पूछा।

" ठीक है। परन्तु दुर्गपाल तो अब मैं हूँ। " आम्रभटने हँसकर कहा।

" आप अभी नये हैं न। " सोमेश्वरने शान्त भावसे कहा।

सोमेश्वरने दरवाजेकी खिड़की खोली कि अन्दरसे एक सैनिक दौड़ता हुआ आया।

" देवा, मैं हूँ सोमेश्वर और ये हैं नये दुर्गपाल। पधारिए आम्रभटजी!"

वे अन्दर घुसे और सोमेश्वर आम्रभटको कोटपर होकर ले गया।

आँबड़ भृगुकच्छके इस नये कोटको देखकर चकित हो गया। नया भृगुकच्छ नदीके तटकी विशाल तथा ऊँची टेकरीपर बसाया गया था और टेकरीपरसे बाँधा हुआ कोट नदीकी सपाटीसे इतना ऊँचा था कि यह खयाल ही नहीं हो सकता था कि इस दुर्गको कभी कोई ले सकता है।

" यह दुर्ग इतना बड़ा क्यों बनवाया गया ?"

" कारण कि इसे रेवा मैयाने ही चारों ओरसे घेरकर बना दिया है।" सोमेश्वरने कहा, " आवश्यकता पड़ जाय, तो आधा नगर अन्दर रखा जा सकता है। आज इसके अन्दर तीन हजार सैनिक बड़ी सुविधासे रह सकते हैं।"

" परन्तु कोई घेरा डाल दे, तो इतने बड़े दुर्गमें लोग भूखों मर जायँ।"

" नहीं, यह इस प्रकार बनाया गया है कि तीन ओरसे तो इसे किसी प्रकारका भय ही नहीं है। आवश्यकता पड़नेपर पाँच सात आदमी ही महीनों इसकी रक्षा कर सकते हैं।"

" और वह क्या है ?" एक घरकी ओर संकेत करके आम्रभटने पूछा।

" वह कोठार है।"

" इतना बड़ा ?"

" हाँ, और उसे सदा भरा हुआ रखते हैं।"

" इस समय कौन घेरा डालनेवाला है !"

" सावधान मनुष्य सदा सुखी रहता है। " कहकर दोनों जने चारों ओर घूमनेको चल पड़े।

२५—देवा नायक

सोमेश्वर और आम्रभट जब दुर्गको देख रहे थे, तब देवा नायक चुपचाप पीछे पीछे घूम रहा था। उसकी सफेद दाढ़ी वायुमें लहरा रही थी। उसके नेत्र सम्मानसे नत हो रहे थे, फिर भी उसके वृद्ध, पर सशक्त हाथने भालेको अस्वाभाविक दृढ़तासे पकड़ रखा था। उसके आकुंचित कपालपर इस समय बहुत सिकुड़नें पड़ी हुई थीं। थोड़ी थोड़ी देरमें वह कनाखियोंसे आम्रभटकी ओर देख लेता था।

वह ध्रुवसेनका पुराना सैनिक था, और काकके अनुचरके रूपमें पाटनकी सेनामें आया था। ध्रुवसेन हारे, लाटका स्वातन्त्र गया, पाटनका राज्य-चक्र आया, इसकी उसे कोई परवा नहीं थी। प्रति दिन शामको वह अपनी एकान्त झोपड़ीमेंसे निकलता, काकके चबूतरेपर जाकर बैठता और काक जब लौटकर घर आता, तब पूछता, "भैया, कैसे हो?" काक हँसकर कहता, "देवा, प्रसन्न तो है?" वह उत्तर देता, "हाँ भैया!" और चुपचाप लौट जाता। सारी सृष्टिमें, बस इतनी ही चीजमें उसे रस था।

उसके अकेले जीवको संसारके साथ जोड़नेवाला, केवल काक ही एक सूत्र था और उस सूत्रको पकड़कर वह भवसागर तरनेको तैयार था। उसके एक-लक्ष्यी मस्तिष्कमें, काकके लिए ऐसा स्थान था, कि काककी परिस्थितिमें कोई भी परिवर्तन होना उसे नहीं रुचता था। काक दुर्गपाल हो गया, ब्याहा गया, भटराज बना, यह उसे तनिक भी भला न लगा। इस प्रत्येक फेरफारके समय काक जैसे उसका न रहकर, पराया होता जा रहा है, ऐसा उसे लगा था।

काकने उसे दुर्गके कोठारका नायक बनाया, यह भी उसे भला न लगा। तथापि वह अपने भाईकी आज्ञाका अनादर न कर सका।

कल वह नियमानुसार साँबा बृहस्पतिके बाड़ेमें गया, और काकसे मिला।

"देवा, मैं वंथली जाता हूँ।"

देवाने ऊपर देखा। उसके नेत्रोंमें अधीरता थी।

"भैया, मैं भी चलूँ?"

काक स्नेहसे हँसा, "अरे देवा, फिर यहाँ कौन रहेगा ? मंजरीको देखते रहना।"

"जी"। देवाने कहा और वह बैठ गया। उसके वृद्ध हृदयमें न समझी जाय, ऐसी वेदना हुई। काक थोड़ी देर उसकी ओर देखता रहा, और उसके हृदयकी व्यथाको समझ गया।

"देवा, मैं जल्दी ही आऊँगा। दुर्गको सँभालना।"

"जी।" कहकर देवा देखता रहा। उसकी आँखें भर आईं। उसे ऐसा लगा, जैसे माताके अकेले बालकको कोई छीने लिये जा रहा है।

"भैया, मैं जाता हूँ।"

"अच्छा। देखते रहना।"

देवा चुपचाप बैठा रहा और घरमें जाते हुए काककी ओर देखता रहा। कुछ देरमें उसने निःश्वास छोड़ा और वह माथा हिलाता हुआ फिर दुर्गमें लौट आया। तभीसे उसका मस्तक झुका और बोलती बन्द हो गई। उसे कुछ ऐसा लगा कि उसका 'भाई' अब उसे फिर मिलनेवाला नहीं।

इस समय इस नये दुर्गपालको देखकर उसकी आँखमें विष छा गया। उसके 'भाई' के सिवाय कोई और दुर्गपाल हो, यह वह न देख सका।

वह चुपचाप चलता रहा। कोठारके आगे आकर आम्रभट और सोमेश्वर नदीकी ओर देखने लगे। देवा धीरेसे सोमेश्वरके पास गया।

"सोमेश्वर," देवाने पूछा, "तुम्हें देर लगेगी ?"

सोमेश्वर हँसते हुए लौटा, काकके सभी आदमियोंको देवाके प्रति प्रेम था।

"क्यों, देवा आज 'भाई' के घर जाना है ?"

"हाँ, वक्त तो हो गया।"

"परन्तु आज तेरे 'भाई' तो हैं नहीं।"

"इससे क्या हुआ ?"

"तो जाओ।" सोमेश्वरने कहा।

"सोमेश्वर, कोठार देखना हो, तो देख लो।"

"आप कोठार देखेंगे ?" सोमेश्वरने आँबड़से पूछा। आँबड़को इस नायककी असभ्यता और सोमेश्वरसे बात करनेकी रीति पसन्द न आई।

" यह कौन है ? " आँबड़ने तिरस्कारसे पूछा।

" यह भटराजका विश्वसनीय नायक और यहाँके कोठारका रखवाला है। "

" इस तरह कहाँ जानेको अधीर हो रहा है ? " नये दुर्गपालने कुछ रौबसे पूछा।

देवाकी नत हुई आंखें जरा फैल गईं।

" यह भटराजके घर जाना चाहता है, यह इसकी हररोजकी टेव है। "

" तुम्हारे आदमी बहुत ही मुँह-चढ़े हैं। " आम्रभटने कहा। देवाने ऊपर देखा।

सोमेश्वरके कपालपर बल पड़ गये, " भटराज, देवा सामान्य सैनिक नहीं, घरका-सा आदमी है। जा देवा ! " सोमेश्वरने कहा।

देवा बिना बोले चला गया।

" हरएक सैनिक घरका आदमी हो जायगा, तो फिर इस नगरकी दशा क्या होगी ? "

" भटजी, " सोमेश्वरने कहा, " इसका-सा विश्वासपात्र और कोई आदमी नहीं। इसका अपमान करनेसे क्या लाभ ? "

" ऐसा लगता है कि यहाँ दुर्गपालके सिवाय सारे नगरकी मान-रक्षा की जाती है। "

" देखिए. अनेक वर्षोंसे यह भटराजके यहाँ जाता है। वह जायगा, कुछ देर चबूतरेपर बैठेगा और लौट आयेगा। बिना गये नहीं रह सकता। "

" ऐसे नोकर मेरे पास नहीं निभ सकते। "

" तो ऐसे नौकर आपको मिलेंगे भी नहीं। " सोमेश्वरने कुछ हँसकर कहा और वे आगे बढ़े।

देवा नायक मौन-मुख दुर्गसे उतर कर, पुराने नगरमें होकर, सांबा बृहस्पतिके बाड़ेमें आया और काकके चबूतोपर जा बैठा। वह चुपचाप इस तरह बैठा, जैसे किसीके आनेकी राह देखता हो। जब अँधेरा हुआ, तब उसने ऊपर देखा, और यह ख़याल आनेपर वह उठ खड़ा हुआ कि काककी राह देखना व्यर्थ है।

" कौन है ? " द्वार खोलते हुए मणिभद्रने पूछा, " मैं, देवा नायक। "

" क्यों, क्या बात है ? "

" कुछ नहीं, यों ही। "

" कौन, नायक ? " अन्दरसे मंजरीकी आवाज़ आई। वह बाहर आ गई। " आओ नायक, बाहर क्यों बैठे हो ? "

" कुछ नहीं, यों ही। " कहकर उसने निःश्वास छोड़ी। " नायक, तुम्हारे भाई थोड़े ही दिनोंमें आ जायँगे। "

बूढ़ेने माथा हिलाया, " नहीं बहन, अब नहीं मिल सकूँगा। "

" क्यों ? " कुछ फीका-सा हँसकर मंजरीने पूछा।

" कल मेरी झोंपड़ीपर उल्लू बोल रहा था। "

" अरे, इससे क्या हुआ ? " मंजरीने साहससे कहा, " तुम्हारे भाई तो आये ही समझो। "

"भाई तो आयँगे, पर मुझसे भेंट न होगी। बहन, छोटे भैयाको दिखाओगी?"

इस बूढ़ेका स्नेह देखकर मंजरीकी आँखोंमें पानी आ गया। " अन्दर आओ न। "

देवा भीतर गया, और बौसरिको देखकर बाहर आ गया। वह धीमी गति और भारी हृदयसे दुर्गकी ओर मुड़ा, तब रात अधिक होने आई थी। वह नीची नजर किए, दुर्गकी ओर चला।

खाईके पास आनेपर, उसे दो पुरुष दुर्गकी ओर देखते दिखाई पड़े। उसने ऊपर देखा, और खाँसा।

" कौन है ? " उसने पूछा।

एक मनुष्यने माथे और कंधेपर शाल लपेट रखी थी। वह आगे बढ़ आया। " क्या है ? "

" इस समय क्या कर रहे हो ? " सावधान देवाने सवाल किया।

" ओ हो ! कौन, देवा ? "

देवाने ध्यानसे देखा, " तुम कौन हो ? "

" रेवापाल। मुझे नहीं पहचाना ? " रेवापालने शालको कुछ अलग करके कहा।

" भाई, तुम यहाँ कैसे ?

" जरा घूमने आये हैं, इस समय कहाँ काकके घर जा आया ? तेरा भाई तो गया ? " रेवापालने कुछ तिरस्कारसे कहा।

" इससे क्या हुआ ? कुछ दिनोंमें फिर आ जायँगे। "

"अरे पागल हुआ है ?"

"क्यों ?"

"वह तो अब आवेगा ही नहीं।"

"क्या ?" आँखें निकालकर देवाने पूछा।

' जयदेव महाराज उसे भृगुकच्छ न आने देंगे।"

"कैसे जाना ?"

"उसने स्वयं मुझसे कहा था।"

"और यह नया दुर्गपाल यहाँ रहेगा ?"

"हाँ। देवा, तेरे और मेरे भाग्यसे। काक समझ बैठा था कि उसे कौन पूछेगा। अब वह भी पछतायेगा। देवा, तुझे भी दुर्ग त्यागना पड़ेगा।"

"क्यों ?"

"नया दुर्गपाल इसमें पट्टनियोंको बसायेगा।"

"अरे, यह भी कहीं हो सकता है ?"

"तब देखना। तुम लोग कोई मेरी बात नहीं मानते, पर तुम्हारा बनाया दुर्ग तुम्हारा ही सत्यानाश करेगा। देखना।"

देवा मौन हो गया।

"दो हजार पट्टनी इसमें घुस बैठेंगे, तो सारे देशको त्राहि त्राहि पुकरवा छोड़ेंगे।"

"ऐसी किसकी मकदूर है कि सारे देशको दुःख दे सके ?"

"तेरा बड़ा दुर्गपाल था, उसे तो घड़ीके छट्टे भागमें ही देश पार कर दिया। अब तुम्हारा कौन है ? आँबड़ खंभाती और माधव नागर।" रेवापाल तिरस्कारसे हँस पड़ा। "और एक मनुष्यको तो, भूल ही गया।"

"कौन ?"

"नेरा तोतला।"

नायकने स्तब्ध होकर पूछा, "क्या कह रहे हो ?"

"देवा," रेवापालने नर्मीसे कहा—"मैं कभी झूठ बोलता हूँ ? तेरे भाईसे और मुझसे शत्रुता है। परन्तु वह कैसा ही हो, किन्तु लाटका हितैषी था। वह भी चला गया और देखना, अब फिर न लौटेगा।"

देवाको कँप कँपी-सी आ गई।

"आँबड़ केवल मौकेकी तलाशमें बैठा है। और, आज मेरे सुनते नेराको भट बना दिया और कलसे दुर्गमें रहनेका हुक्म दे दिया है। बोलो, अब लाट-की आ बनी कि नहीं?"

देवा कुछ बोला नहीं; पर उसका रोम रोम खड़ा हो गया। कल उल्लू बोला था। अवश्य ही उसका कोई कारण था।

"देवा, एक ही रास्ता है।" रेवापालने कहा।

"क्या?"

"दुर्गमें वर्षभर चलनेके लायक अन्न है।"

"तुमने कैसे जाना?"

"कैसे भी। यदि तुम पट्टनियोंको हाथ मलते हुए रखना चाहते हो, तो एक रास्ता है।"

"कौन-सा?"

"यहाँसे अन्न ले जाना चाहिए।"

"कहाँ?" देवाने चकित होकर पूछा।

"कहीं भी।"

"और 'भाई' आ जायँ तब?" देवाने पूछा।

"देवा, मेरा और कोई मतलब नहीं है, मैं भगवान गंगनाथकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ। मैं तो केवल इतना ही चाहता हूँ कि यह पट्टनी सेना दुर्गमें मौज मजा न करे, बस। एक काम करोगे? अभी अन्नको निकाल दो। यदि तेरा भाई आ जायगा तो दूसरे ही दिन मैं सारा कोठार भरवा दूँगा।"

"कोई जान जाय, तो?"

"कौन जान सकता है?"

"परन्तु अन्न निकले कैसे?"

"देखो, रातको हररोज नवदेवीके घाटपर मेरे आदमी नाव लेकर आयेंगे; तुम ऊपरसे बोरे लुढ़का देना।"

"भाई नाराज होंगे।"

"पागल, तेरा भाई फिर आनेवाला नहीं है।" रेवापालने कठोरतासे कहा। देवाको कँपकँपी आ गई और कल रातको बोले हुए उल्लूका स्मरण हो आया।

" तुम्हारी सात पीढ़ियोंकी सौगंधसे ?"

" हाँ देवा, मेरी सात पीढ़ियोंकी सौगंधसे ।"

देवा कुछ देर मौन रहा। फिर उसने एक दम ऊपर देखकर कहा, " महाराज, कल रातको नाव भेज देना। यदि नेराकी बात सच होगी, तो मैं बोरे लुढ़का दूँगा।" कहकर वह तेजीसे चला गया।

रेवापाल हँसा। " लाटका भाग्य जोर मार रहा है।" उसने कहा और अपने साथीको लेकर वह चला गया।

२६—सूरिका आत्म-निरीक्षण

हेमचन्द्रसूरि, तेजपाल-वसहिकामें मौन धारण किये बैठे थे और कुछ दूर पड़े हुए अपने प्रोंछनकी ओर देख रहे थे।

तरुण सूरिको, ध्यानके समयके सिवाय इस प्रकार बैठनेकी टेव नहीं थी। आज यह स्थिति उन्हें कुछ असाधारण-सी लगी।

जिस समय अन्य बालक पालनेमें खेलते हैं, उस समय इन्होंने वीतराग होनेकी इच्छा बताई; जब युवकगण जीवनके नये आह्लादोंको देखनेके लिए तरसते हैं, तब इन्होंने सूरिपद पाया; जब अन्य साधु अध्ययन आरम्भ करते हैं, तब ये शास्त्र-विशारदकी भूमिकापर पहुँच गये। हर कोई इनके अद्भुत चारित्र्य, असीम ज्ञान और अगाध चातुर्यको देखकर चकित हो जाता। इतने थोड़े समयमें ही जैन विद्या और प्रतापके व्योममें लोगोंको अद्भुत अरुणोदयका आभास होने लगा था।

बहुत वर्षोंके बाद, तरुणावस्था आ जानेपर जीवनमें पहली बार उन्हें साव-धानतासे आत्म-निरीक्षण करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्हें विश्वास था कि उनका मस्तिष्क अन्य सब लोगोंसे कुछ निराला है। उन्हें संयम रखनेके लिए प्रयत्न करनेकी जरूरत न हुई थी। विकार क्या वस्तु है, इसका स्वानुभव नहीं किया था। और, इससे उन्हें अचल श्रद्धा थी कि वे आजन्म अविकारी हैं।

अनेक लोगोंके मस्तिष्क कीचड़वाले गढ़ोंके ऐसे होते है, बहुतोंके नाममात्रकी

लहरोंसे अलंकृत, स्थिर, बँधे हुए, जलसे भरे तालाब जैसे होते हैं। कुछ लोगोंके जरा उछलती उर्मियोंवाली, जरा कुछ शान्त सरलताका अनुभव करती हुई फिर भी बहती हुई, नदीके समान होते हैं। कुछ लोगोंके मस्तिष्क समुद्रके समान होते हैं—कभी शान्त सरोवरकी अगाधता, कभी नाचती हुई लहरोंका आनन्द; कभी दुर्जय और उछलता हुआ उत्साह और कभी प्रलयंकरी तरंगोंका तांडव नृत्य।

इस युवकका मस्तिष्क इनमेंसे किसी भी प्रकारका न था। उसमें काचकी-सी स्वच्छता, शान्ति, निरुत्साह और सर्वग्राह्यत्व था।

दूसरोंको वीतराग या निर्द्वन्द्व होनेमें कठिनाई आती है, जितेन्द्रियता प्राप्त करनेमें व्रतोंकी परम्पराका आचरण करना पड़ता है, परन्तु इस शान्त, स्थिर, उर्मिविहीन हृदयको, निर्विकार या जितेन्द्रिय होनेके प्रयत्नकी आवश्यकता ही न पड़ी थी। कारण कि उसमें विकारका अनुभव करनेकी शक्ति ही न थी। जिन-शासनके स्तंभ, विकारके अनुभवकी इस अशक्तिको देखकर स्तब्ध हो जाते, और पूर्वजन्मके सुसंस्कार और क्षयोपशमका ही यह परिणाम है ऐसा समझकर स्पर्धा करना छोड़ देते।

यह निर्मल काचके समान मस्तिष्क सूरि जिस दिशामें चाहते घूम सकता था और इच्छित विषयका प्रतिबिम्ब उसमें पड़ जाता था। वह इस प्रकार बिना प्रयत्नके ही अपूर्व था—इसका हेमचन्द्रको पूरा पूरा खयाल था।

इस उम्रमें पहली ही बार उनके मस्तिष्कमें शंका हुई। क्या उनके मस्तिष्कमें विकारकी छाया पड़ी है? अन्य मनुष्योंको यह शंका ही न होती; पर यह अद्भुत युवक इस जरा-सी शंकापर खोज करने बैठ गया।

कल उसने एक स्त्रीका वर्षों पहले देखा हुआ मुख देखा, एक मूर्खको अपनी निर्धारित बाजी उलटते देखा, और उसे कुछ ऐसी शंका हुई कि वह मूर्ख उस स्त्रीके परामर्शसे ही इस बाजीको उलट रहा है। उसने अनेक स्त्रियाँ देखी थीं, अनेक मूर्खोंको बाजी पलटते देखा था। बहुत-सी स्त्रियाँ बाजी पलटवा सकती हैं, ऐसा अनुभव किया था। तब यह विकार तो था नहीं, विकारका संशय भी झूठ था। तब यह संशय पैदा हुआ है, यह भ्रम मस्तिष्कमें कैसा आया? अडिग नैयायिककी तीक्ष्णतासे सूरिने प्रश्न किया।

जब उसने दीक्षा ली, तब इस स्त्रीको देखा था—ऐसा कुछ स्मरण था।

फिर उसे काक ले गया और उससे विवाह कर लिया—यह बात भी उससे छिपी नहीं थी। और इस विदुषी तथा चतुर स्त्रीने आँबड़ जैसे मनुष्यको मात किया है, यह भी कोई ऐसी बात नहीं थी कि उसके स्थिर चित्तको तनिक भी अस्थिरताका संशय करनेका कारण मिल जाय। 'तब यह संशय खड़ा क्यों हुआ?' हेमचन्द्र सूरिने अपने काचके समान स्वच्छ निर्मल, मस्तिष्कसे हठपूर्वक पूछा।—

"महाराज, प्रणाम।" आम्रभटका कुछ मजाक करता-सा स्वर सुनाई पड़ा। आकर उसने प्रणाम किया।

"कौन आँबड़! आओ, धर्मलाभ।" सूरिने कहा।

आम्रभट और हेमचन्द्र बाल्यकालके मित्र थे, एक ही घरमें बड़े हुए थे, और उदा मेहताकी सर्वव्यापी क्रीडाके खिलौने थे। तथापि इस प्रतापी बालसूरिको सर्वोपरि बनानेके उदा मेहताके प्रयत्नोंसे खंभातमें ऐसा आडंबर रचा जाता था, जैसे हेमचन्द्रसूरि कोई तीर्थंकर हों। अतएव साधारणतः आम्रभट उन्हें इस प्रकार सम्बोधन करनेका साहस नहीं कर सकता था। परन्तु छेड़े सर्पकी अपेक्षा, छेड़ा हुआ प्रणयी बुरा होता है। स्वयं उसकी प्रतिष्ठापर दाग लगता, तो आम्रभट सहन कर लेता; परन्तु जब उसकी हृदयेश्वरीका सम्मान भंग करना सूरिजीने आरम्भ कर दिया, तब वह कैसे सहन कर लेता?

उसके मस्तिष्कमें, एक बहुत ही मजेकी योजना बन गई। मंजरी पंडित-शिरोमणि है, इसमें तो कोई सन्देह था ही नहीं। यदि यह सूरि उससे हार जाय, तो इसे उचित शिक्षा मिल जाय। उदा मेहताका पुत्र ऐसा विचार करे, यह आकाश और पातालको एक करने जैसा था। परन्तु इस समय आम्रभटके सम्मोहका पार न था। क्षणिक संतोष—क्षणभरके लिए उसकी हृदयेश्वरीका विजय—उसे इस समय अत्यंत प्रिय हो रहा था।

यहाँ आनेमें उसका एक मतलब था। वह सबेरे माधवके साथ मंत्रणा करनेके लिए काकके यहाँ गया था। बाहरके बाड़ेके बरामदेमें वह बैठा और भृगुकच्छके अग्रणी नेताओंसे मिला, वार्तालाप किया, जो कुछ सूझी व्यवस्था की। परन्तु उसका मस्तिष्क हर समय भीतर जानेका बहाना खोज रहा था।

आखिर उठानेका समय हो आया, तब उसने साहस करके सोमेश्वरसे कहा, "बहनजी हैं क्या ?"

"जी हाँ।" सोमेश्वरकी आँखोंमें जरा वहम दिखा।

"हेमचन्द्र सूरिका सन्देश कहना है, जरा पूछो तो, क्षण भरके लिए मिलेंगी ?" आम्रभटने धड़कते हृदयसे पूछा। या तो दुर्गपालकी सत्तासे या मंजरीके सान्निध्यसे उसका साहस बढ़ता जा रहा था।

सोमेश्वर 'ना' न कर सका। वह मंजरीसे पूछ आया और आँबड़को अन्दर ले गया। मोहसे उसका मस्तिष्क चक्करपर चढ़ रहा था। ऐसी ही अवस्थामें उसने मंजरीको प्रणाम किया, दिखलाया हुआ आसन ग्रहण किया और कहा, "बहनजी, हमारे खंभातके हेमचन्द्र सूरि यहाँ आये हैं और आज ही कलमें लौट जायँगे। बड़े ही समर्थ विद्वान् और तपस्वी हैं।"

"मुझे मालूम है।" कहकर मंजरी हँसी। आम्रभट दंतावलीका सौन्दर्य देखनेमें उलझ गया और पल-भरके लिए बात करनेमें चूक गया। फिर बोला— "जानेसे पहले उन्हें दुर्गपाल महाराजके यहाँ गोचरीके लिए बुलाया जाय, तो उन्हें भी ठीक लगेगा और भृगुकच्छकी भी शोभा होगी।"

तुरन्त मंजरी और सोमेश्वरकी आँख एक हुई।

"परन्तु भटजी, हम तो कट्टर मिथ्यादृष्टि हैं।" मंजरीने हँसकर कहा।

"आप भूल कर रही हैं। हम अपने यहाँ ऐसे झूठे भेदोंको मानते ही नहीं। और सूरिजीका हृदय तो बड़ा उदार है।" कहीं योजना असफल न हो जाय, इस डरसे आम्रभट कहता गया "और आपकी विद्वत्ता सुनकर उनकी आपसे मिलनेकी इच्छा भी बहुत है।"

क्षण-भरके लिए मंजरी मौन रही।

"अच्छी बात है, तब आज दोपहरमें बुला लें। उन्होंने जबसे दीक्षा ली है, तबसे मैं उनसे मिली ही नहीं। सोमेश्वर, तुम कह आओगे ?"

"किसलिए ?" आम्रभटने कहा, "मैं वहीं तो जा रहा हूँ। मैं कह दूँगा।" उसने विदा ली और मंजरी तैयारी करनेके लिए उठी। परन्तु सोमेश्वरके हृदयमें वहमकी ज्वाला प्रकट हो गई—यह लड़का यहाँ क्यों रीझ पड़ा है ?

आम्रभट सीधे बाहर ही बाहर तेजपाल-वसहिकाकी ओर चला और हेम-चन्द्रसूरिसे मिला ।

" महाराज, आज दुर्गपालके यहाँ गोचरीका बुलावा है । "

स्वस्थ सूरि चौंक पड़े । उनके तेजस्वी नेत्र स्थिर हो गये । ऐसा लगा जैसे विकारग्रस्त हृदयमेंसे प्रतिध्वनि हुई हो ।

" काकके यहाँ ? "

" उनकी स्त्री आपके दर्शन करना चाहती है । मुझसे संदेश कहलाया है । "

हेमचन्द्रको विश्वास हो गया कि यह लड़का दुर्गपालकी स्त्रीके पीछे पागल हो रहा है । उन्हें आम्रभटको उपदेश देनेकी इच्छा हुई कि तुम्हें तुरंत जाकर चौथा अणुव्रत (ब्रह्मचर्य) ले लेना चाहिए । परन्तु उनकी जिह्वा न खुली । और उनका अपना क्या ? स्वयं वे चौंक क्यों पड़े ? तीव्र बुद्धि युवक साधुने अपने मस्तिष्कसे हिसाब माँगा ।

उनके हृदयमें पहला विचार हुआ कि न जाएँ । हेमचन्द्रने आँखें बन्द कर लीं । क्या वास्तवमें विकार हुआ था ? क्या विकार बढ़ जानेके भयसे ही बुद्धि प्रेरणा कर रही है कि उस स्त्रीको न देखना ? क्या उन्हें भी अन्य साधुओंके समान, साधारण श्रावकोंकी भाँति, ऐसा प्रसंग आनेपर मनोनिग्रहकी आवश्यकता पड़ेगी ? जिसे इन्द्रियोंको जीतनेकी जरूरत न जान पड़ी, जो अपने पूर्व जन्मके प्रसादसे ही इस जन्ममें अपनेको वीतराग समझता था, वह आज ऐसी अधोगतिको प्राप्त हो गया कि उसे इन्द्रियोंको जीतना पड़े ? नहीं— उसके हृदयने उत्तर दिया । संशयके लिए तनिक भी स्थान नहीं था । उसने स्थिरतासे आम्रभटकी ओर देखा ।

" आम्रभट, कलसे तुम्हें कोई व्रत आरम्भ करना पड़ेगा । तुम्हारा मस्तिष्क ठिकाने नहीं है । "

आम्रभट हँस पड़ा । " आप जरा भी न घबराइए । परन्तु आप आएँगे तो ? "

" हाँ, " हेमचन्द्रने शान्त भावसे कहा, " मैं विचारूँगा । "

" तब ठीक है । आप दोनों विद्वान् हैं, इस लिए आपको भी लाभहोगा ।—" अन्तिम दाग देकर आम्रभट उठा और उसने प्रणाम करके विदा माँगी ।

" धर्मलाभ ! " सूरिने कहा और वे आत्मनिरीक्षणमें लीन हो गये ।

२७—वागीश्वरीके दर्शन

काकके यहाँ खंभातके सुविख्यात सूरि गोचरीके लिए गये, इस घटनासे लोग कुछ विस्मित हुए।

हेमचन्द्रसूरि अपने शिष्योंके साथ जब साम्बा बृहस्पतिके बाड़ेमें आये तब आम्रभट भी साथ था। सोमेश्वर, मणिभद्र और पुराणी काका साधुओंका आदर करनेके लिए आये और सन्मान करके उन्हें घरमें ले गये।

हेमचन्द्रने एक तरहसे मौन धारण कर रखा था। वे उतने ही शब्द बोलते थे जिनके बोले विना चल नहीं सकता था। उनकी कोमल मुख-मुद्रापर कठोरताकी छाप थी। उनका सिर कुछ झुका हुआ था। अपने निर्मल और उर्मिविहीन मस्तिष्कको वे कठोरतासे अपनी निश्चेतन और अविकारी स्वस्थताकी रक्षा करनेका आदेश दे रहे थे। उनकी समझमें यह जीवनकी परम कसोटी थी। वे अभीतक निर्विकार होनेको भी तुच्छ गिनते थे; क्योंकि खुद अविकारी होनेसे अविकारताको श्रेष्ठ मानते थे। विकारको निर्मूल करनेके लिए तपका आचरण करना पड़े, यह भी उनकी समझमें लघुताका चिह्न था। वासनाको जीतनेकी अपेक्षा, वासनाका अनुभव ही न हो, ऐसी स्थितिकी रक्षा करना यह उनके जीवनका महान् प्रयत्न था। और अभी तक इस स्थितिकी रक्षा करनेमें उन्हें कुछ भी प्रयत्न नहीं करना पड़ा था।

जिनशासनकी रक्षा करना और उसका उत्कर्ष साधना, उसके अहिंसा-मंत्रका प्रचार करना, और उसके लिए किसी भी तरहसे राज्य-तन्त्रको काबूमें लेना, यह तो जिस सृष्टिमें वे बड़े हुए थे, उसका परम ध्येय था। और वह जीवनके साथ उस आकांक्षाको सिद्ध करने जितना ही संसर्ग रखते थे। मनुष्य-हृदयके उत्साह, आनंद या व्यथाकी ओर वे स्नेहसिक्त या दयापूर्ण आँखोंसे नहीं देख सकते थे। उनकी समझमें यह सब तुच्छ जंतुओंकी विकारी लीला थी, और उसकी तरफ वे महा मोहकी ठंडी पीड़ाओंको नाश करनेवाले किसी शस्त्रोपचारी वैद्यकी दृष्टिसे देखते थे।

"पधारिए, महाराज!" मंजरीकी संस्कारी आवाज आई। "विराजिए।"

नीची निगाह करके खड़े हुए मुनिने ऊपर देखनेके पहले धीरेसे रजोहरणके

द्वारा धूलि साफ की और 'धर्म-लाभ' उच्चारण किया। जब उन्होंने ऊपर देखा तब दरवाजेमें श्वेत वस्त्रमें अप्सराके समान शोभायमान ऊँची और सुडोल सुंदरी खड़ी थी। उसके मधुर होठपर सम्मानका स्मित था; उसकी तेजस्वी आँखोंमें स्नेही हृदयके उल्लासका प्रतिबिम्ब था। सूरिका जैसा मस्तिष्क था वैसी ही उनकी निरीक्षण शक्ति थी। वे अलङ्कारशास्त्र और काव्योंमेंसे कण्ठस्थ किया हुआ शब्द-समुच्चय धीरे धीरे व्यवस्थित करने लगे। 'मदालसा,' 'चन्द्रानना,' 'शरीरयष्टि' 'जघन-गौरव'......इस सारी व्यवस्थामें शब्द और वस्तु व्यवस्थित करने-वालेकी निष्पक्ष अविकारिता थी। उसमें न तो सौन्दर्य-भक्तका उत्साह था और न कविकी उर्मि। भक्तिके भारसे सोमेश्वरने नीचे देखा, मोहकी अधीरतासे आम्र-भटने आँखें फाड़ीं। दूसरे साधु इस दर्शनसे केवल मुँह फैला रखने जितना ही चेतन बता सके।

मंजरीने वंदन किया। "सूरिजी, आपको और साधुमंडलको मेरा वंदन।"

मंजरी वस्त्र समेटकर पुराणी काका और मणिभद्रके बीचमें बैठ गई और गर्वभरी निगाहसे दिगन्तोंमें जिनकी ख्यातिकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती थी उन बालसूरिकी ओर देखती रही।

"बहिनजी,' आंबड़ने कहा, "सूरिजी अर्थात् हमारे खंभातके माथेके मुकुट।"

"मैंने इन्हें बहुत वर्षों पहले देखा था!" मंजरीने हँसकर कहा "क्यों महाराज, याद है? आपने दीक्षा ली, उसके पहले हम एक ही वसतिकामें साथ थे। आपने मुझे भी दीक्षा लेनेके लिए कहा था; याद है? आप उस समय आठ वर्षके थे।"

"मुझे याद आता है।" अविकत्थन भिक्षुकी रीति ग्रहण करके हेम-चन्द्रने कहा।

"ऐसा? इसकी तो मुझे खबर ही नहीं!" आँबड़ने कहा।

आँबड़को देखकर उदाकी याद आ जानेसे मंजरीके मुँहपर कुछ घबड़ाहट दिखाई दी और वह अदृश्य हुई। उसने आँबड़के सामने देख कर कहा: "आपको कहाँसे खबर हो? सूरिजीके साथ मुझे भी दीक्षा देनेवाले थे।"

"पीछे?" आंबडके कानमें कहींसे ऐसी गप आई अवश्य थी, परन्तु मंजरीके मुँहसे सुननेके लिए उसने पूछा।

" पीछे ? " मंजरी हँस पड़ी और नीचे देखा। उसके हास्यकी तरङ्गें कमरेमें फैल गईं। सूरिके अविकारी कानोंको यह स्वच्छन्दता अयोग्य लगी। उनके मस्तिष्कमें सिर्फ इतनी ही टीका हुई, ' इस हास्यको विद्युल्लेखा कहा जा सकता है।'

" बादमें क्या हुआ ? " मंजरीने कहना शुरू किया, " मैं भाग गई। महाराज, दीक्षा लेनेके बाद आप जो शान्ति प्राप्त करना चाहते थे, क्या वह मिली ? "

" मुझे अशान्ति थी ही नहीं, " हेमचन्द्रने कहा, " परन्तु जिन-शासनका श्रेयस्कर मार्ग छोड़नेके बाद तुम अपना ब्राह्मणत्व रखे ही रहीं ? "

इन बोलोंमें मंजरीको कर्कशता मालूम हुई। उसे इस प्रश्नमें कटाक्ष जँचा। उसने सावधानीसे ऊपर देखा।

" मेरा ब्राह्मणत्व—आपकी भाषामें मेरी मिथ्यादृष्टि—हरण करनेकी किसीमें शक्ति थी ही नहीं। "

सूरि हँसे। " तुमने दीक्षा ली होती तो जिन-शासनकी आभूषणरूप साध्वी होतीं। " मंजरीका सुगठित सिर गर्वसे ऊँचा हुआ। उसकी आँखोंकी चमक बढ़ी। थोड़ी-सी आँखें खोलीं, उनमें चमक लानेकी उसकी खूबीको सब देखते रहे।

" मैं भाग गई, तो आपका सारा शासन मुझे जो नहीं दे सकता, वह मुझे मिल गया। "

" क्या ? " आँबड़ पूछ बैठा।

मंजरी इस सवालको सुनकर हँसी। उसकी आँखमें अमृत तथा आवाजमें मृदुता आई : " आपके दुर्गपाल। "

" काक भट्टराज। " मानों आम्रभटको जवाब देते हों इस तरह सूरिजी बोले। मंजरीने उसमें रहे हुए कटाक्षको परखा।

" हाँ। " उसकी आवाजमें दुर्जय गर्वकी ध्वनि थी। उसकी सुंदर गर्दनकी रगें कुछ धड़कती हुई मालूम हुईं। " गुरु द्रोणाचार्य और कौटिल्य, दोनोंके दर्पको हरण करें ऐसे भट्टराज ! " वह हँसी। उस हास्यमें विजय-दुंदुभिकी प्रतिध्वनि थी।

हेमचन्द्रसूरिको लगा कि उनके जैसे साधुके सामने मंजरी अपना आडम्बर

दिखाए, यह अनुचित है। मानों प्रशंसा सुनानेके लिए बुलाया हो ऐसा उन्हें भास हुआ।

" भगवती, मालूम होता है कि तुम्हें काव्य-पुराणोंका बहुत शौक है।" हँसकर सूरिने कहा।

उनके हास्यमें पिताका वात्सल्य था। उसे देखकर मंजरीको गुस्सा आया। आम्रभटकी बातसे तो मालूम हुआ था कि हेमचन्द्र उससे मिलना चाहते हैं। सो क्या उसका अपमान करनेके लिए?

" शौक!" सोमेश्वरको भी थोड़ा स्वाद आ जानेसे वह बीचमें बोल उठा, " सूरिजी, आपको माताजीकी शास्त्रज्ञताका ख्याल नहीं है।"

आँबड़को मौका मिला। मंजरीको पानी चढ़ाकर हेमचन्द्रको नीचे झुकानेका उसे यह अवसर दिखाई दिया। " सोमेश्वर, हमारे सूरिजी दूसरे शास्त्रज्ञों जैसे नहीं हैं। यह हमारे गुजरातके अद्वितीय विद्वान् हैं; और बहिनजी, इन्हें आपके साथ विवाद करना है।"

मंजरी चौंककर ऊपर देखने लगी। क्या इस परदेशी सूरि और उसके मित्र आँबड़ने मेरी परीक्षा लेने और मेरी विद्वत्ताकी हँसी करानेके लिए यह नाटक रचा है? उसने बहुत-सी सभाएँ देखी थीं, कितनी ही सभाओंमें तो विजय भी प्राप्त किया था। जैसे जैसे काकके जीवनमें उसका जीवन मिलता गया वैसे वैसे उसका यह संकल्प दृढ़ होता गया कि चाहे जिस पंडितके साथ विवाद नहीं करना चाहिए। क्या मेरे गौरवका अपमान करनेके लिए ये आये हैं? क्या मेरे वीरपतिके दुश्मन उनकी पत्नीकी हँसी करके उन्हें अपमानित करनेके लिए प्रयत्न कर रहे हैं? उसे उदा महेता-आँबड़का पिता, हेमचन्द्रका आदरणीय श्रावक और उसका तथा उसके पतिका कट्टर दुश्मन-याद आया। काश्मीरी कविकुल-शिरोमणिकी कन्याका, नवघन-विजेता काककी अर्धाङ्गनाका खून खौल उठा। उसके लाल और सुंदर होठ काँप उठे, बंद हुए, सख्त हुए। कामदेवके धनुषके समान उसकी भृकुटियाँ कुछ पासपासमें आईं, उसका नाक गर्वसे कुछ मुड़ा, वह इस तरह हँसी कि राजा लोग भी अपनेको छोटा समझें और बोली: " गुजराती विद्वान्!" फिर रणपर चढ़े हुए वीरकी तरह वह अपना भान भूल-

कर, मानों पंडितोंकी किसी सभामें ही बोल रही हो, इस तरह उसने गर्व वचन कहे—

> या पाणितीयमुपजीवति शब्दशास्त्रं
> या मम्मटोदितमलङ्करणं प्रयुङ्क्ते।
> तस्या न गुर्जरगिरः परिचारकस्य
> कस्ते मया सह विवादकथावकाशः॥[1]

हेमचन्द्रमें साधुकी निर्लेपता थी, उसी तरह राजनीतिज्ञकी पैनी नजर भी थी। उन्हें तुरत भान हुआ कि किसी गलत-फहमीके कारण मंजरी ऐसे बचन बोल रही है। उन्होंने तुरत आँबड़के सामने देखा और उसके हँसते हुए मुँहका रहस्य परख लिया। वे जान गये कि इसी मोहान्धने यह प्रसंग उपस्थित किया है। और मंजरीको देखकर उनका उर्मिहीन मस्तिष्क जिससे अपरिचित था, वह प्रशंसा करनेको तैयार हो गये। उन्होंने नम्रतासे हाथ जोड़े और अत्यन्त आदरयुक्त मुख-मुद्रा करके मानपूर्वक जवाब दिया—

> शब्दानुशासनमधःकृतपाणिनीयम्
> निर्धूतमाम्मटमलङ्कृतितन्त्रमन्यद्।
> निर्माय गुर्जरगिरां गुरुतां दधानः
> धन्योऽचिरात्तव हरिष्यति कोऽपि गर्वम्॥

एक क्षण मंजरी देखती रही। उसे भान हुआ कि इस बालसूरिका इरादा उसका अपमान करनेका नहीं था। वह युवक सूरिको भूल गई; उसकी निगाहके सामने वर्षों पहले देखा हुआ, वीतराग होनेके लिए उत्सुक 'चांग' आ गया। उसका चढ़ा हुआ क्रोध उतर गया, अपने गर्वको उसने अपने काबूमें

---

१ पाणिनिके रचे हुए व्याकरणका जो आश्रय लेता है, और जो मम्मटके द्वारा बताये हुए अलङ्कारोंका प्रयोग करता है, उस गुर्जर भाषाके परिचारक बने हुए तुम्हें क्या मेरे साथ विवाद करनेकी बातका भी अवकाश है?

२ पाणिनिके शास्त्रको हलका कर देनेवाला दूसरा व्याकरण शास्त्र और मम्मटके अलङ्कार शास्त्रको उलटा देनेवाला दूसरा अलङ्कार तंत्र रच करके गुर्जर-गिराका गौरव बढ़ानेवाला कोई धन्य पुरुष थोड़े समयमें ही तुम्हारे गर्वका हरण करेगा।

कर लिया। वह छोटी बालिकाकी तरह हँस पड़ी " महाराज, मुझे क्षमा कीजिए। मैंने एक समय दीक्षा लेनेके पहले आपको आशीर्वाद दिया था। आज मैं स्त्री हूँ, फिर भी क्या आपको आशीर्वाद दूँ? मम्मट और पाणिनिके दोनों पद आप ही प्राप्त करें। मेरा दर्प कम नहीं होगा, बढ़ेगा।" मंजरीकी मधुर आवाज़में उत्साहप्रेरक संगीत था। उसके मुँहपर अन्तरकी आशाओंके द्वारा अनोखी तेजस्विता छा गई थी। उसने अपूर्व और अवर्णनीय छटासे उमंगके साथ हाथ लंबा कर दिया।

हाथ लंबा करते समय मंजरीका पल्ला सिरसे खिसक गया, क्षणभर उसका सारा मस्तक दिखाई दे गया और उसके ज्वलंत सौन्दर्यसे दमकनेवाले मुँहकी मोहकता दुर्जय हो गई।

सूरिने आशीर्वाद सुना, स्वरका संगीत सुना; सौन्दर्यका दर्शन किया। संस्कृत साहित्यमें इसके लिए क्या शब्द है, यह याद नहीं आया। उनकी आत्माके लिए अपरिचित ऐसा पवन सनसन हुआ। इस स्त्रीको सन्तुष्ट करनेके लिए पाणिनि बननेका उत्साह हुआ। वे इस स्त्रीको देखनेका विचार नहीं कर सके। उनकी आँखोंमें अँधेरा आ गया। उनके मस्तिष्कमें कड़कड़ाहट हुई–स्थिर और उर्मिहीन उनके मस्तिष्ककी सरल सपाटीपर उत्साहसे उछलती मानवताकी गगनचुंबी उर्मियाँ मानों पीछे लौट रही हों, ऐसा भास हुआ। उस भयंकर क्षणमें सूरिपद, वीतराग पद, अविकारिता सब निगाहके आगेसे अदृष्ट होते हुए मालूम हुए, शुष्क और स्नेहविहीन जीवन-मरुस्थलकी भयानक निर्जनता चारों ओर फैली हुई दिखाई दी।

यह सब केवल एक क्षण तक चला। उसी क्षण उन्हें विश्वास हुआ कि अविकारिताका गर्व खोटा था। उन्हें लगा कि एक प्रतापी महाप्रयत्नके बिना वे बच नहीं सकते थे। उन्होंने महाप्रयत्न किया, अपनी प्रबल इच्छा-शक्तिको एकाग्र करके मस्तिष्ककी स्थिरता साधी और एक उस्ताद खिलाड़ी जिस तरह लोहेकी छड़को हठसे मोड़ दे उसी तरह उन्होंने अपने विद्रोही मस्तिष्कको मोड़ा। उन्होंने मनुष्य-शरीरकी अशुचिताका स्मरण किया और स्त्रियोंके सौन्दर्यमें पापका मूल है, यह याद किया। उन्होंने वैराग्यकी अनित्यादि बारह भावनाएँ याद कीं। तीर्थङ्कर भी घातिकर्मोंका क्षय करनेके लिए घोर तपश्चर्या करते हैं, इसका विचार किया।

दूसरे ही क्षण उन्होंने कामदेवको नष्ट करनेवाले चरम तीर्थङ्कर वीर परमात्माका ध्यान किया।

मस्तिष्क मानों टूट रहा हो, ऐसा उन्हें भास हुआ—फिर भी उनकी इच्छाशक्ति दबाव करती ही रही। उन्होंने धीरेसे मंजरीकी ओर देखा और उसके मुखको ध्येय मानकर शुक्लध्यान किया।

उनके ऊर्मियोंसे अज्ञात अन्तरके इस थोड़ेसे तूफानको अदृष्ट होते देर नहीं लगी। आजन्म अविकारी रहनेवालेके मस्तिष्कको क्षण-भरके विकारको वशमें करते देर नहीं लगी।

सूरि स्थिर नयनोंसे मंजरीको देखते रहे। उनकी एकाग्र दृष्टिके सामने उसकी मानुषी सुन्दरता और मोहकता पलट गई।

उन्होंने मंजरीके नयनोंमें दिव्य तेज देखा; उसके स्फटिकके समान कपालपर अगाध ज्ञानकी रेखाएँ देखीं; उसके सौन्दर्यमेंसे विशुद्ध ज्ञानकी शान्त रश्मियाँ फूटती हुई दिखीं। सूरिने एकाग्रता बढ़ाई तो मंजरीकी गोदमें वीणा पड़ी हुई दिखी, उसके पाँवके सामने मयूर बैठा हुआ दिखा और उत्साहित करनेके लिए लंबे किये हुए हाथमें कमल दिखा। स्वरूपमें मंजरी रहनेपर भी उन्होंने उसमें सरस्वतीके दर्शन किये।

हेमचन्द्रने साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया; "माता, तुम्हारा वरदान अवश्य सफल होगा।"

एक पल-भर उन्होंने अपनी निगाह ठहराई थी और उतने ही समयमें सूरिने योगबलसे निर्विकारता साध ली थी। उन्होंने प्रणाम किया, आँखें बंद कीं और खोलीं। सब उनकी ओर देख रहे थे। प्रणिपातका अर्थ शायद ही किसीने समझा हो। सूरिने शान्त आवाजसे कहा:—

काश्मीरान् गन्तुकामस्य शारदाराधनेच्छया।
यात्राभूत् पुनरुक्ता मे वीक्ष्य त्वां शारदामिह * ॥

मंजरीकी आँखें हँसती रहीं। सूरिके अन्तरमें जितना उत्साह आ सकता था उतना आया।

---

* शारदाकी आराधना करनेकी इच्छासे मेरी काश्मीर जानेकी आकांक्षा थी, परन्तु तुम खुद सरस्वती हो। उसे यहाँपर देखकर अब मेरी यात्राके लिए कोई प्रयोजन नहीं रहता है।

आँबड़के सुखकी सीमा नहीं रही। वह संस्कृतका अर्थ तो बराबर नहीं समझा, पर उसे स्पष्ट लगा कि मंजरीने विजय प्राप्त किया है।

" सूरिजी, आप यहाँपर कब तक रहेंगे ? "

" मैं कल ही जाऊँगा। "

" माँ ! " कहता हुआ वोसरी उछलता कूदता भीतर आया और मंजरीके गलेसे लिपट गया। सब उसकी ओर देखने लगे। मंजरीकी आँखोंमें स्नेह उमड़ रहा था।

" माता, यह आपका पुत्र है ? "

" हाँ, महाराज। "

हेमचन्द्रसूरि लड़केकी ओर एकटक देखते रहे और गंभीर मुद्रासे बोले : " माता, इस पुत्रकी माताको मैं फिरसे प्रणाम करता हूँ। "

" क्यों ? "

" इसके प्रतापसे जिन-शासनका संरक्षण होगा। "

सब चकित होकर सूरिकी ओर देखने लगे। हेमचन्द्र ध्यानसे केवल बालककी मुख-मुद्रा देख रहे थे।। उनकी आवाजमें शान्ति थी।

" महाराज, यह क्या कहते हैं ? " बिना जाने मंजरीको कँपकँपी आ गई।

" हाँ, मेरी निगाहमें स्पष्ट दिखाई देता है। "

" तब महाराज एक बात पूछूँ ? " मंजरीने आतुरतासे कहा।

" क्या ? "

" भटराज कब लौटेंगे ? "

सूरिने शंकासे मंजरीके सामने देखा : " मेरी विद्या इस सवालका जवाब नहीं दे सकती। माता, अब हमारे जानेका समय हो गया। "

" जरा खड़े रहिए, भिक्षा लाती हूँ, " मंजरी उठ बैठी। उसके हृदयमें खिन्नता व्याप्त हो गई। समुद्र सेवन करनेवाले पतिका वियोग दुःसह हो गया।

* * * *

दूसरे दिन जब हेमचन्द्रसूरिने भृगुकच्छ छोड़ा तब उनके मुँहपर सरस्वतीका वरदान प्राप्त करनेका गर्व था।

द्वितीय खंड

१—सोरठका किनारा

सूर्यास्त होने जा रहा था । अस्ताचलके शिखरपर पहुँचते हुए सविता नारायणका सुनहला बिंब, साँस लेनेके लिए क्षणभर क्षितिजपर ठहरा । ऊपर आकाश-मंडल और नीचे जलधि सोनेसे मढ़ गये । उर्मिमालाएँ चारों दिशाओंमें उछलती हुई अन्तमें क्षितिजके पास अदृष्ट हो जातीं ।

पवन उठा था और समुद्रके बीच एक पुराना और छोटा जहाज़ झूल रहा था । सब कुछ अस्थिर था, केवल जहाज़पर बैठे हुए दुर्गपालका मुख निश्चल था । वह उत्तरकी ओर स्पष्ट और काले क्षितिज़की तरफ देख रहा था ।

वह ज़रा हँसा । "सामंत!" उसने पुकारा । "महाराज ।" एक सैनिकने जवाब दिया ।

"वह उस तरफ पाटन है न ?"

"जी हाँ ।"

"और उसके बाद चोरवाड़ ?"

"जी ।"

"और यह सामने क्या है ?"

"लाटी ।"

"ठीक ।" दुर्गपालने कहा और वहाँसे उठकर जहाँ मल्लाह बैठा था वहाँ गया । "अरे कावा!"

"बापू ।"

"देख जहाज़को लाटीकी ओर फेर दे ।"

"क्यों ?"

"सुन ।" सत्तावादी स्वरमें काकने कहा, "मैं जो कहूँ वह सब याद रखना ।"

"जी ।"

" वहाँ मैं, सामंत और दामा नायक उतर जाएँगे। तेरे खलासी भी मेरे साथ ही उतरेंगे। फिर तुम और खेमा भट दोनों जहाज़ लेकर पाटनके पास ले जा सकोगे ? "

" हाँ ले जायँगे। वह तो यह रहा। "

" ठीक। कल सबेरे जब पाटनका किनारा दिखे तब जहाज़को डुबा देना और मानों तुम बह रहे हो इस तरह बापस तैर कर लाटी आ पहुँचना और दामा नायकसे मिलना। फिर खेमा भट अपनी राह चला जायगा। "

" जी। "

" और कोई पूछे तो कहना कि चट्टानसे टकराकर जहाज़ डूब गया और उसपरके आदमियोंका क्या हुआ, पता नहीं। समझे ? ज़रा भी भूल न हो। " काकने कहा, " बहाराके * मल्लाहका नाम रखना। "

" ऐसा ही होगा बापू। "

" और आधी रातको मैं लौटकर आऊँ तब भृगुकच्छकी ओर ले चलनेकी तैयारी कर रखना। खलासी तो सब भरोसेके हैं न ? "

" बापू, यह भी पूछनेकी बात है ? "

" देख, मेरे प्राण तेरे हाथमें हैं। " काकने कहा।

" बापू, आपका बोल और मेरा माथा। "

काक हँसा। इन सबके भक्ति-भावमें उसे श्रद्धा थी।

कावाने पतवार किनारेकी ओर फेरा और जहाज उस ओर तेजीसे जाने लगा।

काक वहाँसे बापस गया और दामा नायकको बुलाया। " दामा, तुझे मेरे साथ यहाँसे तैर कर किनारे जाना है। इन सब खलासियोंको तुझे अपने साथ रखना है और किसीके जहाज़को देख रखना है। चाहे जिस क्षण मैं आऊँ, हमें लौटनेके लिए तैयार रहना चाहिए। "

दामा दुर्गपालकी रीति जानता था। समयपर एकसे दूसरी बार कहनेकी राह नहीं देखता था। वह खलासियोंसे कहनेके लिए गया।

काकने खेमा भटको बुलाया। " खेमा, देख। मैं, दामा, सामंत और खलासी जहाज़से उतरे जाते हैं। अपने प्राण और इज्ज़त तेरे हाथों सौंपता

---

* नर्मदाके मुखके आगेके कितने ही भागको बहारा कहते हैं।

हूँ। तेरी होशियारीपर सारे लाटका आधार है। देख, तू मेरे कपड़े पहन ले और अपने मुझे दे दे।"

"जो आज्ञा।"

"फिर तू और कावा दोनों जनें जहाज़को पाटनकी ओर ले जाना। पाटन दिखाई पड़े त्यों ही जहाज़ डुबा देना। कावा बहा जा रहा है, इस तरह यहाँ आकर दामासे मिलेगा और तू तैरते तैरते पाटनके बंदरपर जाना।"

"जी।"

"देख, ध्यान रखना। मुझे पहचानता हो ऐसा कोई लेने आवे, तो कहना कि नाव डूब गई और मेरा क्या हुआ, कुछ खबर नहीं। परन्तु बहुत करके कोई नया आदमी ही आएगा। और नए पट्टनी योद्धाओंने मुझे देखा नहीं है। तेरा और मेरा शरीर एक जैसा है, इसलिए यदि कोई तुझे काक मान बैठे, तो तू इन्कार मत करना।"

खेमाने ज़रा चकित होकर देखा।

"खेमा, अपना दशवर्षका सम्बन्ध है और तेरी चतुराईमें मुझे विश्वास है। देख, ये लोग यदि तुझे काक मानें, तो उनका भ्रम भंग न करना। और अनीका मौका आ जाए, और तुझसे न सहे जाएँ ऐसे जुल्म तुझपर हों तो एक बात याद रखना। यदि उदा मेहताके आदमी तुझे परेशान करें तो कहना कि मुझे भाभीके सम्बन्धमें बातचीत करनी है, बस वे तुरंत तुझे उसके पास ले जाएँगे, और उदा तुरन्त ही पहचान लेगा कि तू काक नहीं है। और यदि महाराजके आदमी पकड़ें तो कहना कि मुंजाल मेहतासे शेषनागके शापकी बात कहनी है। समझा? जरूरत पड़नेपर दोमेंसे कोई एक तुझे पहचान लेगा और तेरा बाल भी बाँका न होगा। मैं जीवित रहा तो पाँच सात दिनमें आ पहुँचूँगा।"

"जी।"

"खेमा, तू सब बातें जानता है, इसलिए सफ़ाईके साथ ऐसा करना कि इतने दिनोंतक भ्रम चालू रहे।"

"इसमें कोई गड़बड़ न होगी।"

"और खेमा," काकका शांत स्वर थोड़ा काँप गया।

" मुझे कुछ हो जाय तो—" काकने ज़रा गला साफ किया, " तू और सोमेश्वर दोनों अपनी भाभी और बच्चोंको देखना।"

" अरे बापू!" आँखोंका पानी पोंछते हुए खेमाने कहा, " किसीकी मजाल है, जो आपका बाल बाँका कर सके। ज्यादा करेंगे तो इन पट्टनियोंको उखाड़ फेंकूँगा।"

काक हँसा। " इतनी सहज बात नहीं है।"

" बापू, यह आप जैसे समझदार आदमियोंको लगता है। हम लोग तो तुरत दान और महा कल्याणमें समझते हैं।"

" अच्छा।" कहकर काकने खेमाको हृदयसे लगा लिया।

जहाज़ किनारेके पास आते ही काक, दामा नायक, सामंत और खलासी डोंगी डालकर पानीमें उतरे और किनारेकी ओर चल दिए। खेमा भट और कावाने जहाजको फिर समुद्रमें छोड़ दिया।

२—प्रभास

प्रभातका मन्द प्रकाश बढ़ने लगा था। प्रकाश बढ़ा और सोमनाथ पाटन समुद्रमेंसे नितरती हुई रंभाके समान शोभा देने लगा। सुंदर वस्त्रके घेरेकी तरह नगरका परकोटा समुद्र तक पहुँचता था और जहाँ वह जलधिका स्पर्श करता था वहाँ बंदरगाहपर खड़े हुए जहाजोंकी झालरें मंदमंद पवनमें हिलती डुलतीं दिखती थीं। इस घेरेके ऊपर अप्सराकी अमर देह जैसा सोमनाथका भव्य मंदिर दिखलाई देता और मंदिरका स्वर्ण कलश तथा उसके आसपास फहराती हुई ध्वजा, ऐसा लगता मानो स्वर्णरंगी दिव्य सुंदरी अपने तेजस्वी मुखको ओढ़-नीमें छिपानेका निरर्थक प्रयत्न कर रही हो। उस मंदिरके भग्नावशेष आज भी प्रभासमें दिखलाई देते हैं। वह पृथ्वीसे प्रदक्षिणा करवाते हुए किसी मेरुके समान पूरी शानसे खड़ा था। आज भी उसकी प्रत्येक शिलाकी अपूर्व कारीगरी, उसके स्तंभोंका गौरव और उसके गुंबजोंकी रचनाका अवशेष भी, यह मंदिर कैसा होगा इसका परिचय दे सकता है। परन्तु हमारी कथाके समयमें तो वह नवीन था और उसमें नई जवानीकी मोहकता थी।

महमूद गज़नवीने पाटनको लूटा, सोमनाथका प्राचीन मन्दिर तोड़ा और संतोष माना कि उसने गुजरातकी शक्ति तथा समृद्धि हमेशाके लिए लूट ली। परन्तु वह धर्मविनाशक परदेशी गुजरातको जानता न था। उसकी पीठ फिरी कि बाणावली भीमने पाटन फिर ले लिया और जहाँ पुराने मंदिरके जले हुए पत्थर पड़े थे वहाँ नए मन्दिरकी रचना शुरू हो गई। देश देशके कारीगरोंने बरसों एकचित्त होकर साधना की। देश देशके नरपतियोंने अगणित संपत्तिके उपहार भेंट किए। और जो मंदिर बाणावली भीमने बनवाना शुरू किया था, जिसे स्थापत्य-कलाप्रेमी कर्णदेवने अलंकृत कराया था, उसपर तीन पीढ़ीके पीछे बाल जयदेवने अमूल्य स्वर्ण कलश चढ़ाकर महमूद गज़नवीकी विनाशक वृत्तिकी विडंबना की।

यह मंदिर क्या था पत्थरोंमें अंकित किया हुआ एक महाकाव्य था। अवश्य ही उसकी भव्यता मोहक थी किन्तु उसकी प्रेरणा उससे भी अधिक अद्भुत थी। दिगंतसे आनेवाले यात्री, कैलाशसदृश व्योमविहारी और अमरावतीसदृश अपूर्व इस शंकर-सदनको देखकर सदेह मुक्ति मिली मानते और भवभवके ताप मिटाते।

यह मंदिर पृथ्वीके एक छोरपर खड़ी की गई अणहिलवाडके प्रभावकी अमर मूर्तिकी गरज पूरी करता था। खंभात, भड़ोंच, और प्रभास गुजरातके इन तीन बंदरगाहोंमें प्रभास छोटा था। तो भी विदेशी जहाज इस धामकी पवित्रता और मंदिरकी भव्यतासे आकर्षित होकर यहीं आकर लंगर डालते थे। बंदरके पास आनेपर यात्रियोंकी प्रशंसाभरी दृष्टि जब क्षितिजपर भगवान सोमनाथके गगनभेदी शिखरपर पड़ती, तब उनमें जितना भक्तिभाव उमड़ता उतना ही पाटनके लिए सम्मान भी बढ़ता।

पाटनके नरेशोंकी दृष्टिमें भी यह मंदिर उनके प्रतापकी सजीव प्रतिमा था। मूलराज सोलंकीकी प्रभावशालिनी राजनीतिज्ञताने प्रभासधामको अणहिलवाड़का पुण्य क्षेत्र बना दिया था। इससे सोरठमें गुजरातके पैर फैले और समस्त भारतके परम धामके रक्षणका गौरव सोलंकियोंको मिला। भीमने गुजरातके रुधिरसे इस भूमिको सींचकर इसकी पवित्रताको उज्ज्वलता प्रदान की थी और विश्व-विजयको तड़पते हुए जयदेवने भी, इष्टदेवके वैभवमें ही अपना वैभव समाया समझा था।

शिवालयकी शान्ति घंटा-नादसे जागे, उसके पहले ही घोड़ोंकी टापोंकी आवाज़से जाग उठी। तीन अश्वारोही दौड़ते हुए मंदिरके सामने आए। उनमेंसे एक घुड़सवार घोड़े परसे जमीनपर कूद पड़ा। उसने पीछे नहीं देखा और तेजीसे मंदिरमें पैठ गया।

यह आगन्तुक पट्टनी योद्धा था। वस्त्रों और आभूषणोंसे बहुत धनवान जान पड़ता था और मुखके तेजसे बुद्धिशाली।

वह फुर्तीसे मंदिरमें गया। बिना ध्यानके घंटा बजाया और महादेवकी ओर देखे बिना ही नमस्कार किया।

मंदिरकी एक खिड़कीके आगे एक आदमी खड़ा था। नये आगन्तुकने उसे देखा और देवको फ़ुरसतके अनुसार सम्मान देकर उसकी ओर गया। वह खलासी जैसा मालूम होता था।

" नायक, " नयें आगन्तुक युवकने पूछा।

" बापू ! " बहुत सम्मानसे नमस्कार करके उसने जवाब दिया।

" क्यों ? "

" बापू, खलासी अभी अभी चारों तरफ़ देख आये हैं। केवल एक जहाज़ नज़र पड़ता है। "

" यहाँसे दिखलाई देता है ? " युवकने पूछा।

" वह देखिए, कुछ मालूम होता है। " खलासीने जवाब दिया।

थोड़ी देर तक कोई नहीं बोला। क्षितिज पर एक बिंदु बढ़ता हुआ आ रहा था।

" चल, बाहर चलें। " युवकने कहा और वह बाहर निकला। खलासी पीछे पीछे आया और दोनों मंदिरकी दीवारपर चढ़कर खड़े हो गये।

युवक चौबीस पच्चीस वर्षका था, तो भी उसके मुखपर गांभीर्यकी छाया थी। वह स्वाभाविक गौरवसे पैर बढ़ाता था और कभी कभी अधैर्यके साथ क्षितिजकी ओर देखता था। थोड़ी देरमें सूर्योदय हुआ और सूर्यका सुनहरी बिंब ऊपर आया। प्रतिदिन दिखाई पड़ने पर भी अपूर्व और सुंदर लगते हुए इस बिंबको युवक पलभर देखता रहा, फिर उसने धीमेसे मंदिरके शिखरपर दृष्टि डाली और वह जहाज़की लहरमें उड़ती हुई ध्वजाकी ओर आनन्दसे देखता रहा।

उसने फिर अपनी नजर समुद्रकी ओर फेरी और उछलती हुई तरंगोंको संदेश सुनाता हो, इस तरह वह बड़बड़ाया।

" तरंग-भ्रूभंगा—"

" बापू ! " उस खलासीने कविताविलासी युवककी विचारमाला क्रूरतासे तोड़ डाली।

" क्यों ? "

" वह गया—" खलासीने हाथ लंबा करके आवाज़ लगाई।

" क्या ? "

" वह जहाज चट्टानपर चढ़ गया। देखिए डोल रहा है। "

" हाय, क्या होगा ? "

" टूटा —अररर—वह नीचे चला " खलासीने आधे शब्दोंमें कहा।

" यह भड़ौंचसे आ रहा था, वही जहाज है ? " युवकने पूछा।

" हाँ, बापू। "

" हाय हाय ! उस युवकने अपनी भौंहें सिकोड़ते हुए कहा। " नायक, इसमेंके सब मनुष्य बच जाने चाहिए। "

" भोलानाथ जो करें, सो ठीक। "

" अरे भोलानाथ तो करेंगे ही। " अधीरतासे पैर पटकते हुए युवकने कहा।

" तू दूसरे खलासी लेकर पहुँच, और जो उनमें योद्धा है, उसे जैसे बने वैसे मेरे पास ले आ। क्या देखता है ? " युवकने क्रोधसे पूछा।

" जा एकदम और बंदरपर हुक्म जारी कर दे कि जो कोई तैर कर आवे, उसे पकड़कर मेरे पास लाया जाय। "

" और यदि न आवे तो ? "

" तुम्हारे पास बाँधनेके लिए रस्सी है या नहीं ? " कटाक्षके साथ युवकने कहा। " जल्दी जा। "

दूसरे ही क्षण खलासी दौड़कर बंदरकी ओर गया और अन्य खलासियोंको इकट्ठा कर, डोंगियाँ खोलनेके कार्यमें जुट गया।

युवकने थोड़ी देर नायककी प्रवृत्तियोंपर ध्यान दिया। फिर डूबते हुए जहाजकी ओर देखा। अन्तमें भारी पैर वह मंदिरकी तरफ लौट पड़ा। उसके मुखपर निराशा स्पष्ट दीख पड़ती थी।

वह थोड़ा आगे बढ़कर फिर लौटा और फिर मंदिरमें पैठा। उसने फिर घंटा बजाया और गर्भद्वारके सामने जाकर साष्टांग दंडवत प्रणाम किया। "भोला-नाथ, अवहेलना की हो तो क्षमा करना।" उसने गद्गद् कंठसे प्रार्थना की।

चिंतातुर मुखसे वह उठा और मंदिरके बाहर जा अपने घोड़ेपर सवार हो डेरेकी ओर चल दिया।

३—वाग्भट

युवक धीरे धीरे अपने डेरेपर गया और पगड़ी उतारकर इधरसे उधर फिरने लगा। उसके मुखपर ग्लानि थी और थोड़ी थोड़ी देरमें वह कान लगाकर आनेवाले मनुष्योंकी आहट सुनता था।

जैसे जैसे समय बीतता गया वैसे वैसे उसकी अधीरता बढ़ती गई। आखिर उसने एक आदमीको बुलाकर घाटकी तरफ भेजा।

घड़ियोंपर घड़ियाँ बीतीं और युवकका मुख निस्तेज और निरुत्साह होता गया। होंठ दबाकर उसने अपने अधैर्यको दबाया और अंतमें निःश्वास छोड़ा। ऐसा लगा कि उसके जीवनकी आशा नष्ट हो रही है।

इतनेमें बाहरसे घोड़ोंकी टापें सुनाई दीं। युवक एकदम आगे आ गया। घोड़ोंपरसे नायक और एक अधेड़ उम्रके ऊँचे पूरे योद्धाको उतरते देख उसका मुख खिल उठा।

नायकके साथ आनेवाले योद्धाका मुख उसे तेजस्वी लगा। आँखोंमें चमक भी थी, किन्तु स्पष्ट नहीं दीखती थी, कारण योद्धा थका हुआ-सा लगता था। उसके चलनेके ढंगमें भी गौरव था। नाकको नुकीली कह सकते हैं; स्नायु भी सुदृढ़ दीख पड़ते थे। युवकको संतोष हुआ। वह बड़बड़ाया, "समरथ, मैं जीता तुम हारीं। अब तुम मेरी—"

परन्तु युवकका यह असंबद्ध प्रलाप अधिक न चला। उस योद्धाके वस्त्रोंसे पानी टपक रहा था।

"कौन भटजी?" उस युवकने आगे आकर पूछा।

उस योद्धाने कपालपर सिकुड़न डालते हुए सिर ऊँचा किया और "मुझे ये लोग यहाँ क्यों ले आये ?" जरा अभिमानके साथ पूछा। "क्षमा कीजिए भट्टराज," युवकने कहा। "जयसिंहदेव महाराजने आपका स्वागत करनेके लिए मुझे भेजा है और आपके जहाजको डूबते देखकर मैंने इस नायकको भेजा था।"

"तुम कौन हो ?" रौबके साथ योद्धाने पूछा।

"आपने मुझे नहीं पहचाना ?"

"याद नहीं आता कि कहीं मैंने देखा हैं।" योद्धाने कहा।

"मैं उदा मेहताका पुत्र बाहड़।" युवकने कहा।

"उदा मेहताके पुत्र वाग्भट ? भट्टराज और पंडित ?" धीमेसे उस योद्धाने कहा। वाग्भटको यह आडंबरके साथ बोलनेकी रीति रुची नहीं।

"जी हाँ, आप कपड़े बदल लीजिए। अब हम वंथलीकी ओर चलें।"

"मुझे आपके साथ नहीं जाना।"

"क्यों ?" वाग्भटने चकित होकर पूछा।

"मेरी मरजी।" योद्धाने कहा।

वाग्भटकी आशा भंग हुई। उसने काकभटकी इतनी प्रशंसा सुनी थी कि इस सचमुचके काकभटकी अपेक्षा उसकी कल्पनाका हजार दर्जे ज्यादा अच्छा था।

"आपको चलना ही पड़ेगा।"

"क्यों ?"

"महाराजकी आज्ञा है।"

"यदि न चलूँ तो ?" ज़रा विचित्रतासे हँसते हुए योद्धाने कहा।

"तो आपको ले जाना पड़ेगा। यहाँसे वंथली जानेका रास्ता नहीं है और मुझे खास आज्ञा की गई है।"

"तो ठीक है।" काकभटको एकदम कुबूल करते देखकर वाग्भटको कुछ ज्यादा अजीब-सा लगा।

"तो कब चलें ?" वाग्भटने पूछा।

"जब आप कहें तभी।"

"आप स्वस्थ हो लें, तब चलें।" विनम्र वाग्भटने कहा। उसका मन वंथली जानेके लिए उछल रहा था।

४—गिरनार

परन्तु जब वाग्भट काकको पकड़ सकनेके कारण अपनेको भाग्यशाली समझकर प्रसन्न हो रहा था, तब काक सरपट दौड़ते हुए घोड़ेपर जूनागढ़की ओर जा रहा था।

लाटी जाकर उसने खलासियों और दामाको वहीं छोड़ा और स्वयं तुरन्त चोरवाड़ गया। थोड़े समयमें ही चोरवाड़के मोती अहीर और काक दोनोंने जूनागढ़का मार्ग पकड़ा।

रात थी, तो भी वे प्रभाससे जूनागढ़ जानेके राजमार्गपरसे न जा सके। बड़े मार्गकी रक्षा पाटनकी सेना करती थी, वहाँसे जानेमें जोखिम थी, इस कारण वे लम्बा और टेढ़ा मेढ़ा रास्ता पकड़नेको लाचार हुए। सोरठके निर्मल आकाशके चमकते हुए तारोंके प्रकाशमें वे रास्ता काट रहे थे। परन्तु सोरठकी पानीदार घोड़ियोंको अंधकार और मार्गकी कठिनाइयोंकी परवा न थी। योजनपर योजन कटते चले जा रहे थे; तो भी मोती और काक अधीरतासे एड़ीका उपयोग किये जाते थे।

काठियावाड़ी घोड़ीपर जब पानी चढ़ता है, तब वह पंखोंवाली बन जाती है। उसके पैर थकते नहीं, उसकी साँस फूलती नहीं, उसे एड़की जरूरत नहीं होती। वह जानवर मिटकर वेगकी मूर्ति बन जाती है, उसकी स्थूल देह समीरकी सूक्ष्मता प्राप्त कर लेती है। इन वेगवती घोड़ियोंको अपनी इच्छा-शक्तिके साथ तन्मयता साधते देख काकको भी पानी चढ़ा। पौ फटनेपर जब उसने घोड़ियाँ ठहराईं तब क्षितिजपर गिरनार शोभा दे रहा था।

[illegible] परिचित हुए [illegible]के गिरनार खिलौना-सा लगता है और शंका उत्पन्न होती है कि वह पर्वत क्यों कहा जाता है। परन्तु समतल प्रदेशमें रहने-वाले गुजरातीके लिए गिरनार 'गिरिराज' है। नाचीज़ जंतुओंके बीच जैसे कोई मनुष्य वीर खड़ा हो, इस प्रकार सोरठकी समतल भूमिमें वह शोभा दे रहा है और सदियोंसे जनसमूहकी भक्ति आकृष्ट कर रहा है। आदर्श चक्रवर्ती [illegible]के पुत्रने इसकी छायामें शांति पाई, यादवपति कंस-मर्दन कृष्ण [illegible] के भयसे भागकर, इसकी शरण ली। पृथ्वीपर बुद्ध-धर्मके

विस्तार साधनको उत्सुक बने हुए देवप्रिय अशोक, आर्यावर्तमें हिन्दू संस्कृतिकी स्थापना करनेमें तत्पर हुए कुलभूषण समुद्रगुप्त और विदेशी होते हुए भी आर्य धर्मके गर्वसे मत्त बने हुए रुद्रदामन—इन तीन नरेशोंने इसे अपनी सत्ताका सीमादर्शक विजय-स्तंभ माना । 'चुड़ासमा' वंशकी सत्ताके स्थापकने भी इसकी अभेद्यताकी सहायता लेकर सोरठके साम्राज्यकी स्थापना करनेका प्रयत्न किया और इसकी प्रेरणासे प्रबल बना हुआ खेंगार पाटनकी सर्वविजयी सत्ताको वर्षों तक छकाता रहा ।

निर्वाणकी खोजमें लगे हुए नम्र और विशुद्ध बौद्ध भिक्षुओंके शान्त और स्थिर पद-चिह्न, संस्कारोंके विजयकी निरंतर साधना करनेवाले और आर्य धर्मकी धुरी वहन करनेवाले ब्राह्मणोंके निडर निश्चित चरण-चिह्न, हिंसाके मोहमें पागल बनी हुई मनुष्य-जातिको अमारी (=अहिंसा) धर्म सिखानेके लिए व्याकुल जैन साधुओंकी सहनशीलताकी छायासे शोभित पाद-चिह्न—पवित्रताके ये सब पादस्पर्श वहाँ पत्थर पत्थरपर दिखलाई देते हैं और तब ध्यानसे देखनेपर दो पंक्तियाँ और भी नजर पर चढ़ती हैं ।

एक छोटी और सुडौल—नर-केसरियोंकी खिसकती हुई वीरताको सुकुमार हाथोंसे टिका रखनेवाली सतीश्रेष्ठ राणककी और दूसरी बड़ी और कठिन—जिसके बाल-हृदयमें उत्पन्न हुई सन्त जीवनकी शुद्धि, भक्तियोगकी महत्ता और साहित्यप्रेमकी रसिकता—इस त्रिवेणी संगमके प्रतापसे गुजरातकी रसाल भूमि फिरसे रसाल हुई उस कृष्णविट्ठल नागरकी ।

किन्तु काकके पास इन सबका विचार करनेके लिए न समय था और न शक्ति, उसके खयालमें तो गिरनारका अर्थ था, उसके मित्र खेंगार-केसरीकी गुहा और अपने प्रवासका लक्ष्य-स्थान ।

सूर्योदय होने लगा और गिरनारके शिखर राखका रंग छोडकर ज़रा ज़रा स्वर्णके तेजसे चमकने लगे । पर्वतका शिखर बनाते बनाते विश्वकर्माने मानो गढ़ बना दिया हो, ऐसा जूनागढ़ दिखाई पड़ा ।

"मोती," काकने पूछा ।

"बापू !"

"हम जूनागढ़ कब पहुँचेंगे ?"

"बापू, अभी पहुँच जाते, परन्तु यहाँ पट्टनियोंकी निगरानी कुछ ज्यादा

है। इसलिए जल्दबाजी ठीक नहीं। शाम तक पहुँच जायँगे।"

दोनों थोड़ी देर चले और फिर घोड़ियाँ छोड़कर एक वृक्षके नीचे दो घड़ी विश्राम लेनेके लिए बैठे। परन्तु उनके भाग्यमें थकान मिटानेके लिए अधिक समय न था।

"बापू, उठिए, घोड़ी पलानिए।"

"क्यों?"

"वह देखिए धूल उड़ती नज़र आ रही है, कोई आया।"

काकने देखा, कुछ दूरीपर धूल उड़ती दीख पड़ी। उसने तुरंत घोड़ी कसी और दोनों फ़ुर्तीसे टेढ़े मेढ़े रास्ते चलने लगे। वे सारे दिन इस तरह गाँवोंसे और बड़े रास्तेसे दूर चलते रहे। शाम होनेके पहले वे गिरनार आ पहुँचे।

"बापू, अब बेफ़िक्री हुई। इस मार्गपर अब कोई नहीं मिलेगा।"

"क्यों?"

"इस रास्तेका पता तो केवल मुझे ही है।"

"काकने चारों तरफ देखा। मोती, अब मेरी आँखोंमें पट्टी बाँध दे।"

"क्यों?" मोतीने चकित होकर पूछा।

"मैं दुश्मनका आदमी हूँ। मुझे इस मार्गकी जानकारी न हो, यही ठीक है।"

मोतीने मानके साथ काकको देखा और एक धज्जी लेकर उसकी आँखोंपर पट्टी बाँध दी। काकने नाम मात्रको लगाम साध रखी और उसकी चतुर घोड़ी परिचित पथपर वेगसे अहीरकी घोड़ीके पीछे पीछे चलती गई। रास्तेमें कदम कदमपर चढ़ाई और उतार आते और कितनी ही बार घोड़ी एकदम खड़ी रह जाती। एक बार वह चौंकी। पट्टीमेंसे काकको लगा कि चारों तरफ अंधकार हो गया है। थोड़ी देरमें मोती बोला, "बापू, उतरिए। गढ़ आ गया।"

"ऊपर पहुँचे बिना पट्टी नहीं खोलना।"

"जैसी आपकी मरज़ी।"

मोती कुछ दूरतक काकका हाथ थामकर ले गया। वहाँ कोई खड़ा था। मोतीने उसके साथ कुछ बातें कीं और फिर वह काकका हाथ पकड़े पत्थरकी सकड़ी सीढ़ियोंपर चढ़ने लगा। कदम कदमपर मोती सावधानीसे चढ़नेके लिए

काकको सूचित करता जा रहा था। देरतक चढ़नेके बाद ऐसा लगा कि गढ़में आ पहुँचे। मोतीने तुरंत पट्टी खोल दी।

चारों ओर अंधकार था। कभी कभी मशालका मन्द प्रकाश दिखकर अदृष्ट हो जाता था। इस अँधेरेमें मोती काकको तेजीसे ले गया। थोड़ा चलकर महलके पिछले द्वारसे वे घुसे और मोतीने एक आदमीके कानमें कुछ कहा। वह तुरंत ऊपर पहुँचकर लौटा और काकको लिवा ले गया। महलकी छतके एक छोरपर काकको खड़ा करके वह चला गया।

रात अँधेरी थी। फिर भी तारोंके मन्द प्रकाशमें काकने चारों दिशाओंकी पुस्तिका पढ़ डाली। थोड़ी दूर जूनागढ़से सैनिकोंकी हुंकार और वेदनाकी चीख स्पष्ट सुनाई पड़ती थी। कोटकी खाईसे दूर घोड़ोंकी हिनहिनाहट अथवा क्वचित् उत्साहभरी पुकार, पट्टणी और सोरठी सेना किस जगह लड़ रही है यह दिखा देती थी। आसपासके अंधकारमें दीपकोंके प्रकाशसे निराली पड़ती विजयी सेनाकी छावनी वंथली तुरत दिख जाती थी। चारों तरफ जगह जगह निकलनेवाली आगकी लपटें और धुआँ परदेशियोंके किये हुए अत्याचारकी साक्षी दे रहे थे। सबसे अलग, अँधेरेमें भी अँधेरा लगता गिरनार सबपर अपना भयंकर प्रभाव डाल रहा था और इस सब सामग्रीमें कुछ दूर गुफामें होती हुई केसरीकी गर्जनाकी गंभीर प्रतिध्वनि उस त्रासजनक वातावरणको और भी त्रासजनक बनाती थी। काक विचारमग्न होकर देखता रहा और मन ही मन उसने जूनागढ़के दुर्जय खेंगारकी अडिग वीरताको अर्घ्य दिया। पीछेसे कोई दौड़ता हुआ आया—"कौन काक?" आगन्तुककी आवाज़ आई।

काकको आवाज़ परिचित लगी परन्तु वह आगन्तुकको देख सके, इसके पहले ही उसने उसे बाहोंमें भर लिया।

काक चौंका और पहिचानते ही बोला, "कौन, रा?"

५—शक्तिशालियोंकी निर्बलता

राणकदेवीके बदले रा' क्यों आये, उन्होंने उसे यहाँ किसलिए बुलवाया, रा' क्या काम सौंपेंगे, ऐसे विचारोंकी अनेक तरंगें काकके हृदयमें उठीं। रा' की

भेंट पूरी हुई और उसने उन्हें ध्यानसे देखा। देखकर उसके मस्तिष्कके आगे पंद्रह वर्ष पहले देखा हुआ खेंगार खड़ा हो गया। उसका छरहरा सशक्त शरीर ज्योंका त्यों था। सोमसुंदरीके प्रणयीके रूपवान् अंगोंपर इस समय केवल बख्तर और पट्टे थे। उसके सिंह जैसे भव्य मुखपर सुन्दर दाढ़ी शोभित थी और घावोंकी दो रेखायें उस भव्यताको अनुपम शोभा प्रदान कर रही थीं। उसकी आँखोंमें निश्चल और अस्वाभाविक तेजस्विता दीख पड़ती थी। उसका हास्य तो पहले जैसा ही मोहक था।

"काक, तुम आये!" खेंगारने खोखले स्वरमें कहा।

"महाराज!" काकने बहुत ही सम्मानपूर्वक कहा, "मुझे आपने बुलाया?"

"धीरे धीरे।" खेंगारने कहा "हाँ, मैंने बुलाया था।"

"मुझे तो महारानीजीका संदेश मिला था।"

"नहीं, वह मैंने भेजा था।"

"परन्तु मणिभद्र तो कहता था कि मैं महारानीजीसे मिलकर आया हूँ।"

"वह कुछ पागलसा है। मैंने दूसरी रानीके द्वारा कहलाया था, परन्तु उस भंगेड़ीने समझ लिया कि वह राणकसे ही मिला है।"

"ऐसा किसलिए किया?" काकने पूछा।

"इसके बिना तुम न आते।"

"नहीं, आपने भी कहलाया होता तो मैं आता।"

"क्या पाटनकी चाकरी छोड़ दी?" खेंगारने जरा तिरस्कारसे पूछा।

"नहीं, अभीतक नहीं छोड़ी। कलकी बात शंभु जाने।"

"क्यों, क्या तुम्हारे मालिक फिर खफ़ा हो गए?" कृष्णदेवने जरा हँसकर पूछा। उसके हास्यमें पहले जैसा ही मज़ाकका सुर था।

"महाराज, अपनी पीड़ा मैं भोग लूँगा। परन्तु आपका क्या हाल है? मुझे क्यों बुलाया है?"

खेंगारने सावधानीसे चारों तरफ देखा और बहुत ही धीमे स्वरमें कहा, "काक, मुझे तुम्हारी मददकी जरूरत है।"

"मैं हाज़िर हूँ।"

" मुझे पाटनसे संधि करनी है। "

" सं—धि ! " काकके मुँहसे आश्चर्यके साथ निकल गया।

" धीमे बोलो, कोई सुन लेगा। काक, तुम्हें यह अजीब-सा लगे, इसमें क्या नई बात हुई ? " शांत और मजाकिया स्वरमें खेंगारने कहा।

" खेंगारने जयदेवको पंद्रह वर्ष तक तंग किया और अब भी जूनागढ़के कंगूरे अखंड हैं। तब सोरठका रा' संधिकी याचना किस लिए करे ? "

" मैं भी यही पूछता हूँ। " काकने कहा।

" काक, किसी रा'ने कभी सिर नहीं झुकाया और जूनागढ़में कभी किसी विजेताका स्वागत नहीं किया गया, इस लिए संधिकी बात कहते मेरे प्राण काँपते हैं। गतवर्ष मुंजालने मेरे पास संधिका संदेश भेजा था, तब मैंने संधिका संदेश लानेवालेको गधेपर चढ़ाकर घुमाया था। "

" तो अब क्यों ? "

खेंगारके अंतरमेंसे एक निःस्वास निकल पड़ा। " भाई, तब मुझे खयाल न था कि जयदेव खुद चढ़ाई करेगा। "

काक आँखें फाड़कर देखने लगा। क्या खेंगार जैसे टेकीले वीरके हृदयमें कायरता आ गई है ?

" इससे क्या ? "

" इससे क्या ? काक, मैं टेकीला राजपूत हूँ और किसी टेकीले राजपूतसे मैं कभी डरा नहीं। परन्तु तुम्हारा जयदेव न टेकीला है और राजपूत भी नहीं है। " खेंगारने कडुआहटसे कहा।

" महाराज, मैं यह न समझ सका। "

" काक, जयदेवने चढ़ाई की है परन्तु जूनागढ़ लेनेके लिए नहीं। " कटाक्षभरे स्वरमें खेंगारने कहा।

" तो ? "

" वह राणकको वापस लेना चाहता है। "

काक ज़रा पीछे हट गया। " क्या आप पागल हो गये हैं ? "

" नहीं, उसकी दृष्टि तो वहीं है। उसे राजपूतोंको टेककी क्या परवाह ? वह मनुष्य ही कहाँ है ? राक्षस और पिशाचकी हिम्मतसे जो राजपूत जूझे, उसे मनुष्य कैसे कहा जाय ? "

" बावले भूतकी बात कह रहे हैं ? "

" तुम्हारे महाराजकी हर एक खूबी निराली है। बावला भूत उसकी सेवामें है, यह तो समझा परन्तु जबसे वह वंथली आया है तबसे तो स्वयं बावला भूत बन गया है। ग्रामोंमें आग लग रही है। चारों ओर लोग त्राहि त्राहि पुकार रहे हैं। बाप-दादे जो यवनोंको दन्तकथाओंमें कहते थे वही सब चल रहा है। मुझसे मेरी गरीब प्रजापर बरसता हुआ यह कहर नहीं देखा जाता। इसलिए इसकी अपेक्षा उससे संधि करके नाक कटा लेना अधिक अच्छा लगता है। "

" महाराज, आप सारे कुलके कलंकरूप बन जायँगे। "

" हाँ, परन्तु अपनी रंक प्रजा और राणकको बचा लूँगा। "

" महाराज, संधि करना मुझे तो अच्छा ही लग रहा है। लाटका विग्रह भी मैंने इसी प्रकार शांत किया है। परन्तु जयदेव महाराज मानेंगे या नहीं, यह सवाल है। " काकने कहा।

" उससे भी बड़ी कठिनाई एक और है ? "

" वह क्या ? "

" राणककी। "

" राणक महारानीकी ? " काकने पूछा।

" हाँ। काक, तुम्हें खास तौरपर बुलानेका हेतु तो उसे ही समझाना है। राणक स्त्री नहीं—जगदंबाका अवतार है। लोग मुझे यश देते हैं परन्तु जूनागढ़ आज टिका हुआ है तो केवल उसीके प्रतापसे। उसके उत्साहसे ही हम जी रहे हैं। उससे संधिकी बात कर कौन सकता है ? "

" आपने उनसे बात नहीं की ? "

" नहीं, उससे बात करनेकी हिम्मत नहीं होती। काक, वह न होती तो मैं कभीका पामाल हो गया होता और जूनागढ़ सर होकर मैदान हो जाता। परन्तु राणक देवीकी हिम्मतने ही मुझे खड़ा रखा है। अब उसके दृढ़ संकल्पके विरुद्ध कौन जाए ? केवल तुम्हीं उसे समझा सकते हो। "

" परन्तु मेरी कैसे मानेंगी ? "

" कदाचित् मान ले। तुम्हारे लिए उसके हृदयमें बड़ा मान है और मुझे तुमपर बहुत श्रद्धा है। "

काक हँसा। "जो सती तुम्हारा कहा न माने, वह मेरा मान लेगी?"

"काक, मेहनत तो कर देखो। मुझे अपनी मौतका डर नहीं है और राणकको भी मौतका डर नहीं है, परन्तु मैं खेत रहूँ और वह तुम्हारे महाराजके हाथों चढ़े—" खेंगारके शरीरमें कपकपी आ गई, यह काकने देखा।

"महाराज, आप काम तो मुझे बड़ा मुश्किल सौंप रहे हैं।"

"क्यों?"

"राणकदेवींसे कुलको लजानेकी बात कहना और जयदेव महाराजका क्रोध रोकना—ये दो काम त्रिपुरारि भी नहीं कर सकते, तो मुझसे कैसे होंगे?"

"मुझे विश्वास है कि होंगे तो तुमसे ही होंगे।"

"परन्तु महाराज, महारानीजीको अपने यहाँ आनेका कारण क्या बतलाऊँ?"

"कहना कि मुझे सलाह लेनेके लिए बुलवाया है।

"ठीक। कहाँ हैं?"

"अभी आवेगी। तुम स्नान करके कुछ खा पी तो लो। चलो अपने केवल मुँहपर ढाटा बाँध लो।"

"जो आज्ञा" कहकर काक ढाँटा बाँधकर राके पीछे पीछे चला।

६—राणक देवड़ी

काकने भोजन किया और खेंगार उसे रनवासमें ले गया। कमरा छोटा और अँधेरा था। एक बड़े दीएका प्रकाश उसमें फैल रहा था और पाँच सात स्त्रियाँ बैठी हथियार साफ कर रही थीं। एक ओर आलेपर अंबा भवानीकी मूर्तिके सामने घीका छोटा दिया जल रहा था।

स्त्रियाँ सभी काले वस्त्रमें थीं। एक छोटी-सी दीखनेवाली स्त्री दीएके पास बैठी बैठी एक ढालपर पड़े रक्तके छींटे साफ कर रही थी। वह धीरे धीरे कुछ गा रही थी, और शेष स्त्रियाँ उसे धीमे धीमे दुहराती थीं। गीत भी कुछ असामान्य था। गानेवाली जमराजसे कह रही थी कि कल आना, कारण कि आज तो मेरा कन्त वैरीको मारने गया है। ऐसा लगता था मानो योगिनियाँ

खप्पर धारण करनेके पहले तैयारी कर रही हैं। कमरेमें गांभीर्य अपार्थिव था। रा' और काक धीरे धीरे आए और काकके अन्तरमें अनजानते ही पूज्यता फैल गई। उसे लगा कि एक प्रकारका दैवी और दम घोंटनेवाला वातावरण प्रसारित हो रहा है।

"दे!" खेंगारने धीरेसे और सम्मानसे कहा।

रा'की आवाज सुनकर आसपासकी बैठी स्त्रियाँ चौंकीं और रा'को पहचान उतावलीसे घूँघट काढ़तीं, वस्त्र सँभालतीं चली गईं। दीएके सामने बैठी छोटी स्त्रीने कामसे हाथ रोककर ऊपर देखा। दीपके प्रकाशमें वह मुख देखकर काकको विश्वास हो गया कि इस स्त्रीको डिगाना असंभव है।

मुख नन्हा-सा और सूखा हुआ था। ऐसा लगता था कि किसी समय सुंदर होगा, और इस समय काली साड़ीकी किनारीसे अद्भुत रीतिसे मढ़ा हुआ था। उसके होठोंमें निश्चलता और आँखोंमें तेजस्विता थी। इसके सिवाय उस मुखपर ऐसी गहनता थी जो न समझी जा सके और न सही जा सके। उसके आसपास फैला हुआ तेज दुःसह था। यमराजको धमकाती सावित्री अथवा वेणी-संहार करनेको उत्सुक द्रौपदीके मुखके तेज सर्वदाके लिए यहाँ आ बसे हों, ऐसा लगता था। जिस प्रकार कमरेका वातावरण अपार्थिव था उसी प्रकार यह तेज भी अपार्थिव था। काकका हृदय स्वाभाविक स्वस्थता न रख सका। उसने इस स्त्रीको साष्टांग प्रणाम कर लिया।

राणक देवीने काकको नहीं पहचाना, परन्तु खेंगारको देखकर वह उठ बैठी। उसका नन्हा सा शुष्क शरीर धनुर्दण्डकी तरह झुका, और उसके मुखपर अवर्णनीय भक्तिकी स्मित रेखा रम गई।

"पधारिए महाराज!" उसने ससम्मान स्वागत किया। उसके स्वरमें दबाये हुए भावका कंपन था। खेंगार स्पष्ट दीखती हुई भक्तिके साथ बैठ गया।

"यह कौन है?"

"महारानीजी, मुझे नहीं पहचाना?" कहकर काकने मुँहका ढाटा खोल डाला।

"कौन भाई काक?" आँखें ज़रा फैलाकर राणकने कहा।

"हाँ।"

राणकदेवीकी गहन आँखोंकी गहराईमेंसे भी किरणें फूट पड़ीं। "तुम यहाँ?" उसके स्वरमें कुछ शंका थी।

"महारानी," काकने कहा। "मैं जयदेव महाराजका भेजा हुआ नहीं आया, मुझे तो इन महाराजने बुलवाया है।"

"क्यों?" उसने अपने पतिकी ओर फिर कर पूछा।

"मुझे इनसे सलाह लेनी थी।"

"किस सम्बन्धमें?" उसने पूछा।

"महाराजको मैंने सलाह दी है कि पाटनके साथ संधि कर ली जाय। नहीं तो जूनागढ़ बरबाद हो जायगा।" काकने राणकदेवीकी ओर देखकर कहा।

राणकके मुखपर अजीब परिवर्तन हुआ। मानो किसीने अपमान किया हो, किसीने तमाचा मार दिया हो, इस प्रकार उसका फीका सफेद मुँह लाल हो गया और उसके मुखपर भग्न गौरवकी स्पष्ट लिपि पढ़ी जाने लगी। खेदके साथ वह ज़रा पीछे हटी, घूमकर फिर खेंगारके सामने देखती रही और धीमे काँपते स्वरमें बोली—

"मेरे रा' जयदेवके साथ किसलिए संधि करें?" और सपनीली आँखोंसे काककी ओर देखने लगी।

उसकी आवाजमें तिरस्कार न था, उपालंभ न था, तो भी काकको तिरस्कार और उपालंभ दोनों मिले। इस एक प्रश्नमें इस अपार्थिव स्त्रीकी अप्रतिम मृदुता, उसकी पतिभक्ति, उसके पतिके आसपास निर्मित स्वप्न उसे दिख गये। इस स्त्रीके खयालमें खेंगार मनुष्य न था, दुर्जय देव था और उस देवकी वह पूजा करती थी। खेंगार और काक दोनोंने एक दूसरेकी ओर देखा। इस नजरमें काकने अपने प्रयत्नकी निष्फलता स्वीकार की। फिर भी काकने एक बार और प्रयत्न करनेका निश्चय किया।

"महारानीजी, प्रजा पीड़ित है और सारा सोरठ वीरान होता जा रहा है। किसी न किसी प्रकार जूनागढ़की रक्षा होनी चाहिए।"

"काक," एक गहरा स्वास लेकर देवड़ी बोली। "यदि मेरे रा' खड़े रहे, तो कल सबेरे पीड़ित प्रजा सुखी होगी और उजड़ते हुए सोरठमें हरियाली छा जायगी।"

" परन्तु भगवान न करें, यदि जूनागढ़ पराजित हो गया तो—"

" तो महाराजका क्या होगा, यही तो ? " देवड़ीने धीमेसे कहा, " काक, मेरे रा' कभी नहीं झुके और आगे भी झुकनेके नहीं। जैसा यह गिरनार वैसे ही रा' खेंगार। दोनोंमेंसे एक भी झुकने और डिगनेवाला नहीं।"

" महारानी, भगवान् भोलानाथ आपका मनोरथ पूर्ण करें।" आँखोंमें पानी झलक आया था उसे पोंछते हुए काकने कहा। " परन्तु महाराज यदि संधिका विचार करें तो—" उसने रा' की ओर देखकर कहा।

देवड़ी चौंकी और फिरसे पीछे हटी। उसने पीछे दीवारपर हाथ टेक दिए और एक दृष्टि रा' की तरफ डाली। उस दृष्टिपातमें अनिवार्य वेदना थी। जैसे कोई उमंगभरी वधू, पतिका प्रथम दर्शन करने गई हो और शय्यापर पतिकी जगह उसके शवको देखे, और तब वह जैसा आक्रन्दन करती है वही इस दृष्टिपातमें दिखलाई पड़ा। उसकी स्वप्न-सृष्टिका प्रलयकाल आ गया है, ऐसा भय भी उस दृष्टिमें था।

" महाराज !" फीके होठोंसे वह खेंगारकी ओर फिरी परन्तु उससे बोला न गया।

खेंगारने पंद्रह वर्ष इस देवीके चरणोंमें व्यतीत किये थे। उसकी भक्ति, श्रद्धा और स्वप्नोंसे वह पूर्ण परिचित था। अपनेमेंसे देवड़ीकी श्रद्धा डिगे, उसके स्वप्नोंका पति उसे अर्पित की हुई मानवतासे गिर जाय, इसकी अपेक्षा तो सारा जगत जलकर भस्म हो जाय, यह देखनेके लिए वह राजी था।

वह काककी तरफ देखकर हँसा, और उसकी सिंहके समान भव्य मुखमुद्रापर आत्मश्रद्धा फिरसे प्रकट हुई।

" काक, देवड़ी ठीक कहती है। जीता या मरा हुआ खेंगार रा' तो यहीं खड़ा रहेगा—गिरनारके समान निश्चल और दुर्जय।"

राणकके मुखपर प्रसन्नताकी छाया प्रसरित हुई, उसकी प्रेमसिक्त आँखें पतिपर ठहर गईं।

" काक, तुम्हारी मेहनत बेकार है।" उसने कहा, " मेरे रा'की सर्वदा ही विजय है।"

यह नन्हें बच्चे जैसी अडिग श्रद्धा देखकर काकके खेदकी सीमा न रही।

" परन्तु—परन्तु—फिर—तुम्हारा—"

" मेरा ! " जैसे कोई मामूली बात कहती हो, राणकने कहा ।

" मेरा क्या होना था ? इस भवमें या—" उसके कंठमें जरा खरखराहट आ गई ।

" जहाँ ये वहाँ मैं । मेरे बिना इन्हें विजयमाल कौन भेंट करेगा ? " उसने हँसकर कहा ।

काककी आँखोंसे टपाटप आँसू गिरने लगे ।

" महारानी, तुम साक्षात् योगमाया हो । "

" भाई, मैं तो अपने रा'के पैरोंकी धूल हूँ । " सरलतासे देवड़ीने कहा ।

" काक, " खेंगारने हँसकर बात बदली । " सब आभार तुम्हारा मानना चाहिए । "

" क्यों ? "

" तुम न होते तो मेरी देवड़ी मुझे न मिलती । "

" और महाराज, इस कलियुगमें भी देवताको देवीके साथ योजित करनेका यश मुझे मिलेगा, यह मैंने कभी स्वप्नमें भी नहीं सोचा था। मैं तो निर्जीव सैनिक हूँ—आपके जैसी दृढ़ टेक मैं कभी नहीं रख सका। परन्तु इस योगमायाके सामने मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो जोड़ी मैंने जोड़ी है उसे अपने जीवित रहते ब्रह्माको भी नहीं तोड़ने दूँगा। महाराज, निश्चिन्त जीते रहो और विजय प्राप्त करो। " वह और खेंगार दोनों फिर एक दूसरेके गले लग गये।

" काक, तुम कब आये ? भोजन किया ? " देवड़ीने पूछा।

" हाँ महारानीजी। "

" और तुम्हारी स्त्री कैसी है ? " उसने प्रेमसे पूछा।

" महारानीजी, मैंने और आपके रा' दोनोंने एक ही साथ शंकर-पार्वतीका पूजन किया था। "

" चलो, मंजरी भी तो हमारे जूनागढ़की ही है। "

" हाँ। महारानीजी, अब आप बैठिए। महाराज, आप मुझे आज्ञा दे दें, तो मैं चल दूँ। "

" रात यहीं काटकर जाना। तुम थक गए होगे। सवेरे जूनागढ़ देखकर जाना। "

" महाराज, मुझे रातोंरात वंथली जाना है। जूनागढ़ मुझे नहीं देखना है। जूनागढ़पर हमला करनेका काम मुझे ही सौंपा गया तो ? "

"काक, तुम्हारी जोड़ी मैंने देखी नहीं।" खेंगारने कहा। "तुमने मेरी बात मानी होती और जूनागढ़ आ बसते, तो हम दोनों क्या न कर सकते?"

"महाराज, आपकी टेक और शौर्य देखकर तो मेरा भी मन ऐसा ही होता है। परन्तु सोरठकी टेक जैसी आपको प्यारी है लाटकी टेक मुझे भी वैसी ही प्यारी है। अच्छा महारानीजी, मुझे आज्ञा दीजिए।"

"भाई, मेरा आशीर्वाद।" राणक देवड़ीने कहा और जाते जाते काले वस्त्रोंसे शोभित इस अप्रतिम स्त्रीके फीके मुखकी ओर उसने एक नजर डाली और अन्तरसे प्रणाम कर खेंगारके साथ वह बाहर निकला।

बाहर निकलते ही उसने फिर ढाटा बाँध लिया। "महाराज, कोई चिन्ता न कीजिए। अभी जूनागढ़की कंकरी भी नहीं खिरी है। जयदेव महाराज मनस्वी पुरुष हैं और इस लिए कुछ नहीं होनेका।"

"तुम्हें जूनागढ़ लेनेका भार सौंपे तो?" खेंगारने शान्तिसे और मजाकमें पूछा।

"मुझे जूनागढ़ लेनेका काम कोई नहीं सौंपेगा, और जैसा आप कहते हैं कोई सौंपे, तो मै लूँगा नहीं।"

"नहीं, लेना। तुम्हारे हाथों मृत्यु मिले तो मुझे चैन है। मुझे मृत्युका ज़रा भी डर नहीं।"

"तब महाराज, मृत्युके पश्चात्का ज़रा भी डर न रखिए। मुझे तो डर एक ही है कि कल सवेरे मेरा क्या होगा, कुछ समझमें नहीं आता।"

"काक, तुम्हारा कोई कुछ नहीं कर सकता। मैं भी पाटनकी बातें सुना करता हूँ। तुम्हारा बाल बाँका करनेकी वहाँ किसीमें हिम्मत नहीं।"

"देखिए।"

"लो, वह मोती खड़ा है। मोती, इन्हें वंथलीके मार्गपर छोड़ आ।"

"जो आज्ञा।" कहकर मोती काकको ले गया।

७–काकका सन्देह

जानेसे पहले काकने रा'के साथ बहुत बातें कीं और अन्तमें भारी हृदयके साथ वह मित्रसे जुदा हुआ। राणकदेवीके व्यक्तित्वका काकपर बड़ा असर हुआ। इस प्रतापी स्त्रीने अपने वीर पतिपर और समस्त जूनागढ़पर अपने सपनोंका ऐसा जादू चलाया था कि अब वह जादू कोई तोड़ न सकता था। राणक-खेंगारका स्वप्न और गौरव कायम रहे और पाटनकी विजय हो, ये दोनों बातें किस प्रकार हों इसका गहरा विचार करता हुआ वह जूनागढ़से बाहर निकला।

मोती उसे लंबे रास्तेसे गिरनारकी दूसरी ओर ले गया और वहाँ उसकी आँखोंकी पट्टी खोल देनेके बाद दोनों तेजीसे वंथलीकी ओर जाने लगे। मेंदरडाकी तरफ़ सोरठी और पट्टनी सेनाकी मुठभेड़ें कितने ही दिनोंसे हो रही थीं, इसलिए उससे दूरका रास्ता उन्होंने पकड़ा। इस तरफ़ थोड़ी थोड़ी दूरीपर जूनागढ़की चौकियाँ या थाने मिलते थे। परन्तु मोती अहीर सब अमलदारोंसे परिचित था, इस लिए उसे देखते ही कोई काकके सम्बन्धमें पूछताछ नहीं करता था। यात्रा ज़रा उबा देनेवाली थी। रास्ता ऊँचा नीचा था और खाइयाँ भी बीच बीचमें आती थीं, इसलिए वे तेजीसे नहीं चल सकते थे। कभी कभी मार्गमें पड़े हुए मुर्दे देखकर घोड़ियाँ भड़क उठतीं थीं।

थोड़ी देरमें वे एक टेकरीपर जा पहुँचे। वहाँ वे विश्राम लेनेके लिए ठहरे। टेकरीके नीचे एक छोटी चौकी थी और वहाँ थोड़े सैनिक एक अलावके आसपास बैठे थे।

एकदम टेकरीके दूसरी ओर घोड़ोंके पैरोंकी आवाज़ सुनाई दी। मोती और काक दोनोंने ध्यानसे उस तरफ देखा। एक काली छाया तेजीसे चौकीकी तरफ़ बढ़ रही थी, और दूसरी धीरे धीरे वंथलीकी ओरके जंगलमें पैठ रही थी। अहीरने सन्देहसे चारों तरफ देखा और शिकारी कुत्तेकी तरह सूँघना शुरू किया। काक तेजीसे आते हुए घुड़सवारकी ओर एकाग्रतासे देखता रहा।

"तुम्हारे चौकीदार चौकी करते हों, ऐसा नहीं लगता।"

"बापू, कोई परिचित आदमी होगा, नहीं तो जूनागढ़की चौकीमेंसे चिड़िया भी नहीं जा सकती।"

" चलकर देखना चाहिए।" कहकर काक टेकरीसे उतरकर चौकीकी ओर गया। मोती भी उतरा। वह घुड़सवार चौकीके सामने आ पहुँचा था और चौकीदार खड़े होकर उसके घोड़ेके पास पहुँच चुके थे। घुड़सवारने भी ढाटा बाँध रखा था। मोती चंचल था, उसने तुरन्त घुड़सवारको पहचान लिया और सामने आकर नमस्कार किया। " देशलदेव बापू, घणी खमा।" चौकीदार और घुड़सवार दोनों चौंके, इस तरफ काक भी चौंक पड़ा। देशलदेवको वर्षों पहले उसने देखा था और यह भी उसने सुना था कि अब वह और उसका भाई वीसलदेव दोनों खेंगारके पक्षमें हैं। इस समय उसका मिलना काकको नहीं रुचा।

" कौन मोती?" चकित होकर देशलदेवने पूछा। देशलदेव और मोतीको पहचानकर चौकीदार जरा दूर हट गये। काक भी दूर खड़ा रहा।

" हाँ, बापू। परन्तु आप यहाँ कैसे?"

" मैं चौकियोंकी जाँच करने निकला हूँ।"

" ठीक।" नम्रतासे मोतीने कहा।

" एक आदमीको अपनी चौकीके बाहर पहुँचाना है।"

देशलदेवने संदिग्ध होकर काककी ओर देखा। " कौन है?"

" महाराजका आदमी है।"

" परन्तु है कौन? " अपना घोड़ा मोतीके घोड़ेके पास लाकर देशलदेवने धीमेसे पूछा।

" मुझे मालूम नहीं।"

" ऐसा कहीं हो सकता है?" देशलदेवने हँसकर पूछा।

" हाँ, नहीं तो आपको बतानेमें क्या हर्ज था?"

" खड़े रहो। पूछ लूँ।"

" नहीं बापू, महाराज नाराज होंगे।" मोतीने कहा।

" अरे ओ! यहाँ आ।" देशलदेवने काकको अपने पास बुलाया। काक घोड़ी ज़रा आगे लाकर खड़ा हो गया। " तेरा नाम क्या है?"

काकने चुपचाप मोतीकी ओर अंगुलीसे संकेत किया।

" आप इनसे कुछ न पूछिए। हम जाते हैं, हमें देर हो रही है।"

" यह कैसे हो सकता है ? मुझे जानना चाहिए। " देशलने जरा गुस्सेसे कहा। " नहीं तो चलो फिर महाराजके पास। "

" बापू, मोती अहीरपर भी विश्वास नहीं है ? "

" आजकल किसीका भी विश्वास कामका नहीं। " देशलने कहा। मोतीका मुँह गुस्सेसे लाल हो गया। काकने देखा कि यहाँ अधिक झक-झक हुई, तो गड़बड़ हुए बिना न रहेगी। उसने घोड़ीको एड़ लगाकर आगे किया।

" महाराज " बनावटी आवाजमें काकने कहा। देशल और अहीरने ऊपर देखा। काक अपनी घोड़ी देशलके घोड़ेके पास ले गया और नीचे झुका। देशल उसकी तरफ फिरा।

" महाराज, जिनसे आप अभी अभी मिले हैं, मैं उन्हींका आदमी हूँ। " काकने देशलके कानमें कहा।

देशल चौंका, फीका पड़ गया और उसकी घबराहट देखकर घोड़ा भी उछलने लगा।

" चल मोती, " काक ने कहा और वह और मोती दोनोंने घोड़ियोंको एड़ मारकर दौड़ा दिया। देशल अपना साफा सँभालता हुआ खड़ा रह गया।

" बापू, आपने खूब किया "। मोतीने कहा।

" यह तो मेरा पुराना मित्र है। " काक बोला। " मोती, अब तू जा। वंथली सामने दिख रही है। मैं अपने आप चला जाऊँगा। "

" कहीं भूल गये तो ? "

" अरे कैसी बात करता है ! और देख महाराजसे कहना कि मुझे संदेशा भेजना है, इसलिए बुधवारको तुझे यहाँ भेजें। यदि कुछ कहलाना होगा तो मैं उस दिन आधी रातको इस जगह आ जाऊँगा। महाराज और महारानीसे मेरा ' जय सोमनाथ ' कहना। "

" जो आज्ञा ! " कहकर मोतीने घोड़ी लौटा दी। " बन सके तो इस बापुड़ीको वापस भेज देना। बड़ी अच्छी घोड़ी है। अच्छा बेटी, जाता हूँ। " अहीरने घोड़ीसे कहा।

काक थोड़ी देर खड़ा रहा। वंथली जानेका रास्ता वहाँसे सीधा ही दिखाता था। वह तुरंत घोड़ीपरसे उतर पड़ा और भूमिपर कान लगाकर लेट गया। दूर

जाते हुए किसी घोड़ेके धीमे पैरों जैसा कुछ सुनाई दिया, इसलिए वह तुरन्त ही घोड़ीपर सवार होकर तेज़ीसे चल दिया ।

थोड़ी देरमें आगे जाते हुए घोड़ीके पैरोंकी आवाज़ स्पष्ट सुनाई पड़ी। पाटनके मंडलेश्वरका पुत्र और खेंगारका भानजा दगाबाज़ देशल इस समय वंथलीके किसी आदमीके साथ खानगी मसलहत करे और 'मैं उसीका आदमी हूँ' यह सुनते ही घबरा जाए—इतना काकके लिए पर्याप्त था। स्वयं वंथली पहुँचे इसके पहले ही वहाँ होनेवाली खटपटोंकी जानकारी हो जाय, इसके लिए वह आतुर था। यह वंथली जानेवाला आदमी कौन था, यह जानना उसे आवश्यक प्रतीत हुआ।

जैसे जैसे उसकी घोड़ी आगे बढ़ती गई वैसे ही अगला घोड़ा भी सपाटेके साथ आगे बढ़ने लगा। फिर वह तुरन्त धीमा पड़ गया। और जब काक उसके पास पहुँचा, तब देखा कि घोड़ा अकेला ही चला जा रहा है। काक मनमें हँसा। घुड़सवार कोई उस्ताद मालूम होता था परन्तु काककी टक्करका न था। वह अपनी घोड़ीपरसे उतर पड़ा और उसे छोड़कर उस खाली घोड़ेपर बैठकर चलने लगा।

जब वंथली बिल्कुल पास आ गई, तब रास्तेके पास एक खेतमें हाथमें घोड़ेकी लगाम पकड़े हुए वह लंबा होकर सो गया। थोड़ी देरमें [illegible] उसने सोचा था वही हुआ। उसकी घोड़ीपर सवार होकर एक आदमी आया और उसे सोते देख घोड़ी थँभाकर देखता रहा। फिर कुछ विचार कर वह वंथलीकी ओर चलने लगा।

काकने आराम करनेके लिए आँखें मींच लीं।

८—बर्बरक

काक इस तरह कब तक सोता रहा, इसका उसे भान न रहा। परन्तु घोड़ेके हिनहिनाने पर वह उठकर बैठने लगा।

चारों ओर उषाका प्रकाश छाया हुआ था। तो भी काकको ऐसा लगा कि कोई भयानक स्वप्न आया है। दो काली प्रचंड भुजाओंने उसे पृथ्वीपर दबा रक्खा है और एक विकराल मुख उसकी आँखोंके आगे है।

मुख विशाल और काला अँधेरा था। दो बड़ी बड़ी लाल विकराल पुतलियाँ आँखोंमेंसे बाहर निकली पड़ती थीं। नाकमें केवल दो बड़े नकुए थे और निचले लटकते ओष्ठपर एक बड़ा धारदार दाँत आगे निकल आया था। सिर और छातीपर झंखाड़ जैसे खड़े लंबे बाल थे। मुखाकृति जितनी भयंकर थी उतनी ही अस्वाभाविक। काकको एक क्षणके लिए चक्कर आ गया। उसे लगा कि थके हुए मस्तिष्कने ही ऐसा अमानुषिक चित्र खड़ा करके उसकी हँसी उड़ाई है। परन्तु उसके कंधोंपर पड़नेवाला दबाव सच्चा था। उसे तुरन्त जयदेव महाराजद्वारा वश किए गए बाबरा भूतकी दंतकथाका स्मरण हो आया। उसने इस भूतकी कथा झूठ ही मानी थी, परन्तु इस समय ऐसा लगा कि मानों वह सच्ची ही है और उसका प्रमाण मिल रहा है। यह खयाल आते ही कि उसी पिशाचके साथ पाला पड़ा है उसके हाथ पाँव ढीले होने लगे, परन्तु तुरन्त ही उसके मस्तिष्कके सामने विशुद्धिकी अवतारस्वरूप मंजरीकी छबि आ गई और उसे देखते ही उसमें अपने सनातन ब्रह्म-तेजका गर्व आ गया। आधे ही क्षणमें उसने गायत्रीका उच्चारण किया और अनपेक्षित चपलतासे अपना सिर ऊपर उठाकर उलटा फेरा कि वह राक्षसकी नाकके साथ ज़ोरसे टकरा गया।

काकके सिरमें चक्कर आ गया; परन्तु वेदनासे चीख कर वह राक्षस भी काकको छोड़कर पीछे हट गया।

काकका भय बिलकुल जाता रहा। राक्षस भी वेदना अनुभव करता था। वह वेदनासे नाक टटोलता था और उसकी आँखोंसे ऐसा लगता था कि सामनेका आदमी इतनी स्वस्थता एवं तत्परतासे उसपर हमला करेगा, यह उसने सोचा भी न था। काकका सिर घूम रहा था; परन्तु उसकी दृष्टिकी तीक्ष्णता कम न हुई थी। यह राक्षस उससे एक हाथ ऊँचा था, उसके स्नायु लोहेके समान थे, उसकी असीम क्रूरता उसके मुँहपर स्पष्ट झलकती थी और यदि यह अचानक ही हाथ लगा मौका चला गया, तो बचना कठिन हो जायगा, ऐसा काकको लगा। उसी समय इस राक्षसको जीतनेकी कीर्तिका लोभ भी उसे उत्तेजित करने लगा।

उसने देखा कि उसकी लकड़ी राक्षसके पैरोंके पास पड़ी है।

लाट-योद्धाके लिए लकड़ी तो उसका एक अंग थी। यदि वह हाथ आजाए, तो इस राक्षसको जीतना सहज हो जाए। नाकपर हाथ फेरते हुए राक्षसके सामने

वह एकदम कूद पड़ा और उसके मुँहपर घूँसा मारने जा रहा है, ऐसा दिखाव किया।

लगेमें लगनेके भयसे राक्षस पीछे हटा और उसने काकको मारनेके लिए मुट्ठी बाँध ली, परन्तु काक आगे न बढ़ा—वह लकड़ीके पास पहुँचा और पलक मारते ही उसे उठा लिया। जैसे ही राक्षसी पंजे उसे पकड़नेके लिए आगे बढ़े कि काक उछलकर पीछे हट गया और उसकी मजबूत लकड़ी बड़े जोरसे राक्षसके हाथपर जा पड़ी।

राक्षस वेदनासे चिल्ला पड़ा। वह उछला और अंतर बचाकर बीचमें की हुई लकड़ीकी सीमाको लाँघकर काकपर टूट पड़ा। काक जरा उलझनमें पड़ा; परन्तु मौकेकी सूझका उपयोग कर उसने लकड़ी अपने और राक्षसके बीचमें कर दी। जब वह काकको पकड़कर पृथ्वीपर दे मारनेकी ताकमें था तब काक अपनी लकड़ी उसकी दोनों टांगोंके बीचमें डाल रहा था।

काक ज़मीनपर अवश्य गिर पड़ा परन्तु उसी समय उसने अपनी लकड़ीपर ऐसा ज़ोर दिया कि राक्षसके पैर एक दूसरेमें फँसकर मुड़ने लगे। ज्यों ही वह काकको दबाता त्यों ही काक सफाईके साथ लगाई लकड़ीका एक छोर दबाता और दूसरे छोरसे उसका पैर ऐंठने लगता। क्रोधसे वह चिल्लाया और पैर छुड़ानेकी कोशिश करने लगा। इधर छाती परका दबाव जरा कम होते ही काकने साधारण प्रयत्न करके अपना पार्श्व बदल लिया, साथ ही लकड़ीका दबाव भी बदला। एक पैरपर दूसरा पैर ऐंठा जानेसे राक्षस लुढ़ककर चित्त हो गया और तब काक तड़पकर उसकी छातीपर चढ़ बैठा। अब काकने फुर्तीसे लकड़ी निकालकर उसके गलेपर धर दबाई।

"पिशाच, तू कौन है?" हाँफते हाँफते काकने पूछा। राक्षसकी आँखें फटी हुई थीं और दाँत पीसते हुए वह काकको उलटनेका प्रयत्न कर रहा था। काकने अपनी लकड़ी आड़ी रखकर उसके गलेपर दबाई और कहा, "पापी, जरा भी गड़बड़ की, तो गला ही घोंट दूँगा।"

लकड़ीके दबावसे राक्षसका दम घुटने लगा और उसकी आँखोंकी पुतलियाँ चक्कर खानें लगीं। काकने उसके गलेका दबाव कम किया।

"तू कौन है?" काकने पूछा और हाथके इशारेसे लकड़ीको फिरसे दबानेकी धमकी दी।

राक्षसने थोड़ी देरमे उत्तर दिया। " भूत। "

" बाबरा ? मुझे ऐसा ही लगा था। ठीक है। तू सबको परेशान करता है, अब आज तेरे प्राण लेकर ही मानूँगा। " कहकर काकने लकड़ीको दबाया।

" ना ना कहकर बाबराने सिर हिलाया। उसके भयंकर मुखपर दीनताका भाव फैल गया। उसकी आँखें आजिजी करने लगीं। उसकी आवाजमें भी दयाकी याचना थी। काक हँसा।

" ना ना क्या ? नहीं तो तुझे बाँधकर महाराजके पास ले जाऊँगा। "

" ना ना, " महाराज मुझे मार डालेंगे। " जरा घबराकर बाबराने कहा।

" तुझे किसलिए मारेंगे ? "

" तुमने मुझे पकड़ लिया, इसलिए। "

" ऐसा ? " काक हँसा। " ओह ! तेरे कारण महाराज दुर्जेय कहलाते हैं क्या इसलिए ? ठीक। देख बाबरा, तुझे जीता छोड़ दूँगा और यह बात भी किसीसे न कहूँगा यदि तू जब मैं कहूँ तब मेरा काम करनेका वचन दे दे। नहीं तो आज तेरा आखिरी दिन आ पहुँचा। "

" मेरे बापकी सौगन्ध, बचन देता हूँ। यदि तुम्हारा काम न करूँ, तो मुझे माँ हींगलाज चाचरकी आन। बस ? "

" तो अब मैं जो पूछूँ उसका जवाब दे। इस समय राजाका मानीता कौन है ? "

" जगदेव। "

" जगदेव कौन ? " चकित होकर काकने पूछा।

" परमार। "

" मुंजाल मेहता और मीनलदेवी यहाँ हैं ? "

" हाँ। "

" छोटी महारानी कैसी हैं ? " काकने लीलादेवीकी ख़बर पूछी।

" मालूम नहीं। "

" उदा मेहता क्या करते हैं ? "

बाबराने सिर हिलाया।

" अब तू कौन है ? बोल। "

" मैं ? भूत। "

" भूत ! यह तेरा मुँह तो नहीं कहता । बोल । " काकने कहा
ज़रा जोरसे पकड़ी ।

" भील । "

काक ठहाका मारकर हँस पड़ा । जयसिंहदेवकी खूबी कुछ समझ

" तू तो सभी चौकियाँ पार कर सकता है, क्यों ? "

" हाँ । "

" तो मुझे चौकियोंसे बचाकर वंथली ले चल । "

बाबराने गर्दन हिलाकर ' हाँ ' कहा ।

काक बाबराके ऊपरसे उठा और लकड़ी जोरसे पकड़ ली । बाबरा
बाज़ी करता है या नहीं, यह देखनेके लिए वह खड़ा रहा; परन्तु
अधिक पस्त हो गया था कि काकके सामने देख भी न सका ।

काक घोड़ेपर बैठा और लगाम सँभाली । बाबरा दौड़ने लगा घो
चालसे, और थोड़ी ही देरमें वह चौकीके आगे जा पहुँचा ।

बाबराने दूरसे ही भयंकर चीख मारी । उसे सुनकर चौकीदार कों
आँखें मीच कर औंधे मुँह पड़ रहे । काकने तुरन्त चौकी पार कर

" तुझे जाना हो तो जा, परन्तु तू अब कहाँ मिलेगा ? "

" शामको श्मशानमें और दिनको राजगढ़के तहखानेमें । तू
हो ? "

" मैं ? यह तू किसलिए जानना चाहता है ? परन्तु देख, तुझे
बतलाता हूँ । "

" क्या ? "

" भड़ौंचका दुर्गपाल काक प्रभाससे इसी तरफ़ आ रहा है ।
दिन ऊगते ही आ पहुँचेगा । उसे पकड़कर तू महाराजके पास ले
महाराज बहुत ही खुश होंगे । "

बाबरा बोला " का—क " और हँसकर गर्दन हिलाने लगा ।

" तू पहचानता है क्या ? " काकने जरा सावधान होकर पूछ

" नहीं, महाराजने उसे पकड़नेके लिए फरमाया है । "

" उसे लेनेके लिए कौन गया है ? "

" बाहड । "

"उदाका लड़का ?"
"हाँ।"
अब ऐसा ? तो जा, फतह कर।" कहकर काकने घोड़ा आगे बढ़ाया और
"लौट गया।
भाव फैर अदृष्ट हुआ और काकका ध्यान जिसपर सवार था उस घोड़े और
दयांकी लिककी तरफ़ गया। वह कौन था, यह जाननेके लिए उसने अपने
"नालगाम छोड़ दी और उसे अपना स्थान स्वतः ही खोज लेनेकी
"न दे दी।
"उसे चारों तरफके वातावरणका खयाल आने लगा। जूनागढ़ राणकके
"युद्ध है, जयसिंहदेवने राणकको हाथ करनेका निश्चय किया है, इस
"ऐसलिक और देशलदेव कुछ षड्यन्त्र रच रहे हैं और खेंगारका बस
इसलिए वह संधि करनेको तैयार था। परन्तु इन सबमें मुंजाल मेहता कहाँ हैं ?
न कहूँगा हो गये हैं ? क्या जयसिंहदेवने गुरुको भी धोखा दिया ? क्या
तेरा आने भी पुत्रकी राजनीतिके आधारपर चलना शुरू कर दिया ? और
"मेंतो मुंजाल मेहता यहाँ क्यों आये ? और इसमें उदा मेहता कहाँसे ?
मुझे माँ किसी प्रकार न खुलती थी।
"तोचार करते करते हथियार माँजती और यमका आवाहन करती देवड़ीकी
कौन है फिर काककी आँखोंके आगे आ गई। काकने संकल्प किया कि
"जा, रा' का और जूनागढ़का जो कुछ होना हो हो; परन्तु देवड़ीका
"खंडित करनेके लिए प्राण देना पड़े तो भी पीछे न हटना। दूसरा
"पति अपना आया। जयदेव महाराज उसे पकड़वा मँगानेको आतुर
"मुंमेहता भी उसे पकड़नेकी फिक्रमें था और लीलादेवी उसकी सहायताकी
"हैंती थीं। ये सब एक साथ उसके लिए क्यों पागल हो गये हैं ? क्या
"को जुदी जुदी प्रेरणा हुई ? या किसी एक ही हेतुसे या एकके ही कहनेसे
"मा ऐसी प्रेरणा कौन कर सकता है ?
"उदा
महाराजका प्रताप भी उसे स्पष्ट रीतिसे मालूम पड़ने लगा। मुंजाल
बाबराने अस्त हो गया है, ऐसा लगा। उदाका उपयोग महाराज कर रहे
"अब समझा जानेवाला बाबरा उनके प्रतापको अस्वाभाविक एवं दुःसह
"मैं ? और जयदेव परमार जैसे परदेशी योद्धाको गुर्जर वीरोंपर ही अपना

प्रभाव जमाए रखनेके लिए बुलाया हो, यह संभव जान पड़ा। काक मन ही मन
विस्मित हुआ। निःसत्त्व दिखते हुए इस महत्त्वाकांक्षी लड़केका कैसा विकास

उसका घोड़ा रुक गया। प्रभात हो गया था। राजभवनके
तबेलेके सामने घोड़ा जा खड़ा हुआ। पास ही एक विशाल हवेली थी

वंथलीकी सुरक्षित स्थिति देखकर काकके हृदयमें पट्टनी दंडनायककाकने
शमके प्रति मान बढ़ा। एक योजन दूर युद्ध हो रहा था, फिर भी यहाँ न कर
तरह ही निर्भयता और निश्चिन्तता थी। काकने

तबेलेके बाहर एक मनुष्य जोरसे जीभ साफ कर रहा था। काक ब्राह्मणके
जाकर घोड़ेसे उतर पड़ा। "लो यह तुम्हारा घोड़ा।" ई। कुछ

उसने आँख मली, "यह तो जेबरा है! तुम कहाँसे लाए?" तारे और

"मैं?—जिसका घोड़ा है उसका मैं हूँ।" काकने हँसकर कहा।
कहाँ मिलेंगे?"

"हवेलीमें। अभी उठे न होंगे।" कहकर घोड़ेवालेने पासकी
ओर हाथ किया।

"तो यह घोड़ा बाँध दूँ?" काकने पूछा। राजगढ़के

"अरे बाँध दे भाई, मेरी इतनी झँझट बची। और अभी जरा झोंके
आलसी उठे भी नहीं हैं।" कहकर घोड़ेवालेने हाथ मरोड़कर लम्बी लड़ने लगा

"घोड़ेकी थान कहाँ है?" काकने पूछा।

"बिल्कुल उस तरफकी दीवालके पास।"

काक घोड़ेको अन्दर ले गया। उसने अन्दर नजर डाली, तो एक
खाली न थी। वह अखीरी थानकी ओर गया और मोती अहीर
पुचकारता था उसी तरह पुचकारा और धीमेसे 'बापुड़ी बापुड़ी
अखीरी थानपर बँधी हुई घोड़ी हिनहिना उठी। काक हँमा
पकड़ा गया। वह फिर बाहर आया।

"भाई, एक भी थान खाली नहीं है।"

"यह एक नया घोड़ा कहाँसे टपक पड़ा?"

"अच्छा, तो फिर इसे कहीं दूसरी जगह बाँध देना।"

"महाराजके घोड़े बढ़ियाँ हैं। परन्तु तुम यहाँके नहीं
कहाँके हो?"

"मैं ? मैं तो खंभातका हूँ।"

काकके मस्तिष्कमें उजाला हो गया। उसका हृदय उछल पड़ा।

"...हाराजके साथ ही खंभातसे आए होंगे।"

"हाँ।"

"अच्छा," कहकर काकने बिदा ली और वह मन ही मन बड़बड़ाया—"...रे उदा मेहताकी! मेरे भाग्यसे तू यहाँ भी पहले ही मिला।"

९—काकका राजगढ़में प्रवेश

...हो रहा था, इसलिए चुपचाप राजगढ़में जाना काकको बड़ा मुश्किल ...आ। उसने राजगढ़की प्रदक्षिणा करनी प्रारम्भ की।

...दरवाजोंपर सख्त पहरा था। सामनेके दरवाजेसे जाना तो संभव ही न ...सूर्योदय हो चुका था। यह नहीं कहा जा सकता था कि ज्यादा देर ...ा होगा।

...ा चारों तरफ देखा। एक गलीमेंसे एक ब्राह्मण हाथमें पूजा-पात्र लिये ... पिछले दरवाजेकी ओर आ रहा था। काकको एक विचार सूझा। वह ... साथ उसकी तरफ गया।

"काका, ज़रा इधर तो आओ।" कहकर वह उस ब्राह्मणको गलीमें ले गया।

"क्या है भाई?"

"...े अपना पूजा-पात्र दीजिए तो।"

...कहा, "अरे छू जायगा! तू है कौन? क्या काम है?"

...काह, "मुझे राजगढ़में पूजा करनेके लिए जाना है।" ब्राह्मण ...ी थकावट और धूलसे विचित्र बने हुए काकका मुँह और शस्त्र ...हिलाने लगा। "तू—"

"... इस समय वहाँ न जाऊँगा, तो महाराजा मेरे प्राण ले लेंगे।"

"अब—"

"मैं? ...े काम था इसलिए रातको बाहर गाँव जाना पड़ा। लौटनेमें देर

हो गई। काका, आप चाहो तो कोई दूसरा पात्र ले आओ।" कहकर काकने पूजा-पात्र पकड़ लिया। वृद्ध ब्राह्मण घबरा गया।

"अरे छू लिया! मुझे नहाना पड़ेगा।"

"जाओ, जाकर नहा आओ और लो यह पैसा—"

"परन्तु यह बलात्कार—" कहकर ब्राह्मण ज़रा जोरसे चिल्लाया। काकने आँखें दिखलाईं। "महाराज, चाहो तो यह सोनेकी मुहर मेरी ओरसे दान कर देना, पर गड़बड़ किए बिना नहाने चले जाओ। नहीं तो—" कहकर काकने उसका डंडा क्या कर सकता है, इसका कुछ संकेत किया। बेचारे वृद्ध ब्राह्मणके जोड़ ढीले हो गये और उसकी आँखें हाथमें रखी हुई मुहरपर जम गईं। कुछ ही क्षणमें काकने पूजाके जल पात्रसे मुँह धोया, कपड़े और शस्त्र उतारे और चंदन-पात्रसे त्रिपुंड किया।

"महाराज, तुम्हारा नाम?"

"दयानाथ चतुर्वेदी।"

"जाइए अब।" काकने कहा।

वृद्ध ब्राह्मण घबराता हुआ चला गया और काक पूजा-पात्र लिये राजगढ़के एक छोटे दरवाजेके सामने पहुँचा। पहरेदार आधी उघड़ी आँखोंसे ज़रा झोंके खा रहा था; परन्तु काक जैसे ही द्वारमेंसे प्रवेश कर तेज़ीसे सीढ़ियाँ चढ़ने लगा तैसे ही उसकी नींद उड़ गई।

"ओ महाराज, कौन हो?"

"मैं? दयानाथ चतुर्वेदीका भतीजा।" काकने कहा और तिरछी आँखसे सैनिककी शक्तिका माप कर लिया।

"बूढ़ेको क्या हुआ है?"

"ज़रा गायने मार दिया है।" कहकर काक तेज़ीसे चढ़ने लगा।

"अरे खड़े तो रहो। दया काकाके नए भतीजेका मुँह तो देख लूँ।" कह कर सैनिक सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ काककी ओर झपटा।

वह पास आए कि उसके पहले ही काकने पात्रको सीढ़ीपर रख दिया और जैसे ही सैनिक एक सीढ़ी चढ़ा, वैसे ही वह एक सीढ़ी उतरा। सैनिक ज़ोरसे कुछ बोलना चाहता था कि उसके पहले ही काकने उसका गला दबा लिया। उसके मुँहसे एक शब्द भी न निकल सका।

काकने एक हाथसे कमर परका पटका खोला और उसे सैनिकके खुले मुखमें ठूँस दिया। फिर लगभग बेहोश जैसी अवस्थामें उसे उठाकर वह सीढ़ियाँ चढ़ गया और पास ही जो कोठरी खुली पड़ी थी उसमें डालकर दरवाजा बन्द कर दिया। इसके बाद तुरत ही यह पुजारी हाथमें पूजा-पात्र लिये हुए महलमें दाखिल हो गया।

काकने चारों तरफ दृष्टि घुमाई किन्तु कोई दिखाई न पड़ा। कुछ दूरपर एक स्त्री प्रभाती गा रही थी। वह उस ओर गया। एक नौकरानी चक्कीका कचरा साफ कर रही थी।

"बहन!"

"कौन?"

"मुझे छोटी महारानीके पास ले चल। पूजाका समय हो गया है और मैं रास्ता नहीं जानता।"

"पागल, इस समय कहीं छोटी रानीजी पूजा करती हैं?"

"आज तो उनकी पूजाकी मनौती है। उठ, मैं उनके गाँवका ब्राह्मण हूँ। तुझे खबर नहीं होगी। मुझे खास तौरपर बुलाया है।"

"हें! पर मैं वहाँ कैसे जा सकती हूँ? मैं तो नौकरानी ठहरी।"

"तू मुझे रास्ता भर दिखा दे। मुझे ले चलेगी, तो रानीजी तेरा उपकार माने बिना न रहेंगी।"

स्त्रीको इसमें कुछ रहस्य जैसा मालूम हुआ और ऐसा लगा कि इससे जनमभरकी दरिद्रता दूर हो सकती है। वह तुरन्त उठ खड़ी हुई और उसने अपने हाथ झड़ा डाले।

"बड़े रास्तेसे ले चलूँ या खानगी रास्तेसे?"

"खानगी रास्तेसे।" काक नौकरानीकी चतुराईसे प्रसन्न होकर हँसा। थोड़ी देरमें वे रनवासके पिछले जीनेसे ऊपर जा पहुँचे। एक दासी खड़ी खड़ी दातुन कर रही थी। नौकरानी उसके पास गई।

"रानीजी उठीं?"

"नहीं, क्यों?"

"रानीजीने जिसे बुलाया था वह ब्राह्मण आया है।"

"पागल हो गई है? इस समय उन्हें ब्राह्मणकी क्या जरूरत आ पड़ी?" कहकर वह तिरस्कारसे देखने लगी।

"पर महाराज—"

"मंगी," काकने धीमेसे कहा।

दासी भृगुकच्छकी थी और रानीकी मानीती। उसने काककी तरफ देखा और उसे पुजारीके वेशमें देखकर वह स्तब्ध रह गई।

"का—"

"चुप रह। महारानीको जगा दे। मुझे उनसे मिलना है और इस नौकरानी-को पहचान ले। इसे महारानीसे इनाम दिलाना है।"

"तेरा नाम क्या है?"

"बाई, तुम्हारे पवीताके बारहटजी हैं न, उनकी नई 'जेली'।" नौक-रानीने अपना सविस्तर परिचय दिया।

"ठीक, दोपहरको मिलना। महाराज, आप इधर खड़े रहिए। मैं महा-रानीजीको जगा आऊँ।"

काक जरा खिसककर दरवाजेके पीछे जा खड़ा रहा और मंगी तुरत दौड़ती आ गई। "चलिए, महारानीजी बुला रही हैं।"

काकके मुँहपर विचित्र हँसी आ गई और वह भृगुकच्छकी जिस राजकुमारीको जयसिंहदेवके साथ ब्याही थी उसके पास जा पहुँचा।

१०—लीलादेवीकी विटम्बना

एक स्वर्णमंडित विशाल सुखपालपर बैठी हुई महाराज जयसिंहदेवकी पटरानी लीलादेवी अँगड़ाई ले रही थी।

जंबूसरके घेरेके समय जिस मृणाल-कुमारीसे काक मिला था, वह आज पहचानी नहीं जाती थी। उसका शरीर पहलेकी अपेक्षा भर गया था, और मुख भी विशेष आकर्षक हो गया था। सोने और हीरोंसे उसके अंगअंग चमक रहे थे। पाटनकी महारानीके योग्य वैभव उसके चारों तरफ था, तो भी उसके आभूषणोंमें लाक्षणिक वैभव दिखाई पड़ता था।

इस समय उसके बाल बिखरे हुए थे; और उसकी शोभाको उतावलीसे ओढ़ी हुई लाल ओढ़नी शायद ही ढँक सकती थी। उसके होठ लापरवाहीसे खुले रह गये थे और छोटे छोटे दाँतोंकी अपूर्व पंक्ति उनमेंसे झाँक रही थी। उसके मुख और शरीरपर जो आलस्य छाया दीख पड़ता था वह मदका था या निद्राका, स्पष्ट समझमें नहीं आता था। नींदके भारसे आधी बन्द पलकें उसके नेत्रोंके तेजको छुपा रही थीं।

जैसे ही काकने प्रवेश किया, उसने आँखें ज़रा खोलीं। काकने एक नजर डाली। लीलादेवीकी तेजस्वी आँखोंमें पहले ही जैसी स्थिरता और निश्चयात्मक बुद्धि थी।

काक द्वारके सामने मानके साथ खड़ा रहा। उसे देख रानीकी स्थिर आँखोंमें जरा-सी अस्थिरता आई, नहीं आई और चली गई। लापरवाहीसे ओढ़ी हुई ओढ़नीके नीचेसे निकले हुए एक पैरकी अंगुलियोंकी तरफ़ उसने देखा। "काक, तुम आये?"

मुस्कराते हुए काकने कहा, "हाँ, जीवित ही आ गया। दो चार बार मेरे प्राण लेनेकी चेष्टा की गई, परन्तु आप जानती हैं कि मेरे जैसेको ले जानेके लिए जमराज तैयार नहीं है। कहिए, आपने मुझे क्यों बुलाया है?"

"मंगी," शांत एवं स्थिर स्वरमें लीलादेवीने कहा, "तू बाहर खड़ी रह। किसीको आने न देना।"

मंगी बाहर गई और रानी घूमकर काककी ओर देखने लगी। "तुम इस वेशमें क्यों आए?"

"निश्चिन्त होकर फिर बतलाऊँगा। आपसे मिलनेके लिए कितनोंहीको चकमा दिया है। उनमेंसे कोई भी यदि अपने मालिकके पास पहुँच जायगा तो हमें बात करनेका मौका न मिलेगा। और संभव है मेरा शिरच्छेद भी हो जाए।"

"तुम्हारा शिरच्छेद!" रानीने ज़रा भ्रूभंग करके कहा।

"हाँ, मुझसे महाराज और उनके मंत्री खफा हैं।"

"इस पर भी तुम उनकी सेवा कर रहे हो?" तिरस्कारसे रानीने कहा। उसकी आँख और भी स्थिर हो गई।

"हाँ।" काकने नजर चुकाकर नीचे देखा।

" क्यों ? "

" मुझे अपने ही ढंगसे काम करना पसन्द है। अब आपकी क्या आज्ञा है ? "

" आज्ञा ! " लीलादेवीने स्थिरतासे कहा, " तुम मेरी आज्ञा कब मानते हो ? " अब तुम्हारी आज्ञा क्या है, यह जाननेके लिए मैंने तुम्हें बुलाया है। " तिरस्कारभरे स्वरमें रानीने कहा।

" मेरी आज्ञा ? " धीमेसे काकने कहा। काकको आँधीके स्पष्ट लक्षण दिखाई देने लगे।

" हाँ, " शान्तिके साथ, मानो कोई हिसाब लगा रही हो, इस प्रकार लीलादेवीने कहना शुरू किया। " तुमने लाट खोवा दिया और पाटन मेरे सिर-पर मार दिया। "

" फिर भी आप सृष्टिके प्रथम श्रेणीके सिंहासनपर विराजती हैं ! " काकने कहा।

रानीने काकके शब्दोंका उत्तर नहीं दिया। " और मैं तंग आ गई हूँ। "

" किससे ? "

" सबसे। " जैसे कुछ हिसाब करती हो ऐसी शान्तिसे रानीने कहा। " तुमने कहा था कि मैं यहाँकी स्वामिनी बनूँगी, किन्तु यहाँ तो हर कोई स्वामी है। "

काकको लगा कि रानीसे सच्चा दर्द दिखलाते नहीं बनता है, इसलिए उसने खोजना शुरू किया। " धरणीके धनी जयदेव महाराज तुम्हारे चरणोंमें हैं। "

" चुप रहो ! " मानो तलवारसे घाव कर रही हो ऐसी निश्चयात्मक बुद्धिसे रानीने कहा। " तुम्हारा धरणीका धनी मनुष्य नहीं है। "

" तो ? "

रानी अंगुलियोंके पोर गिनने लगी। " वह देव है—मनुष्य है—और पशु है। वह कैसे मेरे वशमें आवे ? "

काकने दर्द परखा " महारानीजी, " उसने कृत्रिम नम्रतासे कहा। " इस प्रकार क्यों हार मान रही है ? आप क्या नहीं कर सकतीं ? "

" मैंने सब कुछ किया। एक भी कला बाकी नहीं रक्खी। फिर भी इस समय ये बिना पंख उड़ने लगे हैं। "

तरुणी होते हुए भी स्थिर चित्तकी इस महत्त्वाकांक्षिणी सुंदरीने अपना दुःख वर्णन किया।

"आप जो कुछ कहना चाहें जल्दी कहें। वक्त जा रहा है।" अधीरतासे काकने कहा।

"तुम्हें इनको उड़नेसे रोकना चाहिए?" रानीने कहा।

"परन्तु वे कहाँ और कैसे उड़ रहे हैं, सो तो कुछ बतलाइए।"

"वे राणकदेवीके लिए पागल हो रहे हैं।"

"और इसी पागलपनसे उन्हें बचाना है?"

"हाँ।"

"किस तरह?" काकने पूछा।

"चाहे तो जूनागढ़ जाओ, चाहे देवड़ीको हाथ करो और चाहे महाराजको सीधा करो। तुमने ही मुझे यहाँ ब्याहा है, तो अब रास्ता खोजना भी तुम्हारा काम है।"

इस स्त्रीकी भयंकर और सचोट नजर देखकर काकको कँपकँपी आ गई।

"देखता हूँ।"

"देखना क्या? यदि मेरे ऊपर कोई दूसरी पटरानी आई, तो कुछका कुछ हो जायगा।" अडिग शान्ति एवं निश्चयसे लीलादेवीने कहा। "या तो तुम नहीं—या मैं नहीं—या फिर पाटन नहीं।" मानो पाटनको तोड़ती हो, इस तरह उसने अपना हाथ पैरपर रख दिया।

"महारानीजी, आपकी आज्ञा माथे चढ़ाता हूँ। जिस दिन आपके ऊपर दूसरी कोई पटरानी आ जाय, उस दिन यदि मैं जीता हुआ, तो प्राण त्याग दूँगा। फिर कुछ है?"

"परन्तु तुम यह करोगे कैसे?"

"इसकी चिंता आप न कीजिए। परन्तु मैं आपसे मिला था, यह किसीको मालूम न हो। मेरे वस्त्र और शस्त्र राजगढ़की पिछली खिड़कीकी गलीमें पड़े हैं, वे मँगवा दीजिए।"

रानीने मंगीको बुलाकर आज्ञा दी। रानी और काक दोनोंमेंसे कोई भी न बोला।

"काक, मंजरी कैसी है?" जरा तिरस्कारसे रानीने पूछा।

"प्रसन्न।"

"और बच्चे?"

"आनन्दपूर्वक।"

"लाटका क्या हाल है?"

"अभी यहाँसे एक मूर्ख दुर्गपाल बनाकर भेजा गया है और रेवापाल राह देखता बैठा है।"

"तब क्या होगा?"

"भोलानाथकी इच्छा। परन्तु महारानीजी, मुंजाल मेहता क्या करते हैं?"

"पान चबाते हैं।"

"और उदा?"

"महाराजके लिए राणकदेवी ला देनेकी कोशिशमें जुटा है। तुम्हारा तो वह शत्रु है न?"

काक हँसा। "मुझपर पानी चढ़ानेकी जरूरत नहीं।"

रानी हँसी और काककी तरफ जरा अस्थिर दृष्टि डाली।

"और यह जगदेव कौन है?"

"नया परमार योद्धा है। बड़ा जबर्दस्त है। तुम सबपर धाक जमानेके लिए महाराज लाये हैं।"

"ठीक। और बाबरा भूत—"

रानी जरा फीकी पड़ गई। "इसका—"

"क्यों?"

"इसका नाम सुनते ही मेरा शरीर काँपता है।—अरे मंगी, क्या है?" रानीने फिर पूछा।

"भटराजको खोजता हुआ परमार इधर आ रहा है।"

"कैसे जाना?"

"भटराजने जिस पहरेदारको बंद किया था उसने परमारसे कह दिया मालूम होता है।"

"ठीक।" शान्तिसे रानीने कहा "जाकर बाहर खड़ी रह, आवे तो खड़ा रखना।" मंगी गई और रानीने काककी ओर मुड़कर कहा—"घबराना नहीं। तुम उस कमरेमें जाकर अपने कपड़े पहन लो।"

"मेरी चिंता न कीजिए। परमारसे मुझे पहिचान भी करना है।"

"महारानीजी," मंगीने दरवाजा खोलकर रानीसे कहा। "जगदेव परमार आपसे मिलना चाहते हैं।"

"आने दे।" कहकर रानीने हाथके संकेतसे काकको अन्दर भेज दिया और सुखपालसे उतरकर अपना लहँगा और चोली ठीक कर ली। साड़ीका पल्ला सिरपर किया और वह गौरवके साथ बैठ गई।

वह बैठी ही थी कि जगदेव परमार दाखिल हुआ।

११—काक अदृश्य हो गया

जगदेव परमारकी तरफ लीलादेवीने उपेक्षाके साथ नजर डाली और फिर लौटा ली।

जगदेव बलकी मूर्ति-सा लगता था। वह बड़ा कद्दावर था। उसकी छाती विशाल और हाथ साधारण आदमीकी जाँघ जैसे थे। मुख बड़ा और भरावदार था, जो तेजस्वी तो नहीं पर सुन्दर कहा जा सकता था। काली और साव-धानीसे सँभाली हुई दाढ़ी मुखकी शोभामें वृद्धि कर रही थी। कमरमें खड्ग लटक रहा था और कमरबंदमें दो कटारें शोभा दे रही थीं।

उसे देखकर अडिग शौर्यका ध्यान आता था, परन्तु उसकी आँखोंके तेजमें कोई अगम्य वस्तु थी। वे तेजस्वी न थीं; फिर भी आदमीको घबड़ा देतीं। उनमें भलाई न थी, फिर भी हरामखोरी नहीं झलकती थी। उनमें धूर्तता न थी तो भी उन्हें देखकर किसीको विश्वास नहीं होता था।

महाराज जयसिंहदेवके दरबारमें जगदेवको कोई समझ नहीं पाता था, और उससे सभी घबराते थे। पट्टनी योद्धाओंको उसके साथ व्यवहार रखना नहीं सुहाता था, और महाराजकी तथा उसकी शक्तिके डरसे उसके साथ वैर करना भी किसीको ठीक न लगता था। जगदेवको लगता कि पट्टनियोंको डरानेका वह एक शस्त्र भर है। गर्विष्ठ पट्टनी योद्धा उसे तिरस्कारसे देखते थे और केवल इतना ही खयाल रखकर उसका आदर

करते थे कि कहीं महाराजा गुस्सा न हो जायँ। गर्विष्ठ, मुमुक्षु और परदेशी पहरेदारके बीच जितना भाईचारा होता है उससे अधिक पट्टनियों और जगदेवके बीच न था।

किन्तु महाराजाके मंत्री और निकटके संबंधी अपना तिरस्कार छिपानेका भी कष्ट नहीं उठाते थे और जगदेव भी जहाँ तक बनता था उनके संसर्गमें न आता था। उदाके साथ वह बहुत ही नम्रतासे और परशुराम दंडनायकके साथ मानसे बर्तता था। रानियोंके साथ वह प्रसंग ही नहीं आने देता और रानियाँ भी जहाँ तक होता साक्षात होनेका प्रसंग न आने देतीं। सिर्फ लीलादेवी उससे खुले हुए परन्तु शान्त तिरस्कारसे बर्तती थी। जगदेवके मुखपरसे इतना तो स्पष्ट दिख रहा था कि इस समय यहाँ आना उसे बिलकुल अच्छा न लगा था। उसके स्थूल मुँहपर क्षोभके कुछ चिह्न थे; और कंठमेंसे आवाज निकालनेमें उसे जरा तकलीफ हुई, परन्तु यह दशा उसने दाढ़ीपर हाथ फेरकर छुपा ली।

"महारानीजी, सेवकका दंडवत प्रणाम।" परदेशी उच्चारणसे जगदेवने नम्रता दिखलाई।

रानीने सिर हिलाया, और शान्त, निश्चित स्वरमें पूछा, "क्या है जगदेव?" "महारानीजी, महाराजाधिराजकी आज्ञा है कि राजमहलमें किसी अपरिचित आदमीको प्रवेश न करने दिया जाय।" जगदेवने खाँसकर कहा।

"ठीक है।" तिरस्कारसे लीलादेवीने कहा।

मुझे खबर मिली है कि आज कोई आदमी दाखिल होकर आपके कमरेकी तरफ आया है।

रानीने जगदेवकी तरफ मुँह किया। उसकी आँखमें हृदय भेदनेवाली निर्दय तीक्ष्णता थी। क्षणभर वह देखती रही; और अन्दरसे घबराते फिर भी बाहरसे हिम्मत बाँधे हुए योद्धाको उसने अपने शान्त तिरस्कारका पूरा पूरा अनुभव कराया।

"इससे मुझे क्या?"

"वह कौन है और क्यों आया है, इसकी पूरी खबर मुझे महाराजको देनी है। आप मुझे क्षमा करें। मुझे स्वामीकी आज्ञा पालन करनी चाहिए, नहीं तो आप जानती ही हैं कि मेरी क्या गति होगी?"

रानीने तिरस्कारसे मुँह फेर लिया।

"वह कौन है?" जगदेवने धीमेसे पूछा।

"परमार," रानीने ज़रा भी बिगड़े बिना प्रश्न किया। "तुम महा-रानियोंकी तलाशी लेनेकी चाकरी करते हो?" प्रश्न मानो स्वाभाविक और सामान्य हो, इस प्रकार रानीने पूछा; परन्तु जगदेवको अपमानजनक गहरा घाव लगा। उसके ओष्ठ जरा काँपे; परन्तु तुरन्त ही स्वस्थ होकर उसने हाथ जोड़ लिये।

"महारानीजी, मैं तो चिठ्ठीका चाकर हूँ।"

"मैं जानती हूँ।" कहकर लीलावतीने तिरस्कारसे अँगड़ाई लेकर पूछा—"वह आदमी कैसा है?"

"ब्राह्मणके वेशमें आया है।"

"हूँ—फिर किस वेशमें वापस लौट गया?"

जगदेवको लगा कि रानी उसका मज़ाक करती हैं। "महारानीजी, अभी वह यहीं है।"

"क्या?" जरा चौंककर लीलादेवीने पूछा। उसने जगदेवकी ओर देखा और उस योद्धाके मुखपर हँसी देखकर वह घबराई।

"उसके पूजा-पात्र, अभीतक यहीं पड़े हैं।" कहकर जगदेवने हँसकर जमीनपर पड़े हुए पात्रोंकी ओर अंगुलि-निर्देश किया।

"जगदेव," शान्तिसे लीलादेवीने कहा। उसकी आवाजमे भयंकर तिर-कार था। "पाटनकी महारानीके साथ कैसा विवेक रखना चाहिए सो तेरे जैसे परदेशी नहीं समझ सकते; परन्तु मुझे वह सिखलाना चाहिए! जा, बाहर जाकर मंगीको भेज दे। मुझे चोटी गुँथवानी है।"

"परन्तु रानीजी—"

"परमार, मैंने जो कहा, वह सुना नहीं?" रानीने गर्वसे पूछा। जगदेवको यह प्रश्न लात जैसा लगा।

"हाँ।—"

रानीने संकेतसे बाहर जानेकी आज्ञा दी और जगदेव लाचार हो गया। वह नमस्कार करके बाहर चला गया।

और उसके मुखपर क्रोध आ गया। इतनेमें मंगी आ पहुँची और उसका मुख पहले जैसा शांत हो गया।

"मंगी, महारानीजी बुला रही हैं।" कहकर जगदेव वहाँसे चल दिया। जगदेवके जानेपर लीलादेवी धीरेसे बिस्तरसे उठी और दरवाजेकी तरफ़ देखने लगी। जब जगदेवका पद-रव सुनाई देना बंद हो गया, तब वह अंदरके दरवाजेकी तरफ लौटी।

इतनेमें मंगी आई। "मंगी, यह पूजा-पात्र छिपा दे।"

"जो आज्ञा।"

रानी मंगीकी ओर देखे बिना झपटकर अन्दर गई और दरवाजा बंद कर लिया। दूसरे ही क्षण उसकी चीख सुनाई दी।

मंगीके प्राण उड़ गये। लीलादेवी जैसी शांत और भावहीन स्त्री चीख उठे, यह इतना अस्वाभाविक था कि वह घबरा उठी। वह दौड़कर अन्दर गई। रानी जरा अस्वस्थ थी और उसकी आँखोंमें घबराहटके चिह्न स्पष्ट थे। कमरा निर्जन था।

"भटजी!"

"कौन जाने कहाँ गये।" रानीने कहा।

"इस दरवाजेसे तो बाहर न गये हों?" कहकर मंगी एक और दरवाजेके आगे जाकर खोजने लगी। उसका ताला दूसरी तरफ था परन्तु दरवाजा बंद दिखा।

"पगली, यह दरवाजा तो कभी खुलता ही नहीं। इसकी चाबी ही कहाँ है?"

"बाहर छज्जे परसे तो जा नहीं सकते।"

"तब?"

"रानीजी ओ रानीजी," मंगी चीखी।

"क्या है री?" लीलादेवीने सख्तीसे पूछा।

"अरे रे भटजी—गंगनाथ भगवान भला करें।" मंगीने आँखोंपर हाथ रख लिया।

रानी समझी नहीं, उसने मंगीका कान पकड़कर खींचा, "क्या है?"

"रानीजी, वह तो—बाबरा!"

एक क्षण रानी चुप रही, उसे मंगीकी बात सही मालूम हुई। उसके सुंदर

होठ काँपे, उसकी आँखें स्थिर और गहन हो गईं, मोहक फीकापन उसके सुन्दर मुखपर छा गया।

परन्तु रानी एक शब्द भी उच्चारण करे, इसके पहले ही बाहरके कमरेमें ऐसा लगा जैसे कोई दौड़ता हुआ आया हो। रानी दरवाजेकी तरफ़ मुड़ी और तब दरवाजा खोलकर एक सोलह-सत्रह वर्षकी लड़की नाचती कूदती दाखिल हुई। उसके वस्त्र अस्तव्यस्त थे, समाप्त न होनेवाला हास्य उसके मुखपर छा रहा था और उस हास्यके जोरसे मुखपर मोहक लाली फैली थी। उसकी तूफानी आँखोंमें आँसू थे। उसके हँसनेकी प्रतिध्वनि सारे कमरेमें गूँज गई। वह रानीके सामने आकर एक अंगुली ऊँची करके कुछ कहने लगी, पर उसके हँसनेके मारे एक भी शब्द समझमें नहीं आया।

" समरथ ! " रानीने सख्तीसे कहा।

" जी ! " बड़ी मुश्किलसे वह लड़की बोली। परन्तु हँसनेका दौरा आजानेसे वह पैर लंबे करके ज़मीनपर बैठ गई और एक हाथ धरतीपर टेक कर दूसरे हाथसे पेट पकड़कर हँसीको रोकने लगी।

" समरथ, यह क्या है ? " मंगीने पूछा।

जवाबमें समरथने रानीकी तरफ अंगुली की परन्तु फिर हँसी आ जानेसे वह बोल न सकी।

" समरथ, पागल हो गई है ? " परन्तु लीलादेवीका धीरज चला गया था। उसने मंगीकी तरफ देखा और कहा, " मंगी, चल मुझे मेहताजीसे मिलने जाना है। "

लीलादेवी और मँगी वहाँसे चली गईं और समरथ अकेली हँसती रही। बड़ी देरमें उसकी हँसी हाथमें आई और वह खड़ी हुई।

" कैसी घबरा गईं ! महारानीजी आज पकड़ी गईं। " वह हँसने और चारों तरफ कूदने लगी। " महारानीजी कैसी पकड़ी गईं ! और अब मेहताजी आनेवाले हैं। "

समरथने हँसते हँसते पैरोंको ठुमकाया, पुनः हँसी और नीचे झुककर तथा ताली बजा कर गाने लगी—

" बाहड मेहता खूब किया, काकभट्टको बाँध लिया। "

दूसरी पंक्ति बनाने या गानेका उसे धैर्य न था। वह जरा कूदी और उसने तीन बड़ी बड़ी चाबियोंका गुच्छा निकाला।

"महारानीजी जानती हैं कि उनका ब्राह्मण गायब हो गया है।" वह फिर खिलखिलाकर हँसी और जिस दरवाजेको मंगीने समझा था कि नहीं खुलता है, उसे धक्का मारकर खोल दिया। दूसरी तरफ न कुण्डी ही लगी थी और न ताला। समरथ उस तरफ गई और कुंडी बन्द करके उसने ताला लगा दिया।

१२—समरथ

काक अन्दरके कमरेमें गया तब उसे अपनी भूलपर पश्चात्ताप हुआ। इस समय लीलादेवी अनमानीती बननेकी तयारीमें थी। काकपर जयसिंहदेव खफा थे और उसे महलमें जानेकी सख्त मनाई थी। ऐसे समय महलमें इस तरह लीलादेवीसे मिलना अवश्य हानिकर होगा, ऐसा उसे लगा।

इस भूलको सुधारनेका उसने विचार किया, और इस कमरेसे बाहर निकालनेका मार्ग खोजनेके लिए वह दूसरे दरवाजेकी तरफ़ गया। दरवाजा ढकेलनेपर खुला हुआ मालूम हुआ और उसने उसे खोल डाला। तब वह एक निर्जन कोठरीमें पहुँचा। दरवाजेका ताला खोलकर किसीने वहीं रख दिया था। काकने सावधानीसे दरवाजा बन्द किया। इतनेमें सामनेसे एक रूपवती लड़की आई। वह काकको देखकर हँसने लगी और बोली, "चोर पकड़ा गया।"

"धीरेसे।" काकने नाकपर अँगुली रक्खी।

"तू कौन है?" आँखें नचाकर उसने पूछा।

"अरे धीरे तो बोल। रानीजी सुन लेंगी।"

"हः हः हः।" लड़कीने कहा, "तू चुपचाप भाग आया। अच्छा हुआ कि मैंने दरवाजा खुला रखा। कुछ खबर है? इसकी चाबी तो मेरे ही पास है। तू कौन है?"

"मैं लाटका ब्राह्मण हूँ, महारानीजीका आश्रित।"

" हः हः हः ! और चुपचाप भाग रहे हो ?" छोकरी हँसी और एकदम गंभीर हो गई। " तुम लाटके हो ?"

" हाँ।"

" भटराज काकको पहचानते हो ?"

" अच्छी तरहसे। क्यों ?"

" वह सोमनाथ पाटन आये ?"

काक सावधान हुआ। " हाँ, आये होंगे। तुम्हें क्या मतलब है ?"

" वह पकड़े गये या नहीं, कुछ खबर है ?"

" बाहड़ मेहता गये हैं, सो पकड़े बिना थोड़े ही रहेंगे !"

छोकरी बड़ी प्रसन्न हुई। उसके गालोंपर बल पड़ गये। अनजाने ही हर्षसे उसके दोनों हाथ मिल गये।

" तुम्हें विश्वास है ?"

" हाँ बहन, तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। अब मुझे जाने दो। जयदेव महाराज कहाँ मिलेंगे ?"

" बाहर निकलकर दाहिने हाथकी तरफ जाओगे तो जगदेव परमार मिलेगा। उससे कहोगे तो वह ले जायगा।"

" बहन, तुम कौन हो ?"

" मैं दंडनायक परशुरामकी लड़की समर्थ।"

" सज्जन मेहताकी पौत्री ?"

" ओहो ! तुम तो सबको पहचानते हो !"

" हाँ," कहकर काक तेजीसे पैर बढ़ाता हुआ वहाँसे निकला। छोकरीने दरवाजेपर ताला लगा दिया और चाबी कमरमें छुपा ली। " ठीक है, मुझे महारानी चिढ़ाती हैं, अब मैं भी चिढ़ाऊँगी।" कहकर उसने जरा उछल लिया। थोड़ी देर बाद वह फिर विचारमें पड़ गई, एकदम हँस पड़ी और गाने लगी —

" बाहड़ मेहता खूब किया। काकभट्टको बाँध लिया।"

× × ×

काक इस कमरेमेंसे दालानकी तरफ निकला और दाहिनी ओर तेजीसे

गया। दो कोठरियाँ लाँघने पर उसे दो योद्धा शस्त्रोंसे सज्जित खड़े दिखे; वह उनके पास गया।

"महाराज कहाँ—अन्दर हैं?"

दोनों योद्धा गुजराती नहीं मालूम हुए। एक सामान्य ब्राह्मणको इस तरह तेजीसे दौड़कर आते देख उन्हें ज़रा गुस्सा आ गया।

"हाँ, क्यों?"

"मुझे मिलना है।" कहकर काक अन्दर जाने लगा। वे सैनिक उसकी यह धृष्टता देखकर चकित हुए और उन्होंने दरवाजेके आगे भाले कर दिए। "परमारको आने दे।"

काकको लगा कि अंदर कोई बैठा है, इसलिए उसने जोरसे कहा—"क्या मुझे रोकते हो?" काकके स्वरमें गर्व और अधिकार दोनों थे। "मुझे, लाटके दुर्गपाल भटराज काकको? क्या समझते हो?" काकका नाम सुनकर सैनिक जरा दूर हट गये।

"अन्नदाता, यह तो मैं हूँ काक!" कहकर मानो अंदरसे महाराजने उसे बुलाया हो, इस तरह जवाब देकर वह अंदर चला गया। परन्तु अंदर जाना इतना सहज न था। एक दूसरे शस्त्रसज्जित पुरुषने उसका हाथ पकड़ा और भारी आवाज़में कहा।

"कौन है? गड़बड़ क्यों करता है?"

काकने ऊपर देखा। वह पुरुष धूलसे ढँका हुआ था और उसके एक हाथमें पट्टी बँधी थी। उसकी आँखें लाल थीं। काकने वह छोटा किन्तु सबल शरीर, झुकी हुई और प्रतापदर्शक नाक, थका हुआ परन्तु ज़िद्दी मुँह तुरन्त पहचान लिया।

"दंडनायक महाराज, घणी खम्मा!" काकने मजाक करते हुए कहा, "विजयकी धुनमें आदमी पुराने मित्रोंको भी भूल जाता है। क्या दुनिया है!"

"कौन?" ज़रा चकित होकर सज्जन मंत्रीके महारथी पुत्र परशुरामने कहा।

"काक।"

"कौन, भृगकच्छके दुर्गपाल! ओ हो हो! कैसे हो?" परशुराम काकसे लिपट गए।

"अच्छा हूँ। जीता जागता यहाँ तक आ पहुँचा हूँ। महाराज मिलेंगे क्या?"

"तुमपर जरा नाराज हैं।"

"हर्ज नहीं, परन्तु अन्दर तो हैं?"

"हाँ। अभी अभी मेंदरडाके आगे सोरठियोंको हमने पीछे हटा दिया है; मैं इसीकी खबर देने आया था।"

"परशुरामजी, आप न होते तो पाटनका क्या होता?"

परशुराम खिलखिलाकर हँस पड़ा "काक, मैं दरबारी नहीं हूँ, इसलिए खुशामदको नहीं पचा पाता। परन्तु तुम नहीं होते, तो लाट तो पाटनने कभी-का खो दिया होता।"

"अरे हाँ, भूल गया। मैं फिर मिलूँगा। मुझे भी जरूरी काम है।"

"जाओ, फतेह करो। इस समय महाराजका मिजाज भी ज़रा खुश है।"

काक नमस्कार करके भीतर गया। उसकी आहट सुनकर अन्दरके एक कमरेमेंसे सत्ताशील आवाज आई। "कौन? जगदेव!"

काकने आवाज़ पहचान ली, वह दौड़कर अन्दर गया। "नहीं अन्नदाता, यह तो मैं हूँ—काक!"

सिंहासनपर एक आदमी आईनेके सामने मूँछ मरोड़ता हुआ बैठा था और एक चाकर हाथमें कंघी लिए खड़ा था।

काकने साष्टांग दंडवत प्रणाम किया।

१३—राजाधिराज

एक साधारण-सा युवक गद्दीपर लेटा था। उसका कद बड़ा होनेपर भी छटादार था; उसकी काठी भरी हुई और मजबूत थी। उसके चौड़े स्कंध और स्नायुयुक्त भुजदंड उसके शारीरिक बलकी साक्षी दे रहे थे।

वह सफेद धोती पहने था और कंधेपर सुनहरी दुपट्टा डाले था। झीने दुपट्टेमेंसे उसके गलेके अभूषण और हाथके बाजूबंद चमक रहे थे। उसका रंग गेंहुआँ था, मात्र पहुँचेसे उसके हाथ काले थे। उसका मुख लंबा गोल और

भरावदार था और छोटी तथा सुन्दर दाढ़ीके नुकीले सिरे सिरपरके लंबे घुंघराले बालोंमें छुपकर उसे भव्यतासे मढ़ रहे थे। उसकी लंबी और पतली नाक महत्त्वाकांक्षा प्रकट करती थी। होठ पतले और सुन्दर थे तथा उसकी विलासप्रियताको सूचित करते थे। उसकी बड़ी, लंबी और तेजपूर्ण आँखें अजेय बलकी साक्षी देती थी और सारे मुँहपर सुप्त सिंहके जैसा प्रताप सोया पड़ा था। उसकी स्थिरता ही विरोधीको कँपानेके लिए काफी थी।

महाराज जयसिंहदेवने ज़रा आँखें बड़ी करके देखा। किसीका इस प्रकार आना उन्हें रुचा नहीं, यह उनकी दृष्टिपरसे स्पष्ट हो गया

"कौन?" ज़रा सख्तीसे उन्होंने पूछा।

"पृथ्वीनाथ, जिसे आपने बुलाया था, वह काक!"

काक उठकर घुटनोंके बल पड़कर हाथ जोड़ते हुए बोला।

"काक! तुम?"

"हाँ अन्नदाता। आपका आज्ञापत्र मिला कि मैं तुरन्त चल दिया। पृथ्वीनाथ प्रसन्न तो हैं?" काकने पूछा।

महाराजको यह मित्राचारी अच्छी न लगी, यह काकको स्पष्ट दिखा और वह हँसा।

"तुम सीधे चले आये?" ज़रा आश्चर्यचकित स्वरमें जयदेवने कहा।

"आपकी जब आज्ञा हुई, तो कैसे रुक सकता था?"

"तुम्हें कोई मिला?"

"नहीं अन्नदाता। शत्रुका देश था, इसलिए मैंने सावधानी रक्खी थी। परन्तु कृपानाथ, आप प्रसन्न तो हैं? दंडनायकने मेदरडाका हाल मुझे अभी बतलाया।"

"हाँ, यह ठीक हुआ।" जयदेवने गर्वसे कहा।

"और लीलादेवी तो प्रसन्न हैं? और राजमाता? मुंजाल मेहता तो आनन्दमें होंगे?"

जयदेवकी आँखें ज़रा चमकीं, उसे यह प्रश्नावली भी न रुची।

"काक, सब प्रसन्न हैं। लाटका क्या हाल है?"

"मैं आया, तब तक तो सब शान्त था। अब तो आम्रभट मेहता क्या करते हैं, इसपर सब निर्भर है।"

" क्यों ? "

" बहुत कच्चे हैं । और इस समय लाटको शान्त रखना बालकोंका खेल नहीं । "

" हाँ ! " महाराजने तिरस्कारसे कहा । " परन्तु तुम इस वेषमें कैसे ? "

" महाराज, " काक हँसा । " आपका आज्ञापत्र मिला तब मुझे लगा कि आपको मेरी सचमुच जरूरत है । और आपके तथा मेरे दुश्मन क्या कम हैं ? इसलिए इस वेषके बिना छुटकारा न था । अन्नदाता, मैं तो जब लीलादेवीको परणाने आया था, तबसे आज ही आपसे मिला हूँ । परन्तु महाराज, आपकी कीर्ति और प्रताप देखकर तो मैं दंग रह गया हूँ । पन्द्रह वर्ष पहले मैंने आपसे जो कहा था, वही हुआ । "

" क्या ? "

" आप तो राजा विक्रमादित्यकी कीर्ति फीकी करनेके लिए जन्मे हैं । "

जयदेवने प्रसन्न होकर दाढ़ीपर हाथ फेरा । वह मसनदके सहारे लेट गये और काककी ओर मधुर दृष्टिसे देखने लगे ।

" काक, तुम पाटन आकर क्यों नहीं रहते ? "

" महाराज, आप क्या यह नहीं जानते ? आपके मुसाहब खलबला उठेंगे । आपको स्मरण नहीं कि पंद्रह वर्ष पहले मुझे यहाँसे चला जाना पड़ा था ? "

" काक, मुझे तुम्हारी जरूरत आ पड़ी है । " जयदेवने कहा ।

" आपकी आज्ञा हुई और मैं आकर उपस्थित हूँ । "

" मैं इन सबसे थक गया हूँ । " सतर होकर ज़रा तिरस्कारसे राजाने कहा ।

" मुरार, बाहर जा । " कथा लिये खड़े मनुष्यसे जयदेवने कहा ।

मुरार बाहर गया ।

" काक, मैं इस जूनागढ़के घेरेसे थक गया हूँ । " राजाने काकपर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर कहा ।

काकका मुख भावहीन था । " महाराज, दो ही मार्ग हैं । "

" कौनसे ? "

" या तो जूनागढ़को सर कीजिए या फिर छोड़िए । "

" मैं जयसिंहदेव जूनागढ़का घेरा उठा लूँ ! "

" तो उसे सर कीजिए । " काकने शान्तिसे कहा ।

" जयसिंहदेवने अधीरतासे हाथ पटका। " परन्तु सर नहीं होता, और मेरी कीर्तिमें कलंक लग रहा है।"

" आपकी आज्ञा-भरकी देरी है।"

" क्या ?" ज़रा हर्षसे जयदेवने पूछा।

" आपको कितने दिनोंमें जूनागढ़ सर करना है ?"

" कितने दिनोंमें सर होगा ?"

" आप कहें, उतने दिनोंमें।"

" और नहीं किया तो ?"

" उसके पहले या तो जूनागढ़ नहीं, या फिर काक नहीं।"

महाराज जयदेव प्रसन्न हो गए। काक नीची दृष्टिसे यह फेरफार देखता रहा।

" शाबाश ! तुम्हारे जैसा तो यहाँ एक भी नहीं है।"

" यह तो आपको कभीसे मालूम है।"

जयदेव खुश थे। हँस पड़े। " काक, तुम्हारी बोली तो जैसीकी वैसी ही रही।"

" पृथ्वीनाथ, मैं नहीं बदला तो मेरी बोली कैसे बदल जाती ?" जयदेव हँसे। खुशामदभरे दरबारी वातावरणमें इस समय यह साहस उन्हें आकर्षक लगा। इतनेमें मुरारने प्रवेश किया।

" अन्नदाता, बाहर परमार और उदा मेहता खड़े हैं।"

राजाने काककी ओर देखा। काक हँसा। " तुम परमारको पहचानते हो ?"

" आपका वह परदेशी चाकर ?"

जयदेव हँसे। " फिर तुम्हारी जीभ सीधी नहीं चलती ? वह तो मेरा मानीता है।"

" इससे कहीं मान पा सकता है ? अन्नदाता, आपको तमाशा देखना हो तो मुझे जाकर कपड़े बदल आने दीजिए।"

" हाँ, यह भी ठीक है। मुरार, जा इन्हें कपड़े दे।"

" जो आज्ञा।"

काक उठकर मुरारके साथ पासके एक मार्गसे अदृश्य हो गया।

जयदेव मन ही मन हँसा। वर्षों हुए परशुराम दंडनायक सोरठियोंको गढ़में

घेरे पड़ा था; और सोरठ बहुत कुछ पाटनके ताबे था। परन्तु जूनागढ़का गढ़ तोड़ना खेल नहीं था। तीन बार जयसिंहदेवने स्वयं आक्रमण किया, परन्तु जूनागढ़की एक कंकरी भी न हिली। इस समय परशुराम, त्रिभुवनपाल सोलंकी और मुरारपाल मंडलेश्वर, राज्यके ये तीन अग्रगण्य महारथी राको चारों ओरसे दबा रहे थे, तो भी गिरनारका रा' अपनी स्वतंत्रताका झंडा खड़ा किये उनकी हँसी कर रहा था।

इस समय जयसिंहदेवका धीरज खत्म हो चुका था, और न जाने कैसे उनके हृदयमें देवड़ीके प्रति प्रेम फिरसे उमड़ आया था। बरसों पहले खेंगारने जो अपमान किया था, वह उन्हें सालने लगा था और, यह विचार रात दिन जलाया करता था कि जब तक रा' नहीं झुकता है, तब तक मेरी कीर्ति कलंकित है।

स्वयं युद्धसे पीछे हटनेवाले तो वे नहीं थे, फिर भी यदि इतने बरसोंके बाद स्वयं लड़ने जाएँ और पीछे हट जायँ, तो बेहद मेहनतसे प्राप्त की हुई कीर्ति और महत्ता नष्ट हो जाए, यह भी वे न भूले थे। उन्हें एक महाप्रयत्न करके ऐसा प्रचंड हमला करना था कि जूनागढ़का पत्थर भी किसीके हाथ न लगे। इसके लिए खंभातसे सैन्य लेकर उदा मेहताको, मालवासे थोड़ी सैना लेकर दादाक मंत्रीको और भृगुकच्छसे काकको बुलवाया था। त्रिभुवनपाल, परशुराम, मुरारपाल, उदा, दादाक और काक, इन अनेक युद्धोंके छह अडिग खिलाड़ियोंके साथ उन्होंने चढ़ाई करनेका निश्चय किया था। यमकी सेनाके समान ये दुर्जय योद्धा खेंगार तो क्या गिरनारको भी झुका देंगे, ऐसा उन्होंने सोचा था।

दादक मंत्री अभी तक आए न थे। जयदेवकी चलती तो वे काकको नहीं बुलाते और दूर पड़ा हुआ काक इन योद्धाओंके साथ शोभा न देगा, ऐसा कुछ अस्पष्ट-सा ख्याल उनका था। परन्तु त्रिभुवनपाल और मुरारपाल दोनोंने काकको बुलानेकी सूचना दी थी। जब जयदेवने मुंजाल मेहताको भी शस्त्र-सज्ज होनेकी सूचना दी, तब महाअमात्य हँसे।

"जयदेव, मैं चढ़ाईपर चलूँ यह आपको शोभा न देगा। आपने बहुत कीर्ति प्राप्त की है; परन्तु इस कीर्तिके बिना दूसरी सारी कीर्तियाँ बेकार हैं। मूलराज देवने रा' को झुकाया था; अभी आपके लिए यह करना बाकी है। जरूरत

होगी तो मैं भी रणमें चढ़ूँगा। निश्चिंत रहिए। बूढ़ा तो हो गया हूँ, फिर भी काम दे सकता हूँ। " कहकर मंत्रीने अपने वृद्ध किन्तु सबल बाहुओंकी ओर नजर डाली।

जयदेवके मस्तिष्कमें बहुत हवा भरी थी। परन्तु मुंजाल मेहताके आगे वह बालक ही बना रहता था। विचक्षण मंत्री राजाको कभी न मालूम हो, इसका बहुत ध्यान रखते थे, फिर भी वानप्रस्थी बनकर रहते और जयदेव उनकी इस उदारताको समझता था। उसने जानेकी अनुमति माँगी।

" महाराज, " मंत्रीने लापरवाहीसे सूचित किया, " एक काम करेंगे तो मेरी जरूरत न पड़ेगी। "

" क्या ? "

" भृगुकच्छके दुर्गपालको भी बुलाकर साथमें ले लें। "

" किसे, काकको ? "

" हाँ। "

दूसरे ही दिन आम्रभट आज्ञापत्र लेकर भड़ौंचके लिए चल दिया। जयदेव चाहता था, दूर पड़े काकको अपने तेजसे प्रभावित और प्रतापसे कंपायमान कर दे। यह इच्छा पूरी न हुई, तो राजाको अच्छा न लगा। परन्तु काककी हिम्मत, वीरता और मुत्सद्दीपनकी उसे जरूरत थी और उसकी कदर करनेकी शक्ति भी उसमें थी।

१४—वाग्भटका लाया हुआ कैदी

गौरवशील लापरवाहीके साथ जयदेव फिर गद्दीपर लेट गया।

उसने धीरेसे सिरके बाल हाथ फेरकर ठीक किये और कुछ सोचने लगा।

विचार करते करते बरसों पहले देखी हुई कालड़ाकी देवड़ीका सुकुमार मुख आँखोंके आगे आ गया। जयदेवके मुखपरसे गौरव जाता रहा और रसकी तृषा छा गई। उसकी बड़ी बड़ी आँखोंमें आतुरता दीख पड़ी।

काककी बातचीतसे उत्पन्न हुए विचारोंने कुछ दूसरी ही दिशा पकड़ ली, वह मन ही मन कुछ बड़बड़ाया।

" जूनागढ़ ले लूँ, रा' को मार डालूँ, यह सब तो ठीक, परन्तु उदा सचही कहता है कि रा' के मारनेसे कहीं देवड़ी मिल सकती है ? राजभ्रष्ट देवड़ी मुझे शत्रु ही समझेगी। परन्तु देवड़ी तो मिलनी ही चाहिए।" जयदेवकी भौंहें सिकुड़ गईं, उसकी आँखोंमें खुनस आ गई। " क्यों नहीं मिलेगी ? कुछ बात है ? उदा ऐसा कच्चा नहीं। वह जानता है कि मेरी इच्छा पूरी हो गई तो उसका बेड़ा पार हो जाएगा। और वह है भी उस्ताद। यदि सुलह करनेसे देवड़ी मिलती है, तो भले-ही रा' कर देकर जूनागढ़ अपने पास रक्खे। परतु इस विषयमें मुझे इन तरवारवालोंका विश्वास नहीं। देखूँ तो सही, उदा क्या खबर लाया है।"

" अन्नदाताकी घणी खम्मा।" जगदेवकी आवाज आई।

" जगदेव," महाराज जयदेवने रौबके साथ पुकारा।

" कृपानाथ !"

" दूसरा कौन है ? उदा मेहता ! आओ।" जगदेव और उदाने प्रवेश किया। स्वच्छ और सुन्दर वाक्योंसे और सादे परन्तु बहुमूल्य गहनोंसे उदा मेहता शोभित थे। उनकी लाल पगड़ीका रंग जैसा जवानीमें था वैसा ही था, वह उड़कर आँखोंमें समाता था। उनका मुख पहलेकी तरह ही हँस हँस उठता था। उनकी मूँछोंमें काले बाल थोड़े ही रह गए थे, फिर भी मुँहपर वृद्धावस्था-के चिह्न अधिक नहीं दीख पड़ते थे। ऐसा लगता था कि उनकी आँखोंमें धूर्तता कुछ और ज्यादा हो गई है। और बहुत बार उनमें भलमनसाहतका रंग भी चमकता था—यह प्रताप बड़ी उम्रमें आए हुए सौजन्यका था या अभ्याससे प्राप्त हुई सरलताका था, निर्णय करना कठिन था। वे अनुभवी दरबारी ठाठसे चलते थे, उनके सारे व्यक्तित्वपर उनके स्वभाव और जीवन-चर्याकी छाप थी।

शांत और स्थिर समझदारी, न डिगे न छूटे ऐसा धैर्य, न चूके न जोखिम उठावे ऐसा शौर्य, न खत्म हो और न खटाये ऐसी मिठास, लगनसे सीखे हुए इन गुणोंका प्रतिबिंब उनकी चालमें, बोलीमें और विचारोंमें क्षण क्षणमें पड़ता था। उनके शृंगारमें, बोल-चालमें अथवा अभिप्रायमें कुछ

ऐसी खूबी थी कि वे जैनधर्मके महास्तंभ, श्रावकोंके शिरोमणि, बेशुमार धनके धनी और अपार सत्ताके अधिकारी हैं, यह कोई क्षण-भरको भी नहीं भूल सकता था।

"हाँ महाराज, आया।" मंत्रीकी शांत और मधुर आवाज आई। यह आवाज मोहक थी, फिर भी उसमें कुछ न्यूनता है, ऐसा सुननेवालेको तुरन्त ही ख्याल होता।

"जगदेव, तुम कहाँ गए थे?" जयदेवने पूछा।

"अन्नदाता, मैं महलमें—"

"परमार," सिर उठाकर राजाने कहा। मुझे कोई भी बहाना नहीं सुनना है। दो आदमी यहाँ बिना पूछे आए, इसमें तुम्हारा कुसूर है।"

जगदेव हाथपर हाथ धरे, नीचा सिर किये खड़ा रहा।

"बाहर जाओ।"

"जो आज्ञा।" कहकर जगदेव बाहर चला गया।

"कहो मेहताजी, बैठो।" राजाने लापरवाहीसे उदाको बैठनेके लिए कहा।

उदा मेहता पीठपरकी शाल ठीक करके गद्दीके नीचे पालथी मारकर बैठ गये।

"क्या कर आये?"

"देशलमे मिल आया।

"फिर?"

"परसों वह मुझसे मिलनेवाला है। बन सका, तो रा' और देवड़ीसे मैं ही मिल आऊँगा।"

"मेहताजी, मुझे इस प्रकारसे बातचीत चलानेमें विश्वास नहीं।"

"महाराज, आप परिणाम देखेंगे तब पता चलेगा।"

"परन्तु रा' जिद्दी बहुत है।"

"और हम क्या कम जिद्दी हैं? अन्नदाता, जो शौर्यसे नहीं होता वह सयानपनसे हो जाता है।"

"ठीक, परन्तु देखो, मुझे कलंक न लगना चाहिए।"

"अन्नदाता, देवड़ी आपका वरण करे और रा' झुके, तो इससे बढ़कर और क्या चाहिए?"

" बढ़कर तो कुछ नहीं, परन्तु—" जयदेवने जरा रुककर पूछा, " परन्तु मेहताजी, बाहड़ क्यों नहीं आया ? "

" महाराज, वह तो काक है, उसे लाना क्या सहज है ? "

" परन्तु बाहड़ उसे ले आएगा, यह तो निश्चित है न ? जरा भी न समझ पड़े ऐसे मजाकिया ढँगसे राजाने पूछा।

" महाराज, यह काम कोई कर सकता है तो बाहड़ ही—"

" काक हमारी सहायता करेगा। "

उदा मेहताने सिर खुजलाया। " हाँ, कर भी सकता है परन्तु बड़ा आपमतीं—अपने मतसे चलनेवाला—है। "

" मेहताजी, गुजरातमें एक ही आदमीका मत है—"

" और वह अन्नदाताका। " उदाने वाक्य पूरा किया। बाहर किसीके पैरोंकी आहट सुनाई दी।

" जगदेव, कौन है ? "

" कृपानाथ, बाहड़ मेहता आये हैं। "

" आने दो। "

जयदेव और बाहड़ दाखिल हुए। वाग्भट मुसाफिरी करके सीधा चला आ रहा था, उसके सुंदर मुखपर थकान और हर्ष दोनोंके स्पष्ट चिह्न दिखे।

" अन्नदाता, घणी खम्मा। " वाग्भटने प्रणाम किया। ' बापू, मेरा प्रणाम। "

" काकको लाये ? " उदाने पूछा।

जयदेव सिर्फ उसके सामने देखता रहा।

" अन्नदाता, आपके आज्ञानुसार काक भटराजको पकड़ लाया हूँ। " वाग्भटने झुककर हर्षके साथ कहा।

" किसे ? " जयदेवने आँखें फाड़कर पूछा।

" भटराज काकको। " वाग्भटने कहा।

" किसीको उसके साथ बातचीत तो नहीं करने दी न ? " उदाने पूछा।

जयसिंह देवकी एक दृष्टिसे बाप बेटे दोनों स्तब्ध रह गए।

" काक बाहर है ? "

" जी हाँ, महाराज ! "

" अन्दर लाओ, देखूँ । " राजाने कहा । उनकी आँखोंमें गुस्सा दिख पड़ा ।

" हाँ महाराज, " कहकर वाग्भट बाहर गया । महाराजकी मुखमुद्रा देखकर उदाको चिन्ता हुई ।

" अन्नदाता, इसके साथ जरा सावधानीसे काम लिया जाय । "

जयसिंहदेव बहुत बार सबसे अलग और अस्पष्ट हो जाते; उस समय उनकी आँखोंका चमकता हुआ तेज निकट संबंधियोंको भी दूर ले जा फैंकता और उनके आसपास गौरवका अभेद्य वातावरण छा जाता । इस समय राजाका स्वरूप ऐसा ही हो गया ।

" मैंने तुमसे सलाह नहीं पूछी । " राजाने पैर पटककर उदासे कहा ।

उदा चुप रह गया, वाग्भट खेमाको साथ लेकर अंदर आया ।

" काक कहाँ है ? " राजाने सख्तीसे पूछा । वाग्भटने आश्चर्यचकित होकर चारों तरफ देखा । उदा फीका पड़ गया; जयदेव ठहाका मारकर हँस पड़े ।

" यही काक है ? " जयदेवने तिरस्कारसे पूछा । " मेहताजी, कोई भी जो न कर सके, उस कामको करनेवाला यही बाहड़ है ?—ह: ह:., यह काक है ? "

खेमा हाथ जोड़कर खड़ा रहा ।

" अरे तू कौन है ? " हँसी रोकते हुए राजाने पूछा ।

" अन्नदाता, मैं तो भटराजका सेवक हूँ । "

" किसका ? काकका ? " राजाने पूछा ।

" हाँ, बापू । " खेमाने कहा ।

" तू यहाँ कैसे आया ? "

" मैं क्या करूँ बापू, ये भाई कुछ जाननेके लिए ठहरे ही नहीं । जहाज डूबा, मैं तैरता हुआ निकला और इन्होंने मुझे पकड़ लिया । मैं गरीब आदमी क्या कर सकता ? "

" उदा मेहता, तुम तो काकको पकड़नेवाले थे न ? "

" अन्नदाता ! "

" तुम्हारा लड़का लाट गया है, उसी तरह तुम भी वहाँ जाकर थोड़ा बहुत सीख आओ । " जयसिंहदेवने कटाक्षमें कहा ।

"अन्नदाता, परन्तु काक गया कहाँ?" उदाने बात बदलनेका प्रयत्न किया।

"यहीं है। यह रहा।" कहकर महलमेंसे पाये हुए सुंदर वस्त्रोंसे सुशोभित और शस्त्रोंसे सज्जित काक अन्दर आ गया। उसका ऊँचा शरीर भव्य प्रतीत होता था। उसके तेजस्वी मुखसे प्रतापकी किरणें फूट रही थीं और उसके गहरे एवं तीक्ष्ण नेत्रोंमें व्यंग्य चमक रहा था।

जयदेव फिर हँस पड़ा। "वाग्भट; देखो इस मनुष्यका नाम काक है। पहचान लेना जिससे फिर भूल न हो। इससे पार पाना, कविता करने जैसा सरल नहीं है। और मेहताजी, यह तो तुम्हारा पुराना मित्र है, पहचानते हो?"

"उदा मेहता मुझे न पहचानें, ऐसा कहीं हो सकता है!" काकने हँसकर कहा।

"क्यों रे खेमा? अच्छा हुआ कि तू बच गया। दूसरा कोई डूबा?"

"नहीं महाराज।" खेमाने कहा।

"खेमा, गुजरातमें एक ही महाराज हैं परम भट्टारक जयसिंहदेव महाराज। आज तेरे भी धन्य भाग हैं कि तूने दर्शन पा लिये।"

"अन्नदाता, आज्ञा हो तो यह जाए—थका हुआ होगा।"

"और तुम भी तो थक गये होगे!"

"आप जानते हैं कि आपकी सेवासे मैं कभी थकता नहीं।"

"भटराज," उदा मेहता बोले, "मेरा आँबड़ तो प्रसन्न है न?"

"हाँ, खूब प्रसन्न है।"

"मेहताजी," जयसिंहदेवने कहा। "ऐसा लगता है कि तुम्हारा आँबड़ वहाँ कुछ उलट-पुलट कर बैठेगा।"

उदाने तीक्ष्णतासे काककी ओर देखा और अपने पुराने दुश्मनके द्वेषका माप कर लिया। काक हँस रहा था।

"बाहड़," राजाने हँसकर तिरस्कारसे कहा, "अब तुम भी आराम करो, बहुत थक गये होगे।" बाहड़ नीचेसे ऊपर न देख सका। "और फिर परशुरामके साथ मेंदरडे चले जाना।"

"जो आज्ञा।" कहकर वाग्भटने नमस्कार किया और म्लान वदन वह वहाँसे चल दिया। काकने संकेत किया, इसलिए खेमा भी वहाँसे चला गया।

१५—राज्यकर्ताकी राजनीति

राजाने बारी बारीसे काक और उदाकी ओर देखा।

"तुम दोनों पुराने बैरी हो, परन्तु अब मित्र बनना है।"

"अन्नदाता, मैं तो काक भटका मित्र ही हूँ।"

"और मैं—जो आपका सच्चा सेवक हो, उसके साथ बैर नहीं रखना।"

"तो अब दोनों ही बैठो और कहो, जूनागढ़के लिए क्या करना चाहिए?"

काक और उदा दोनों बैठ गये।

"महाराज," उदाने मिठासमें कहा। "आप तो मेरे विचार जानते हैं। यदि बराबर दबाया जायगा तो रा'का सुलह किये बिना छुटकारा नहीं।"

"काक, तुम्हें सब बातें मालूम हैं?"

"जी नहीं।"

"रा' बिलकुल किनारे आ लगा है, परन्तु गढ़ ऐसा मज़बूत है कि उसे गिरानेमें बरसों लग जाएँगे। मुझे यह विग्रह अब थोड़े समयमें निबटाना है।"

"क्या रा' किसी भी तरहकी सुलह स्वीकार कर लेगा?"

"स्वीकार किये बिना उसकी गति नहीं।" उदाने कहा।

"कितने ही मनुष्योंको सुलहसे श्मशान अधिक प्रिय होता है।"

"अर्थात् रा' सुलह नहीं करेगा, ऐसा तुम मानते हो?" राजाने पूछा।

"मुझे विश्वास है।"

"कैसे?" राजाने पूछा।

"मैं उसे कितने ही वर्षोंसे पहचानता हूँ।"

"और मैं कर दिखाऊँ तो?" उदाने हँसकर कहा।

"तो मैं शस्त्र धारण करना छोड़ दूँ।" काकने भी हँसते हुए कहा।

"भटराज, देख लेना।"

"और यदि वह सुलहसे न माने तो?" काकने पूछा।

"राजाकी आँखोंमें गहरा तेज आ गया। उसने सतर बैठकर दोनोंकी ओर देखा।

"न माने तो! काक, मैं स्वयं चढ़ाई करनेवाला हूँ और रा'को चुटकीसे

मसल डालूँगा। जो मूलराज देवने किया, वह क्या मैं नहीं कर सकता? सोलकियोंको यह सिखाना न होगा।"

"महाराज, सो मैं जानता हूँ।" काकने कहा। "और इसीसे मुझे आश्चर्य, होता है कि आप ये सुलहकी बातें क्यों कर रहे हैं। सुलहकी बात निर्बल करते हैं सबल नहीं...गढ़ और रा' दोनोंको धराशायी कर दीजिए।"

"अन्नदाताको यह रास्ता नहीं रुचता।" धीमेसे उदाने कहा।

जयदेवने उत्तर न दिया। काक समझा, राजा देवड़ीका विचार कर रहा है।

"तब दूसरा रास्ता नहीं सूझनेका, परन्तु महाराज, सुलह करनी हो तो जल्दी कीजिए, जिससे हम जैसोंको कुछ सूझ पड़े।"

"अरे हाँ!" राजाने कहा, "उदा मेहता तीन चार दिनमें जवाब लानेको कह रहे हैं।"

"आप विष्टि ले जा रहे हैं?" काकने पूछा।

"हाँ, आप भी चलें तो अच्छा।" प्रयत्न निष्फल जाए, तो कोई अपयशका भागीदार चाहिए इस खयालसे उदाने कहा।

"ना।" काकने सिर हिलाया। "जो काम न हो सके उसे मैं अपने सिर नहीं लेता।"

"मेहताजी, परन्तु करोगे क्या?"

"महाराज, मैंने सब कुछ जमा लिया है। रा' आधा तो ढीला हुआ है। देवड़ी अनमानीनी हो जाय, इसका भी प्रयोग चालू है। और उसके मा-बाप भी उसे समझानेमें लगे हैं। देशलदेव योद्धाओंको भी समझा बुझा रहे हैं और परसों या चौथे दिन सब ढीला हो जायगा, तब मैं जाकर मिलूँगा। जितना हो सका मैंने कर रखा है, बादका तो सब कुछ आदीश्वर भगवानके हाथ है।"

अपनी योजना समझाते हुए कि इन प्रपंचोंके जालमें उलझकर जूनागढ़ कैसे स्वतंत्रता खो देगा, खंभातके चतुर मंत्रीकी आँखें चमकने लगीं और जयसिंह देव बड़ी दिलचस्पीसे बातें सुनते रहे। काक स्थिर दृष्टिसे देखता रहा।

"आप स्वयं जा रहे हैं?" काकने पूछा।

"हाँ।"

"मेहताजी, तब तुम्हें एक बात समझमें आ जाएगी, जो अभी तक नहीं आई।"

"क्या ?"

"वीरकी अडिगता और सतीकी श्रद्धा।"

"रा' और देवड़ीकी ?" जयदेवने पूछा।

"महाराज, आप उन्हें नहीं पहचानते। पर मैं तभीसे जानता हूँ जब ये दो वीर ज्वालाएँ इकट्ठी हुई थीं। आप इन्हें बुझा भले ही दें किन्तु इनकी आँच कम नहीं कर सकते। इसके सिवाय अन्नदाता, इतना और याद रक्खें कि ये ज्वालाएँ दो नहीं—एक हो गई हैं। त्रिपुरारि स्वयं आ जावें, तो भी इन्हें अलग नहीं कर सकते। इन्हें बुझा देंगे तो भी इनके अंगारोंकी राख अलग होनेकी नहीं।"

"भटराज," उदाने तिरस्कारसे कहा। "तुम्हें इनका गुणगान करना बहुत सूझ रहा है ?"

"अकारण गुणगान करनेका मेरा स्वभाव नहीं है।"

जयदेवका मुँह लाल हो रहा था। उसकी आँखोंसे चिनगारियाँ निकल रही थीं। उसके नथुने फूल रहे थे। क्रोधसे काँपते फिर भी स्पष्ट स्वरमें उसने कहा—"और काक, तुम जानते हो मैंने, परम भट्टारक जयसिंहने, सोलंकियोंकी कीर्तिके नामपर प्रतिज्ञा ली है कि इन दोनोंको एक साथ नहीं रहने दूँगा? देवड़ी उसकी नहीं, मेरी है। और देखता हूँ कि वह उसे कब तक रख सकता है।"

काक चुप हो रहा।

"मेहताजी, जब तुम विष्टि ले जाओ, तब मैं साथ चलूँगा।"

"महाराज, आप ?" काकने कहा।

"हाँ, मुझे तुम्हारे रा' और अपनी देवड़ीको देखना है।"

"परन्तु आपको कुछ हो गया तो ?" काकने कहा।

"काक," गर्वसे जयसिंह देवने कहा, "मेरा—तीनों भुवन हिला देनेवालेका—कौन क्या करनेवाला है ? जिसने बाबराको जीता, वह मनुष्यसे डरेगा ? मैं जाऊँगा।"

"परन्तु अन्नदाता," जरा हँसकर उदाने कहा। "एक शर्त है कि आप वेश बदलकर चलेंगे और एक शब्द भी नहीं बोलेंगे।"

" हाँ, यह मंजूर है । "

" महाराज, और मैं भी एक शर्त रक्खूँ ? " काकने एकाएक निश्चय करके कहा ।

" क्या ? "

" अपने अनुचरकी तरह मुझे भी साथ रखिए। "

जयसिंहदेव हँसे। " ठीक। काक तुम भी देखना कि तुम्हारा महाराज जैसा तुम समझते हो वैसा नहीं है । "

" महाराज, आप तो जैसा मैंने समझ रखा था उससे भी कहीं अधिक प्रतापी हैं । परन्तु मेरा मन कहना नहीं मानता । "

" ठीक, परन्तु जो शर्त महाराजने कुबूल की है वह तुम्हें भी माननी पड़ेगी । "

" अवश्य । मुझे इस विष्टिकी जोखिमदारी चाहिए भी नहीं । "

" अन्नदाता ! " मुरारने प्रवेश किया ।

" क्या है ? "

" बड़ी माताजीका आदमी आया है कि भटराज काक आए हों, तो बुलाया है । "

जयसिंहदेव हँसे। " काक, सभी तुम्हारी राह देखते जान पड़ते हैं । "

" पृथ्वीनाथ, यह भी भाग्यकी बात है । "

" मेहताजी, तब तुम भी जाओ । देखना, आजकी बातका एक अक्षर भी बाहर न जाने पाए । मुरार, मेरी कंघी तो ला । "

राजा और राजमाताके मानीते काककी ओर शांत, फिर भी द्वेषपूर्ण, छिपी नजर डालकर उदा उठा । वह और काक दोनों बाहर निकले ।

" भटराज, गई गुजरी बातें हमें भुला देनी चाहिए । " जरा हँसकर उदाने कहा ।

" मैं उन्हें याद करता ही नहीं मेहताजी । " काकने नमस्कार किया और वह मीनलदेवीके दूतके साथ चल दिया ।

१६—राज्य-संरक्षककी राजनीति

लीलादेवीकी स्वस्थता कुछ भंग हुई थी। उसे अपने पतिके स्वभावकी पूरी पूरी जानकारी थी। नहीं कहा जा सकता कि गुस्सेमें वे क्या कर बैठेंगे। इसके सिवाय जयसिंहदेवकी काकके प्रति कोई विशेष प्रीति भी न थी। इतना ही नहीं, कुछ अंशोंमें उसकी तरफ क्रोध और अविश्वास दोनों थे। काक एकाएक क्यों बुलाया गया, इसका कारण भी उसके लिए अज्ञात था।

असाधारण तेजीसे वह उस तरफ गई, जहाँ मुंजाल मेहता रहते थे।

मुंजाल नामके ही महा-अमात्य थे; उनका वास्तविक पद तो भीष्म पितामहकी तरह राज्यके अधिष्ठाता देव जैसा था। वे बहुत कम बाहर निकलते थे। मंत्रियोंकी मसलहतके समय कदाचित् ही हाजिर रहते। तो भी उनकी नजर सबपर रहती और सब जानते थे कि उनकी नजर है। पहलेकी तरह वे सबको दूर नहीं रखते थे। सभी बेधड़क उनके पास जा सकते थे। छोटे-बड़ोंकी सभीकी मुश्किलोंको दूर करनेमें वे अपना समय बिताते और फुरसत मिलनेपर राज्यके सभी अमलदारोंको बुलाकर उन्हें सलाह और शिक्षा देते। कभी कभी किसी साधु या ब्राह्मणके साथ बैठकर धर्म-चर्चा भी करते या सुनते।

दिनमें तीन चार बार जयदेव मिलने आते और साथ बैठकर खानगी मसलहत करते। राज्यके कारबारसे अलग रहते हुए भी राज्यतंत्रको बिना प्रयत्न वे संरक्षण देते और सरल मार्गसे चलाते। इस मुत्सद्दीकी हस्ती और प्रतापकी अवगणना करनेका स्वप्न भी किसीको नहीं आता था और हर एकको इनकी मददका भरोसा रखनेकी ऐसी टेव पड़ गई थी कि इनके बिना क्या होगा, सो कोई कल्पना भी न कर सकता था।

मंगी जब मंत्रीजीको खबर देने गई, तब मुंजाल पैरोंमें दुपट्टा बाँधकर शोभ मेहतासे आज्ञापत्र लिखा रहे थे। उम्रमें अट्ठावनसे बाहर चले गये थे, फिर भी उनका शरीर ज्योंका त्यों सशक्त और तेजस्वी था। उनकी चाँदके बाल उड़ गये थे और बिना मूँछोंके मुँहके कारण वे संन्यासी जैसे लगते थे। मुँह उम्रके कारण कुछ सूख गया था। नुकीली नाककी कमान जरा झुक गई थी और भालपर रेखाओंने त्रिपुण्ड बना लिया था। परन्तु सागर जैसी गहन आँखोंमें प्रभाव जैसेका तैसा ही था।

"मेहताजी, देवीजी आई हैं।"

"कौन, लीलादेवी ?" मुँजालने जरा हँसकर पूछा। उस हास्यमें गौरवशील वृद्धावस्थाकी समभावी मिठास समाई थी।

"हाँ।"

"शोभ, अब फिर लिखवाऊँगा।"

सोलंकियोंका वंशपरम्परागत नागर मंत्री शोभ रूपवान्, रसिक और चालाक था। उसकी छोटी-सी पगड़ी और चमकता हुआ तुर्रा उसके शोकीन स्वभावका प्रमाण दे रहा था। उसकी सोनेसे मढ़ी हुई लेखनी और कमरमें बँधी हुई रत्नजटित दावात आज्ञापत्र लिखनेके उसके अधिकार और तड़क-भड़कसे रहनेके शौक, दोनोंको बतलाती थी।

"और शोभ, कल तो प्रेमकुँवरिको राजमाताने खूब धमकाया।"

शोभने नीचे देखा।

"घबराना नहीं," महामात्यने हँसकर कहा, "मैं राजमाताको समझा दूँगा। परन्तु तुम दोनों मेरे पास आना। मुझे दो बातें करनी हैं।"

"जो आज्ञा।" कहकर शोभ चला गया।

रानीने जरा अधीरतासे प्रवेश किया। "मेहताजी, मेरा जरासा काम है।"

"आओ न महारानी," मुँजालने हँसकर कहा। "मैंने तो तुम्हें बहुत दिनोंमें देखा। बूढ़े आदमीकी खबर भी नहीं लेतीं ?" रानी हँसी। उसे पाटनके आडम्बरपूर्ण दरबारमें यह वृद्ध, विचारशील और सर्वग्राही दृष्टिवाला महामात्य अच्छा लगता था।

"मेहताजी, आपको मालूम तो होगा कि महाराजने भृगुकच्छसे काकको बुलवाया है ?"

"हाँ, क्यों ?" मुंजालके मुँहपर समझमें न आनेवाला हास्य फैल गया।

"वह यहाँ आ गया है।"

"अच्छा ?"

"हाँ, और उसका पता नहीं लगता।"

"क्यों ?" ज़रा गंभीर होकर महामात्यने कहा।

"महाराज उसपर गुस्सा हैं, उसका कट्टर शत्रु उदा महाराजका सलाहकार है, और इस दरबारमें उसके जैसे सत्यवक्ता मनुष्यका आदर न हो,

यह स्वाभाविक है।" तिरस्कारयुक्त शान्तिसे लीलादेवीने कहा। मुंजालके मुखपर गहन हँसी छा गई।

"एक दो बातोंसे मुझे ऐसा लगा कि उसकी जान जोखिममें है।"

मुंजाल फिरसे गंभीर हुए। "महारानी तुम व्यर्थकी घबराहटमें पड़ी हो।"

"नहीं।" निश्चयात्मक स्वरमें लीलादेवीने कहा। उसकी सुंदर भौंहें स्थिर हो गईं, उसकी तीक्ष्ण नजर निश्चल हो रही। उसकी सदैवकी भावहीन आवाज़ ज्यादा शान्त सुन पड़ी। ऐसे समय यह सुकोमल स्त्री भयंकर निश्चयात्मकताकी मूर्ति बन जाती, और चारों ओर त्रास फैलाती।

"मेहताजी," रानी पुनः बोली "आप इस राज्यके स्तंभ हैं, इसलिए आपके पास आई हूँ। मैं आपकी खटपटमें नहीं पड़ना चाहती, परन्तु यदि काकको कुछ हुआ, तो आपके राज्यका क्या होगा, यह भगवान् भोलानाथ भी नहीं कह सकते।"

अपार्थिव शान्ति और निश्चल दृढ़ताभरी आवाजसे निकले हुए ये जोशीले शब्द मुंजाल स्नेही पिताके समान सद्भावमें सुनते रहे।

"रानी," मीठी आवाज़से मुंजालने कहा। "मैंने एक बार कहा, वही फिरसे कहूँ? आप व्यर्थकी घबराहटमें पड़ी हैं।"

"कैसे?"

"आप काकको नहीं पहिचानतीं।"

"और मेहताजी, आप अपने शिष्य और उनके जगदेव तथा बाबराको नहीं पहिचानते।"

"मैं पहिचानता हूँ—अच्छी तरह। आप अधीर न हों। बैठ जाइए।" मुंजाल हँसे और रानी गादीपर बैठी। "इस सारे नगरके लिए अकेला काक काफी है। और दूसरी बात कहूँ?" न समझमें आवे, इस तरहसे लीलावतीपर नजर डालते हुए मुंजालने कहा।

"क्या?"

"आपका काक मेरे लिए पुत्रके समान है।"

"तो आप पुत्रकी ज्यादा सँभाल नहीं रखते दिखते।" लीलादेवीने जरा हँसकर कहा।

"मेरे भाग्यमें ही यह नहीं लिखा है। परन्तु मेरी चले तो मैं तो उसे अपनी

गद्दीपर बिठा दूँ। आप बेफिक्र रहें। यदि उसकी जान जोखिममें होगी, तो मुंजाल फिरसे हथियार उठा लेगा। अब हुआ संतोष ?"

"मेहताजी, तो वह इस समय कहाँ है, इसकी खोज कीजिए।"

"मैं अभी राजमाताके पास जाकर पता लगाता हूँ।"

"मेहताजी, मुझे शान्ति तभी मिलेगी। वह हमारे रंक लाटका रत्न है।"

"आप जैसी महारानी और काक जैसा योद्धा—फिर भी लाटको रंक तो आप ही कह सकती हैं। जाते जाते एक बात और कह दूँ ?"

"क्या ?"

"आप राज्यकी खटपटोंमें क्यों नहीं पड़तीं ?"

"मुझे यह रुचता नहीं।"

"गलत बात है।" स्नेहमे हँसते हुए मुंजालने कहा। "विधिने आपको राज्यतंत्र चलानेके लिए सिरजा है और संयोग भी सब अनुकूल हैं। जयदेव जैसे प्रतापी राजाको आप जैसी ही महारानी चाहिए। किन्तु आप व्यर्थ ही दूर दूर रहा करती हैं।" मुंजालकी स्नेहयुक्त वाणीसे रानीके अन्तरमें प्रतिध्वनियाँ उठ रही थीं। "आपको अपना पटरानी पद बनाये रखना चाहिए।"

रानीकी आँखोंमें थोड़ी देरके लिए निष्फलता दीख पड़ी।

"इस पदको रखनेके लिए ही तो काकको यहाँ बुलाया है।"

रानीका मुख फीका पड़ गया, मानों उसकी चोरी पकड़ी गई।

"आपने कैसे जाना ?"

"बेटी," मुंजालने हँसकर स्नेहसे धीमे स्वरमें कहा। "आपका पटरानी पद कायम रहे और जूनागढ़ जीता जाय, इसीमें पाटनका श्रेय है। विधि प्रयत्नमें लगी हुई है।"

"और मेहताजी, उस विधिने काकको यहाँ बुलाया है ?" चतुर मंत्रि-वर्यकी ओर सम्मानकी दृष्टिसे देखते हुए लीलावती बोली।

मुंजाल खिलखिलाकर हँस पड़ा। "प्रभु जाने, परन्तु काकको विधिका साधन बननेकी बड़ी टेव है, इसलिए अब आप निश्चिन्त रहें।"

लीलादेवी उठी और साथ ही मुंजाल भी उठे। "महारानी," मुंजालने

कहा। " आज मुझे बड़ा आनन्द हुआ कि हम इतनी बातें कर सके। इसी प्रसंगमें एक दूसरी बात कहूँ, तो सुन लोगी ? "

" कहिए न ! "

" देखो, मेरे जैसे बूढ़ेके पास बहुत-सी बातें कामके योग्य होती हैं और बहुत बार बूढ़े व्यर्थकी मायापच्ची भी करते हैं। "

" आज आप इस प्रकार विनम्र क्यों हो गए हैं ? "

" क्योंकि मैं पाटनकी महारानीके साथ बातें कर रहा हूँ। सुनो बेटी, काक यहाँ रहे तो ही आपका, महाराजका और पाटनका भला हो सकता है। परन्तु उसका यहाँ रहना न रहना आपके ऊपर निर्भर है। "

" सो कैसे ? " ज़रा चौंककर रानीने पूछा।

" बैठो, मैं बतलाता हूँ। हम एक दूसरेको समझ लें तो हमेशाके लिए फुरसत हो जाय। "

" परन्तु काककी खोज—"

" हाँ, करता हूँ। वस्ता, जा तो महाराजके पास और वहाँ भृगुकच्छके दुर्गपाल भटराज काक हों तो कहना कि राजमाता बुलाती हैं। हों तो साथ ही लेते आना और न हों तो दौड़ते हुए आकर खबर देना। " वस्ता गया।

" देखो बेटी, " मुंजालने कहना शुरू किया। उनकी आँखोंमें मृदुता आई, और मुखपर गंभीरता छा गई। " द्वापर युगमें एक था नर और एक थी नारी। दोनों जवान थे। दोनोंके स्वभाव व्योमविहारी थे। दोनोंने मेरु लाँघनेका दृढ़ संकल्प किया था। नरकी नाड़ियोंमें वनराजका सर्वभक्षी जोश था और नारीकी रगोंमें सिंहिनीका सत्ता-शौक। "

मुंजालने रुककर जरा गला साफ किया। उसकी नजर कमरेके दूरके कोनेमें जा ठहरी। " दोनों दूर थे–परन्तु विधिने दोनोंको एकट्ठा कर दिया। नर और नारी दोनोंके प्रौढ़ आत्मा एक दूसरेके साथ जुड़ गये। दोनोंके विचारमें एकमेकके सिवाय दूसरी सृष्टि न थी और दूसरी आशा न थी। "

लीलादेवीने समझना शुरू किया। उसकी आँखें इस वृद्ध अमात्यके तेजस्वी मुखपर होनेवाले भाव-परिवर्तन देखती रहीं। मुंजालका मुख कठोर बना, वह रुक गया।

" एक था मंत्री—दूसरी थी महारानी। जिस विधाताने उन्हें एक होनेके

लिए बनाया उसने उनके बीच असंख्य अंतराय भी खड़े किये। तब दोनों-ने सिर झुकाया और विधिकी आज्ञा स्वीकार की।" मंत्रीकी आँखोंका तेज कुछ बुझता-सा लगा और दूसरे ही क्षण उन्होंने बात शुरू कर दी।

"अभेद्य बंधनोंसे बँधी हुई बेलने कठिन वैधव्य पदकी एकता स्वीकार की। उसकी त्यागवृत्तिने उसे सदेह मृत्युका आस्वादन कराया।" मुंजाल रुका।

"परन्तु मेहताजी," रानीकी आवाजमें भावका संचार पहली ही बार हुआ। "इस त्यागमेंसे उत्पन्न हुई सुवासने सारी सृष्टिको सजीवन भी किया या नहीं?"

"सो तो कौन जाने!" मुंजाल आगे कहने लगे। "परन्तु इस सुवासमें लिपटी हुई अपनी एकतापर वे जीते रहे—" मंत्रीने सतर होकर चारों तरफ देखा। "और जैसे वे जिये वैसे ही मरे—अकेले निःसंग।" थोड़ी देर मंत्री चुपचाप देखते रहे। उनकी आँखें गीली हो गईं। "बेटी," गला साफ करते हुए मंत्रीने कहा। "कहनेका सारांश यह कि बहुत-सी चीजे देखनेमें स्वाभाविक लगती हैं—परन्तु यदि सही दृष्टिसे वे अस्वाभाविक हों तो दुःखका पार नहीं रहता। यह तो कौन जाने कैसे—परन्तु दोनोंके पापमें राज्यकी जड़े भी उखड़ जातीं। इसलिए बेटी, ध्यान रखना।" मुंजालने स्नेहसे लीलादेवीके कंधेपर हाथ रख दिया। "समझती हो न?"

थोड़ी देर कोई न बोला। मुंजालकी आवाज पहले जैसी स्वस्थ हो गई। "रानी, सोलंकियोंकी कीर्तिका आधार आपपर है।" रानी उठी, नीचे देखती खड़ी रही, और एकदम निश्चयसे उसने सिर ऊँचा कर लिया। उसकी आँखोंमें तेज चमक उठा, छाती जरा उछली, और उसके होठ जोरसे बन्द हो गए।

"मेहताजी," उसकी आवाज़ तलवारकी धार जैसी थी। "आपने मेरे पिताका पद लिया है, तो मैं पुत्री जैसे स्नेहसे अपनी बात कहूँ?"

"बेटी, निर्भय होकर कहो। मैं देख सकता हूँ और विवेक बुद्धिसे विचार भी कर सकता हूँ। मेरी सलाह अभी तक किसीके लिए गलत नहीं हुई।"

"मेहताजी, सलाहके लिए तो स्थान ही नहीं है।" रानीने तिरस्कारसे बोलना शुरू किया। "एक था नर और एक थी नारी। नारीने याचना की

और ताज मस्तकपर रखा। मेहताजी, दुनियामें कितनोंके भाग्य फूटे होते हैं। उस नरकी दृष्टिमें उसकी कीमत नहीं या फिर आपने जो कही उस बातसे वह चौंकता हो। उसने तो अपने पथसे जाना पसंद किया। दोनोंको एक दूसरेका विश्वास है—पर और कुछ है नहीं, और न होनेका है।" रानीकी आवाजमें भाव बिलकुल न था। वह हँस पड़ी। हास्य शुष्क और तिरस्कारमय था। "मेहताजी, सोलंकियोंकी कीर्ति कलंकित होनेका जरा भी डर नहीं है।"

मुंजाल उठे, रानीके पास गए और उसके कंधेपर हाथ रखकर स्नेहपूर्ण स्वरमें बोले, "बेटी, तुम तो महारानी होनेके लिए ही बनी हो।"

रानी फिर हँसी—पहलेके ही समान नीरसतासे।

' न बनी होती तो अधिक बाधा न थी" कहकर मुंजालकी तरफ उसने एक कठोर नजर डाली। "परन्तु बन चुकी हूँ—फिर आपको और क्या चाहिए ?"

गर्वसे सिर ऊँचा किये लीलादेवी कमरेके बाहर चली गई। मुंजाल देखते रहे और थोड़ी देरमें बड़बड़ाये। "अब मुझे शान्ति हुई।"

१७—काकको किसने बुलाया ?

बड़ी तेजीसे और इस उम्रके आदमीमें विचित्र लगे, ऐसी आतुरतासे, मुंजाल लौटे और अन्दरके द्वारमें होकर एक दालानमें पहुँचे। दालानके पासके कमरेमें एक दासी बैठी हुई कुछ सीं रही थी। मुंजालने पूछा, "राजमाता कहाँ हैं ?"

दासी एकदम खड़ी हो गई। "पूजाकी कोठरीमें।"

मुंजालने उसे बैठे रहनेका संकेत किया और स्वयं अन्दर चले गये। इस कमरेके कोनेमें एक छोटी अँधेरी कोठरी थी, और उसमेंसे धूपकी गंध आ रही थी। मुंजाल उस कोठरीके अर्ध खुले दरवाजेके सामने पहुँचे और धीमेसे बोले—"देवी !" उनकी आवाजमें मृदुता थी और दबायी हुई भावनाओंका कंपन।

"कौन ? मुंजाल, बैठो।" अन्दरसे आवाज आई, और अन्दर बैठी हुई मीनलदेवीने दरवाजा खोला।

मीनलदेवीके मुखपर बुढ़ापा स्पष्ट दिख रहा था। उनकी आँखों और मुँहपर झुर्रियाँ पड़ गई थीं, और बहुतसे दाँत भी गिर गए थे; फिर भी मुखपर गौरव और सत्ता स्पष्ट दीखती थी। उनकी आवाज भी स्निग्ध थी।

मुंजालने चोटी खोली, फिरसे बाँधी और इतनी देर दोनों एक दूसरेकी ओर देखते रहे। दृष्टि केवल मिली ही नहीं आलिंगन करने लगी। दोनोंकी दृष्टियाँ तृषित अंतरकी आकांक्षा सन्तुष्ट करनेके लिए परस्पर लाड़ करतीं रहीं।

"देवी, काक आ गया।" थोड़ी देरमें मुंजालने कहा।

"चलो, अच्छा हुआ। तुमसे मिला ?" मीनलदेवीने पूछा।

"मैंने उसे यहीं बुलाया है, इसी समय आयगा।"

"तुम्हें उसपर अजब श्रद्धा है।"

"हाँ, और उसकी शक्तिका आज एक अद्भुत दृष्टांत मिला।"

"क्या ?"

"लीलादेवी मेरे पास आई थीं।"

"क्यों ?"

"यह समझकर कि काककी जान जोखिममें है, उसे बचानेको कहने।"

"फिर ?"

"मैंने दूसरी बात निकलवाई। लीलादेवीको पटरानी पदपर बिठाया जाय, इसके पहले मुझे उसका हृदय टटोलना था।"

"क्या बात निकली ?"

"यही कि पक्की है, सत्ताकी शौकीन है और महत्त्वाकांक्षी है। मुझे काकके सम्बन्धमें जरा डर था, वह आज दूर हो गया !"

"कैसा डर ?"

"देवी, चालीस वर्षमें जमाना तो बदल गया, परन्तु मनुष्यके हृदय कहीं बदले हैं ? और अब हम हुए बूढ़े। छोटे बालकोंको तो हम जैसा कहें वैसा करना चाहिए।" कहकर मुजालने राजमाताको स्नेहसिक्त दृष्टिसे फिर अर्घ्य प्रदान किया।

मीनलदेवी हँसीं। उमंगें और अभिलाषाएँ जिसमें विशुद्ध परिपाकको पहुँच गई थीं ऐसे अंतरमेंसे वह हास्य उद्भूत हुआ।

"फिर ?" उन्होंने पूछा।

" उसके मनमें पुरुष बसा था जरूर; परन्तु खेल पूरा हो गया। या तो स्त्री आकर्षक नहीं थी या पुरुष पूरा रसिक न था।" मंत्रीने कहा। " पुरुषने राजमुकुट और याचना दोनोंको अस्वीकृत किया । मुझे अब निश्चिन्तता हुई ।"

मीनलदेवीने भी शान्तिका निःश्वास छोड़ा ।

" नहीं तो क्या करते ?" उसने भी मज़ाकमें पूछा ।

" लीलादेवीको पटरानी पदसे हटाना पड़ता और काक लाटमें सड़ने दिया जाता ।" ज़रा गांभीर्यसे मुंजालने कहा ।

मीनलदेवी थोड़ी देर गंभीर रही । फिर उसके मस्तिष्कमें कुछ विचार आया, वह हँसी । " अरे भगवान्, चालीस वर्ष पहले यदि मैं पाटनकी महामात्य होती, तो ऐसे पुरुषोंको ऐसा दंड जरूर देती ।"

" वह पुरुष ऐसे दंडकी कुछ परवा करता ?" मुंजालने हँसकर जवाब दिया । उसका मुख भूतकालके रंगोंका स्मरण कर जरा दमक उठा । फिर कुछ गंभीर होकर उसने कहा, " देवी, सबमे हमारी जैसी शक्ति और हमारी जैसी शुद्धि नहीं । अब तो हमें सोलंकी कुलकी कीर्ति संचित करनी है, इसलिए कोई जोखिम नहीं उठाई जा सकती ।"

" हाँ।" गंभीर होकर मीनलदेवीने कहा ।" अब यह काक तुम जो चाहते हो वह करे—"

" करेगा ही । लीलादेवीको मानीती पटरानी बनानेके लिए तो वह प्रयत्न करेगा ही । इसलिए देवड़ीकी बात बनेगी नहीं ।"

" परन्तु जयदेव तो उसके पीछे पागल हो रहा है ।"

" अपने आप पागलपन छोड़ देगा । काक है, इसलिए हमें कुछ कहना नहीं पड़ेगा । अब लीलादेवी यदि जयदेवको रिझा सके, तो फिर कुछ कठिनाई नहीं पड़ेगी । आपने प्रेमकुँवरसे कहा था ? मैंने भी शंभसे कह दिया है कि दोनों आकर मिल जावें ।"

" यह छोकरी ऐसी आई है कि लीलादेवीको विलासी बनानेमें आकाश-पाताल एक कर देगी ।"

" परन्तु लीलादेवीकी समझमें गानेका काम सहज नहीं है ।" मुंजालने कहा और किसीके पैरोंकी आवाज़ सुनकर पूछा, " कौन है ?"

"बापू, यह तो मैं हूँ वस्ता। भटराज आये हैं।"

मुंजाल और मीनलदेवीकी आँखें मिल गईं। मुंजालने कहा, "आने दे।"

काक आया। राजमाता और महामंत्रीको उसने नम्र होकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़ा रहा।

"कहो काक, कैसे हो? बैठो न।" मीनलदेवीने कहा। काक बैठा। "मंजरी कैसी है?"

"आनन्दसे।"

"कितने बाल-बच्चे हैं?"

"माताजी, एक लड़की और एक लड़का।"

"वे भी आनन्दमें हैं?"

"हाँ, आपके आशीर्वादसे।"

"बहुत दिनोंमें मिले!" मीनलदेवीने कहा।

"आपके प्रतापसे मैं लाटमें निश्चिन्त हूँ।" काकने जवाब दिया।

"तुम भी ऐसे बोलना सीख गये, क्यों?" मुंजालने हँसकर पूछा। "तुम्हें भला निश्चिन्तता मिल सकती है?"

"महाराजाकी सेवामें मुझे निश्चिन्तता ही है।"

"लाटकी क्या स्थिति है?"

"सब ठीक है, केवल आँबड़का डर लगता है।"

"क्यों?"

"भूल करनेका उसका स्वभाव जान पड़ता है।" मुंजाल और मीनलदेवी दोनों हँसे।

"उदा मेहता मंजरीको साध्वी बनाना चाहते थे, मालूम होता है यह तुम भूले नहीं।"

"मेहताजी, यह तो मैं भी नहीं भूला और वे भी नहीं भूलेंगे।"

"क्यों, उनसे मिल लिये हो क्या?"

"हाँ। महाराजके पास हम दोनों ही थे। बाहड़ मुझे पकड़नेके लिए सोमनाथ गया था। उसने मेरे बदले मेरे सैनिकको यहाँ ला कर खड़ा कर दिया। जब बाप-बेटे काकको पकड़ लानेके आनन्दमें मस्त थे, तब मैं भीतरके कमरेमेंसे निकल पड़ा। उस समय दोनोंका मुँह देखने लायक हो गया।"

" और महाराज ? " मीनलदेवीने हँसते हँसते पूछा।

" महाराज मुझपर खुश हैं। "

" तुम्हारा चरित्र तो मैं जानता हूँ। " मुंजालने कहा। " अब जरा यह बताओ कि महाराजने तुम्हें क्यों बुलवाया है। "

काक हँसा। " मेहताजी, माताजी न होतीं तो कुछ पूछता परन्तु अब नहीं पूछता। "

" पूछ ही डालो न। " मीनलदेवीने हँसकर कहा। " मैं तो राज्य-कार्यमें अब सिर मारती ही नहीं। "

" और मैंने तो वानप्रस्थ ले लिया है। जो कुछ कहोगे सब सुन लूँगा। मुझे तो सहनशीलताका अभ्यास करना है। " मुंजालने भी हँसकर कहा।

" तो सुनिए मंत्रिवर्य, कितने ही दिनोंसे मुझे एक सन्देह था। "

" क्या ? "

" कि इस पाटनका क्या होनेवाला है ! कोई रा'को जीत नहीं सकता और उदा मेहता महाराजके दाहिने हाथ बन बैठे हैं। छोटी रानी अनमानीती हो रही हैं। पाटनके राजा परदेशी और पिशाचोंके जोरपर कूदते हैं। पट्टनी योद्धाओंकी उपेक्षा होती है। इतनेसे ही संतोष न हुआ, तो असन्तुष्ट लाटमें मेरी जगह आंबड़ मेहता बिठा दिये गये और मुझ जैसे निर्दोषको पकड़ने या मारनेके लिए जगह जगह आदमी रख दिये गये। मैं सोचने लगा कि आखिर मुंजाल मेहता गये कहा ? "

मुंजाल मेहता खिलखिलाकर हँस पड़े, " स्वर्ग सिधार गये क्या ? "

" मुझे ऐसा ही लगने लगा था। " काकने हँसकर जवाब दिया। " परन्तु आज्ञापत्र देखकर कुछ विचार बदले। "

" क्यों ? " मीनलदेवीने पूछा।

" पन्द्रह वर्षके बाद एकदम मेरा भाव बढ़ गया। "

" तुम्हें कितना अभिमान है ! लाटमें स्वच्छन्द राज्य करते हुए दुर्गपालको राजा बुलवाए नहीं तो और क्या करे ? "

" या फिर होलीमें नारियल होमनेके लिए महामात्यको आवश्यकता पड़ गई हो, तो और क्या करे ? "

मुंजालकी आँखोंमें प्रशंसा चमक रही थी। "महामात्य अब बूढ़ा हो गया है।"

"परन्तु आपके साथ कुस्ती लड़नेकी मुझमें अब भी हिम्मत नहीं।" काकने मुंजालके स्नायुओंकी ओर दृष्टि डालते हुए कहा। "माताजी, आपको कैसा लगता है?"

"तुम्हारा बल और बुद्धि दोनों ज्योंके त्यों हैं, यह साफ साफ दिखता है।"

"तो अब मुझे कैसे होमना है, बतलाइए?" काकने कहा।

"काक, बेटा," मुंजालने कहा "राजमाता कहती हैं, वह बात सच है। तुम बेजोड़ हो।"

"अब क्या करना है?" काकने पूछा।

"जो तुम्हें सूझे वह। काक, राज्यके जीवनमें अक्सर कठिन प्रसंग आ जाते हैं। यदि वे प्रसंग पार कर लिये जायँ, तो राज्यकी कीर्ति बढ़ती है, नहीं तो विनाशका आरंभ हो जाता है। तुमने पूछा कि "पाटनका क्या होनेवाला है?" और कुछ नहीं होना है, केवल एक ऐसा प्रसंग आ गया है।"

"तब आप क्यों नहीं कुछ करते?" काकने मार्मिक प्रश्न किया।

"मैंने युक्ति निकाली है।" जरा रहस्यपूर्ण हँसते हुए महामात्यने कहा।

"क्या?"

"जो मनुष्य कर सकता है, उसे खोज निकाला है।" मुंजाल हँसा।

काकने हाथ जोड़कर नमन किया। "मेहताजी, मुझपर आपका जितना विश्वास है उतना बल भी भगवान् भोलानाथ मुझे प्रदान करें, तो बस है।" उसने नम्रतापूर्वक कहा।

"काक," मीनलदेवीने कहा "अब तो तुम थक गये होगे, जाकर जरा आराम करो। परन्तु इस समयकी बात किसीके कानमें न जाने पाए।"

मुंजालने कहा, "आप इसे पहचानती नहीं हैं। काक, जाओ विजय करो।"

काकने पुनः प्रणाम किया और आज्ञा ली।

१८—बाहड़ मेहताकी कसौटी

राजगढ़के तालाबके किनारे पारिजातक वृक्षके नीचे समर्थ खड़ी थी। उसका इस समय कुछ ठिकाना न था। उसके पैर पृथ्वीपर नहीं ठहरते, उसकी आँखोंके तारे स्थिर न रहते, उसके ओठ क्षणभर भी शान्त नहीं रहते और उसके सिरके बाल भी चैनसे नहीं बैठते। वह रह रहकर थिरकती और नीचे झुककर ताल देती। वह जरा जरा गुनगुनाती भी। अब भी उसके मनमें वे जोड़ी हुई पंक्तियाँ गई न थीं।—" बाहड़ मेहता गजब किया।"

थोड़ी देरमें वह थक गई। उसने अपने ओठोंपर अंगुली रखी, " आने दो।" वह बड़बड़ाई। मुझे रास्ता दिखाते दिखाते थका डाला। ठीक है, मैं भी परशुरामकी लड़की हूँ, जो उसे भी थकाथकाकर बेजार न कर दूँ। क्या समझा है उसने अपने मनमें? मानो मैं बेकार हूँ!" उसने ओठपर ओठ दबाया और आँखें ऊपर चढ़ाईं। " ऐसा करोगे, तो हम नहीं बोलेंगे—बस नहीं—नहीं, बस नहीं—"

" समर्थ! " वाग्भटने पीछेसे आकर कहा। उसके गंभीर मुखपर असाधारण ग्लानि छा रही थी। उसकी आँखें म्लान थीं। उसके सुन्दर मुखके तेजपर निराशा छाई हुई थी।

समर्थने घूमकर वाग्भटको देखा। वह अपना क्रोध भूल गई और एक दो कदम उछलकर ताली बजाने लगी।— " बाहड़ मेहता गजब किया।"

उसका समस्त शरीर हँस रहा था। वाग्भटने एक गहरी साँस छोड़ी।

" समर्थ! " अश्रुपूर्ण आवाजमें वाग्भट बोला।

" काक आया?" समर्थने ऊपर देखकर कपालपरसे बाल ऊँचे करते हुए पूछा।

" हाँ।" वाग्भटने कहा, " परन्तु—"

समर्थ सुननेको नहीं ठहरी, उसने उछलते उछलते बाहड़की परिक्रमा देना और तालियाँ बजाना शुरू किया—" बाहड़ मेहता गजब किया। काक भट्टको बाँध लिया।"

" समर्थ!" खेदसे समर्थका हाथ पकड़ते हुए बाहड़ने कहा, " सुन।"

" तुम तो रोते ही रहते हो।—" बाहड़ मेहता—" कहकर समर्थने दूसरा चक्कर लगाना शुरू किया।

" समर्थ, " अधीरतासे बाहड़ने कहा " तू सुनेगी ? "

" बोलो। " कहकर समर्थ खड़ी रही। उसे अधीरताका कारण नहीं समझ पड़ा।

" समर्थ ! " बाहड़ने दुःखित हृदयसे कहा, " मुझसे बचन न पला। "

" क्यों ? " एकदम आँखें फाड़कर समर्थने पूछा।

" काक नहीं पकड़ा जा सका। "

थोडी देर समर्थ देखती रही और फिर एकदम ताली पीटकर हँसने लगी—" झूठ—झूठ—झूठ। "

" नहीं, सच है। " बाहड़ने हास्यजनक गांभीर्यसे कहा।

" झूठ बात है, मेरी दासी कहती थी। "

" समर्थ, " फटते हुए हृदयसे वाग्भटने कहा " मैंने जिसे पकड़ा वह काक नहीं, कोई दूसरा था। "

समर्थकी आँखे धीरे धीरे फैल गईं। उसने अर्थ समझा, उसका मुँह गंभीर होकर रुआसा हो गया।

" तुम काकको नहीं पकड़ लाये ? " कहकर वह रो पड़ी " ऊँ-ऊँ-हुँ-तुमने नहीं पकड़ा। "

" वह चुपचाप यहाँ पहलेसे आ गया था। " बाहड़ने धीरेसे कहा।

" अब क्या होगा ? एँ, तुमने अपना बचन न पाला ! मैंने अपनी मासे शर्त की थी। ओह ! मैं तो हार गई। तुमने यह क्या किया ?- हुँ-हुँ-हुँ—" कहकर हाथोंमें मुँह छिपाते हुए समर्थ रोने लगी। उसका सुन्दर मस्तक हिचकियोंके जोरसे ऊँचा-नीचा होने लगा।

" हुँ...हुँ...अब मुझे कोई तुम्हारे साथ नहीं ब्याहेगा। "

बाहड़का हृदय भर आया। " मैं जानता हूँ। " उसने बड़ी कठिनाईसे कहा, " मेरा विचार था कि काकको पकड़कर ले आऊँगा और महाराजसे वर माँग लूँगा। यह तो और अपमान हुआ। मुझे अब तेरे पिताके साथ लड़ाईपर जाना है। " कपालपरसे पसीना पोंछते हुए बाहड़ने कहा।

" बापा कहते थे कि तुम्हें कविता बनाना आता है, लड़ना नहीं आता।"

बाहड़ने नीचे देखा, " तूने कैसे जाना ? "

"एक दिन रातको मा और बापा बातें कर रहे थे। मैं छुपे छुपे सुनती थी। बाहड़—बाहड़—ओ बाहड़—" उसने निराशाभरी आवाजमें कहा।

" क्या ? "

" अब भी काक नहीं पकड़ा जा सकता ? "

" समर्थ, वह तो अब महाराजका मानीता है—क्या तू पागल हो गई है ? "

" बाहड़, तुम्हारे दादा मेरे दादाकी तरह दंडनायक क्यों नहीं हुए ? "

बाहड़ने खेदके साथ ऊपर देखा। उसे मालूम था कि उसके मारवाड़ी दादाका दरिद्र जीवन ही उसके और वनराजके महामन्त्री चांपाकी वंशज समर्थके बीच आता था। परन्तु वह दादाकी इस स्थितिके लिए बिल्कुल जवाब-देह न था। यह बात इस नादान छोकरीको किस तरह समझाई जाय, यह उसे न सूझा।

"मेरा भाग्य बुरा था, इसलिए।" बाहड़ने आत्म-तिरस्कारके भावसे कहा।

" तब तुम कवि क्यों बने ? " समर्थने पूछा।

" अपना सिर फोड़नेके लिए ! "

"तुम ऐसा क्यों कहते हो ?" समर्थने क्रोधमें कहा।

" समर्थ, मैं जानता हूँ कि मैं तेरे लायक नहीं हूँ। मैं अब संग्राममें जाऊँगा। मर गया तो मुक्त हो जाऊँगा और यदि कीर्ति मिलेगी, तो उसके पहले ही तू दूसरी जगह ब्याही जा चुकी होगी।"

समर्थने सिर उठाया और आँखें फाड़कर देखती रही। " तुम मर जाओगे ? और फिर तुमको जला देंगे ? नहीं, ऐसा क्यों कहते हो ? "

" मुझसे तेरे बिना कैसे जिया जायगा ? " कविने कहा।

" ऐसा क्यों कहते हो ? तुम ऐसा कहते हो और मेरा जी घबड़ाता है। "

" समर्थ, तू तो बच्ची है, इसलिए मुझे कैसे समझेगी ? तू तो मुझे कल भूल जाएगी, पर तेरे बिना मेरी जिन्दगी कैसे कटेगी ? "

समर्थके कपालमें सिकुड़नें पड़ गईं। वह नादान, विचारहीन और तरंगी थी।

उसे वाग्भट बहुत ही अच्छा लगता था और उसके साथ ब्याहे जानेको उसका बहुत जी चाहता था, परन्तु वह ऐसा क्यों बोल रहा है सो स्पष्ट न समझ पाती थी। उसने थोड़ी देरतक विचार किया।

"बाहड़, तुमने मेरा गीत भी बिगाड़ दिया, मैंने इतना अच्छा जोड़ा था।"

वाग्भट जरा तिरस्कारसे हँसा। "समर्थ, तेरा तो तुक जोड़ना बिगडा परन्तु मेरी तो जोड़ी ही बिगड़ गई।"

"कैसे?" समर्थने पूछा।

"मेरा सिर।" कहकर वाग्भट जानेके लिए मुड़ा।

"बाहड़," समर्थने एकदम कहा।

"क्यों?"

"तुम अभी मरना नहीं।"

"मेरे हाथमें नहीं है न!"

"उँह, पूरा सुनते भी नहीं। मुझे एक रास्ता सूझा है। मैं एक ऐसा रास्ता निकालूँ कि काक तुम्हारे ही हाथों पकड़ा जाए।"

वाग्भटने निःश्वास डालकर सिर हिलाया और भारी हृदयसे वह लौट पड़ा। उसके अंतरका दीप बुझ गया था।

विद्वान और वीर वाग्भटने तो विद्वानोंकी स्वभावजन्य ओछी बुद्धिसे इस पतंगेको अपने प्राण अर्पित किये थे परन्तु यह पतंगा उसके भाग्यमें नहीं लिखा है, ऐसा उसे विश्वास हो गया।

समर्थके दिमागमें एक बढ़िया विचार आया था और जब तक वह अमलमें न आ जाय, तब तक उसे चैन नहीं पड़ सकती थी।

उसे इस पकड़में न आनेवाले काकपर द्वेष हुआ। उसने पिताको काककी प्रशंसा करते सुना था और यह भी सुना था कि उसे जो पकड़ेगा उसपर राजा बहुत ही प्रसन्न होंगे। इस परसे उसने और बाहड़ने वह तरकीब की थी; और बाहड़ने काकको पकड़नेके लिए उदासे आज्ञा ले ली थी। यदि बाहड़ काकको पकड़ लाता तो राजा प्रसन्न होते। परशुरामको वाग्भटके पांडित्य और शौर्यके संबंधमें बहुत मान होता और समर्थको बाहड़के साथ ब्याहनेकी बात चलाई जा सकती। पहले शंभु मेहताके पौत्रके साथ उसकी सगाई होती थी; परन्तु गतवर्ष वह युद्धमें मारा गया। उसके बाद परशुराम जैसा गर्विष्ठ योद्धा अपने

कुलकी महत्ताके अनुरूप जमाई खोजने लगा, परन्तु यह योग्यता पाटनके बहुत कम परिवारोंमें होने, और उन परिवारोंमें इस आयुके अविवाहित युवकोंका अभाव होनेके कारण यह खोज अभी पूरी नहीं हुई थी। समर्थ यह सब जानती थी, परन्तु बाहड़ जैसे अच्छे वरको उसके पिता क्यों नहीं सौंपते, यह उसकी समझमें न आता था।

१९—जगदेवकी कर्तव्यपरायणता

जगदेव परमार बुरा या नीच मनुष्य न था, वह बहादुर योद्धा था और सदा नमक हलाल करनेके प्रयत्नमें रहता था।

उसकी वीरतापर प्रसन्न होकर जयसिंहदेव उसे मालवेसे ले आए थे और पाटनमें उसे धन, मान, पद और चावड़ा जैसे उच्च कुलकी स्त्री, यह सब प्रदान किया था। उसे पसन्द करनेमें और अपना दाहिना हाथ बनानेमें जयसिंहदेवका कोई गहरा मतलब था और उसे जगदेव जानता था।

गर्विष्ठ पट्टनी योद्धाओं और मंत्रियोंपर सत्ता जमानेके लिए उनसे बिलकुल स्वतंत्र रहना चाहिए, यह सिद्धान्त जयसिंहदेवके मस्तिष्कमें घर किये हुए था। बाबराकी जीतसे और भूत माने जानेवाले बाबराकी सहायतासे सामान्य जनतामें यह सिद्ध हो चुका था कि वह अजीत है और अपार्थिव सत्ताका धनी है। परन्तु नित्य प्रति मिलनेवाले योद्धाओं, सामंतों और मंत्रियोंका दौर दबाना सहज न था। बहुतसे मंत्री और महारथी एक दूसरेके संबंधी थे, और वे एक दूसरेसे ईर्ष्या भी करते थे। परन्तु राजाकी इच्छा होनेपर भी वे एक दूसरेको ख्वार करना पसन्द न करते थे। राजाको यह रुचा नहीं और परिणाममें उन्होंने जगदेव परमारको अपना अंगरक्षक बनाया और तीन सौ सबल मालवी योद्धाओंकी सरदारी दी। जिसे महलमें प्रवेश करना हो, जिसे राजासे मिलना हो, जिसे कुछ याचना करनी हो, उसे जगदेवसे मिले बिना छुटकारा न था। और किसीको सजा देनी हो, किसीको डराना हो, तो राजाका फरमान यही नमकहलाल सेवक मत्थे चढ़ाता। उसे

राजाकी कृपाके सिवाय दूसरेकी परवाह न थी। पाटनमें उसके राज्यतंत्रमें अथवा वैभवमें राजाकी सेवाके सिवाय उसे कोई दिलचस्पी न थी। इसलिए राजा और परमारके बीच, मनुष्य और उसके विश्वस्त निश्चितन शस्त्रके बीच जिस प्रकारकी प्रीति होती है वैसी ही कुछ पैदा हो गई थी। उनके और राजाके बीच यह कँटीली बाड़ खड़ी देखकर पाटनके महापुरुष पहले तो घबड़ाये परन्तु राजाका जिद्दी और महत्त्वाकांक्षी स्वभाव वे जानते थे, इसलिए सोते हुए सिंहको न छेड़नेके इरादेसे परमारके साथ सबने भाईचारेका व्यवहार शुरू कर दिया। यदि किसी समय राजाके इच्छानुसार जगदेव अपनी सत्ता चलाता, तो उस समय वे आँख मीच लेते, इतना ही नहीं कभी कभी तो इस तरह बर्तते जिससे जगदेव चिढ़ न जाय। परिणाममें उसका गर्व और रौब बढ़ गया।

राजाने जब जगदेवको भटराज बनाया तब तो कोई बोला नहीं परन्तु जब सेनापतिका पद देनेका इरादा जाहिर किया, तब तो खलबली मच गई। परिणाममें मीनलदेवी बीचमें आ गई और उस इरादेको अमलमें न आने दिया। परन्तु जब राजा मंत्रियों या सेनापतियोंके साथ मसलहत करते तब बहुत करके परमार उपस्थित रहता था।

जगदेवके कारण मालवी योद्धाओंने पाटनमें स्थान बनाना शुरू किया, वे छोटे मोटे ओहदोंपर भी बैठने लगे और इस तरह पट्टनियोंका गर्व उतारनेका शौक राजामें बढ़ता गया।

मजबूत, महत्त्वाकांक्षी, जिद्दी और प्रतापी राजाके इस मानीते और विश्वस्त योद्धाको सब लोग मन ही मन परदेशी, किरायेका टट्टू, चाहे जिस कामको माथे चढ़ानेवाला चाकर, कहकर तिरस्कार करते। परन्तु यह किसीका साहस न था कि उसके सामने कोई एक शब्द भी कह सके या एक कदम उठा सके।

राजाने मान लिया कि मेरी सत्ता सर्वोपरि हो चुकी, जगदेवने मान लिआ कि उसकी पदवी निश्चल हो गई और सब दरबारियोंको ऐसा लगा कि उनके और राजाके बीचका खालिस व्यवहार पूरा हुआ। यह नवीन सृष्टिक्रम सदाका है और रहेगा, ऐसा सबने मान लिया और बर्बरकको जीतनेवाले परम भट्टार्क महाराजाधिराज दैवी तथा दुर्धर्ष सत्ताके अधिकारी हैं, ऐसा भी सबने मानना शुरू किया।

जगदेव परमारकी भी ऐसी ही मान्यता थी, इसलिए आज उसे चैन न पड़ी। वह राजाके कमरेके बाहर अपनी चौकीपर भौंहें चढ़ाए लेटा था। उसे आज बहुत सी बातें अच्छी न लगीं। महलमें कोई ब्राह्मणका वेश धारण कर उसके बिना जाने ही प्रवेश कर गया, उसने उसके सैनिकको बाँधा और उसके अजाने ही वह रानीसे मिल आया। रानीने परमारको अपमान करके निकाल दिया, उसकी जानकारी और आज्ञाके बिना दो व्यक्ति राजासे मिल आये, उसकी जानकारीके बिना ही काक राजाके कमरेमें जा बैठा, राजाका मानीता बन गया, और उसे बुलाये बिना राजाने उसके तथा उदाके साथ मसलहत की। उसे ये सब असाधारण और अस्वाभाविक घटनायें रुची नहीं।

उसे इस नये आये हुए काककी ओर अरुचि हुई। उसने इस मनुष्यके संबंधमें बहुत-सा परिचय प्राप्त किया था और किवदन्तियाँ सुनी थीं। परन्तु ऐसी बातोंपर उसे श्रद्धा न थी। पाटनके बहुत-से दंडनायकों, मंत्रियों और सेनापतियोंके संबधमें भी उसने ऐसी ही बातें सुनी थीं परन्तु उसके मनमें किसीकी भी कोई गिनती न थी और अब इस नए आदमीको उसका स्थान बता देनेके लिए उसके हाथ खुजला रहे थे।

पास ही खड़े हुए एक सैनिकको उसने बुलाया, "नेमा!"

"बापू।"

"शंभुको तो बुला।"

"जो आज्ञा।" कहकर नेमा शंभुको बुला लाया। शंभु जगदेव परमारका कर्मचारी था और इसकी ओरसे बहुत कुछ देख-भाल रखता था।

"फिर काकभटको उनका स्थान दिखला आया?"

"जी हाँ, परन्तु उन्होंने इन्कार किया।"

"क्या?" जगदेवने चकित होकर पूछा।

"वस्ताने उनके लिए कमरा खोल दिया है।"

"कौन-सा?"

"शोभ मेहता जिस कमरेमे लिखते हैं उसके पासका कमरा।"

"परन्तु मैंने जो खुलवाये थे उनका क्या हुआ?"

"वे बोले, मुझे अकेलेको अधिकका क्या करना है?"

"कहना था कि महलका प्रबंध मेरे हाथमें है।"

" मैंने कहा था तो हँसकर बोले कि मैं तो बहुत समयसे बेकार पड़े हुए इस कमरेमें पड़ा हूँ, इसलिए किसीको कुछ एतराज न होगा । "

" शंभु, जरा वस्ताको तो बुला ला । " शंभु गया ।

जयदेवको लगा कि आज सूर्य उदय हुआ है तभीसे वह अपने साथ कुछ गड़बड़ ले आया है । राजमहलकी सारी व्यवस्था वही करता था और उसे बदलनेकी किसीको हिम्मत न होती थी । मुंजाल मेहताका अनुचर वस्ता इस प्रकार काककी व्यवस्था कर दे, यह उसे उसके गौरव और सत्तापर आघात करने जैसा लगा । फिर उसने काकके लिए अपने निवासके पास ही नीचे दो कमरे खोल दिये थे कि जिससे उसपर उसकी नजर रहे । उसके बदले यह कमरा ऊपरकी मंजिलपर था और वहाँसे महाराजा, रानियों, मीनलदेवी, मुंजाल आदिके पास तुरन्त ही पहुँचा जा सकता था । उसने अपनी मूँछकी नोक अपने दाँतोंतले दबाकर चबाना शुरू किया ।

इतनेमें शंभु वस्ताको लेकर आ गया । जगदेव राजमहलके कितने पुराने आदमियोंको दूर ही रखता था । वे बहुत वृद्ध थे और मुंजाल मेहताके विश्वस्त आदमी माने जाते थे । जहाँतक हो सके मुंजाल और उनके आदमियोंपर काबू बिठानेमें सार नहीं है, जगदेवको ऐसी विचित्र प्रकारसे प्रेरणा हुई थी, और उस प्रेरणाके अनुसार अबतक वह चल रहा था । परन्तु इस समय उसे लगा कि वस्ताने उसकी सत्ताके सामने अक्षम्य कदम बढ़ाया है ।

वस्ता वृद्ध था, साथ ही अनुभवी भी था । उसने मौन मुख हाथ जोड़कर प्रणाम किया ।

" वस्ता, महाराजके हुक्मका तुम्हें पता है ? "

" क्या ?

" कि महलकी व्यवस्था मेरे सिवा दूसरा कोई नही कर सकता । "

" मुझे मालूम है । "

" तब आज तुमने यह हुक्म क्यों तोड़ा ? "

" मैंने कहाँ तोड़ा है ? " जरा अजब-सा होकर वस्ताने कहा ।

" मैंने सुना है, तुमने काक भटराजके लिए महलमें कमरा खोल दिया है । "

" ओ हो ! " वस्ता हँसा । " भटराज, यह ऐसे हुआ कि काक भट महाराजके साथ भोजन करके लौटे तो उनके बैठनेके लिए कोई ठिकाना न था ।

और मेरे पास कमरेकी चाबी थी, इसलिए मैंने उसे खोल दिया। भटराज, बेचारे एक थके माँदे मेहमानके लिए इतना किया, तो इसमें अपराध हो गया ?" वस्ताने निर्दोष बात कही।

"फिर बिस्तर किसने दिया ?"

"मैंने।"

"किसके हुक्मसे ?"

"मेहमानगीरी करने।" सादगीसे वस्ताने कहा।

"तुम्हें यह सब अधिकार किसने दिया ?" आँखें निकालकर जगदेवने पूछा। उन्हें लगा कि यह बूढ़ा मेरी मसखरी कर रहा है।

"क्या इसमें कुछ अधिकारकी जरूरत पड़ती है ?" वस्ता हँसा।

"ठीक है। तो जाकर काक भटराजसे कह आओ कि उनके लिए दो कमरे मैंने नीचे खुलवा दिये हैं, वहाँ जाकर ठहरें। तुम्हारा बनाया हुआ कमरा उन जैसे बड़े आदमीके लायक नहीं है।"

"भटराज, यह आपके आदमियोंका काम है—मेरा नहीं। महलकी व्यवस्था आपके हाथमें है।" वस्ताने शान्तिके साथ कहा।

"तुम और मेरे आदमी सभी महाराजका नमक खाते हैं।"

"हाँ।"

"इसलिए यह काम तुम्हें करना होगा।"

"नहीं।" वस्ताने दृढ़तासे कहा।

"क्यों नहीं ?" जगदेव चिल्लाया।

"मैंने कारण तो कभीका बतला दिया।"

"तुम मेरी आज्ञाका अनादर करते हो ?"

"हाँ।"

"किसीके हुक्मसे या अपनी मरजीसे ?"

"अपनी मरजीसे।"

"ऐसा ? शंभु, इसे कैद कर लो।"

"शंभु," हँसते हुए वस्ताने कहा, "क्यों तकलीफ करते हो ? मुझे कोठरी दिखला दो। मैं स्वयं चला जाता हूँ।" कहकर वस्ता आगे हो गया।

शंभु बोला, " बापू!—"

" अपने हुक्मका अनादर मुझसे नहीं बरदाश्त होता।" जगदेव चिल्लाकर बोला। शंभु और बस्ता चले गए।

" मुझे खुद ही जाकर यह काम करना चाहिए।" कहकर जगद्देव उठा और कमरमें तलवार बाँधकर काकसे मिलने चल दिया।

२०—काकसे मुलाकात

जब जगदेव परमार काकको दिये गए कमरेमें मिलने गया तब जिसे त्राहड़ काक समझकर ले आया था वह दरवाजेके आगे बैठा हुआ था।

" काक भटराज हैं ?"

" सो रहे हैं।"

" कौन है ?" अन्दरसे आवाज आई।

" मैं हूँ जगदेव परमार।"

" पधारिए।" काककी आवाज आई।

परमार अंदर गया। एक छोटेसे झूलेपर नाम मात्रका बिछौना डाले काक लेटा हुआ था। वह उठकर बैठ गया।

" आओ परमार, आपने कैसे कृपा की ? बैठिए।" काकने अपने पास परमारको बैठनेका संकेत किया।

" ऐसे ही चला आया।" जगदेवने बैठते हुए मिठासके साथ जवाब दिया।

" आपके लिए मैंने दो कमरे तैयार करवा रक्खे हैं, यह कहनेके लिए आया हूँ।"

" अरे किसलिए कष्ट किया ? मुझे यहीं ठीक रहेगा।"

" यह कैसे हो सकता है ?"

" मुझे इससे अच्छी जगहमें रहनेकी आदत नहीं।"

" परन्तु महाराजने खास तौरसे कहा है।"

काक सावधान हुआ। इस भलमनसाहतमें कुछ मतलब मालूम पड़ा।

"कह दीजिए न कि अब यहीं पड़ा हूँ, यहीं ठीक हूँ।"

"उन्हें बुरा लगेगा।"

"मैं मना लूँगा।" काकने हँसकर कहा।

"नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है? मेरे कारबारमें धब्बा लगता है न।" जगदेवने कहा।

"परमार, मेरा स्वभाव कुछ विचित्र है। अब यहाँ जम गया, तो मुझे यहीं अच्छा लगेगा।"

"परन्तु यह तो उस आदमीने भूल ही की। महलकी व्यवस्था तो मुझे करना चाहिए न?" जगदेवने जरा अधीरतासे कहा।

"मेरे लिए व्यवस्था करनेकी तकलीफ करना ही नहीं। मैं तो अपने आप व्यवस्था कर लेता हूँ।"

"और फिर यह कमरा दूसरे काममें लेना है।" जगदेवने जरा सत्तासे कहा। काक इसीकी बाट देख रहा था। बाघ जिस तरह झपटता है, उस तरह वह जगदेवकी तरफ लौटकर बोला—"परमार, तुम योद्धा हो। मैंने भी युद्ध किये हैं। साफ कह दो न कि इस सबका मतलब क्या है?"

"नहीं—नहीं—कोई खास—"

"बतला दूँ?" हँसकर काकने कहा। "तुम्हें मुझे निश्चित की हुई जगह-पर डेरा देना है और मुझे वहाँ रहना नहीं, बस।"

जगदेव चौंका। इस प्रकार बातचीत करनेके लिए वह तैयार न था।

"भटराज, किन्तु महलकी व्यवस्था—"

"परमार, इसकी मुझे लेशमात्र भी परवाह नहीं। देखो, हम लोग पहले ही मिले हैं, तो हमें स्पष्ट बातें कर डालनी चाहिए।"

"क्या?"

"यद्यपि तुम यहाँके सबसे बड़े सत्ताधीश हो; परन्तु मैं जयसिंहदेव महाराजकी सत्ताके सिवा दूसरेकी सत्ता मानता नहीं। इसलिए मुझे क्या करना चाहिए, कहाँ रहना चाहिए, इस संबंधमें उनके सिवाय किसीको पंचायतमें न पड़ना चाहिए।"

"भटराज, क्या आप मेरा अपमान करना चाहते हैं?" गर्वसे हँसकर जगदेवने दाढ़ीपर हाथ फेरा।

" नहीं, मैं अपमान सहन नहीं करना चाहता।"

" भटराज, तुम्हें किसीने भरमा दिया है। मैं किसीका अपमान नहीं करता।"

" परमार, बिना अधिकारके कोई मुझपर हुकूमत चलाने आए तो वह मेरा अपमान ही कर रहा है, ऐसा मैं समझता हूँ।"

" भटराज, महलमें हुकूमत मेरी है।"

" इसे मैं स्वीकार नहीं करता।"

' क्यों ? "

" परमार, तुम्हारा बल अगाध गिना जाता है और तुम्हारे मालवी वीर चाहे जिसे पकड़कर मार सकते हैं। इन दोनोंका तुम चाहे जो उपयोग करो, मैं सामना करनेके लिए तैयार हूँ।" काकने शान्तिके साथ झूलेकी छड़पर भार डालते हुए कहा।

" भटराज, आप नाहक वैर बाँध रहे हैं।" झूलेसे क्रोधके साथ उतरते हुए जगदेवने कहा। " किसी पट्टनीने मेरे साथ वैर बाँधकर सार नहीं निकाला।"

" और " शान्तिके साथ हँसते हुए काकने कहा, " किसी परदेशीने भी मुझपर सत्ता बिठाने जाकर सार नहीं निकाला।"

" भटराज, तुम्हारी जीभ खराब परिणाम लायेगी।" जगदेवका हाथ तलवारपर गया।

" तुम्हारे जैसे बहुतसे बलवानोंको मेरी जीभने जीते ही जला दिया है।" काकने धीमे रहकर झूले परसे उतरते हुए कहा। " तुम्हारे हाथ खुजला रहे हैं क्यों ? ठीक। खेमा, मेरा खड्ग तो ला।" तिरस्कारसे काकने कहा। " बहुत दिनोंसे अभ्यास छूट गया है, सो ताज़ा हो जायगा।"

एकदम जगदेवको भान हुआ। वह नरम पड़ गया। " भटराज, क्षमा करो, मैं ज़रा आवेशमे आ गया। क्षमा करो। महाराज जानेंगे तो क्या कहेंगे ? " जयसिंहदेवकी याद आ जानेसे परमार काँप उठा।

" कुछ नहीं, यह तो हम खेल रहे थे।"

" नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है ? भटराज क्षमा करो।" कहकर चतुर जगदेवने हाथ जोड़ लिये। " यह तो आपने मुझे फिजूल ही चिढ़ाया।"

" घबराना नहीं। परन्तु एक बात कह डालूँ, नहीं तो फिर रह जायगी। तुम्हारे जैसे परमारका बल और शौर्य तो धाराके परमारोंके यहाँ ही शोभा देता है: परमारोंके कट्टर बैरी पाटन-नरेशके यहाँ नहीं।" काकने चोट की: " परमार, बैठो, ज़रा दूसरी बात करें।"

" नहीं, अब मैं जाऊँगा--" एक वृद्ध अनुचर आ गया, इसलिए जगदेव बोलते बोलते रुक गया। उसने कहा, " परमार, महा अमात्यजी बुलाते हैं।"

" कौन ?" साश्चर्य जगदेवने पूछा। उसका मुँह जरा उतर गया।

" मुंजाल मेहताजी।" वृद्धने कहा।

काकने ज़रा आँखें फाड़ीं। स्पष्ट दिखलाई पड़ा कि जगदेवको इससे चैन नहीं मिली है। जहाँ तक बनता वह मुंजालसे नहीं मिलता था और मुंजाल भी कभी उसे बुलाते न थे। उसे मुंजालका परिचय न था; परन्तु राजा उसे बहुत मानते हैं, यह देखकर वह उससे सबहुमान दूर ही रहता था। आज जब उसके गौरवपर चोट पड़ रही थी, तब इस प्रकार भेजा हुआ संदेश उसे रुचा नहीं।

" कह दो कि जरा काममें हूँ। फिर मिल लूँगा।" जरा अभिमानसे जगदेवने कहा।

परमारकी स्वस्थता सदा जैसी होती, तो वह ऐसा कहनेका स्वप्न भी नहीं देखता। परन्तु आज उसका कुछ ठिकाना न था। यह जवाब सुनकर काक और अनुचर दोनों चौंके।

" आपने क्या कहा ?" अनुचरने स्पष्टताके लिए पूछा।

" यही कि फिर मिल लूँगा।" हर एक शब्दपर भार देते हुए जगदेवने कहा। काक सतर होकर कठोर दृष्टिसे देखने लगा। " तुम क्या कह रहे हो, इसका भान है ?" उसने धीमेसे कहा।

" हाँ, क्यों ?"

" मुंजाल मेहता बुलावा भेजें और न जाओ, इसका मतलब क्या हुआ, समझते हो ?"

" जानता हूँ कि वे महा अमात्य हैं। पर मुझे महाराजके पास जाना है।"

काक स्थिर दृष्टिसे देखता रहा।

"जगदेव, जाओ।" उसने कठोर स्वरमें कहा। "इतने वर्ष यहाँ रहे तो भी मुंजालको नहीं पहचानते, यह कुछ अजीब-सी बात है। जाओ, नहीं तो यह अनुचर अभी लौट कर फिर आएगा।"

काकके बोलनेका ढंग इतना गंभीर और सत्तापूर्ण था कि जगदेव चुपचाप अनुचरके पीछे चल दिया। उसका गर्विष्ठ हृदय फटा जा रहा था।

काक हँसा। "खेमा, जा, और मंगीसे पूछ आ कि लीलादेवीको फ़ुरसत है? हो तो मिलकर कृतार्थ हो लूँ।"

"जो आज्ञा।"

२१—परमार कुछ समझ नहीं सका

जगदेवके अन्तरमें विद्रोहका तूफान उठ रहा था। लीलादेवी, काक और मुंजाल, तीनोंने उसे आज पैरकी धूल जैसा गिना। इतने बरसोंके बाद भी यह क्या? उसे काकने जो चेतावनी दी वह रुची नहीं और मुंजाल मेहताने आज्ञा देकर बुलवाया, यह भी न रुचा। और फिर काकके शब्दोंने तो उसके गर्वपर भारी आघात किया। वह परदेशी है, सेवक है, अपने योग्य स्थानपर नहीं है, इसका भान उसे पहली बार हुआ। फिर भी वह जिदसे अपने गर्वकी रक्षा करता रहा।

मस्तकको गर्वसे ऊँचा किये, संग्रामकी मूर्ति जैसा प्रचंड और भयग्नक बनकर, मूँछपर हाथ रखे वह महा अमात्यके पास गया। मुंजालके सपर्कमें अपरोक्ष रीतिसे वह कभी न आया था, इसलिए उसे आत्मगौरवकी रक्षाका यह योग्य साधन मालूम हुआ।

वृद्ध मुंजाल गद्दीपर बैठा था। उसके गौरवशील मुखपर सत्ताकी रेखाओंमें भलमनसाहतकी रेखाएँ मिली थीं। एक ओर एक जैन मुनि बैठे थे। थोड़ी दूर शोभ कानमें कलम खोंसे, तुरन्त लिखे गए आज्ञा-पत्रपर रेत डाल रहा था। दो मनुष्य जरा दूर घुटनोंके बल हाथ जोड़े बैठे थे। वातावरण किसी धनाढ्य और [illegible] वणिकके घर जैसा था।

" आपने मुझे बुलवाया ? " ज़रा कठोर भावसे जगदेवने कहा ।

मुंजालने मीठा हँसकर नमस्कार स्वीकार किया और उसकी तरफ देखे बिना कहा, "परमार, ज़रा ठहरो। मैं यह आज्ञा-पत्र पढ़ लूँ। " कहकर उसने शोभके पाससे आज्ञा-पत्र लेकर शान्तिसे पढ़ा। जगदेवको इन दरदर्शी पद्धतियोंकी रीति-नीतिके प्रति तिरस्कार था और खासकर मंत्रियोंकी तरफ तो उसकी अरुचि इतनी थी कि वह भाग्यसे ही उसे दबा पाता। उसे इस शांत अमात्यके सामने ज़रा क्षोभ हुआ परन्तु अभिमानसे उसने इस क्षोभको दबा लिया।

" परमार, " मिठाससे ऊँचे देखते हुए मुंजालने कहा। " तीन चार घड़ी पहले तुम्हारा आदमी वस्ताको बुला ले गया था। वस्ताको जानते हो न ? " मंत्रीका हास्य मनोहारी था। " हाँ। " ज़रा गर्वमें ओठ दबाते हुए जगदेवने कहा। मंत्रीका हास्य जाता रहा। उसने शांत गौरवसे जगदेवके मुखकी ओर देखा। जगदेव गर्वसे भान भूलकर तिरस्कारमें हँसा।

" एक घड़ीके अन्दर जहाँ वस्ता हो वहाँसे खोजकर ले आओ। " शान्तिके साथ मुँजालने कहा।

" मेहताजी,—" जगदेव बोलने लगा तो क्षोभ और अभिमानके मारे उसकी आवाज़ जरा भारी और नम्रताहीन निकली। वहाँ बैठे हुए लोगोंको ऐसा लगा, मानों कमरेमें यमराज आ गया हो और उसके कारण भयानक कंप हुआ हो।

मंत्रीका बड़ा सिर गर्वसे ऊँचा हुआ और भलमनसाहतमें शोभित उसके मुखपर निश्चल गौरव आ गया। उसके कपालपर शान्ति थी परन्तु आँखोंसे ज्वालामुखी फट पड़ा। उसकी ज्वाला देखकर जगदेवकी जीभ तालूसे सट गई।

" परमार, " जिस आवाज़से पाटनका अरिदल काँप उठता था उसी आवाज़से वह गरजा। उसमें प्रभाव था, गर्व था और झेली न जाए ऐसी शांत सत्ता थी। " एक घड़ीमें—एक घड़ीमें या तो वस्ताको खोज लाओ, नहीं तो अपने आयुध और आज्ञापत्र शोभ मेहताको सौंपकर यहाँ हाजिर हो जाओ। "

जगदेवका सिर चक्कर खाने लगा। क्या अमात्य पागल हो गया है ? या मैं स्वयं पागल हो गया हूँ ? आयुध और आज्ञापत्र शोभ मेहताको

सौंपनेका अर्थ वह समझता था। एक अनुचरको सजा देनेके कारण क्या उसके जैसे योद्धाको, भटराजको, महाराजाके मानीतेको, पदभ्रष्ट करके, देहका या देशनिकालेका दंड देना चाहिए?

"परन्तु—" काँपते हुए ओठोंसे उसने कहा।

वे आँखें फिर चमकीं। "जबतक मेरी आज्ञाका पालन न हो तब तक मैं कोई और बात नहीं सुनता।" मुंजालने प्राणघातक तिरस्कारसे कहा। "जाओ, शोभ, मैंने कहा वह सुना?"

"जी हाँ।" शोभ मेहताने कहा।

जगदेवको नहीं सूझा कि वह खड़ा रहे, गिर पड़े, या धरतीमें समा जाय। वह चुपचाप चला गया।

जगदेवके मुखमें फेन आ गया। क्या मालवेसे वह इन सबके पैरोंकी धूल गिना जानेके लिए आया है? उसने क्या अपराध किया है? उसे जयसिंह-देव महाराजका स्मरण आया। बेचारा पाटन-नरेश! जिससे अपने महलमें भी अपनी सत्ता नहीं चलाई जाती। उसे ऐसा लगा कि उसका स्वामिभक्त रक्त उछल रहा है। इस समय उसके मालिकको उसकी बहुत आवश्यकता है। इस समय उसकी सत्ता स्थापित रखना उसका काम है। इस समय उसकी कृतज्ञ-ताकी कसौटी है। वह स्वयं परमार था, और वीर था। क्या वह अपने स्वामीकी सत्तापर किसीको चोट करने देगा? उसके प्रचण्ड शरीरमें पवित्र और निःस्वार्थ रोषका सञ्चार हुआ। वह स्वयं तो ठीक; परन्तु उसका अन्नदाता इस दशामें! कुछ बात है? ज़ोरसे पैर उठाता हुआ वह महाराजके पास गया।

जयसिंहदेव मुरारके साथ बातें करते हुए खूब हँस रहे थे।

"और एक ब्राह्मणने मालवी सैनिकको बाँधा......और ब्राह्मण रानीके आवासमें चला गया।" राजाको कुछ समझमें न आवे, इस तरह बहुत ही हँसी आ रही थी।

"परन्तु ब्राह्मण...हा...हा...मुरार यह तो बिलकुल गप्प है।" जयदेवका सुन्दर मुख हँसते हँसते लाल हो गया। "और रानी...लीला...विवेकशील रानी...हा...हा ब्राह्मण!...गप्प...बिलकुल गप्प।"

"अन्नदाता!" मानभंग और रोषसे सूजे हुए मुखसे जगदेवने कहा। उसकी आवाज़ रिसाये हुए बालकके समान थी। "गप्प नहीं, सही बात है।"

" क्या सहीबात है, तेरा सिर ? " राजाने हँसकर कहा।

" एक ब्राह्मण तेरे सैनिकको बाँधकर भीतर घुस गया। हा...हा..परमार।" कृत्रिम गांभीर्यमे राजाने कहा। " महलमें ऐसा पहरा रखने हैं, क्यों ? वह ब्राह्मग गया कहाँ ? "

" महाराज, मैं भी उसीको खोज रहा हूँ। परन्तु मिलता नहीं। "

" अररररर। " कहकर महाराज हँसी न रोक सके। " परमार, यह क्या— हा—हा—होने जा रहा है ? "

" अन्नदाता, आप हँसते हैं और मेरा जी जा रहा है। "

" और मैं न हँसू तो तू जीता रहेगा ? तो जगदेव, ले मैं चुप हो रहा। बोल, तेरा जीव कैसे जा रहा है —कब जा रहा है—कहाँ जा रहा है ? कह तो डाल! " कहकर राजा फिर हँसा।

" अन्नदाता, आप तो हँस रहे हैं—परन्तु आज आपकी सत्ताका सत्यानाश हो गया। "

" हाय ! हाय ! " गंभीर मुखसे दिलसोज़ी दिखलाते हुए राजाने कहा।

" सुनिए, अन्नदाता, एक ब्राह्मणने हमारे एक मालवी सैनिकको बाँधा—"

" यह तो जाना। "

" वह महारानीजीके कमरेमें लोप हो गया। "

" यह भी जान लिया। "

" और मैं महारानीजीके पास पूछनेके लिए गया तो महाराज, मुझे दुतकारके निकाल दिया। "

" अरे मेरे इस परमारको ? मैं रानीसे जवाब तलब करूँगा। "

" परन्तु अन्नदाता, और तो सुनिए। बस्ताने मेरी आज्ञाके बिना ही काक भटराजके लिए कमरा खोल दिया।

" वस्ता है ही ऐसा। "

" मैंने उसे कैद कर दिया—"

" अच्छा किया। "

"और भटराजके लिए नीचे जगह तजवीज कर दी, तो उन्होंने वहाँ जानेसे इन्कार कर दिया। "

" यह काक भी बड़ा जिद्दी है। " राजाने हँसकर कहा।

" और अन्नदाता, मुझे मुंजाल मेहताजीने बुलवाया।"

" क्यों ?" राजाने गंभीर होकर पूछा।

" सबके सामने मेरा अपमान किया।"

" क्या ?"

" मुझसे कहा कि एक घड़ीके अन्दर वस्ताको ले आओ, नहीं तो अपने आयुध और आज्ञापत्र शोभ मेहताको सौंप दो!"

" क्या कहते हो ?"

" अन्नदाता, यह तो मेरी नहीं, आपकी आबरू जा रही है। यह तो आपकी सत्ता तोड़नेकी युक्ति है।"

" परमार, मैं रानी और काक दोनोंकी खबर लूँगा। परन्तु वस्ताको छोड़ दो।"

" परन्तु महाराज,—"

राजाने धीमेसे कहा—" परमार, क्या आयुध और आज्ञापत्र अच्छे नहीं लगते ?"

जगदेवने घबराकर राजाके सामने देखा। उसे कुछ ऐसा लगा कि राजाने जो कुछ कहा, वह मैं बराबर नहीं सुन सका।

" अन्नदाता,"

" जगदेव, मेरी बात मानो और वस्ताको छोड़ दो।"

परमार निराश हुआ। उसने रिसाये हुए बालककी तरह मुँह बनाकर कहा।—" बापू, आपकी बातें आप जानें, मैं तो छोड़ दूँगा।"

" जगदेव, देखो, इसके बदले मैं तुम्हें कल अधिक सत्ता दूँगा। काक यहाँ आया हुआ है, इसलिए तुम्हें सत्ताकी आवश्यकता भी होगी। नहीं तो उसे वशमें रखना कठिन होगा।"

" दिखता तो ऐसा ही है।"

" जगदेव, अपनी घुड़सालमेंसे दो बढ़ियासे बढ़िया घोड़े काकके लिए तैयार रखना और अपने आदमियोंसे कह रखना कि उसे जाते आते रोकें नहीं।"

" जो आज्ञा।"

"और कल सुबह हम चुपचाप छावनीकी खबर ले आयेंगे।"

"जो आज्ञा।"

"परमार, घबराना नहीं! मेरी सत्ताको कोई छू भी नहीं सकता।"

जगदेवने झुककर आज्ञा ली।

"मुरार," राजाको फिर हँसी आई। "जा, रानीसे कह आ कि मैं आज उन्हींके आवासमें भोजन करूँगा और वहीं सोऊँगा।"

"जो आज्ञा।"

२२—प्रेमकुँवरका निश्चय

प्रेमकुँवर नागर मंत्री शोभकी पत्नी थी। वह ऊँची, गोरी और जरा स्थूल थी। उसकी आँखें बड़ी बड़ी और भाव-दर्शक थीं। उसके ओठ जरा मोटे और विलासकी रुचि दिखलाते थे। उसके कपोलोंपर यौवनकी लाली थी। उसके छोटेसे कपालपर मोटी-सी आड़ (तिलक) शोभित रहती और उसके ओठोंसे पानकी लाली कभी अदृष्ट न होती थी। उसके शरीरकी रेखाएँ भरावदार थीं और कुछ ऐसा ख्याल होता था कि वह विलासवृत्तिका मूर्तस्वरूप है।

उसकी ठसक पाटनके नागरकुलके प्रथम रत्नकी पटरानीको शोभा देनेवाली थी। वह सुन्दर वस्त्र धारण करती और खूब शृङ्गार करती। वह धनाढ्य, मौजी और गर्विष्ठ कुलको शोभा दे, ऐसी छटा और ठाठसे रहती। रानियोंकी अपेक्षा उसका पहनाव हमेशा विशेष आकर्षक लगता और उसके अलंकारोंकी तड़क-भड़कके आगे महाराजका शृंगार भी फीका पड़ जाता।

जीवनका उल्लास उसे हमेशा डोलायमान रखता। वह जब चलती तब शरीर डोलता, कमर लचकती, पैर थिरकते और पृथ्वी काँप उठती। उसकी आँखें दो पल भी ठिकाने न रहतीं और नवीन नवीन भावोंसे चमकती रहतीं। यदि कोई उसकी ओर दृष्टि डालता तो नखरेबाज स्त्रियोंका प्रथम लक्षण उसे तत्काल दिख पड़ता। उसका पल्ला कहीं न कहींसे खिसक पड़ता और तब लज्जासे मानो उसे ठीक करनेमें लग गई है, इस तरहका प्रयत्न वह करती।

उसके मनमें बाहरकी दुनियाका कोई हिसाब न था। उसके अन्तरकी दुनियामें पहले वह स्वयं थी, फिर उसके मौज-शौक थे, वस्त्र आभूषण थे और अन्तमें उसके शोभ मेहता थे। अपने आपको मध्यबिन्दु बनाकर शोभ मेहता तक त्रिज्या खींचकर जो वर्तुल वह बनाती, उसमें स्वर्ग, मृत्यु और पाताल—इह-भव और पराभव—सब समा जाते।

आज उसका मिजाज़ बिगड़ा हुआ था। मीनलदेवीने उसपर लीलादेवी इत्यादि रानियोंको शौकीन बनाकर बिगाड़नेका आरोप लगाया था। इसमें उस बेचारीका क्या दोष! रानियाँ उसके जैसी शौकीन न हों, या उसके मेहता जैसा बाँका वर उन्हें न मिले, तो इसमें उस बेचारीका क्या दोष! और बिना दोषके उसपर आक्षेप! मीनलदेवीमें तो इतनी उम्रमें विशेष बुद्धि होनी चाहिए। उन्होंने जवानीमें क्या क्या न किया होगा! अब इतने बरसोंमें उन्हें यह क्या कहनेकी सूझी? लोग जवानीमें मौज न करें तो क्या पति और संसारको खो चुकें तब करें?

वह लीलादेवीका कमरा सजा रही थी। समर्थ उसकी मदद कर रही थी। समर्थ उसे अच्छी नहीं लगती, वह बड़ी चिलबिल्ली थी। क्यों कि वह सारे दिन उसके संसारकी बातें पूछा करती। वह इतनी बड़ी हो गई और बिना वरके भटकती फिरे, उससे क्या कहा जाय?

मीनलदेवीसे बैर निकालनेका उसे एक रास्ता सूझा। यदि सभी रानियोंको वह अपने जैसी स्वच्छंद शौकीन बना डाले तो मीनलदेवीकी घबराहटका पार न रहे और इस अपने बुढ़ापेमें सबको बुढ़िया बनानेकी इच्छा रखनेवालीसे पूरा पूरा बैर लिया जाए। इस युक्तिकी आजमाइश लीलादेवीसे ही शुरू की जाए। यह बहुत गर्विष्ठ, लापरवाह और गंभीर थी।

"इसे ऐसी बनाऊँ कि जिसका नाम।" प्रेमकुँवर बड़बड़ाई और बड़ी खूबीके साथ उसने कमरा सजाना शुरू किया।

"यह समर्थ तो कौन जाने किस घड़ीमें बनी है! कटकट कटकट किया ही करती है।" वह फिर बड़बड़ाई।

परन्तु समर्थको जब बोलनेकी इच्छा होती है, तब उसे सुननेवालेकी परवाह नहीं होती।

"प्रेमा भाभी, आज बड़ा मजा आया। महारानीजी पकड़ी गईं।" उसने

धीमेसे कहा—"ऐसी पकड़ी गई—ऐसी—" और वह हँसने लगी।

"कैसे?" बिना ध्यान दिये प्रेमकुँवरने पूछा।

"आज उनके कमरेमेंसे एक आदमी निकला!"

"हैं!" प्रेमकुँवरने एकदम ध्यान देकर आश्चर्यसे कहा।

"अन्दरके कमरेमें बन्द था।"

"फिर?"

"मैंने उसे दूसरे रास्तेसे जाने दिया और फिर—" समर्थ हँसने लगी।

"ऐसा मजा—"

झूलेपर फूल सजाते हुए प्रेमकुँवरने पूछा—"क्या?"

"अरे ऐसा—"

प्रेमकुँवर फूल सजाना छोड़कर, समर्थके पास गई। "क्या?"

"महारानी आ पहुँचीं और वह मिला नहीं। ऐसी घबराई कि रुआसी सी हो गई।"

"तूने कैसे जाना?"

"मैं फिर लौटी न!"

प्रेमकुँवर मनमें बोली, "अब समझमें आया कि रानीजी ऐसी रंजीदा—उदास-सी होकर क्यों फिरती हैं।" फिर प्रकटमें कहा, "वह कौन था?"

"कोई पुजारी ब्राह्मण!"

"हाय हाय! मर तू यहाँसे।" धारणा गलत लगनेसे प्रेमकुँवरने कहा।

"प्रेमा भाभी, मैं तुमसे मरनेको कहूँगी तो तुम्हें कैसा लगेगा? मरनेको मुझसे कह रही हो!" होठपर होठ चढ़ाकर समर्थने कहा। "फिर तो मैं तुमसे—तुम्हारोंसे—सबसे—"

इतनेमें एक अपरिचित मनुष्य आया। "महारानीजी फुरसतमें हैं?"

"क्यों?" प्रेमकुँवरने पूछा।

"काक भटराज मिलना चाहते हैं।"

"का—क" चीखकर समर्थ बोली।

"क्यों समर्थ," प्रेमकुँवरने कठोरतासे कहा। "तुझे बोलना भी आता है?" और खेमाकी ओर फिरकर कहा—"भाई, खड़े रहो, मैं पूछ देखूँ।" कहकर प्रेमकुँवर अंदर गई।

रानी पलंगपर बैठी थी। "महारानीजी, भटराज काकने पुछवाया है कि आपको अवकाश हो तो, वे मिलनेको आवें।"

रानी ज़रा हँसी। वह हास्य प्रेमकुँवरने मनमें लिख लिया। "हाँ, कह दो, मैं फ़ुरसतमें हूँ। प्रेमा, अभी फूल ही सजा रही हो? तुम न होतीं तो मेरा क्या होता?" रानीने कहा।

"महारानीजी, ऐसा क्या कह रही हैं भला।" मानों बहुत ही उमड़ती हुई लज्जाको अगत्या झेल रही हो, इस तरह नीचे मुँह मुस्कराकर और अंग लचकाकर प्रेमकुँवरने कहा। "आज तो रानीज़ीका जी लहरमें है।" इस प्रकार मन ही मनमें गुनगुनाती हुई प्रेमकुँवर गई और खेमासे संदेश कहा।

"अच्छा हुआ कि वह पापी यहीं आ गया।"

"कौन-सा पापी?" प्रेमकुँवरने बिना ध्यान दिये पूछा।

"यही काक।"

"तेरा उसने क्या बिगाड़ा है? पगली।"

"उसने नहीं बिगाड़ा तो किसने बिगाड़ा भला?" बड़े जोरसे समर्थने पूछा।

प्रेमकुँवरने सिर हिलाया और मन ही मन प्रमाणपत्र दिया—"मुई बिलकुल पागल है।" थोड़ी देर दोनों काम करती रहीं और प्रेमकुँवरकी हथौटीके प्रतापसे कमरेका रंग और रूप तेजीसे बदलता गया। थोड़ी देरमें किसीके पैरोंकी आहट सुनाई दी और दोनोंने लौटकर देखा, दरवाजेपर एक भव्य और कान्तिमान् पुरुष खड़ा है। प्रेमकुँवरके सिरसे पल्ला खिसका। उसने उल्टा खोंसा और फिर ठीक किया। फिर उसने नीचे देखा और आँखें ऊँची कीं। उसकी देहवल्लरी डोलने लगी, उसके मुखपर घबराहट तो दिखलाई दे ही रही थी। इस सबमें प्रेमकुँवरका कोई दोष न था। जिस तरह कोयल अपनेको सर्वोपरि ठहरानेके लिए कुहू-ध्वनि करती है, उसी तरह इस बिलासी युवतीकी सामान्य सभ्यताका यह एक प्रकार था। यह देखकर सबका ध्यान जाता था और शोभ मेहताकी मोहक भामिनीके चरणोंमें हृदयोंका ढेर लग जाता था। नया आनेवाला नाममात्र ही हँसा, इस सभ्यतासे वह स्तब्ध हो गया हो, ऐसा कोई चिह्न न दिखा।

परन्तु समर्थसे न रहा गया। वह एकदम उछलकर प्रेमकुँवरके पास

जाकर धीरेसे बोली; " महारानीजीके कमरेमें सुबह जो ब्राह्मण था वह यही है । "

प्रेमकुँवरने इसे मनमें रख लिया, समर्थका हाथ दबाया, फिर भी वह स्वागत करनेसे न चूकी । " पधारो भटराज ! " मोठी, धीमी, भावसूचक और शर्मीली आवाजमें नीचे देखती हुई उस नागर-कन्याने कहा ।

" महारानीजी हैं क्या ? " नव आगन्तुकने मिठाससे पूछा और उसकी तीक्ष्ण दृष्टि कमरेके चारों कोने देख गई ।

" अभी बुला लाती हूँ । " कहकर पल्ला सँभालती, नीचे देखती, शरीर डुलाती प्रेमकुँवर अन्दर गई और जाते जाते बड़बड़ाई "काक भटराज रानीके कमरेमें ! धन्य है तुम्हारी लीलाको रानीजी । तुमने भी गजब किया । वाहरे तुम्हारा मिजाज और वाहरे तुम्हारा ढोंग ! भला हो तुम्हारा ! खोज भी किसे निकाला ! मेरे फूल आज क्यों पसन्द आये, अब समझमें आया । "

वह अंदर गई कि समर्थ सामने आ गई । " क्यों काक भटराज, पहचानते हो ? "

" ओ हो ! तुम भी यहीं हो क्या ? " काकने हँसकर कहा ।

" मुझे तुम्हारे साथ लड़ना है । "

" अररर ! मर गया । मुझे नहीं लड़ना । मैं शरण आनेको तैयार हूँ । "

" मैं मसखरी नहीं करती । " समर्थने कहा ।

" समर्थ, " पीछेसे रानीकी सख्त आवाज आई । " तुम और प्रेमकुँवर बाहर जाओ । "

पीछे आती प्रेमकुँवर मनमें बोली, " अरी मैयारी ! आज कैसी खिल रही हैं । " वह नीचे देखती हुई आगे बढ़ी और काकभटके आगे होकर जरा नीचे मुँहसे एक नजर ऊपर फेंककर चली गई । समर्थ मुँह चढ़ाकर क्रोधके साथ चल दी । काक उस समय महारानीको प्रणाम कर रहा था ।

" समर्थ, मंगीको भेज देना । " रानीने कहा ।

" अच्छी बात है । "

२३—पुरुषको वश करनेका शास्त्र

प्रेमकुँवर और समर्थके चले जानेपर रानी झूलेपर बैठ गई और काक सामने जमीनपर बैठा।

" काक, तुम्हें कुछ हुआ तो नहीं ? "

" कुछ नहीं, महाराजके मुझपर चारों हाथ हैं। "

" तो अब समझमें आया। "

" क्या ? "

" मुंजाल मेहता कहते थे कि मैं तुम्हें अच्छी तरह नहीं पहचानती। तुम्हें कुछ न होगा। "

" मेहताजीकी मेरे विषयमें अद्भुत श्रद्धा है। क्या आप मेरे लिए गई थीं ? "

" हाँ, तुम्हें उस कमरेमें न देखा, तो घबड़ा गई। "

" महारानीजी, आपको मेरे लिए इतनी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। "

रानी शान्तिसे देखती रही। फिर विषय बदला। " काक, रेवापाल कैसा है ? "

" जैसेका तैसा। अब भी लाटको स्वतंत्र करनेकी आशा उसने खोई नहीं है और हम दोनोंपरका क्रोध भी शान्त नहीं हुआ है। आगे जो हो जाए सो ठीक। "

" क्यों ? "

" मुझे उदाके उस छोकरेपर ज़रा भी विश्वास नहीं है। "

" तुम्हारा तो किसीपर विश्वास दिखता ही नहीं। "

" मुझे कितनोंपर बहुत ही विश्वास है।

" जैसे कि मंजरी। "

" जैसे कि आप। "

रानी हँसी, " बोलो, फिर यहाँका क्या है ? "

" यहाँ ? धीरे धीरे सब सरल हो जायगा। पहला वार तो फला है। महाराज ठिकाने आये हैं। "

" देखो, भूलते हो। इनका ठिकाने लानेमें जन्मके जन्म बीत जायँगे। " शान्त तिरस्कारसे रानीने कहा।

"महारानीजी, यदि आप मदत करेंगी, तो वे तुरन्त ठिकानेपर आजाएँगे।"

"मुझे किसलिए मदद करनी चाहिए?" असंतोपसे रानीने कहा।

"किसलिए?" काकने तीक्ष्ण दृष्टिसे रानीके सामने देखा। "देखिए, बहुत बार 'स्पष्टवक्ता सुखी भवेत्' यह सूत्र भूलने योग्य नहीं होता। मैंने आपको यहाँ ब्याहा, और पटरानी पदकी आशा दी। इस समय वह पद जानेकी तैयारी कर रहा है। आपको भी ऐसा ही लगा और इसीलिए मुझे बुलवाया। अब हमें स्पष्ट बातें कर लेनी चाहिए।"

"क्यों न। मैंने कब इंकार किया है?" उकता कर रानीने झूलेकी पीठपर भार डाला।

"बुरा तो न मानिएगा?"

"तुम्हारा कहा बुरा लगेगा, तो भी सुन लूँगी।"

"महारानीजी, इस समय बाप, भाई अथवा माँ जो कहो सो मैं हूँ। मैं जैसी बात करूँ, वैसी करने दीजिए।"

"इस सब पारायणकी मुझे आवश्यकता नहीं दिखती।"

"मुझे दीखती है। मैं यहाँ बहुत ही मुश्किल स्थितिमें हूँ। मेरे जैसे पर-पुरुषको इस तरह बातें न कहनी चाहिए। परन्तु मैं न कहूँ तो कौन कहेगा?"

"कहना शुरू करो।"

"आपको पटरानी पदसे हटना न चाहिए।" काकने रानीपर एक तीक्ष्ण दृष्टि डालकर कहा।

"यह मेरे हाथमें नहीं है।" रानी ज़रा तिरस्कारपूर्वक हँसी।

"मुझसे जो कुछ बन सकता है, करता हूँ; परन्तु आखिर तो सब आपके ही हाथोंमें है।"

"किस प्रकार?"

"आपको महाराज जयसिंहदेवको रिझाना चाहिए।" काकने धीमेसे कहा और रानीके मुखके भाव देखने लगा।

"क्या करवाना चाहते हो?" ज़रा तिरस्कारसे रानीने पूछा।

"जिससे काम सधे वह सब।"

"अर्थात्?"

" महारानीजी, प्रत्येक स्त्रीमें पुरुषको रिझानेकी जो अद्भुत शक्ति होती है, वह आपको सीखनी चाहिए, नहीं तो यह काम नहीं होनेका। "

रानी क्रूर शान्तिसे काककी ओर देखती रही। काक चुप रहा।

थोड़ी देरमें रानीने निःश्वास छोड़ा। " मुझे पुरुषको रिझाना नहीं आता। " वह थोड़ी देर मौन रही और फिर तिरस्कारसे हँसी, " ऐसा जानती, तो मंजरीसे ही कुछ सीख लेती। "

काकने जवाब नहीं दिया परन्तु कहा—" महारानीजी, इस समय हम दो सेनापतियोंकी तरह मसलहत कर रहे हैं। हमें गढ़ जीतना है। अपने शस्त्र आप काममें लाइए, मेरे मैं लाता हूँ। बोलो, इस तरह बातें करूँ तो रुचेंगी? "

" हाँ, कहते जाओ। "

" जयदेव महाराजको आपके प्रति मोह उत्पन्न हो, ऐसा आपको करना चाहिए। तभी गढ़ जीता जायगा। "

" राणक देवड़ीकी तरह खुला सिर और कुंकुम लगाकर फिरूँ? "

" जरूरत होनेपर यह भी करना पड़ेगा। "

" और कुछ? " तिरस्कारसे रानीने पूछा।

" प्रथम तो वे महत्त्वाकांक्षी हैं। "

" इससे क्या? "

" सब जिसको पूजें ऐसी पटरानी उन्हें चाहिए। इसलिए आपको सब पूजें, ऐसा रास्ता लें। "

रानी एकाग्रतासे देखती रही। काक उत्साहसे, स्नेहसे मानो विनती कर रहा है, ऐसा दीखता था। एक क्षण उसने काकके तेजस्वी मुखकी ओर देखा।

" किस प्रकार? "

" गुरुदेवने आपको शस्त्रविद्या सिखलाई है। प्रभुने आपको चतुरता प्रदान की है। कुछ ऐसा कीजिए कि आपकी कीर्ति महाराजाको चकचौंधा दे। "

" क्या लड़ाई लड़ूँ। "

" यह भी करना पड़ेगा। फिर दूसरी बात यह है कि महाराज भावुक हैं। " काकने कहा।

" यह बात है ? " पुनः तिरस्कारपूर्वक रानीने कहा ।

" आप क्या नहीं जानतीं ? आप उनकी ओर स्नेहकी उर्मियाँ नहीं दिखातीं । आप बहुत तटस्थ, शांत और भावहीन हो रही हैं । "

" तुम स्त्री होते तो अच्छी ननद होते । "

" अपनी महारानीजीके लिए ननद बननेमें भी मुझे खुशी होती । " काकने हँसकर कहा । " महारानीजी, चाहे जैसा पुरुष हो, उससे स्त्रीके प्रेम बिना नहीं रहा जाता । थका हुआ मनुष्य जैसे रेवाकी तरंगोंमें पड़कर नया जीवन पाता है, वैसे ही पुरुषको स्त्रीके भावों, उर्मियों और छोटे मोटे विलासोंमें स्नान करके सजीवन होनेकी आवश्यकता पड़ती है । और महाराजका अंतर इतना उत्साही है कि उन्हे भावोंकी, उर्मियोंकी और विलासकी बड़ी बड़ी तरंगे चाहिए । "

" पुरुषका हृदय परखना तुम्हें बहुत आता है । "

" हाँ, बाल्यकालसे ही यह परखनेका धंधा ले बैठा हूँ । महारानीजी, सब बातोंकी तरफ तिरस्कारसे देखेंगी, तो इससे लाभ क्या होगा ? यदि पाटनकी पटरानी बनना है तो पाटनके धनीके अन्तरको परखकर उसे कैद कीजिए । आप भी मनुष्य-हृदयकी पारखी हैं । चाहें तो उन्हें नचा सकती हैं । नहीं तो आज देवड़ी जायगी, और कल कोई दूसरी आयगी । "

" चलो, अब मुझे यही करना रहा । "

" हाँ । उनके निकट आओ, दूर हो जाओ, उन्हें आनन्द दो और विरहावस्थाका अनुभव कराओ । उन्हें चिढ़ाओ और शान्ति दो । उन्हे मालिक बनाओ और दासत्वका स्वाद चखाओ । अपने वैविध्यके स्वरोंमें उन्हे नचाओ और अपने हृदयकी एकनिष्ठामें उन्हें साता पाने दो । "

" अर्थात् लाटकी राजकुमारी लौंडी बनकर रहे, ऐसा करूँ ? "

" महारानीजी, सर्वांगपूर्ण स्त्रीके भाव दिखलानेमें मुझे तो कुछ भी हलका-पन नहीं दिखता । स्वयं पार्वतीजी कौन सा भाव नहीं दिखलाती थीं ? "

" चलो, एक तो अपनी कीर्तिसे उन्हें विस्मित करूँ और दूसरे—अपने अंतरके भावोंमें उन्हें भिगो रक्खूँ । और भी कुछ है कि बस इतना ही ? "

" नहीं, अभी बाकी है । "

" क्या ? "

" महाराजका स्वभाव बहुत ही चंचल है। उन्हें निश्चलताकी जरूरत है। अपनी निश्चलतापर उनके जीवनकी रचना होने दीजिए। "

" सो किस तरह ? " रानीकी भी दिलचस्पी बढ़ने लगी।

" वे चाहे जो करें, फिर भी उनकी कीर्ति और उनकी सत्ता आपके ही कारण है, ऐसी श्रद्धा उनको होनी चाहिए। "

" यह किस प्रकार ? "

" उनकी कीर्ति और सत्ताकी संरक्षक बनकर। "

" चलो, यह तीसरा हुआ, अब और कोई पाठ बाकी है ? "

" आज इतना ही बहुत है। " हँसकर काकने कहा।

" अब क्या करूँ ? " रानीने पूछा।

" पहले अपनी कीर्ति बढ़ाइए। आप शस्त्र तैयार रखिए। थोड़े ही दिनोंमें हम जिससे संपूर्ण गुजरात गाज उठे, ऐसा धड़ाका करेंगे। परन्तु अभी तो जब कभी मौका मिले चुपचाप घोड़ेपर चढ़कर लश्करमें क्या हो रहा है सो देख आया कीजिए। जब लाटमें थी, तब तो कोसोंकी दौड़ लगाती थीं। "

" काक, वे दिन गए। " रानीने निःश्वास छोड़ा।

" इसके बाद दूसरा प्रयोग तो आपके ही हाथोंमें है। " काकने हँसकर कहा " मुझे स्त्री-चरित्रका विशेष अनुभव नहीं है। "

" ऐसा क्या ? " रानीने हँसकर पूछा। " तुम्हारी बातोंसे तो ऐसा नहीं लगता। "

" और तीसरा प्रयोग यह कि राजाको स्वयं देव जैसा दीखनेका बहुत शौक है और इसीसे जगदेव जैसे परदेशियोंको वे रखते हैं। आप उन्हें दिखला दें कि जब वे आपके पास आते हैं तब बिना परिश्रमके ही देव बन जाते हैं। "

" मेरे पास देव बनानेका जंत्र नहीं है। "

" है। आप इतना ठाठ बढ़ायें, इतने अनुचर रक्खें, ऐसा आचार स्थापित करें कि आपके पास आनेवाले मनुष्योंको देवमंदिरका खयाल हो। फिर इस मंदिरका देव बननेके लिए राजा स्वयं ही दौड़े आयेंगे। और यदि इस बीच वे ध्यान न दें तो घबराए नहीं, वे अपने आप खिंच आयँगे। अब तक ऐसा मुझे कोई नही मिला, जो देव माने जानेसे खुश न हो। "

"तब तो पच्चीस हुए।"

राजाको मजा आया। "हाँ, हमारे एक एकके हिस्सेमें आठ आठ आएँगे।" परमारने सिर हिलाया।

"परमार, वे तीस तिया नब्बे आवें, तब तक तो कुछ कहनेका है नहीं।" कहकर राजा फिर हँसा।

"म समझा नहीं।"

"उस काकके पीछे तीस आदमी गये हैं।" राजाने शान्तिसे कहा। "खेमा कहाँ है?"

"यह तो हूँ अन्नदाता।" कहकर खेमा थोड़ी रोटियाँ और मिर्चें लेकर ऊपर आया। "महाराज, यह भोजन हाथ लग गया है, सो खा लीजिए। कौन जाने फिर कब खानेको मिले।"

कर्णदेव सोलंकीके शौकीन पुत्रको मिट्टी जैसी रोटियाँ देखकर कँपकँपी आ गई। परन्तु उन्हें खेमाकी सलाह ठीक लगी, इसलिए चुपचाप रोटीका एक टुकड़ा लेकर बड़ी कठिनाईसे गलेके नीचे उतारा।

"खेमा, उस चौकीदारका क्या किया?

"अन्नदाता, उसे नीचे कोठरीमें बंद कर दिया है।"

"परमार," महाराजने कहा। "दूसरे आदमी आवें उसके पहले ही हम लोग निकल चलें तो कैसा रहे?"

"चलिए।" कहकर परमारने कमरबंद कस लिया। परमारको प्रसंग ऐसा गंभीर होता हुआ लगा कि उसकी जीभ चिपक गई। इस समय बोलनेकी अपेक्षा लड़ना उसे अधिक स्वाभाविक लगा।

तीनों नीचे उतरे और घोड़ोंकी तरफ फिरे। इतनेमें उन्हें दूरसे आते हुए आदमियोंका हल्ला सुन पड़ा। जगदेवने जरा चौंककर आसपास देखा और राजाने ओंठ चबाये।

"ज्यादा आदमी आ पहुँचे।" जयदेवने कहा।

खेमा भी सावधान हो गया और झटपट ऊपर जाकर देख आया।

"इस तरफसे लोग आ रहे हैं।"

" कितने हैं ?"

" बीस–पचीस।"

राजाकी आँखोंमें खून उतर आया।

" अब हमें बाहर नहीं निकलना चाहिए।"

इतनेमें बाहरसे आनेवालोंने द्वार खटखटाया।

तीनों शान्त रहे। थोड़ी देरमें बाहरके आदमियोंने अधीरतासे दरवाजा ठोका और पुकारा—" चौकीदार, दरवाजा खोल।"

किसीने जवाब नहीं दिया। थोड़ी देरमें बाहरसे दरवाजेपर लातें पड़ने लगीं और गालियोंकी वर्षा शुरू हो गई।

" अन्नदाता," जगदेवने कहा, " मुझे एक ही मार्ग दीखता है।"

" क्या ?"

" मैं बाहर जाऊँ और बने उतनोंको ठिकाने लगा दूँ। दस पंद्रहको तो मैं पूरा कर दूँगा। इतनेमें आप यहाँसे निकल जाना।"

राजा हँसे, " अर्थात् लड़ना तुम सबको ही आता है, क्यों ? काकने एक संकटमेंसे बचाया, दूसरेमेंसे तुम बचाओ और जयसिंह सोलंकी विधवाकी तरह भाग जाए। देख तो सही, सभीको ठिकाने लगा दिया जायगा।"

" किस तरह ? हमसे अन्दर रहकर तो लड़ा नहीं जा सकता। ऊपरकी जालीमेंसे तो तीर भी नहीं जा सकता।"

" कोई रास्ता निकालना चाहिए। खड़े रहो।" राजाने सिर ऊँचा करके कहा।

" ऊपर चलो।" कहकर आजन्म सत्ताधीशकी-सी स्वस्थतासे राजा ऊपर चढ़ गये और जालीमेंसे देखने लगे।

वे लोग अधीरतासे दरवाजा ठोक रहे थे और नई आई हुई दूसरी टोली भी, जिसे उन्होंने वृक्षके नीचे बैठी देखी थी, आ पहुँची थी। वे सब पूछताछ करके जानकारी प्राप्त कर रहे थे। तुरन्त एक व्यक्तिने ढेला लेकर जालीकी तरफ फेंका और उसका थोड़ा-सा कचरा राजाकी आँखपर आकर पड़ा।

" उस सोलंकीके आदमी हैं। वह तो भाग गया, अब इनको झोंटा पकड़कर बाहर निकालना चाहिए।"

राजा हँसा। "परमार, जयसिंहदेव सोलंकी कैसा रहा? माताजी जान पाएँ, तो कितना चिढ़ेंगी!"

परमारने गंभीर होकर सिर हिलाया। "हँसो हँसो। आज तुम मरनेवाले हो और कल खेंगार यह बात सुनकर खुश हो जायगा। वह चपटी नाकवाला देखा? मेरा बस चले, तो उसकी नाक खींच लूँ।"

"अन्नदाता, वे लोग थककर बैठने लगे हैं।"

"ये जालियाँ ज़रा बड़ी होतीं, तो एक एकको बाणसे बेध देता।"

"जाली लकड़ीकी है, ज़रा बड़ी कर दूँ?" खेमाने पूछा।

"हाँ।" राजाने उत्साहमें आकर कहा।

"परन्तु ये लोग भड़क जायेंगे।" परमारने कहा।

"परन्तु अधिक समय होगया और दूसरे आदमी आ पहुँचे, तो मर ही गये समझो। खेमा कोई हथियार है?"

नीचेसे एक कुल्हाड़ी मिली है।" खेमाने कहा।

"जगदेव, उस पिछली जालीपर पहले जाओ।"

जगदेव एकदम उस जालीकी ओर गया और थोड़ी ही देरमें उसने बीचका एक परदा तोड़कर दो जालियोंको एक कर दिया। खेमाने महाराजको धनुष और बाण दिये। जयदेवने ले लिए और जालीके पास जाकर निशाना लगाया और नयी टोलीमेंके एकको बेध डाला। बिंधा हुआ सैनिक चीख मारकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसकी चीख सुनकर आगेकी बाजूसे बहुतसे सैनिक उसके पास दौड़ आये। दौड़कर आनेवालोंने बाणसे बिंधे हुए सैनिकको देखा; कहाँसे बाण आया था सो भी देखा और उनका क्रोध बसमें न रहा। पुकारों, गालियों और पत्थरोंकी बरसात होने लगी।

दाँत पीसकर जयसिंहदेव देखते रहे। उनके मुखपरसे विलासके चिह्न अदृष्ट हो गये थे, और मौजी स्वभावकी कोमल रेखायें सख्त हो गई थीं। वे शान्त थे। भय उनके हृदयको त्रस्त नहीं कर सकता था; कारण कि उनको विश्वास था कि वे सबसे निराले और दैवी पुरुष हैं। कोई उन्हें हरा सके या मार सके, यह संभव नहीं।

उन्होंने नीचे झुककर दूसरा बाण लिया और ताककर मारा। एक सैनिक

और गिरा, बाहरके लोगोंमें फिर हाहाकार मच गया। वे फिर पीछे हटकर चले गये, और उनकी घबराहट देखकर राजा मुस्कराये।

थोड़ी देर दोनों पक्षोंने कुछ नहीं किया।

"परमार ये सब निश्चिन्त बैठे हैं और किसीकी राह देख रहे हैं।" राजाने कहा।

"अन्नदाता, मुझे तो क्षण क्षण भय बढ़ता ही नजर आता है।"

"तुम्हें कोई रास्ता दीख पड़ता है?"

"मुझे तो अन्नदाता, एक ही रास्ता दीखता है।"

"कौन-सा?"

"मैं घोड़ा लेकर बाहर निकल पड़ूँ और इन सबके साथ लड़ने लगूँ। और इस मार-काटका लाभ उठाकर आप और खेमा निकल जाएँ।" परमारने कहा।

"इन सबके पास तीर-कमान हैं, यदि कोई बींध डाले तो?" राजाने कहा।

"परन्तु यहीं बैठे रहें और अधिक सैनिक आ पहुँचें तो?"

"तब तक कोई हमारी सहायताको नहीं आ पहुँचेगा?"

"कोई न आया तो?" परमारने शंका उठाई।

"अरे कुछ बात है?" राजाने साहससे हँसकर कहा। "दो तीन दिन तक तो सहज ही यहाँ जमे रहेंगे।"

"अन्नदाता," खेमा खिड़कीके सामने खड़ा था, वहाँसे बोल उठा—"दो तीन दिन किसने देखे हैं? ये तो चौकी जला देनेका प्रयत्न कर रहे हैं।" जैसे बिजलीका कड़ाका हुआ हो इस तरह क्षणभर सबके सब स्तब्ध हो रहे। फिर सबको स्थितिका भान हुआ और उनके हाथ पैर ढीले पड़ गये।

२८—जयसिंहदेवका शौर्य

जयदेव उछलकर खिड़कीके पास पहुँचे। देखा तो दो तीन आदमी बातें कर रहे थे; एक चकमकसे आग जला रहा था और दूसरा सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी कर रहा था। थोड़ी देर राजा एकाग्रतासे देखते रहे। एक आदमी

लकड़ी जलाकर दरवाजा सुलगा देनेकी सूचना दे रहा है, ऐसा स्पष्ट प्रतीत हुआ।

स्थिति बड़ी भयंकर लगी। राजाने एक गहरा श्वास लिया और भौंहें चढ़ाकर पलभर विचार किया। थोड़ी देरमें उन्होंने सिर ऊँचा किया।

"परमार, तुम्हारी बात ठीक है। हमें अब मरना या मारना पड़ेगा।" जवाबमें परमारने दाढ़ीमें बल दिये।

"देखो, हमें एक किवाड़ खोल देना चाहिए। यदि बाहर निकलने जायँगे तो ये लोग बेध डालेंगे। इसलिए तुम दरवाजेके बीच खड़े रहो, फिर मैं खड़ा रहूँ और सबके पीछे खेमा बैठे बैठे तीर चलाए। इस तरह एकके बाद एक, इन सबको ठिकाने लगा दिया जाए और फिर समय देखकर घोड़े बाहर निकालकर चल दिया जाए।" राजाने अपनी योजना बतलाई।

"जो आज्ञा" कहकर परमार सीढ़ियोंसे उतरा और उसने अपना प्रचण्ड खड्ग नंगा करके हाथमें ले लिया। राजाने एक हाथमें बरछी और दूसरे हाथमें तलवार रक्खी और वे दरवाजेसे कुछ कदम दूर खड़े हो गये। घोड़े तैयार करके, और फिर घुटनोंके बल बैठकर खेमाने शर-संधान किया।

परमार और खेमाने महाराजकी ओर इस तरह देखा जैसे अब अन्तिम समय हो। तीनोंको लगा कि वे अब आखिरी खेल खेल रहे हैं। फिर भी तीनोंको लग रहा था कि इसके सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं है। जहाँतक चालीस योद्धा घेरे पड़े है, वहाँ तक बचनेका मार्ग नहीं।

"अन्नदाता, सावधान हो जाइए, मैं दरवाजा खोलता हूँ।"

"खोलो।" शान्तिसे सोलंकीने जवाब दिया।

परमारने महाकालेश्वरका स्मरण करके अर्गला खींची और एकदम दोमेंसे एक किवाड़ खोल दिया।

दरवाजा खुलनेकी आवाज़ होते ही बाहर बैठे व्यक्ति चौंक उठे और सावधानी छोड़ खड़े होकर पास आये। दूसरे ही क्षण उन्होंने जयघोष किया, और उनमेंसे कितने ही मजाकमें हँसने लगे। सामने खड़े हुए सैनिक शस्त्र निकालकर चौकीमेंसे निकलनेवालोंको धराशायी कर देनेको तत्पर हुए परन्तु दूसरे ही क्षण वे अचरजसे यह देखकर खड़े हो रहे कि चौकीके अधखुले द्वारसे कोई नहीं निकला।

सोरठी सैनिक थोड़ी देर तो देखते रहे और फिर आगे बढ़े। एक क्षणमें उन्होंने परमारका उग्र मुख भयानक हास्य करते हुए देखा ही था कि अधीरताकी अस्वस्थतामें चार पाँच सैनिक अधखुले दरवाजेकी ओर बिना विचारे दौड़ पड़े।

उत्साहसे पागल हुए सोरठी सैनिक जैसे ही दरवाजेमें घुसे कि एक प्रचंड यमराज बंद किंवाड़के पीछेसे सामने आ गया और उसके एक ही झटकेमें आगेके दो सैनिकोंके सिर धड़से अलग होकर धरतीपर लोटने लगे और पिछलोंमेंसे भी एक आदमी घातक तीर लगनेसे लुढ़क पड़ा। किसीको भान न हुआ कि क्या हुआ। पीछे आनेवाले पीछे हटे, और चौकीका अधखुला दरवाजा जैसा था वैसा ही खाली दिखलाई दिया।

एक ही क्षणमें यह खेल पूरा हो गया। हमला करनेवाले चौंक उठे, और कुछ दूर जाकर एक दूसरेके साथ सलाह करने लगे। थोड़ी देरमें एक आदमीने दो बाण चलाए। वे अधखुले दरवाजेमेंसे होकर सीधे चले गए, जवाबमें केवल परमारका अट्टहास सुन पड़ा।

खेमाके तीरसे जो घायल होकर गिर पड़ा था, उसकी वेदनाकी चीखके सिवा सब कुछ शान्त हो गया। चौकीमें तीनों राह देखते खड़े थे।

मध्याह्न तपने लगा था। सोरठका प्रखर सूर्य भी ऐसा लगता था कि रंगमें आ गया है।

थोड़ी देरमें महाराज और उनके साथियोंने नई और परिचित-सी आवाज सुनी। कोई वृद्ध मजाक-सा कर रहा था–" लड़को, यह क्या शुरू किया है ? "

" अब मरे ! " परमार बड़बड़ाया और बंद किवाड़के एक सूराखसे देख कर उसने कहा। " महाराज, मेरे पीछे छुपे रहिए। एक बूढ़ा आठ दस सिपाहियोंको ले आया है। कहीं यह एभल नायक न हो ! "

" सफेद बड़ी बड़ी मूँछे हैं ? मोटा नाटा-सा ? " राजाने पूछा और जिज्ञासा न रोक सकनेसे पास आकर कहा, " परमार, खिसको तो ज़रा, देखने दो। "

परमार जरा खिसका और राजाने आँख गड़ाकर देखा। " अनर्थ हो गया, एभल ही है। "

बाहर एक अचूक लड़ाका आ गया है, इसका तुरन्त ही प्रमाण मिल गया;

ज्यों ही राजा देखनेके लिए आये और परमारके शरीरका जरा-सा भाग खुले हुए दरवाजेमेंसे दीखा, त्यों ही एभलका एक तीर सननन करता हुआ आया। उसका निशाना चूकता न था; परन्तु परमारके सद्भाग्यसे उसके शरीरमें थोड़ी-सी खरोंच ही लगी।

ऐसा जान पड़ा कि बाहरके सैनिकोंने एभलको खबर दे दी है। थोड़ी थोड़ी देरमें इस वृद्ध योद्धाका निश्चिंततापूर्ण हास्य सुनाई पड़ता रहा। ऐसा लगा कि बाहरके सैनिक उस्ताद नायकके हुक्मके माफिक कुछ युक्ति रच रहे हैं।

परमारके स्नायु जोशसे एकदम तन गए। "अन्नदाता," उसने भारी आवाजमें कहा। "यह बंद किवाड़को जोरसे खोलनेके लिए आ रहा है, सावधान रहिए। मैं इसे एकदम घुस जाने दूँगा और फिर दरवाजेके बीच खड़ा रहकर लडूँगा। सोमनाथ भगवान आपकी सहायता करें।"

परमार ओंठ चबाते हुए अपना कंधा बंद किवाड़पर टिकाकर खड़ा रहा। कुछ आदमी बंद किवाड़के बाहर रहकर दो तीन मोटी लकड़ियाँ एक साथ पकड़कर ज़ोरसे किवाड़ खोलनेके लिए आये। वे एकदम पिल पड़े। घर काँप उठे, इस तरह लकड़ियाँ किवाड़में टकराईं; किवाड़ ज़रा खुला भी, पर परमारके बलसे फिर बंद हो गया।

थोड़ी देरके लिए सोरठी सैनिक पीछे हट गए और फिर लकड़ियाँ बाँधकर आगे धँसे। परमार इस समय पीछे खिसक कर खड़ा रहा। बाहरके जोरसे बिना आधारका किवाड़ खटसे खुल गया और ढकेलनेवालोंमेंसे कुछ लोग गिर पड़े।

'जय सोमनाथ' की भयंकर घोषणा करके परमार उनपर टूट पड़ा और देखते ही देखते घायल सैनिक चारों तरफ दौड़ने लगे।

अब दोनों किवाड़ खुल गए थे, इसलिए परमार बाहर निकलकर दोनों किवाड़ोंके बीच खड्ग चलाता खड़ा रहा। उसने अनेक लड़ाइयाँ लड़ी थीं। मालिकके संरक्षणके लिए उसमें एक अजीब जोश आ गया था। उसकी प्रचंड भुजाओंमें अपार बल प्रकट हुआ, उसकी लंबी तलवार एक महान् ज्वाला पवनमें नाच रही हो, इस तरह दशों दिशाओंमें नाचने लगी। खड्गोंका प्रहार उसका स्पर्श नहीं कर पाते, और तीरोंकी वर्षा खड्गके साथ टकराकर निष्फल हो जाती। एभल नायकके हुक्मके अधीन होकर सोरठी सैनिक पैदल

और घोड़ेपर उसकी ओर बारबार आये परन्तु वे परमारको बीच बीचमें कुछ चुटीला करनेके उपरांत कुछ न कर सके।

पीछे महाराज भी सावधान होकर खड़े थे। परमारपर होनेवाली आकस्मिक चोट झेलना और उसके पैरोंके सामने होकर आनेवालेको मार देना, यह काम वे करते रहे। महाराज समझते थे कि परमार थोड़ी देरमें जब थक जाएगा तब इस हमलेका सामना करनेका काम उनके सिरपर आएगा और इसके लिए वे तैयार होकर बैठे थे। पीछेमें खेमाके तीर भी अपना अचूक काम कर रहे थे।

घड़ी दो घड़ी तो परमारने शौर्यकी पराकाष्ठा दिखला दी, परन्तु फिर साँस फूलने लगी और जगह जगहसे रुधिर बहने लगा। सामने पेड़के नीचे घोड़ीपर बैठा हुआ एभल हँस रहा था और उसके बीसेक सैनिक लगभग बिलकुल ताजे थे।

महाराज क्या करें, इसका विचार कर ही रहे थे कि इतनेमें खेमाने पीछेसे उनके कंधेपर हाथ रखा। "महाराज, चौकीके बाहर निकलिए। उस काल-मुखने पीछेसे छप्परपर आदमी चढ़ा दिये हैं। वे अभी उतरकर पीछेसे आ गये तो हम सरौतेके बीच सुपारीकी तरह हो जाएँगे।"

"ठीक" जयदेवने पुकारा "परमार, ज़रा आगे बढ़ो जिससे मैं और खेमा बाहर निकलें। पीछेसे आदमी आ रहे हैं।"

परमारने सुना, वह जरा आगे खिसका और जयदेव बाघकी तरह तड़पकर बाहर निकल पड़े। उनका सुन्दर मुख तेजसे चमक रहा था; उनकी बड़ी बड़ी आँखें लाल हो रही थीं। 'जय सोमनाथ' कहकर उन्होंने जयघोषणा की, और दीवारका सहारा लेकर लड़ना शुरू किया। एकसे दो योद्धा हुए देखकर सारे सोरठी टूट पड़े।

खेमा दरवाजेके सामने पड़े हुए मुर्दोंमें तिरछा होकर लेट गया। वह थोड़ी थोड़ी देरमें पेटके बल सरकता था, फिर भी उसने अपने हाथोंमें तीर कमान मजबूतीके साथ पकड़ रखे थे। महाराजका किया हुआ हमला इतना अचिन्तित था कि किसीने खेमाको नहीं देखा।

एभल नायकने धूपसे बचनेके लिए माथेपर हाथकी छाया की। "कौन, जयसिंह सोलंकी?" उसने जोरसे कहा। "लड़को, जो इसे जीता पकड़ेगा उसे एभल नायककी जागीर मिलेगी।"

ऐसे मौकेपर जयसिंह सोलंकीको सदेह देखकर एक बार तो क्षणभरके लिए लड़नेवाले सकपकाए परन्तु फिर 'रा खेंगारकी जय' कहकर टूट पड़े।

महाराजका रक्त उछल रहा था। उनकी आँखोंमें सब लाल ही लाल दिखलाई देता था। उन्होंने रक्तपिपासु सैनिकोंको उछल उछलकर आते देखा, दूर खड़े हुए एभल नायकको मूँछ मरोड़ते देखा; बगलमें परमारको भयंकर शौर्य दिखलाते हुए देखा; और ऐसा लगा कि परमार उनकी तरफ आनेवाले सैनिकोंका हमला निष्फल कर रहा है। परन्तु उसका श्वास अवरुद्ध हो रहा था और उसके सिरसे रक्तकी धार बह रही थी; इसलिए नहीं कहा जा सकता था कि वह कब तक टिकेगा।

जयदेवके हाथमें तलवार फूलकी तरह फिर रही थी। वे वार झेलते थे और वार करते थे। बाणोंकी वर्षा करते हुए बीच बीचमें वे 'जय सोमनाथ' की घोषणा करते जा रहे थे। आज उन्हें ऐसा लगा कि रंग रह गया और उनके वीर पूर्वज उन्हें प्रोत्साहन दे रहे हैं। उनका परमभट्टार्क कहलाना सार्थक प्रतीत हुआ। गर्वसे उनका शौर्य जितना था उससे भी और बढ़ गया।

एक क्षणभरके लिए उनकी आँखोंके सामने लाल पर्दा आया और गया। उन्हें अधिक साफ दीखा। उनके कानोंमें कुछ आवाज़ होने लगी। उनका दाहिना हाथ जरा झूठा पड़ने लगा। उन्होंने एक क्षणमें हाथ बदला और वे बाएँ हाथसे शस्त्र घुमाने लगे। सामने आनेवाले सैनिकोंके मुखपर कायरता दीख रही थी, या उन्हें भ्रम हो रहा था।

परमार एकदम चिल्लाया और उन सैनिकोंपर टूट पड़ा जिन्होंने उसे घेर लिया था।

वह किसलिए इस प्रकार घबराता होगा? स्वयं अभीतक थका न था और चारों तरफ घायल सैनिक गिरते जा रहे थे। परन्तु खेमा कहाँ गया?—

एकदम एक चीख सुनाई पड़ी। महाराजने ऊपर देखा। उन्होंने कपाल-परसे पसीना और रक्त पोंछा। सामने देखा कि एभल नायक घोड़ीपरसे गिरकर जमीनपर पड़ा है। किसीने उसे बाण मारा था। क्या खेमाने मारा?

"शाबाश!" महाराज बोल उठे। सैनिकोंमें भगदड़ मच गई।

एभल नायकको क्या हुआ, यह देखनेके लिए कुछ लोग दौड़े। बेहोश परमारने पीछे लौटते हुए कुछेकको समाप्त कर दिया और तब कहींसे खेम

कूद पड़ा। उसने राजापर हमला करते हुए दो चार सैनिकोंको मौतके घाट उतार दिया, दो तीन भाग गए। राजाकी आँखोंमें अँधेरा छाने लगा। उन्होंने दीवारपर हाथ टेक दिये। वे तलवार चला रहे थे, परन्तु अब वह किसीको लगती न थी। परमार उनकी मददके लिए आ रहा था, आया; किन्तु धमसे गिर पड़ा। राजाका कंठ सूख गया, उन्हें चक्कर आ गया।

" अन्नदाता, इस पानीसे मुँह धो लीजिए।" खेमाकी आवाज़ सुनाई पड़ी।

उन्होंने अनजानमें पानी लेकर मुँहपर डाला। उनकी आँखोंसे साफ़ दीखने लगा। सब सैनिक धरतीपर पड़े थे। परमार उनके पैरोंके सामने पड़ा था। खेमा और वह दोनों खड़े थे।

" सब कहाँ गये ?" राजाने कुछ न समझ पड़नेके कारण पूछा।

" यमके द्वारपर। कुछ भाग भी गए। अन्नदाता, आप दोनोंने मिलकर सबका काम तमाम कर दिया।"

" और एभलको तुमने मारा ?"

" हाँ, महाराज। आप बाहर निकले और मैं लेटे लेटे तीर कमान लिये निकल आया। फिर मैंने पेटके बल रेंगते रेंगते पास जाकर तीर मार दिया।"

" जीते रहो।"

" अन्नदाता, अब समय नहीं रहा। वह काली घोड़ी पास ही चर रही है। परशुरामकी घोड़ी यही जान पड़ती है। ताजी दिखलाई पड़ती है। मैं बाकीका सब कुछ कर लूँगा, पर आप वंथली चले जाएँ। अब कोई आ निकलेगा तो लड़नेका बल नहीं है।"

" ऐसे क्यों कह रहा है ! जयदेवको किसीने जीता है ?"

" जब तक सोमनाथ भगवान जीते जागते बैठे हैं तब तक क्या होना है ?" कहकर खेमा गया और उस काली घोड़ीको ले आया। फिर सहारा देकर जयदेवको उसपर सवार करा दिया।

" यह थोड़ा पानी पी लीजिए और जरा ठहरिए। इस तलवारको साफ कर दूँ और यह तीर कमान भी लेते जाइए। जरा ठहर जाइए, आपके एक दो बड़े बड़े घावोंपर पट्टी भी बाँध दूँ।" कहकर खेमा राजाकी सेवामें लग गया।

" परन्तु तुम भी चलो न ?"

" देखूँ तो सही, परमारमें कुछ प्राण है कि नहीं ? "

" खेमा, आज हम लोगोंने हद कर दी है । " राजासे गर्व दरसाए बिना न रहा गया ।

"परन्तु अन्नदाता, काक भट्टजीकी तलाश करवाइए।" खेमाने संदेश दिया।

राजाने कहा, " जरूर । " और घोड़ीको एड़ मारी । परशुरामकी सुविख्यात घोड़ी हरिणकी तरह उछली ।

ताप दुःसह था, परन्तु राजाके मस्तिष्कमें विजयका नशा था । अकेले ही उन्होंने दुर्जय एभल नायक और सोरठी सैनिकोंको समाप्त कर दिया था और परशुरामकी घोड़ी पुनः लौटा ली थी । उनकी रगोंमें रक्त उछल कूद मचा रहा था । उनकी आँखोंके आगे रंगबिरंगे चित्र दिखलाई देते थे । घोड़ी पवनवेगसे जा रही थी और ऐसा लगता था जैसे चारों तरफ की चीजें दौड़ी चली जा रही हों ।

उनके नथुने फटे जा रहे थे, घावोंमेंसे रक्त निकल रहा था । परन्तु कानोंमें विजय घोषणा हो रही थी । एकदम एक घोषणाकी अनेक घोषणाएँ हो गईं । चारों तरफसे घुड़सवार निकल आए । वे सब कहाँसे आए, यह समझमें नहीं आया । आगे आनेवाला परशुराम जैसा लग रहा था ।

साथमें कोई अपरिचित पुरुष जैसा था । नहीं, वह अपरिचित न था, उसका मुख उनकी रानी जैसा था । वह चिल्लाया—" जयसिंहदेव महाराजकी जय । " राजाने कहा " जय सोमनाथ । "

सबने घेर लिया । उनका गला सूख रहा था ।

" कौन ? देवी, तुम कहाँसे ? परशुराम तुम्हारी...घोड़ी..." राजाने बोलनेका प्रयत्न किया, परन्तु कंठ अवरुद्ध हो गया । उन्होंने घोड़ेकी अयाल पकड़नेका यत्न किया । " परमार ! काक...खेमा... एभल—" परन्तु स्पष्ट शब्द कोई नहीं निकला । सबने उन्हें सँभाला...और अंधकार हो गया ।

२९—काकका क्या हुआ ?

दूसरे दिन रातको जयसिंह महाराजको लगा कि उनका अंग अंग दुख रहा है । उनके हाथ पाँव और सिर बँधे हुए थे ? क्या यह असत्य है कि उन्होंने

भल नायक और सोरठी वीरोंपर विजय प्राप्त की ? उन्हें परशुराम और लीलादेवी मिले थे, क्या यह भी स्वप्न ही था ? उन्होंने आँखें खोलनेका प्रयत्न किया, परन्तु ऐसा लगा कि वे सीं दी गई हैं। महान् प्रयाससे उन्होंने आँखें खोलीं। क्या वे कारागारमें थे ? पैरोंके आगे दो वृद्ध मनुष्य बैठे हुए थे और सिरके पास एक स्त्री। उन सबके मुख परिचित लगे।

"बेटा जयदेव!" स्त्रीकी आवाज आई।

जयदेवने आवाज पहचानी "माँ, मैं कहाँ हूँ ?"

"राजमहलमें।" मीनलदेवीने कहा। "वैद्यराज, दवा चटाओ।"

"तैयार है।" कहकर राजवैद्यने दवा चटाई। राजाको जरा अच्छा लगा। "माँ, परमार कैसा है ? कौन मेहताजी ?" राजाने पैरोंके आगे बैठे हुए दूसरे वृद्धको सम्बोधन करके कहा।

"हाँ, महाराज।" मुंजालने कहा। "परमार ठीक है, चिंता न करो।"

"और एभल नायक ?"

"कलका सूर्योदय शायद ही देख पाए।"

"और काकका क्या हुआ ?"

"तुम चिंता क्यों कर रहे हो बेटा ?" मीनलदेवीने पूछा।

"मैं नहीं करूँ तो कौन करेगा ? वह तो मेरा दाहिना हाथ है।" राजाने जरा अकुला कर कहा। वैद्यने उनके हाथपर हाथ फेरा। मीनलदेवीने राजाके सिरपर हाथ रखा। राजा जरा अस्वस्थ होते दीखे।

राजाकी मच्छरदानीके पीछे किसीने एक निःश्वास छोड़ा। राजाने उसे सुना। उनके मस्तिष्कके आगे लीलादेवीका मुख आ गया।

"मेहताजी, मैं कब अच्छा होऊँगा।"

"दो ही तीन दिनमें। नाममात्रको थोड़ी-सी चोट लगी है।"

"परशुराम कहाँ है ?"

"बेटा, उन्हें बुलवाऊँ ?"

"हाँ।"

मीनलदेवीने आज्ञा दी। एक अनुचर परशुरामको बुलाने गया और राजा आँख मींचकर पड़े रहे। थोड़ी देरमें दंडनायक आ पहुँचे। राजा उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, इसलिए तुरन्त आँखें खोल दीं।

" परशुराम, काककी खोजकी ? "

" महाराज, चिंता न कीजिए। उनके लिए चारों तरफ आदमी दौड़ाए हैं। "

" माँ, मैंने उसके साथ अन्याय किया, और वह मेरे लिए मौतके मुखमें चला गया। वह न होता, तो आज हम सब एभल नायकके बंदी होते। "

" मुझे खेमाने सब कहा है। " मीनलदेवीने कहा " और खेमा स्वयं काकको खोजने गया है। "

" कौन जाए और कौन रहे, इसकी मुझे परवाह नहीं। परन्तु काक मिलना ही चाहिए। "

" महाराज, " मुंजालने कहा " आप इस समय शान्त रहें। कल सवेरे चाहें तो आप स्वयं ही खोजने चले जाना। मुझे भी काककी चिन्ता है। "

" नहीं तो उस खेंगारका सारा गिरनार उखाड़ डालूँगा। " राजाने कहा।

" अन्नदाता, अब मौन होकर सो जाएँ तो अच्छा। " वैद्यराजने कहा।

राजाने करवट बदली।

दूसरे दिन सवेरे खेमा लौट आया। उसने जिस चौकीके सामने कल युद्ध हुआ था, वहाँसे पैरोंके चिह्नोंद्वारा खोज लगानेवालोंकी मददसे काकके घोड़ेने जो मार्ग पकड़ा था, उसका पता लगा लिया। पैरोंसे मालूम होता था कि राजाको छोड़कर योजन-भर तो वे आगे चले गये हैं, फिर सोरठियोंकी टोली भी उनका पीछा करती जान पड़ी, और सामनेसे थोड़ेसे आनेवाले आदमियोंके भी चरणचिह्न परखे गये। वहाँ मुठभेड़के चिह्न भी थे। कुछ मनुष्य मारे गये होंगे, ऐसा लगा। वहाँसे सभी एभल नायककी चौकीकी तरफ गये दीखे।

खेमाको आगे बढ़नेमें लाभ न दिखा। परन्तु दो बातें निश्चित हो गईं। एक तो यह कि काक पकड़ लिया गया, और दूसरी यह कि उसे एभलकी चौकीपर ले जाया गया। परन्तु काक जीता पकड़ा गया या मरा हुआ, एभलने उसे कैद किया या मार डाला, वह चौकीमें था या नहीं, इन प्रश्नोंका निर्णय न हो सका। मुंजालने परशुरामसे परामर्श करके निश्चित किया कि इस समय एभलकी चौकीपर हमला करनेमें सार नहीं है। क्योंकि चिढ़े हुए सोरठी जोशमें आ जाएँ, तो काकके प्राण ले डालें। एभल बेहोश पड़ा था, इसलिए उसके पाससे कोई खबर मिलना संभव न था।

स्थिति गंभीर हो गई । महाराजकी काकको खोजनेकी अधीरता इतनी बढ़ गई थी कि उससे उन्हें फिर ज्वर हो आया । जगदेव परमार जीवन और मृत्युके बीच झूल रहा था; एभल नायक मृत्युके द्वारपर खड़ा था। मुंजालने सारी हुकूमत हाथमें ले ली, राजगढ़के द्वार बंद रखकर राजाके स्वास्थ्यके शुभ समाचार चारों तरफ फैलाये गये । एभलका बैर लेनेके लिए कहीं सोरठी लोग काकका कुछ अनिष्ट न कर डालें, इस भयसे एभल भी अच्छी तरह है, स्वस्थ है; ऐसी अफवाहें जूनागढ़ पहुँचानेकी व्यवस्था की गई। चारों तरफकी चौकियाँ मजबूत की गईं। खेंगार इस मौकेसे फायदा उठाकर हमला कर बैठे तो वह विजयी न हो सके, इसकी भी व्यवस्था की गई । परशुरामके चौपालपर मुंजाल मेहता आकर बैठे और चारों दिशाओंकी हुकूमतका कब्जा महामात्यने ले लिया ।

मीनलदेवी और वैद्यराजने राजाकी तबीयत सुधारनेका प्रयत्न किया । लीलादेवी मर्यादाके कारण राजाके पास बैठ न सकीं । तीन दिन हो गए, काकका पता न था । यदि वह जीता जागता और मुक्त होगा तो जरूर लौटकर आएगा । यदि उसे एभल नायकने पकड़ा होता तो वह उसके साथ क्यों न होता ? सबके मस्तिष्कमें घबराहट थी कि काक एभलके साथ युद्ध करते करते काम न आ गया हो।

यह वहम ज्यों ज्यों जुदा जुदा आदमियोंके मस्तिष्कमें दृढ़ होता गया त्यों त्यों उनके आचरणोंमे फेर पड़ता गया। मुंजालका मुख गंभीर हो गया, और उनकी वाणीमेंसे मृदुता जाकर कठोरता आ गई। मीनलदेवीको लगा कि काककी मृत्यु बहुत ही अशुभ चिह्न है और इसका उनके पुत्र और पुत्रवधूपर बुरा असर होगा । परशुराम उग्र हो उठे और उनकी बड़ी बड़ी आँखें घूरने लगीं; और वे क्रोधके आवेशमें आए थे तो भी अपनी बेचैनी छिपा न सके। लीलादेवी तो बाघिनकी तरह अकेली ही इधरसे उधर बेचैनीसे घूमने लगी ।

चिन्ताके बादल राजगढ़पर छा गये थे। प्रत्येकके हृदयमें ध्वनि उठा करती कि कुछ नवीन, कुछ अशुभ होनेवाला है ।

तीसरा खंड

१—अक्षय तृतीयाका उत्सव

अक्षय तृतीयाकी संध्या थी। भृगुकच्छमें गंगनाथका बड़ा मेला लगा था। आज कितने ही दिन हुए गाँव गाँवसे लोग बाग इस उत्सवमें भाग लेनेके लिए आरहे थे। इतने अधिक मनुष्य किसी भी अक्षय तृतीयाको एकत्र हुए हों, ऐसा किसीको स्मरण न था।

रेवा-स्नान और यात्राके बहाने, लाटकी राजधानीकी सैर कर आनेके बहाने, मजा मौज करनेके बहाने, व्यापारकी वृद्धि और आढ़त निश्चित करनेके लिए, जुदा जुदा जगहकी वस्तुओंका प्रदर्शन करनेके लिए अथवा वर्षभरके लिए फसल भर लानेके इरादेसे, ऐसे अनेक कारणोंसे अक्षय तृतीयापर संपूर्ण लाटमेंसे लोग आते थे। ऐसे समय रेवा-स्नानका माहात्म्य भी बढ़ जाता, और ब्राह्मणोंके संघ ग्राम ग्रामसे श्रद्धा प्रसारित करने और श्रद्धाका लाभ उठाने आ पहुँचते। तीन चार दिन यात्री उत्सवमें लीन रहते और हर एक प्रकारके खेलों या मौजकी महफिलोंमें निरंकुश होकर मशगूल हो जाते।

रेवाजीके विशाल तटपर लोग बाँसकी खपचियोंकी कामचलाऊ झोपड़ियाँ बनाकर पड़े थे और सारे शहरमें लोग चींटी दलकी तरह उतराते फिरते थे। दिन रात कीर्तन और भजन चलता रहता और लोगोंके ठठ मंदिरों और घाटों-पर जम जाते।

इस वर्षके मेलेमें दो वस्तुएँ असाधारण थीं। मेलेमें आनेवाले थोड़े ही लोग स्त्री-बच्चोंको साथ लेकर आये थे और इतने बड़े मेलेमें परदेशी चीजोंकी दूकानें

गिर्नी चुनी ही थीं। लूट पाटके भयकी अफवाहें चारों तरफ फैली थीं, फिर भी कोई उनपर विश्वास न करता था। लोगोंका उत्साह इतना अधिक था और शौकीन नागरिक इस प्रसंगका आनन्द लूटनेमें इतने तल्लीन हुए जान पड़ते थे कि इस प्रसंगमें कुछ असाधारणता है, ऐसा किसीको न लगता था।

अक्षयतृतीयाकी संध्याको नदीतटपर लोगोंकी बहुत बड़ी भीड़ थी। कोई गाता, कोई 'गंगनाथकी जय' बोलता और कोई भजनमंडलियोंमें कीर्तन करता। लहरी लाला गोलाकार बैठकर गप्पें मारते थे, कितने ही नदीमें दीपक बहानेकी तैयारी कर रहे थे, कितने ही हवाइयाँ छोड़नेके लिए अंधकारकी प्रतीक्षा कर रहे थे और कितने ही नौकावालोंसे नदीमें सैर करनेके लिए भाड़ा ठहरा रहे थे।

तो भी कितने ही परदेसी कौन जाने क्यों चुपचाप घूमने फिरने लगे और ज्यों ज्यों अँधेरा होता गया त्यों त्यों न जाने कितने लोग गली कूचोंमें झपट-झपटकर जाने लगे।

पट्टनी सैनिक भी इस पर्वका पूरा लाभ उठानेके लिए गलेमें हार पहनकर, हाथमें छड़ी लेकर आनन्दसे फिरने लगे।

रात होने लगी और शहरमें दिवालीकी तरह रोशनी जगमगा उठी। इस मेलेका प्रमुख अंग गंगनाथ महादेव और नर्मदाकी मूर्तिकी आरती थी। महादेवकी आरतीमें पुरुषोंकी भीड़ होती और नर्मदाकी आरतीमें स्त्रियोंकी।

गंगनाथका प्राचीन मंदिर नीचा होने पर भी भव्य था। इसका गर्भद्वार छोटा था और उसमेंसे अंधरे भोंहिरेमें विराजमान शिवजीका बृहद् लिंग नामको ही दिखता था। इस समय लिंगपर रुपहरी जलाधरी टपकती और चार दीपक अंदरके अंधकारको अस्थिर और स्वच्छ प्रकाशसे भेदते थे। तीन ब्राह्मण नीचे मस्तक किये, रुद्रीका पाठ कर रहे थे।

बाहर मंडपमें नंदीके पास दो दीवटोंमें जलती अनेक बत्तियाँ नाम मात्रका उजेला करके वातावरणमें पूज्यभाव भरनेकी अद्भुत शक्ति दे रही थीं। इस वातावरणमें रहकर भक्तजन सजल नयनोंसे 'जगत्पावनी' गंगाके नाथके दर्शन करके पावन हो रहे थे।

संध्याका समय हुआ कि दर्शनार्थियोंका आना रोक दिया गया और

" मुझे एक मिला है ! "

" आपका कुछ भ्रम होगा। उसका भी एक छोटा-सा मंदिर है, जहाँ वह देवता माना जाता है।" काक हँसा और क्षणभरके लिए उसका चित्त भृगुकच्छके सांबा बृहस्पतिके बाड़ेमें जा पहुँचा।

" पुरुष स्त्रीको घर देता है, शोभा देता है, जवानी और प्राण देता है, पूजा और अर्चा देता है--केवल देव बननेके लिए। इस दुःखात्मक संसारमें उसे केवल इतनेमें ही मुक्ति दीख पड़ती है।"

" काक, तुम्हारी विद्वत्ता बहुत हो चुकी।" लाट-कन्याने कहा और शान्तिसे सूखे हुए ओठोंको पोंछा। " तुम्हें पूजूँ या धिक्कारूँ, यह मुझे नहीं सूझता।"

" मुझे तो आपकी सेवा ही करनी है।" काकने जवाब दिया।

" ऐसा बोलोगे, तो जीभ निकाल लूँगी। बोलो, अब महाराजको देव बनाकर कैसे स्थापित करूँ ? "

" जब वे यहाँ पधारें, तब यह माँग लेना कि कुछ सैनिक आपकी सेवामें रहने चाहिए।"

" फिर ? "

" और बड़े बड़े योद्धा यहाँ आने लगें, ऐसा कीजिए।"

" क्या रस्सीसे बाँधकर खींच लाऊँ ? "

" आप परिश्रम तो कीजिए, बिना रस्सीके ही सब खिंच आएँगे। परशुरामको बुलवाइए। आप वीरांगना हैं, आपकी वीरतासे वे प्रसन्न होंगे। और वे आये कि फिर सब आए समझिए।"

" मैं सब समझ रही हूँ। तुम बहुत ही धूर्त हो।"

" तो भी आप मुझपर इतना विश्वास करती हैं ? "

" महारानीजी, महाराज पधार रहे हैं।" मंगी हाँफती हुई आई। उसके पीछे घबराई हुई प्रेमकुँवर और समर्थके मुँह दिखलाई दिये। तुरन्त ही महाराज जयसिंहदेव पधारे।

रानी चौकी और झूलेसे उतर पड़ी। काक जमीनसे उठकर झुककर खड़ा हो गया।

२४—लीलादेवीका खेल

राजा अपनी उम्रसे छोटे लगते थे। उनका रूपवान् चेहरा आकर्षक दिखता था और उसपर सदा पड़ती रहनेवाली सत्ताकी छापने तो इस समय मोहक गौरवका स्वरूप धारण कर लिया था।

उनका मुख हँसूँ हँसूँ हो रहा था। उसपर रानी और काकको इस प्रकार बैठकर बातें करते देखकर तो हँसी एकदम उमड़ पड़ी। उन्होंने उसे रोका और भालपर सिकुड़नें डालीं।

"रानी, क्यों, क्या कर रही हो?" हँसती हुई आवाजको जरा सख्त करके राजाने पूछा। "कहो काक, तुम यहाँ कैसे आये?"

"महारानीजीसे मिलने।" काकने तीक्ष्ण दृष्टिसे राजाकी मुखमुद्रा जाँचते हुए कहा।

"रानी, आज एक अजीब बात मेरे कानोंमें आई है।" कहकर राजा झूलेपर बैठे और हाथ पकड़कर रानीको बिठा लिया। फिर चारों तरफ देखा और रानीके कमरेको सजा हुआ देखकर कहा—"तुम तो बहुत शौकीन जान पड़ती हो।"

"ऐसा?" शान्ति एवं अस्पष्ट तिरस्कारसे रानीने कहा। परन्तु कहते समय उसकी दृष्टि काकपर जा पड़ी। काककी आँखोंमें उपालंभ था। इतना कहने पर भी रानी कुछ नहीं करती ऐसा, स्पष्ट अर्थ उनमें दीख पड़ा। लीलादेवीके अन्तरमें काककी प्रेरणाका असर हुआ। "मैं तो इसे रोज सजाती हूँ परन्तु महाराजको देखनेका अवकाश ही कहाँ है?"

राजा हँसे। काकने आँखोंसे उपकार माना।

"आज तो मैं एक बातकी जाँच करने आया हूँ।" राजाने फिर गंभीरताका डौल किया।

"किस बातकी?"

"सुबह एक ब्राह्मण महलमें घुस आया और तुम्हारे कमरेमें आकर अब कहीं मिलता नहीं है।"

रानी जरा चौंकी। काक बिना बोले ही हँसा।

"जगदेवने कहा होगा।" उसने पूछा।

"कैसे जाना?" राजाने जरा भौंहें चढ़ाते हुए पूछा।

"कारण कि वह ब्राह्मण और कोई नहीं मैं था।" रानी यह धृष्टता देखकर जरा फीकी पड़ी। काकने आगे कहा, "मुझे आपसे पहले ही मिलना था, इस लिए ब्राह्मणका वेश धारण कर, पहरेदारको बाँधकर प्रवेश किया; परन्तु फिर सोचा कि इस वेशमें आपसे मिलना ठीक नहीं, इस लिए मंगीसे कपड़े माँगने आया कि महारानीजीको पता चल गया और इन्होंने मुझे बुलवाया। इतनेमें परमार दौड़ते आ पहुँचे। तब मंगीने मुझे निचले खंडमें छिपा दिया और दंडनायककी पुत्री वहाँ आई तो उसने मुझे दूसरे मार्गसे चलता किया, और तब मैं आपसे जाकर मिला।"

"ऐसा हुआ?" राजाने कहा। "मुझे क्या पता? मैं सोचने लगा कि रानीने और तुमने मिलकर कोई षड्यंत्र रचना तो शुरू नहीं कर दिया।"

"महारानीजी अब भी मेरे साथ षड्यंत्र रच रही थी।" काकने कहा। "महारानीजी कहें तो कह डालूँ।"

"क्या?"

"है आज्ञा?" काकने हँसकर पूछा।

रानी समझी नहीं परन्तु उसने हँसकर हाँ कह दिया।

"महारानीजी रा' खेंगारके विरुद्ध षड्यंत्र रच रही थीं और सारे लश्करकी खबरें पूछ रही थीं।"

रानीने काककी ओर एक क्रोधभरी दृष्टि डाली। वह उसे अपनी युक्ति आजमानेका साधन बना रहा था। परन्तु उससे सामने न हुआ गया।

"महाराज, मैं इस घेरेसे थक गई हूँ और मुझे जैसे बने वैसे इसका अंत लाना है।"

"तब क्या हम सब निकम्मे हो गये?"

"नहीं। कितने ही बरस मैं युद्धमें भाग लेती रही हूँ, कितने ही रणक्षेत्र मैंने पार किये हैं और कितनी ही बार तो इस काकको भी छकाया है। इसलिए अब मेरा जी इस आलस्यसे उकता गया है।"

"क्या करोगी?"

"आपकी पटरानीको शोभा दे वह।" काक क्या बुलवाना चाहता है, इसकी कल्पना करके उसने जरा अस्पष्ट तिरस्कारसे कहना शुरू किया। राजा आवेशके इस अकल्प्य प्रदर्शनको देखता रहा।

"क्या यह कोई लाटका छोटा-सा युद्ध है?"

"अन्नदाता, छोटेसे लाटमें क्या क्या हुआ, उसका कोई कहनेवाला नहीं, इसलिए वह भुला दिया गया है।" काकने कहा।

"काक जहाँ घूमे वहीं महाभारत।" राजाने कहा।

"नहीं महाराज, जहाँ वीरोंसे वीर जूझें वहाँ महाभारत।" रानीने कहा।

"रानी, आज मैं यहीं भोजन करूँगा।"

"जो आज्ञा। मंगी," रानीने कहा। "महाराज आज यहीं भोजन करेंगे।"

"अन्नदाता, मुझे आज्ञा मिल जाय, मुझे दंडनायकसे मिलना है।"

"इसके प्राण कभी शान्तिसे नहीं बैठते।"

काक हँसा। "जूनागढ़ पड़े और आप भृगुकच्छके सोमनाथके मंदिरका कलश चढ़ानेके लिए पधारें, तब शान्तिसे बैठेंगे।"

"निमंत्रण देनेकी रीति देखी? जाओ। सुबह मिलना।" राजाने कहा और काकने छुट्टी ली।

काक बाहर निकला और कुछ ही चला होगा कि द्वारमेंसे किसीने आवाज़ लगाई—"भटराज!"

काकने घूमकर देखा। "कौन, सुबह मिली थीं, वही बहन?"

"हाँ।" समर्थने आँखें निकालकर कहा। "सारे जगतमें तुम खराबसे खराब आदमी हो।"

काक हँसा। "क्यों, एकदम कैसे परख लिया?"

"तुमने मेरा सब कुछ बिगाड़ डाला।"

"मैंने क्या बिगाड़ा?"

"तुम क्यों नहीं पकड़में आए?"

"मैं क्यों नहीं पकड़में आया?" काकको लगा कि यह छोकरी पगली है।

"हाँ, तुम हाथ आ जाते तो बाहड़ मेहताको वरदान मिल जाता और वे मुझे ब्याह लेते।"

"और मैं नहीं हाथ आया तो--" जरा कुछ समझमें आ जानेपर काकने कहा।

"अब मेरे पिता मुझे मेहताके साथ नहीं ब्याहेंगे।"

"क्यों?"

"इसका दादा मारवाड़ी था इसलिए!" होठपर होठ चढ़ाते हुए समर्थने कहा।

"तो इसमें मैं क्या करूँ?"

"तुम अब पकड़ाई दे जाओ।"

"तुम भी खूब जबरदस्त हो।"

"तुम बहुत खराब हो।" समर्थने गुस्से होकर कहा। "तुम्हारा किसी दिन भला न होगा।"

काक हँसकर चल दिया।

२५–राजद्रोही

दूसरे दिन सबेरा होनेके पहले राजा और जगदेव गढ़के नीचे उतरे। गढ़में सर्वत्र शान्ति थी। जिस जगह दोनोंके लिए घोड़े तैयार खड़े थे उस तरफ वे ही गये। परन्तु वे घोड़ोंपर बैठें, इसके पहले घोड़ेवालेने जगदेवके कानमें कुछ कहा और रकाबमें पैर डाला ही था कि जगदेव चौंक उठा।

"क्या, यह बात ठीक है?"

"हाँ।"

"क्या है जगदेव?" राजाने पूछा।

"कुछ नहीं अन्नदाता, आप ठहरें तो मैं जरा जा आऊँ।"

"क्या है?" जरा कठोरतासे महाराजने पूछा।

"अन्नदाता, अभी आया।"

"परमार, मुझे सुनना है कि क्या है?"

" अन्नदाता, गढ़के दो पहरेदार घायल होकर मरने पड़े हैं। मैं उन्हें देख आना चाहता हूँ।"

" क्या कहते हो ! मैं भी चलता हूँ। घोड़ेवाले, यह घोड़ा पकड़।"

" जो आज्ञा।" घोड़ावालेने कहा और महाराज घोड़ेसे उतरकर जगदेवके साथ चल दिये।

थोड़ी ही दूर गढ़के एक दरवाजेके आगे जगदेवने चकमक रगड़कर बत्ती जलाई और देखा कि जमीनपर दो पहरेदार एक दूसरेसे दूर बेहोश पड़े हैं। महाराज और जगदेवने ध्यानसे देखा, तो एकका हाथ कंधे परसे उतर गया था, और दूसरेके कंधेपर सख्त घाव था।

रात्रिके अंधकारमें बत्तीके अनिश्चित प्रकाशमें दो शवतुल्य पुरुषोंको देखकर दोनोंको कँपकपी छूटी। जगदेव फीका पड़ गया था। जगदेवने ही पहले स्वस्थता प्राप्त की।

" यह किसने किया होगा ?"

" कौन जाने !" जरा अस्वस्थ स्वरमें परमारने कहा।

" क्या सोरठिये यहाँ आ पहुँचे ?"

" नहीं अन्नदाता, यह तो गढ़के ही किसी आदमीका काम है।" कहकर जगदेवने दोनों जने जहाँ पड़े थे, उसपरसे होनेवाले दिशा-सूचनकी ओर राजाका ध्यान खींचा।

" आह !" जिसका हाथ उतर गया था, उस पहरेदारके मुखसे आवाज निकली।

" यह कौन है ?" राजाने गंभीर होकर पूछा। उसको क्रोध हो आया। अब तक महलमें ऐसा अत्याचार करनेकी हिम्मत किसीकी न थी और इससे तो उसके गौरवकी हत्या हुई हो, ऐसा लगा। उसके नथुने क्रोधसे फूल गये।

जगदेवने उस सैनिकके सिरपर हाथ फेरा, तो थोड़ी ही देरमें उसने आँख खोल दी।

" कौन ? क्या हुआ ?"

" कौन, महाराज ? मैं—मर गया।"

" किसने मारा ?"

"काक भटने—" कहकर सैनिक फिर बेहोश हो गया।

जगदेवने राजाके सामने देखा। उसका मुँह लाल हो गया था। उसकी आँखोंमें खून उतर आया था और भालपर रौद्ररस दीख रहा था।

जगदेवको शान्ति मिली।

"अन्नदाता, क्या किया जाय?"

"चलो, घोड़ोंको ले लें।"

जगदेव एक अक्षर भी नहीं बोला। गुस्सेमें फूलते हुए राजा और जगदेव घोड़ोंके पास गये और उछलकर घोड़ोंपर बैठ गये। घोड़ोंवालेको सैनिकोंकी सार सँभाल रखनेकी आज्ञा देकर अपने घोड़ेपर सवार जगदेव भी राजाके पीछे चल दिया।

राजा बिल्कुल नहीं बोले; परन्तु जगदेव अन्धकारमें भी उनका सतर अंग और घोड़ेको दौड़ानेकी उतावली देख उनके मनके विचारोंकी कल्पना कर सका।

जयसिंहदेवके क्रोधका पार न था। अपनी सत्ता और गौरवका खंडन ईश्वरका किया हुआ भी जब वे सहन न कर सकते थे, तब यह तो एक आदमीका किया हुआ था।

एक विजित प्रांतका इधर उधर मारा मारा फिरनेवाला सैनिक इतना साहस करे! बरसों पहले उसने इनका अपमान किया था और देवड़ी रा' खेंगारको ले जाने दी थी। फिर लाटके गौरवकी रक्षाके लिए, मारी मारी फिरती राजकुमारीको इनके साथ परणा दी थी। आज सबेरे वह छुपे वेशमें, उनकी आज्ञा भंगकर रानीसे पहले मिला, जगदेवकी अर्थात् स्वयं उनकी सत्ताको अवहेला करके मनचाहा करने लगा, और अब एक डाकूकी तरह उसने गढ़के पहरेदारोंको घायल किया।

राजाके हृदयमें होली जलने लगी। उनकी—परम भट्टार्क जयसिंहदेव सोलंकी-की—ऐसी अवहेलना! भले ही खेंगार जीत जाय, भले ही पाटनका नाश हो जाय, परन्तु यह अपमान कैसे सहा जाय? उन्होंने काकको सजा देनेकी कितनी ही बातें सोच डालीं।

वे पट्टनी सैन्यकी चौकीके सामने आ पहुँचे, और धीरे धीरे सेनाकी स्थिति

नजरमें डालते चले। इतनेमें एक टेकरीपर वे घोड़ोंको जरा दम ले लेनेके लिए ठहरे। थोड़ी दूर तक नजर डालनेपर दिखा कि वहाँकी सब चौकियाँ आगे पीछे हटाई जा रही थीं।

"यह क्या है?"

"दंडनायकने कुछ नए हुक्म निकाले मालूम होते हैं।" जगदेवने कहा।

"देखें क्या है?" कहकर राजाने घोड़ा बढ़ाया। थोड़ी दूर जानेपर दो घोड़ोंकी टापोंकी आहट सुनाई दी और पौ फट रही थी, इसलिए तुरन्त ही दो घुड़सवार दिखलाई पड़े।

"कौन, परशुराम इस समय निकले हैं?"

"नहीं महाराज, दंडनायक तो इतने पतले और ऊँचे नहीं हैं।"

"चलो, उनको जा पकड़े।"

परन्तु ऐसा करनेकी विशेष आवश्यकता न थी। आगे जानेवाले घुड़सवारोंके अगुएने इन दोनोंको देख लिया था। वह तुरन्त घोड़ा लौटाकर राजा और जगदेवकी ओर आने लगा। सूर्योदय होनेकी तैयारी हुई और चारों घुड़सवार पास पास आ गये।

"जयसिंहदेव महाराजकी जय।" नव आगन्तुकने आवाज लगाई।

"का--क।" भिंचे हुए दाँतोंमेंसे राजाका शब्द निकला। "जगदेव, इसे बुलाओ।" कहकर राजाने घोड़ा रोका। जगदेव आगे बढ़ा, परन्तु उसके पहले ही काक आ गया।

"अन्नदाताकी घणी खम्मा!" काकने हँसकर कहा और वह परमारकी तरफ मुड़ा। "परमार, महाराज इस प्रकार घूमने निकलें, तब क्या यह घोड़ा लाना चाहिए? सारा जगत जानता है कि पाटनके धनीके सिवाय सोनेके सुमोंवाले घोड़ेपर दूसरा कोई नहीं बैठता। शत्रु देख लें तो—" कहकर काकने उगते सूर्यकी किरणोंसे चमचमाते राजाके घोड़ेके सुमोंकी ओर हाथ किया।

"यहाँ तुम्हारी सलाह लेनेके लिए नहीं खड़ा हूँ।" क्रोधसे काँपते स्वरमें राजाने कहा। "तुम कब निकले हो?"

"आधीरातके पीछेकी चौघड़ियामे।"

"क्या कर रहे हो?"

" चौकियाँ ठीक जमा रहा हूँ। "

" किसके कहनेसे ? "

" मैंने दंडनायकसे बात की थी। "

" हर बातमें हाथ डालनेका तुम्हें अधिकार नहीं। काक, तुमने आज मेरे सामने सिर उठानेका साहस किया है ! " होंठपर होंठ दबाकर राजाने कहा।

" यह सिर जब तक धड़पर है, तब तक यह कैसे हो सकता है ? किस बातपरसे कहते हैं ? " शान्तिसे काकने कहा।

" मेरे पहरेदारोंको तुमने मारा। "

" हाँ पृथ्वीनाथ, वे मुझे बंदी बना रहे थे। आप जानते हैं कि सैनिक भटराजका अपमान करे, तो उसका क्या सजा है ? "

" उन्होंने क्या किया ? "

" मुझे महलसे बाहर जानेको रोका। "

" तुमने अपना नाम नहीं बतलाया होगा। "

" मैंने बतलाया। परन्तु उन्होंने कहा कि भले ही तुम भटराज हो, परन्तु तुम्हें भी रोकनेका हुक्म है। "

राजाने जगदेवकी तरफ़ नजर डाली। वह चिंताग्रस्त चेहरेसे यह बातचीत सुन रहा था।

" परन्तु मेरे गढ़में मेरे सैनिकों पर हथियार क्यों चलाया ? मुझसे कहना था। "

" अन्नदाता, आधीरातको क्या आपसे पूछनेके लिए रनवासमें आता ? "

" परमारसे कहना था। "

" थोड़ेसे इने गिने मनुष्योंसे ही मैं आज्ञा माँगता हूँ और उनमें परमार नहीं आते। "

राजा उबल पड़े। " अर्थात् ? " तेज आवाजमें पूछा।

काकने साहसके साथ ऊपर देखा। " किसीने मुझे रोकनेकी हिम्मत अब तक नहीं की और कोई करनेवाला भी नहीं। "

" यह बात है ? परमार, काकके हाथ बाँध लो। " राजाने हुक्म दिया।

काक गर्वसे देखता रहा। परमारने घोड़ेको एक कदम भी आगे नहीं

बढ़ाया। पीछे खेमा काकके हुक्मकी प्रतीक्षामें खड़ा था। काक खिल खिलाकर हँसा।

"परमार, यह रहे हाथ, बाँध लो। सोलंकियोंका शासन मैंने हमेशा मान्य रक्खा है।" कहकर उसने हाथ लंबे कर दिये। परमारने जीनमेंसे एक डोरी निकाली और काकके हाथ बाँध दिये।

"इसके घोड़ेकी लगाम हाथमें लो।" राजाने जगदेवसे कहा। जगदेवने वैसा ही किया।

"अरे, तेरा नाम क्या है?"

"खेमा, अन्नदाता!"

"तू पीछे पीछे आ।"

"जो आज्ञा।

राजाने घोड़ेको एड़ लगाई और चारों घोड़े तेजीसे आगे चल दिये।

खेमाने काककी नजर साधकर आँखसे संकेत किया। यदि काक आज्ञा दे तो उसके बंधन काटनेके लिए वह तैयार था। परन्तु काकने सिर हिलाकर इन्कार कर दिया।

२६—काक दूसरे ही रूपमें

थोड़ीही देरमें वे ऊजड़ प्रदेशमें आ पहुँचे। यहाँ चौकियाँ भी दूर दूर थीं और ग्राम भी छोटे छोटे और दूर दूर थे। साथ ही दोनों छावनियोंसे भी यह जगह बहुत दूर थी।

राजाका शौर्य जाग गया था। प्रातःकालके मादक पवनने उसमें अपार उत्साह ला दिया था और काकपरका गुस्सा धीमे धीमे वीरतामें पलट रहा था।

एक चौकी आई, परन्तु वह बिलकुल निर्जन दीख पड़ती थी। सब चकित हुए। वे सावधानीसे चौकीके चारों तरफ़ घूमे। एक तरफ एक चौकीदार मरा पड़ा था।

"जगदेव, शत्रु आ गये, ऐसा मालूम होता है।"

" हाँ, अन्नदाता । "

" खड़े रहो, ज़रा तलाश करूँ । " कहकर राजा घोड़ेसे उतरे । जगदेवके हाथमें तो कैदी काकके घोड़ेकी लगाम थी । इसलिए बिना राजाकी आज्ञाके वह छोड़ी नहीं जा सकती थी ।

" खेमा, महाराजके आगे जा । " काकने तुरन्त राजाकी रक्षाके लिए आज्ञा की ।

खेमा उतरा, आगे चला; और उसने चौकीका दरवाजा खोला । खेमा पहले ही अन्दर गया और बोला " अन्नदाता, तीन आदमी मरे पड़े हैं । "

" देखूँ तो । " कहकर राजा अन्दर घुसा ।

तीन आदमी वहाँ पड़े थे । दो मर चुके थे और एक खंभेसे बँधा था ।

" जय सोमनाथ ! " उन्हें देखकर बँधे हुए सैनिकने कहा ।

" जय सोमनाथ ! " महाराजने कहा । " खेमा, इसके बंधन खोल दे । अरे तुझे क्या हुआ ? "

" अन्नदाता, " पूछनेवालेकी पदवी बड़ी लगनेसे सैनिकने कहा ।

" सोरठिये दंडनायक महाराजकी घोड़ी चुरा ले गये । "

" परशुरामकी घोड़ी ? " राजाने पूछा ।

परशुरामकी काली घोड़ी संपूर्ण सोरठमें विख्यात थी, और उस जानवरके प्रतापसे दंडनायक दुर्जय हैं, ऐसा सैनिकोंमें अंध विश्वास था ।

" हाँ, अन्नदाता । " सैनिकने उत्तर दिया ।

" कब ले गये ? "

" एक घड़ी हुई होगी । "

" कहाँ गये ? "

" इस ओर । "

" तू अपने दूसरे साथियोंको तो देख जीवित हैं या नहीं । राजाने चौकी-दारसे कहा ।

" हम घोड़ी पकड़कर ले आवें, चल खेमा । " कहकर राजा बाहर आये । उनके मुखपर तेज फैल रहा था ।

" जगदेव, सोरठिये परशुरामकी घोड़ी चुरा ले गए । "

" काली घोड़ी ? "

" हाँ, अभी अभी यहाँसे गये हैं। चलो, पकड़ लें। "

" परन्तु अन्नदाता, महलको लौटनेमें विलम्ब हो जायगा। "

" कुछ हर्ज नहीं। " राजाने कहा।

" महाराज, " काकने पूछा " कितने आदमी हैं ? "

" क्यों, डर लगता है ? " राजाने तिरस्कारसे कहा।

" पाटनके धनीको ऐसा निकम्मा साहस शोभा नहीं देता। मुझे आज्ञा दें, तो मैं जाऊँ। "

" भाग जाना चाहते हो। " राजाने ताना मारा।

" महाराज, " काकने कठोरतासे कहा। " काक भाग जायगा तो पृथ्वी रसातलको चली जायगी। "

राजाने जवाब नहीं दिया और घोड़ेको एड़ लगाई। चारों आदमी घोड़े दौड़ाते आगे बढ़े। अब चौकियोंके बीचके बिना धनीके (स्वतंत्र) प्रदेशमेंसे वे तेजीसे जा रहे थे। रास्ता ऊजड़ था परन्तु आगे गये हुए आदमियोंके पद-चिह्न देखकर वे मार्ग खोज लेते थे।

बीचमें जहाँ रास्ता ज़रा ऊँचाईसे जाता था वहाँ वे खड़े हो रहे। टेकरीके नीचे एक छोटा परन्तु उजड़ गाँव था और उसके सामनेसे एक रास्ता जूनागढ़की तरफ़ गया था। इस टेकरीके पास एक दूसरी छोटी टेकरी थी और उसपर पत्थरकी दीवालकी इकमंजिली चौकी थी।

" अन्नदाता, उस बड़के नीचे कुछ लोग बैठे हैं। वे ही घोड़ीके चोर होंगे। " जगदेवने कहा।

" पन्द्रहके लगभग होंगे। " राजाने कहा।

" इन्हें समाप्त करनेमें देर न लगेगी। " परमारने मूँछको ऐंठते हुए जवाब दिया।

राजाने काककी ओर देखा। वह चुपचाप सारा खेल देख रहा था। उसे छोड़ देनेका मन राजाको हुआ परन्तु अभी क्रोध शान्त न हुआ था और अभिमान-पर पड़ा घाव पुरा न था।

"अन्नदाता," कहकर खेमाने जिस रास्ते वे आए थे, उस ओर अंगुली दिखलाई। उधरसे चालीस घुड़सवार आ रहे थे।

"मर गये!" राजाने कहा और उसका मुख सूख गया। "अब?"

"अन्नदाता, चलिए, निकल चलें।" जगदेवको भी स्थितिकी गंभीरताका भान हुआ।

"छुटकारा नहीं।" राजाने कहा और जो रास्ता जूनागढ़की ओर जा रहा था उस ओर घोड़ेका मुँह फेरा। जगदेवने भी वही किया।

बिजलीकी तेजीसे काकने खेमाकी तरफ़ एक नजर डाली। चतुर खेमा समझा। कटार निकालकर फुर्तीसे उसने बंधन काट डाले। काकके हाथ मुक्त हुए और उसका घोड़ा एकदम दोनों पैरोंके बल खड़ा हो गया। गाफिल परमारके हाथसे लगाम छूट गई। एक छलाँगमें काकका घोड़ा सबसे आगे हो गया, फिरा और यमराजके समान काक नंगी तलवार आड़ी करके खड़ा हो गया।

"महाराज, इस रास्तेसे न जाइए।"

जयसिंहदेव फीके पड़ गये। जगदेवने तरवारकी मूठपर हाथ डाला कि काकके अंगरक्षक खेमाने, जगदेव तलवार खींचे उसके पहले ही उसका हाथ तोड़ देनेके लिए लठ उठा लिया।

"परमार, खबरदार तरवार निकाली तो। नहीं तो तुम्हारा हाथ तोड़ देना पड़ेगा।"

"चांडाल! द्रोही!—" गुस्सेमें और हिम्मतसे ऊपर देखकर जयदेवने कहा। उसके होंठ बंद हुए, आँखोंमेंसे चिनगारियाँ निकलीं और हाथ तलवार-पर गया।

"अन्नदाता!" काकने जरा नम्रतासे कहा। यह समय लम्बी बात करनेका नहीं है। आप एक दूसरी भूल करने जा रहे हैं। देखिए।" कहकर जिस तरफसे सोरठी योद्धा आ रहे थे उस तरफ अंगुली की।

वे सब हथियार ऊँचे करके हर्षनाद करते हुए आगे बढ़ रहे थे।

"देखिए, महाराज, आपने इन्हें पहचाना? अपने घोड़ेके सुम तो देखिए। ये अँधेरी रातमें भी परखे जा सकते हैं। पाटनका सत्यानाश होने बैठा है।"

कहकर काकने राजाके घोड़ेके सुनहरी सुमोंकी तरफ अंगुली की।

" परन्तु हरामखोर, मुझे जानेसे क्यों रोक रहा है ? "

" ये लोग आपको अभी पकड़ लेंगे। नहीं तो यह रास्ता तो एभल नायक-की चौकीको जा रहा है। "

" एभल नायक ! " जयदेवने घबराकर कहा।

" हाँ महाराज, अब समझे ! आप मौतके मुँहमें जा रहे थे। "

" तब क्या करें ? " जगदेवने पूछा।

" सुनिए, और जो मैं कहूँ वही करिए। " काकने कहा।

उसकी आँखोंमें स्थिर तेज था, भृकुटियोंपर भयंकर शांति थी, और मुखपर असह्य सत्ता थी। जगदेव मौन रहा, महाराज भी चुपचाप इस मनुष्यकी शक्ति देखते रहे।

" वह चौकी देखी ? उसमें आप तीनों घुस जाइए और चौकीदारोंको समाप्त कर दीजिए। और महाराज, मैं आपकी कलगी पहने लेता हूँ और आपके घोड़ेपर सवार हो जाता हूँ। मैं इन लोगोंको छकाता हुआ दूर ले जाऊँगा। सौ आदमी भी आवेंगे, तो भी आप चौकीमें रहकर युद्ध लड़ सकेंगे और मौका मिलते ही भाग सकेंगे। "

" परन्तु वे तुम्हें मार डालेंगे। "

" महाराज सिरपच्चीका समय नहीं है। " सत्तासे काकने कहा। " पाटनकी अपेक्षा काककी कीमत कम है। चलिए। " उसने महाराजका घोड़ा पकड़ कर चौकीकी तरफ जाना शुरू किया।

" परन्तु काक ! " राजाने स्पष्ट नहीं समझ सकनेके कारण चिढ़कर कहा, " मुझपर इस तरह जबर्दस्ती क्यों कर रहे हो ? " जयदेवने घोड़ा जरा आगे किया।

" हाँ कर रहा हूँ। " दाँत पीसकर काकने कहा। " उन्हें आते देखा ? यदि अब एक शब्द भी अधिक बोले, तो एक ही चोटसे आपको बेहोश करके उठा ले जाऊँगा। चलिए। " कहकर काकने राजाके घोड़ेको सख्त चाबुक मारा और तब वह काकके घोड़ेके साथ एकदम टेकरी उतर आया। राजाने काकका स्वरूप देखा। उसकी गंभीरता, तेजस्विता, भयंकर स्वस्थता और दूरदर्शिता, इन सबने मिलकर राजाके हृदयमें अद्भुत श्रद्धा प्रकट कर दी।

कुछ ही क्षणोंमें वे पत्थरकी चौकीके सामने पहुँच गए और काकने घोड़ेपरसे ही दरवाजा खटखटाया। एक चौकीदारने उसे खोला और काकने जोरसे ढकेलकर उसके अंदर प्रवेश किया। राजा, जगदेव और खेमा तीनों पीछे घुसे। परन्तु उसके पहले ही काकने फुर्तीसे चौकीदारके मुँहपर हाथ रखके उसे जमीनपर डाल दिया और उसीके साफेसे उसके हाथ पाँव बाँध दिये।

गड़बड़ सुनकर दो आदमी और अन्दरसे दौड़ आये। राजा, जगदेव और खेमा तीनों उनपर टूट पड़े, और थोड़ी ही देरमें तीनों चौकीदार बाँध दिये गये।

" महाराज, अब आपकी पगड़ी और कलगी मुझे दीजिए। "

जयदेवने एक शब्द भी बोले बिना दोनों चीजें उतार कर दे दीं।

" खेमा, " काकने कहा, " जितने बने उतने घोड़े अन्दर ले ले। "

" महाराज, मैं जाता हूँ। खेमा, महाराजको कुछ हुआ तो याद रखना उसके पहले ही तेरा सिर धड़से अलग हो जायगा। "

" जो आज्ञा। "

" और परमार, यह महलका प्रबंध नहीं है। महाराजको कुछ हुआ और मैं बच रहा तो वंथलीसे जन्मभूमि जाना भारी पड़ जायगा। याद रखना। "

" काक, " प्रशंसामें स्तब्ध हुए राजाने कहा, " परन्तु तुम रहो और जगदेवको जाने दो। "

" महाराज, यहाँ रहना और बच जाना सहज है। परन्तु यहाँसे जाने जैसा कठिन काम और किसीको सौंपनेकी टेव मुझे नहीं है। जगदेव, दरवाजा बंद करो। " कहकर काकने बाहर जाकर दरवाजा बंद कर दिया, फिर वह राजाके घोड़ेपर सवार हुआ और चल दिया।

२७—चौकीमें

काक चौकीके सामनेसे ज़रा आगे बढ़ा और पीछे आते हुए सैनिकोंकी तरफ दृष्टि डालकर उन्हें ध्यानसे देखने लगा।

वे पासके ऊँचे टीलेपर आ पहुँचे थे और चारों तरफ नजर डाल रहे थे। ऐसा न लगा कि उन्हें इन चारोंकी हलचलका कुछ पता है।

काकने घोड़ा रोका और राजाके जीनसे बँधे हुए छोटे परन्तु मज़बूत धनुषको हाथमें लेकर एक बाण मारा। बाणका निशाना अचूक था। उस टोलीके मुखियाको जो इधर उधर देख रहा था बाण लगा और वह घायल होकर घोड़ेपरसे गिर पड़ा।

सारी टोलीका ध्यान काककी ओर गया। उसके सिरपरकी सोनेकी कलगी, और लाल घोड़ेके सुम धूपमें चमक रहे थे। विकराल जानवरकी गर्जनाकी तरह उन सबने एक ही आवाज़ लगाई "जयसिंह सोलंकी!" और वे उसके पीछे पड़ गये। काकको यही चाहिए था। उसने जोरसे एड़ लगाई और जयसिंहदेवके मानीते घोड़ेने सरपट दौड़ना शुरू किया। चौकीके ऊपरके मंजिलकी जालीमेंसे राजाने काकको दौड़ते देखा और उस टोलीके बहुतसे घुड़सवारोंको उसके पीछे पड़े देखा। इस राजसेवककी भक्ति देखकर राजाका हृदय भर आया। कैसे कैसे वीर योद्धा उसकी कीर्ति बढ़ानेके लिए प्राण दे रहे हैं!

"अन्नदाता," जगदेवने पीछेसे आकर राजाका ध्यान खींचा। "कुछ आदमी इधर ही आ रहे हैं।"

"हाँ, काकने जिसे घायल किया है उसे लेकर।"

"और वह देखा?" एक आदमी सबसे अलग होकर दूसरी दिशामें जा रहा था, उसकी तरफ अंगुली उठाते हुए परमारने कहा।

"मुझे लगता है कि उन घोड़ी-चोरोंको बुलाने जा रहा है जो वृक्षके नीचे बैठे थे।" राजाने कहा।

"वे सब आने ही वाले हैं।"

"हाँ।" हँसकर राजाने गिनते हुए कहा—"पंद्रहके लगभग तो वे हैं, और एक-दो-तीन-चार-पाँच और पहलेके चार—नौ दसेक आ रहे हैं।"

जितने लोग मंडपमें थे उतने ही वहाँ रहे। देखते देखते मंदिरके बाहर दर्शन करनेवालों, और मेलेमें फिरनेवालोंकी भीड़का ठठ लग गया। आरतीका समय हो जानेसे गाँवके मुखिया आ पहुँचे। नगरसेठ तेजपाल और उनके यहाँ लाटके दूसरे गाँवोंसे आए हुए पाहुने, पट्टनी सेनाके नायक भट्टराज माधव और लाटकी सेनाके नायक रुद्रमल्ल, कोठारी भाभा सेठ और दूसरे दो चार अग्रगण्य नागरिक—ये सब आये।

गंगनाथ महादेवकी अक्षय तृतीयाकी आरतीका बहुत पहलेसे ही बहुत बड़ा प्रसंग माना जाता था। लाटके स्वतंत्र नरेश दरबारसहित इस प्रसंगपर उपस्थित रहते और आरती हो जानेपर राजाकी सवारी नगरमें निकला करती। लाटकी स्वतंत्रता चली गई उसके बाद भी पट्टनी सत्ताधीश इस आरतीके माहात्म्यको बनाये रहे थे। केवल आरतीके बाद सवारी निकलनेकी प्रथा बंद कर दी गई थी।

सभी अगुए आ गए किन्तु दुर्गपाल आँबड़ मेहता नहीं आये। इन तीन दिनोंमे मेलेका संपूर्ण उत्साह उनमें आ गया था और उन्होंने मौज करना शुरू कर दिया था। माधव भी शौकीन था, इसलिए उसने भी मनमानी मौज की। परन्तु दंडनायक और दुर्गपाल दोनोंकी अनुपस्थितिमें पाटनकी सत्ताके प्रतिनिधिके नाते उन्हें आरतीमें उपस्थित रहना चाहिए, इस हेतुसे वह इस समय आ पहुँचा। सबेरे आँबड़ मेहतासे आरतीमें आनेके विषयमें पूछा था, तब तो उसे आरतीमें हाजिर रहना कोई जरूरी न मालूम हुआ था; और देवभद्रसूरिके उपाश्रयमें उसे इस समय जाना ही चाहिए, उसने ऐसा कुछ कहा था। माधवको यह अच्छा नहीं लगा; परन्तु दुर्गपाल और मेहताके पुत्रको उपदेश देनेकी धृष्टता करना उसने उचित नहीं समझा। तेजपाल नगरसेठने अपने भावी जामाताकी खोज की; किन्तु पता न लगनेसे बात टाल दी।

कोई आरतीकी तैयारी नहीं कर रहा था, यह देखकर तेजपालने गर्भद्वारमें झुककर कहा—" क्यों पुजारीजी, कितनी देर है ? "

एक अधेड़ उम्रके ब्राह्मणने ऊँचे देखा। " आज तो 'बापा' आनेवाले हैं। "

तेजपालकी आँखें जरा फैल गईं। जबसे लाटका स्वातंत्र्य गया, तबसे वृद्ध

राजगुरुने किसी भी क्रियामें भाग लेना छोड़ दिया था। आज उसका आरती करनेके लिए मन हुआ देखकर, नगरसेठको कुछ शंका उत्पन्न हुई। उसने चारों तरफ़ देखा तो वहाँ थोड़े बहुत परदेशी आदमी और कुछ नगरके अग्रगण्य दिखे। इससे उसे शंका व्यर्थ लगी। इतनेमें पौत्रकी सहायतासे चलते, लगभग अंधे-से हो गये, राजगुरु आ पहुँचे। सबने स्वागत किया। जयजयकार स्वीकार करते हुए वे अंदर गए और उनके लड़केने पूछा—

"पिताजी, आरती शुरू करें?"

"हाँ, संध्याका समय हो गया है। परन्तु—परन्तु" कहकर उसने चारों तरफ देखा।

उसके पुत्रने आरतीकी दीवटें चेताना शुरू किया। बाहरके लोग बातचीत करते करते रुक गये। राजगुरुने आरती हाथमें लेनेके लिए हाथ बढ़ाया और द्वारके आगेसे एक गंभीर और प्रौढ़ आवाज़ आई। "गुरुजी, ज़रा ठहरिए। स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वतीको आ जाने दीजिए।"

सबको मंदिर डोलता-सा लगा। चकित होकर सबने दरवाजेकी तरफ देखा। रेवापाल दरवाजेके बीच खड़ा था। उसके गंभीर चेहरेपर अमानुषीय गांभीर्य था और आँखोंमें गहरा आवेश। ब्रह्मानंद सरस्वती--पूर्वाश्रमके ध्रुव सेनापति—अस्त हुए लाटकी अविस्मृत महत्ताकी सजीव मूर्ति—इस समय यहाँ! तेजपाल सेठके मस्तिष्कमें कुछ प्रकाश हुआ। उसने घबराकर अपने पुत्रकी भयंकर मुख-मुद्राकी ओर देखा। भटराज माधवके भालपर सिकुड़ने पड़ीं। उसे लगा कि वह यहाँ न आया होता, तो अच्छा था।

ब्रह्मानंद सरस्वती हाथमें दंड लिये उपस्थित हुए और ससम्मान सबने रास्ता छोड़ दिया। मंदिरके वातावरणमें पूज्य भावका प्राबल्य बढ़ गया। वे धीरे धीरे चलकर नन्दीको देखकर तेजपालके पास जा बैठे। तेजपाल काल भैरवके समान भयानक और निश्चल द्वारके सामने खड़ा रहा।

स्वामीजीके आनेसे बाहर खड़े हुए लोगोंमें कुछ खलबली मची और उस धमाचौकड़ीसे लाभ उठाकर एक युवक योद्धा मंडपके द्वार तक आ पहुँचा। सोमेश्वर-काकका शिष्य और नये गढ़का किलेदार आरतीके समय पहुँचनेमें विलम्ब न हो जाए, इस भयसे दौड़ते दौड़ते आ पहुँचा।

वह दरवाजेमें पैठा और वहाँ रेवापालको देखा। उसने अंदर नजर डाली तो ब्रह्मानंद सरस्वतीको नन्दीकी ओर जाते देखा, महादेवके लिंगके सामने वृद्ध राजगुरुको आरतीकी तैयारी करते देखा, और आखिरी थोड़े दिनोंमें जो कितनी ही अपरिचित वस्तुएँ देखी थीं, और कितनी ही गप्पें सुनी थीं वे सब उसे याद आ गईं। उसकी आँखें चमकीं। उसे कुछ समझ आई। वह अन्दर घुसकर माधवके पास जाने लगा। रेवापालने हाथ आड़ा करके किवाड़पर रख दिया।

"सोमेश्वर, आगे मत बढ़ो।" उसने सत्तापूर्ण स्वरमें कहा।

सोमेश्वरने क्रोधसे रेवापालकी ओर देखा। उसने रेवापालकी आँखोंमें तेज देखा। वह रेवापालका स्वभाव जानता था। सन्देहके चक्करमें पड़कर ऐसे मौकेपर बखेड़ा मचानेमें उसे कुछ लाभ न दिखाई दिया। वह रेवापालके पीछे ही दरवाजेमें खड़ा रहा।

सबको समझमें न आए ऐसी घबड़ाहट-सी लगने लगी। राजगुरुने काँपते हाथों आरती ली और वे लड़खड़ाते हुए उठे। खड़े होते ही पैर सरका और उनके हाथोंमेंसे आरती गिर पड़ी।

उसके बाद क्या हुआ, सो किसीकी समझमे न आया। भयंकर स्वप्नके समान वातावरण फैल गया। मंत्र पढ़ते हुए ब्राह्मणोंने फूँक मारकर दीपक बुझा दिये। रेवापालने अगले दरवाजे जोरसे बंद कर दिए। सारे मंडपमें प्रगाढ़ अंधकार छा गया। कुछ लोगोंका पदरव—कुछ गड़बड़—एक दो चीखें और धक्कामुक्कीका हल्ला और रेवापालकी आवाज, मानों भूतोंकी सेनामें प्रतिध्वनियाँ हो रही हों ऐसी अपार्थिव सुन पड़ीं। "राजगुरु, अब स्वतंत्र लाटकी ओरसे भगवान् गंगानाथकी आरती कीजिए।"

ब्राह्मणोंने दीपक जलाए, मंडपमें इकट्ठे हुए कितने ही नागरिकोंने आँखें मलीं। वहाँ खड़े हुए कितने ही लोगोंके हाथोंमें नंगी तलवारें थीं, और तेजपाल, माधव, रुद्रमल्ल और भामा सेठ—पाटनकी सत्ताके प्रतिनिधि—अदृश्य हो चुके थे।

नन्दीके सामने स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती खड़े हो गए। "लाटवासियो, घबड़ाना नहीं। लाट आज स्वतंत्र हो गया है। राजगुरु, आरती आरंभ करें। रेवापाल, मैं कल सुबह भगवाँ वस्त्र उतार डालूँगा।"

"गुरुदेवकी जय, गंगनाथ भगवानकी जय" रेवापालने उत्साहमें आकर गर्जना की।

"गंगनाथ भगवानकी जय।" वहाँ खड़े हुए सब लोगोंने घोषणाको दुहराया। राजगुरु खड़े हुए और आरती शुरू हुई। रेवापाल बाहर निकला, गंगनाथके मंदिरकी छतपर चढ़ा और उसने एक हवाई लेकर चलाई। हवाई उड़ी और बहुत ऊपर जाकर फटी। सारे नदी-तटपर वह दिखी। नीचे किनारेपर हजारों मनुष्य आनन्द कर रहे थे। उन्होंने हवाईको फूटते देखा।

सोमेश्वर यह सब देखनेके लिए नहीं ठहरा। उसने तो राजगुरूको जान बूझकर आरती बुझाते देखा था; ब्राह्मणोंको दीपक बुझाते देखा था और रेवापालको दरवाजा बंद करनेके लिए हाथ लंबा करते देखा था। उसने सब कुछ समझ लिया। उसे मंजरी और उसके बच्चे याद आये। उसने एकदम मंदिर छोड़ दिया और लोगोंको ढकेलता हुआ रास्ता काटता वह सांबा बृहस्पतिके बाड़ेकी तरफ दौड़ा।

नदीकिनारे आनन्द करते पट्टनी सैनिकोंने रेवापालकी छोड़ी हुई हवाईको देखकर हँसना शुरू किया। परन्तु उस हँसीके पूरी होनेके पहले ही दो हजार हथियारबन्द आदमी उनपर टूट पड़े और उन्हें मुश्कें बाँधकर ले चले। मेलेमें हाहाकार मच गया। लोगोंमें भगदड़ मच गई। नगरके दरवाजे बंद होने लगे।

* * * * *

हवाई छोड़कर रेवापाल छतपर खड़ा रहा और प्रौढ़ आवाजमें उसने वहाँ एकत्र हुए लोगोंसे कहा--

"लाटवासियो, आज हम पशु मिटकर नर हो गए हैं। पट्टनी सेना भृगुकच्छमें निर्मूल कर दी गई है। इस समय संपूर्ण लाटमे, खेटकपुर (खेड़ा), वटपद्र (बड़ौदा), जंबूसर, अंकलेश्वर, नांदोद, मांडवी और कामरेजमें उनकी सेनाका विनाश शुरू हो चुका होगा।

"बंधुओ, लाटकी बेड़ियाँ आज टूट चुकी हैं, कल सुबह सोनेका सूर्योदय होगा। गया हुआ लाट कल सुबह तुम्हारे हाथोंमें आ जायगा। गुरुदेव ध्रुवसेन सेनापति कल गेरुवे वस्त्र उतार कर कवच धारण करेंगे और लाटमें उनकी आन फिरेगी। जाओ, आनंद करो और बोलो भगवान गंगनाथकी जय।"

वहाँ खड़े हुए लोगोंमेंसे कितने ही समझे और कितने बिना समझे ही सुनते रहे। सबने ध्रुवसेन सेनापतिकी जय, गंगनाथ महादेवकी जयका प्रतिशब्द किया।

आनंदमग्न भृगुकच्छमें घबराहट फैल गई। लोगोंने बिना समझे दौड़ना आरंभ कर दिया। उनके उत्साहने त्रासका स्वरूप धारण कर लिया। दुकानदार दीपक बुझाकर दुकानें बंद करने लगे। यात्रियोंकी कुछ समझमें न आया। किसीने बाल-बच्चे खोये, किसीने माँ-बाप गँवाये, किसीको यह न सूझा कि कहाँ जाएँ। किसीने कहा पट्टनियोंका कत्ल हुआ है; किसीने सुना पट्टनियोंने ही कत्ले आम किया है। किसीने ध्रुवसेन सेनापतिकी जयकी घोषणा सुनी और किसीको विश्वास था कि सेनापति ध्रुवसेन तो कभीके स्वर्गवासी हो चुके हैं। हर एकने दौड़ना शुरू किया, हर एकने काँपना शुरू किया और हर एकने अपने घर या डेरेपर जाकर छुप रहना शुरू किया।

थोड़ी देरमें नगरके अंदर शस्त्रसज्जित पुरुष घूमने लगे और पट्टनी सत्ताधीशोंके घरोंकी तलाशियाँ लेने लगे, और किसीको पट्टनी पगड़ी पहने देखा कि उसको पकड़ना शुरू किया।

तीन चार घड़ीके बाद रेवापाल कुछ मनुष्योंके साथ गंगनाथके मंदिरके बाहर आया और घोड़ेपर चढ़कर नगरकी जाँच करने निकला।

२—नर्मदाकी आरती

भृगुकच्छके नए दुर्गपाल आँबड़ मेहताने अक्षयतृतीयाकी यात्राका पूरा पूरा आनन्द उठानेका निश्चय किया था। पहले दो दिन तक तो वे बेफिक्रीके साथ उठते, तैल फुलेलसे स्नान करते और पालकीमें बैठकर सांबा बृहस्पतिके बाड़ेमें जाकर दरबार भरते रहे। फिर जगह जगहसे आए हुए निमंत्रण स्वीकार करने तथा मेलेमें माधव नागरके साथ सैर करनेमें दिन पूरा करते रहे। संध्याको वे नौकामें बैठकर नदीकी सैर करने निकलते, और उसकी लहरोंमें अपने हाथों हँसते हँसते दीप-प्रवाह करते।

आँबड़ मेहताके हृदयमें अविमुक्तेश्वरके मंदिरमे आरतीके समय दर्शन करने जानेकी अजीब श्रद्धा जाग्रत हो गई थी। इससे वे नदीपरसे वहाँ जाते, और फिर घूमते घामते रातको नगरसेठ तेजपालके यहाँ सोनेके लिए पहुँचते। रास्ता चलते आदमीका जोर जोरसे मज़ाक करना, सुसज्जित दूकानोंमें जा आना, भजन कीर्तन हो रहे हों वहाँ सुननेके लिए खड़े हो जाना, रातको नर्मदाके द्वीप-पर जाकर हवाइयाँ छोड़ना, निरंकुश होकर फिरना और हँसना—ये सब बातें नए दुर्गपालके आचरणके कारण शिष्टाचार लेखी जाने लगीं। इनकी वेश-भूषाकी नवीनता, इनकी पगड़ीका रंग, इनके चलनेका ढँग, इनके औदार्यकी निःसीमता, इन सबमें कुछ ऐसी मोहक निर्लज्जता थी कि भृगुकच्छके चुने हुए लहरियोंने भी पाटन और खंभातके इस अग्रगण्य मौजी जीवके सामने सिर झुका दिया और इसकी चाल-ढालका अनुकरण करके लाटके लहरीपनमें पट्टनी-तत्त्वोंकी वृद्धि तत्प-रताके साथ करना शुरू कर दिया। गंभीर वयोवृद्ध और शुष्क नागरिक सदासे चली आ रही प्रतिष्ठाकी भावनाओंको इस प्रकार टूटते देखकर नए जमानेके दुर्भाग्यपर निःश्वासें छोड़ने लगे।

नेरा तोतला दुर्गपालका अनुचर हो गया था। उसका हँसता हुआ चेहरा और देखकर हँसी आवे ऐसा शरीर, दुर्गपालके रिसालेकी शोभामें अभि-वृद्धि कर रहा था।

आँबड़ मेहता मेलेके उत्सवका लाभ उठाकर दिनमें दो बार मंजरीकी सुध लेने जाते; परन्तु विद्वत्ता और सुसंस्कारोंकी निरन्तर सेवासे परिपक्व हुई मंजरीकी रसिकताको और पतिवियोगसे निवृत्त हुई उसकी रसवृत्तिको आम्रभटका यह मौजीला स्वभाव दुस्सह हो जाता परन्तु नए दुर्गपालको यह मनो दशा परखनेका अवकाश न था।

अक्षय तृतीयाके दिन आँबड़ मेहताने अपने स्वभावको पूरी छुट्टी दे दी। उसकी खूबियाँ जितनी थीं उससे अधिक आकर्षक होने लगीं और दुर्गपालका दृष्टान्त देखकर लाटके युवकोंको अद्भुत प्रेरणा मिली।

सबेरे आम्रभटने नेराको बुलाया। नेरा नए दुर्गपालका मानीता अनुचर और सलाहकार हो गया था।

"नेरा, आज क्या है?"

" स...सर...कार। श...श...श शामको " नेराने धीमी आवाजमें कहा, " म...म...माजी—रेवा मैयाकी आरतीमें जाएँगी। आप ग...ग...ग... गंगनाथकी आरतीमें ज...ज...ज जायँगे ? "

आम्रभटको ज़रा घबराहट हुई।

" मैं गंगनाथकी आरतीमें नहीं जाऊँगा। परन्तु रेवा माताकी आरतीमें तो केवल स्त्रियाँ ही जाएँगी। मैं कैसे जा सकूँगा ? "

नेराके मुखपर विशाल हास्य खिल उठा। " न...न...न...नेरापर विश्वास रखिए, अन्नदाता। प...प...प...पड़ोसमें एक घ...घ...घ...घर है। वहाँसे सब कुछ देख सकेंगे। "

" परन्तु घरके लोग जानेंगे तो ? "

" क...क..क...क्या बात है, म...म...म...मेरे सरकार ! " नेराने थोड़े दिनोंमें आँबड़ मेहताके साथ दोस्ती जोड़ ली थी। " स...स...स... सारे घरमें ह...ह...ह...हम दोनों ही। "

" शाबाश नेरा भट। " आँबड़ने संतोषसे कहा।

" स...स...स...सरकारको मेरा जु...जु...जुहार। " कहकर नेराने झुककर नमस्कार किया।

आँबड़ने बहुत ही युक्तिके साथ तेजपाल सेठको चकमा दिया, माधवको छकाया और संध्या आई तब नेराको साथ लेकर पैदल ही देवभद्र सूरिके उपाश्रयकी ओर चल दिया। मेलेका दिन था, इसलिए दुर्गपालको इस तरह जाते देख किसीको विस्मय नहीं हुआ। उपाश्रयके पास ही एक निर्जन मार्ग आया और दोनों व्यक्ति एक गलीमें घूमें। आम्रभटने अपनी भड़कीली पोशाक निकालकर बिल्कुल सादे वस्त्र पहन लिये। फिर दोनों तेजीसे नदीके किनारे नर्मदाके मंदिरके पास आ लगे।

मंदिरके सामने एक छोटा-सा घर था। नेराने जेबसे चाबी निकालकर दरवाजेका ताला खोला और दोनोंने अंदर दाखिल होकर दरवाजा बंद कर लिया। दरवाजेके पास एक खिड़की थी, वह नेराने खोली और उस जगह एक गद्दी बिछाकर तकिया लगाया। खिड़कीमेंसे रेवाजीके मंदिरका भीतरी भाग दीखता था।

यह मंदिर छोटा किन्तु सुन्दर था और मूर्ति बहुत ही पुरानी थी। गत वर्ष ही त्रिभुवनपाल दंडनायकने पाटनसे कारीगर बुलवाकर उसका पुनरुद्धार करवाया था। उसका छोटा और सुकुमार शिखर रुद्रदुहिता नर्मदाके लावण्यमय शरीरकी प्रतिमा ही हो, ऐसा लगता था। मंदिरका सभामंडप इतना छोटा था कि इस प्रसंगपर दर्शनके लिए आनेवालोंको बाहरके विशाल चबूतरेपर ही खड़े रहना पड़ता था।

लगभग पच्चीस स्त्रियाँ इस चूबूतरेपर आ चुकी थीं, और धीरे धीरे और भी आती जा रही थीं। आँबड़ने तकियेपर सिर रखते हुए आनेवाली स्त्रियोंको देखना शुरू किया। वहाँ गरीबोंकी स्त्रियाँ भी थीं, और धनाढ्योंकी आभूषणभारसे लची हुई स्त्रियाँ भी। धनवानोंकी कुलवधुओंकी रस्साकसी स्पष्ट दीख पड़ती थी और उनमें एक दूसरीको अप्रतिभ करनेके प्रयत्न चल रहे थे। गरीबीमेंसे धनवान बनी हुई स्त्रियोंका आडंबर और पीढ़ियोंकी धनी और सुसंस्कृत स्त्रियोंके आभूषण पहननेकी सरलता, गरीब होनेपर भी अमीरीका प्रदर्शन करनेवाली स्त्रियोंका ठाठ और धन होनेपर भी सादगीसे शोभित समझदार स्त्रियोंकी छटा, यह सब वहाँ दीख पड़ता था। कितनी ही स्त्रियाँ बूढ़ी होनेपर भी जवान गिनी जानेका प्रयत्न करतीं, कितनी ही जवान होनेपर भी ज्यादा उम्र और सयानपनका डौल करतीं, कितनी ही रूपगर्विताओंकी न छिपनेवाली ठसक बाहर आ जाती, और कितनी ही लज्जावती सुन्दरियाँ नीचे देखकर अपने रूपको ढाँकनेका निष्फल प्रयत्न करतीं। एक बहुत ही मोटी स्त्री बहुत ही मोटे कड़े पहिने बड़ी फुर्तीसे आनेका प्रयत्न कर रही थी। दो रूपवती बहिनें, एक दूसरेके हाथमें हाथ डाले, मानो दो लताएँ पवनमें डोलती हों, आ पहुँचीं। छोटी बालिकाओंका एक समूह भी किलोलें करता उछलता आ पहुँचा। आँबड़ मेहता मंजरीकी प्रतीक्षामें अनुभवी रसियाकी बारीकीसे इस झुण्डको देखने लगे।

नगरसेठके घरकी स्त्रियाँ आ पहुँची। रेवापालकी स्त्री बेनां पहले आई। आँबड़ मेहताको यह स्त्री देखकर अरुचि होती थी और इसके संसर्गसे कैसे दूर रहा जाए, इसकी युक्ति उसने कभीकी सोच निकाली थी। उसके पीछे उसकी भावी पत्नी, सोलह वर्षकी किशोरी उछलती कूदती और हँसती हुई आई। आँबड़ने विचार करना शुरू किया कि इसके साथ जीवन मजेमें कट जायगा।

फिर उसका चित्त व्यग्र हो उठा। तीन महिलाएँ आईं और उसका हृदय उछलने लगा।

तीनमेंसे एक तो देवदारुके समान ऊँची और सुडौल थी। वह डग रखती तो छटा छलकती और डोलती तो रस झरता। जैसे राजहंसी तैर आवे वैसे वह आई—धीमी स्वाभाविक और गौरवशील गतिसे। उसके मुखपर तेजपूर्ण हास्य दीप्त हो रहा था, उसकी आवाज बातें करती हुई स्त्रियोंकी कलकलसे निराली, बाँसुरीके कोमल स्वर जैसी, सुनाई पड़ी।

मंजरी सादे और सफेद वस्त्र पहने थी। उसके शरीरपर आभूषण नाम मात्रको ही थे। इस प्रसंगके लिए उसने किसी तरहकी टीमटाम की हो, ऐसा नहीं मालूम होता था। तो भी उसकी सादगीकी विशिष्टताका आकर्षण कुछ और ही था।

मंजरी आई, अपने निरभिमान रूपसे सबको प्रभावित करती और तब स्त्रियोंमें शान्ति फैल गई। आँबड़ मेहताके हृदयमें तूफान शुरू हो गया।

वह और उसकी सखियाँ, जान पहचानवाली स्त्रियोंके साथ हँसती बोलती आईं।

"कैसी हो वेना भाभी?" मंजरीने पूछा।

"ठीक हूँ।"

"और प्राणकुँवर तुम—" आंबड़की भावी पत्नीसे मंजरीने पूछा।

"मंजरी बहन, क्यों, आज इस तरह सादगीसे?" उसने मंजरीके सफेद वस्त्रों और आभूषणहीन अंगोंकी ओर नजर डालकर कहा।

मंजरी हँसी। उसमें ज़रा ग्लानि थी। "बहन, अभी तुम्हें यह समझनेमें देर लगेगी।"

"मंजरी बहन, आपके बिना सब अँधेरा ही था।" एक वृद्धा स्त्रीने कहा। आँबड़ने इस अभिप्रायका अनुमोदन किया।

"माताजी," पुजारी सामने आया। "अब आप आरती शुरू करें। आपके बिना कोई मुँह ही नहीं खोलता।"

"हाँ, माताजी," मोटे कड़ोंवाली स्त्रीकी भारी और कठोर आवाज आई।

"आपको छोड़कर आरती आती किसे है?" आँबड़का हृदय गर्वसे छलक उठा।

" परन्तु आप सब भी तो कुछ बोलें। मुझे जो कुछ आता है उसे आप कैसे दुहरा सकेंगी ? "

" नहीं बहन, आप ही शुरू करें। फिर हम और कुछ बोलेंगी। " दो तीन स्त्रियोंने आग्रह किया।

बेनांको यह लोकप्रियता अच्छी न लग रही थी, यह उसके मुखपरसे स्पष्ट झलकता था।

" ठहरो, " मंजरीने हँसकर कहा। " मुझे पुराणकी एक बहुत ही पुरानी स्तुति आती है, वह बोलूँ ? ठीक रहेगी ? "

" हाँ, हाँ " सब बोल उठीं और छोटी बालिकाओंने तालियाँ बजाईं— " हाँ, माँ, हाँ माँ। " मंजरीने उत्तरमें स्नेहके साथ हँस दिया।

वह क्षणभर मौन रही और कंठ स्वच्छ किया। आँबड़ मेहताके हृदयमें न जाने क्या क्या बज उठा।

वह उस मद्धिम प्रकाशमें स्वर्गसे उतरकर आई हुई अप्सराके सदृश उस सुन्दरीके अनुपम सौन्दर्यको देखता रहा। उसका मुख उसे इन सुंदरियोंके समूहमे असाधारण तेजसे मंडित मालूम हुआ। उसके बड़े बड़े नेत्रोंमें दबे हुए अन्तरके भावोंकी जरा खिन्नताभरी छाया थी। अपने अधर-पल्लवोंकी अकल्प्य रससमृद्धि ढोलनेके लिए वह तत्पर हो गई हो, इस प्रकार वह जरा झुकी थी और उसकी लम्बी ग्रीवाकी मोहक मरोड़ सौन्दर्यका अदृष्ट स्वप्न उसके मनमें खड़ा कर रही थी।

किसी कलामर्मज्ञ शिल्पीद्वारा गढ़ी गई अपूर्व मूर्तिको देखकर जैसे विलासवृत्ति नष्ट हो जाती और निर्मल रसवृत्ति अथवा सौन्दर्य-भक्ति जाग उठती है, उसी तरह आँबड़ मेहताकी सौन्दर्य-भक्ति उमड़ आई। आँबड़ शौकीन था, परन्तु उसकी वृत्तियाँ जड़ नहीं हो गई थीं। उसके मौजी स्वभावके मूलमें सौन्दर्य परखनेकी, सौन्दर्यकी पूजा करनेकी शक्ति समाई हुई थी। विलासी जीवनमें यह शक्ति जरा कम हो गई थी परन्तु इस समय जब मंजरी दूर और दुष्प्राप्य हो रही थी; जब उसके दर्शन और प्रशंसापर ही जीवन व्यतीत करना जरूरी हो गया था, तब उसकी यह शक्ति पुनः सतेज हो गई। इस समय वह भक्तके सदृश आत्म-समर्पणसे इस सुंदरीको देखता रहा। अपने बड़प्पनको वह भूल गया, उसकी लालसा नष्ट हो गई,

उसके हृदयके अशुद्ध भाव दब गए। उसे इतना ही भान रहा कि जिसे वह सौन्दर्य एवं छटा गिनता था, लावण्य एवं गौरव मानता था, उन सब लक्षणोंकी विशुद्ध और अपूर्व प्रतिमा इस समय वहाँ खड़ी है और उसका हृदय अर्घ्य देने देते अल्पता अनुभव करके प्रणिपात कर रहा है।

३—मंजरीका स्थान

पुजारीने आरती चेताई, घंटी बजाना शुरू किया और वसंतका आरंभ होते ही जैसे कोयल कूक उठती है, उसी तरह मंजरीका स्वर कूक उठा। उसके स्वरने आँबड़के हृदयमे न जाने क्या क्या प्रतिशब्द जगाए। उत्साह, आकांक्षा, विजय, सुख, प्रेम, सब भाव जाग उठे। उसने छातीको हाथसे दबाया, और जैसे वह मूर्च्छित हो गया हो, ऐसी दशा उसकी हो गई।

आँबड़के हृदयमे कौन कौनसे भाव जाग रहे हैं, यह जाने बिना ही मंजरीने आरती गानी शुरू की।—

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता।
तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥
सर्वदेवाधिदेवेन त्वीश्वरेण महात्मना।
कथिता ऋषिसंघेभ्यो ह्यस्माकं च विशेषतः।
मुनिभिः संस्तुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी।
रुद्रदेहाद्विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया॥
सर्वपापहरा नित्यं सर्वदेवनमस्कृता।
संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च॥
नमः पुण्यजले ह्याद्ये नमः सागरगामिनि।
नमस्ते पापशमनि नमो देवि वरानने॥
नमोऽस्तु ते ऋषिगणसिद्धसेविते नमोऽस्तु ते शंकरदेहनिःसृते।
नमोऽस्तु ते धर्मभृतां वरप्रदे नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने॥

स्वरका जादू टूटा। वहाँ छाई हुई शांति भंग हुई। दो मनुष्य दौड़ते हुए आए और चिल्लाने लगे।—"जेली—जेली—" सभीको पहले अजीब-सा लगा।

फिर थोड़ेसे लोग उनकी तरफ घूमे। मंजरी गाती गाती रुक गई। पुजारीकी आरती भी अटक रही।

"अरे सब अपने अपने घर जाओ। देख क्या रहे हो? गंगनाथमें दंगा हुआ है। ध्रुवसेन सेनापतिने भगवाँ उतार दिया...और लोग लोह-लुहान हो गए हैं...चले जाओ। जेलीकी माँ—" कहकर जेली और उसकी माँको लेकर वह तेजीसे चला गया।

तीन चार स्त्रियोंने दूसरे पुरुषको घेर लिया और जल्दीसे उसके साथ चली गईं।

सभी घबरा उठीं और एक दूसरेके सामने देखने लगीं। नदीतीरसे दंगेकी स्पष्ट आवाज आ रही थी। कुछ चीखें भी दूरसे सुन पड़ती थीं। कुछ स्त्रियाँ जिनके घर निकट ही थे, चली गईं। मंजरीने गर्वसे चारों ओर देखा कि घबराई हुई हरिणीयोंकी तरह सब स्त्रियाँ चारों ओर भय-व्याकुल आँखोंसे देख रही हैं।

"बहनो, घबड़ाना नहीं। दंगेकी बात झूठ मालूम पड़ती है। हमें कौन छेड़ेगा?"

"ओ बहन—मंजरी बहन," पुकारता हुआ मणिभद्र हाँफता हाँफता आ पहुँचा। उसके कंधेपर मंजरीकी लड़की महाश्वेता थी और गोदीमें उसका लड़का वौसरी। उसकी आँखें भयसे फट गई थीं।

मंजरीका मुख जरा उतर गया। "मणिभद्र, क्या है?"

"बहन, तुम यहीं हो न? रेवापालने सारे पट्टनियोंको मार दिया, नगरमें डाका पड़ा है, हमारा घर लूटनेके लिए आये थे। मैं छप्परसे होकर इन दोनोंको ले आया हूँ। बहन, चलो, चलो, भाग चलें।"

मंजरीके होठ बंद हो गए। उसकी आँखोंमेंसे आग निकली। उसने बेनांकी तरफ गुस्सेसे देखा। "बेनां बहन, यह क्या है?"

बेना कुछ कुछ जानती थी। वह निश्चिंततासे खड़ी खड़ी देख रही थी।

"क्या है क्या?" उसने अपमानजनक स्वरमें कहा। "सौ दिन सासके तो एक दिन बहूका। आज पाटन पूरा हुआ और लाटका दिन उगा। बहनो, चलो मेरे साथ, किसीको कुछ होनेका नहीं। आजसे रामराज्य शुरू हुआ।"

मंजरी घबराई, उलझनमें पड़ी और पलभर खड़ी रही। सब घबड़ाकर बेनांकी ओर गईं और वह सबके आगे आ खड़ी हुई। तुरन्त मंजरीने मन सावधान किया और मणिभद्रके पाससे चौसरीको ले लिया।

आँबड़ने सब कुछ सुना, उसके प्राण उड़ गए। परन्तु इस समय उसे पाटनकी अथवा अपनी चिंताकी अपेक्षा मंजरीका ध्यान अधिक था। वह एकदम उठा और नेराको साथ लेकर किवाड़ खोलकर घरके बाहर आया।

बेनां थोड़ी देर खड़ी रही, हँसी, और घबराई हुई मंजरीको गौरवहीन दशामें देखती रही। तुरन्त उसे अपने पतिका काकको दिया हुआ बचन याद आ गया।

वह उसके पास गई और जरा अभिमानसे बोली—

"मंजरी बहन, तुम्हारे जेठजीने कहा है कि तुम्हें अपने घर ले चलूँ। अब यहाँ पाटनका कोई नहीं जो तुम्हारी सहायताको दौड़ेगा और इस समय तो तुम्हारे घरका भी ठिकाना नहीं कि वहाँ जाकर रहा जा सके। चलो मेरे साथ। देवरजी इस समय यहाँ हैं नहीं और जल्दी आनेवाले भी नहीं।"

मंजरीको एक एक शब्द चुभ रहा था। उसका गर्विष्ठ स्वभाव यह डंक सहन नहीं कर सका। उसका क्षोभ जाता रहा; उसने ऊँचा सिर करके एक तिरस्कारभरी नज़रसे बेनांको उसके आडंबरका और तुच्छताका भान करा दिया।

"किसकी मजाल है जो दुर्गपालकी स्त्रीको अंगुलीसे भी छू सके?" उसने गुस्सेसे पूछा। उसका मुख क्रोधसे ज्वलंत हो रहा था और आँखोंमें विद्युत् चमक रही थी।

बेनां तिरस्कारसे हँसी। आम्रभटसे न रहा गया। मंजरीकी निराधारता और गर्व देखकर उसका हृदय वीरतासे उत्तेजित हो उठा। वह आगे बढ़ा। "बेनां बहन, कौन कहता है कि पाटन निराधार हो गया?" उसने पूछा।

"मैं इस समय जबान नहीं लड़ाना चाहती।" बेनांने कहा। "पुरुषोंकी बातें पुरुष जानें, मुझे तो तुम्हारे भाईने संदेशा दिया है—"

परन्तु उसके शब्द अधूरे रह गये। सोमेश्वर हाथमें नंगी तलवार लिए आ पहुँचा। वह हाँफ रहा था, उसके बाल बिखरे हुए थे और उसके मुँहसे रक्त बह रहा था। उसे देखकर स्त्रियाँ चीत्कार कर उठीं।

" बहन हैं न ? दोनों बच्चे हैं ? "

" क्यों भैया ! " मंजरीने पूछा ।

" अच्छा हुआ, आप मिल गईं । हमारे बाड़ेमें लूट हो रही है । पट्टनी सेना कैद कर ली गई है । ओह आँबड़ मेहता ! आप यहाँ कहाँसे ? भागो । रेवापालने लाटका झंडा उड़ाया है । कोई आपको देख लेगा, तो मार डालेगा ! "

आँबड़की आँखोंमें गुस्सा आया ।

" क्या कहते हो ? तब पाटनके आदमी ! "

" पाटनके आदमी—" सोमेश्वरने कोठरतासे हँसकर कहा । " आप, मैं और यह नेरा । परन्तु बहनका क्या होगा ? "

" मैं यही कहती हूँ ।" बेनांने कहा " आपके भाईने कहा है कि मंजरी बहू और बच्चोंको साथ ले आना—"

मंजरीने क्रोधसे ओठ काट लिये ।

" बेनां बहन, रेवाभाईसे कहना कि पाटनके दुर्गपालकी स्त्री और बच्चे जहाँ पाटनके आदमी हैं वहीं रहेंगे । " कहकर उसने सोमेश्वरकी ओर एक डग रखा । सब इस पागलपनको देखकर चकित हुए । सोमेश्वरसे न रहा गया ।

" बहन, बेनां भाभी ठीक कह रही हैं । इस समय रेवाभाईके घरके सिवाय आपसे और कहीं न रहा जायगा । सबेरा होनेसे पहले हम लोग तो परलोकवासी हो जायँगे । "

" सोमेश्वर, " मंजरीने गौरवसे कहा " यह सब तुम्हारे सोचनेका नहीं है । जहाँ मेरे दुर्गपालका स्थान वहीं मेरा । बेनाँ बहन, तुम जाओ । " कहकर मानो स्वयं विजयिनी सम्राज्ञी हो, इस तरह तिरस्कारभरी नजरसे उसने बेनांकी ओर देखा । बेनां उसे सह न सकी । गुस्सेमें वह वहाँसे चली गई और सब स्त्रियाँ उसके पीछे पीछे गईं । आँबड़का हृदय इस जोगमाया (शक्ति) का साहस देखकर स्तब्ध हो गया ।

" बहन, यह क्या ? " सोमेश्वरने निराशासे पैर पीटे ।

" सोमेश्वर, यह कायरता तुम्हें किस गुरुने सिखलाई ?" मंजरीने तिरस्कारसे पूछा । " तुम्हारे गुरु अर्थात् पाटनकी सत्ता । वह सत्ता चली जाय, तो तुम भले ही जियो—मैं कैसे जी सकती हूँ ? "

आँबड़ मेहता कट्टर पट्टनी थे। पाटनकी सत्ता ही जीवन है, यह उनका सिद्धांत था। मंजरीके गर्वयुक्त शब्दोंने उनके हृदयमें प्रतापी प्रतिशब्द किया।

" और बहन, पाटनकी सत्ता जानेसे पहले हम मरनेके लिए तैयार हैं। "

" प...प...प...परन्तु यहाँसे तो च–च–च–चलिए। " नेराने कंपित ओठोंसे कहा।

" चुप रह, डरपोंक! " आँबड़ने कहा।

" सोमेश्वर नये गढ़की चाबी तुम्हारे पास है ? "

" हाँ, ठीक याद आई। चलिए, वहीं चलें। मणिभद्र, महाश्वेताको कंधेपर बैठा लो और बहन, मुझे बालक दे दो। गढ़में बैठे बैठे हम सारे लाटको धक्का देंगे। "

सोमेश्वरने वौसरीको लिया, मणिभद्रने महाश्वेताको, और वे सब तेजीसे नये गढ़की ओर चल दिये।

४–गढ़में

'सोमेश्वरको सब रास्तोंकी पूरी जानकारी थी, इसलिए बड़े बड़े रास्ते छोड़कर गली-कूचोंमें होकर वह खाईके आगे जा पहुँचा। खाई यहाँसे लाँघनी सहज है, यह भी सोमेश्वर जानता था। इस समय, अक्षयतृतीयाके ज्वारसे खाई भरी हुई थी; तो भी एक बेकार पड़ी हुई नौकामें बैठकर वे खाई पार कर गये।

चन्द्रका तेज तो नाम मात्रका ही था, इसलिए अँधेरेमें सबसे आगे सोमेश्वर, फिर महाश्वेताको कंधेपर बैठाये मणिभद्र, फिर मंजरी, फिर आम्रभट और फिर नेरा, इस प्रकार वे खाईसे दरवाजेतक खड़े ढालपर चढ़े। आम्रभट आगे आगे चलती मंजरीकी तरफ देखता जाता था। कहीं उसके पैरोंमें कंकरी न चुभ जाए, कहीं फिसल न पड़े, इस भयसे उसका हृदय अधीर हो रहा था। परंतु मंजरी जैसी सुकुमार थी वैसी ही मनकी भी दृढ़ थी; और उसके सुकोमल पैर भी चपलता और सावधानीसे पड़ रहे थे। आखिर वे गढ़के द्वारपर जा पहुँचे। सोमेश्वर उन्हें एक छोटी खिड़कीके पास ले गया और उसने खिड़की खोल दी

" कौन है ? " देवा नायककी आवाज आई।

" मैं हूँ सोमेश्वर ।"

" इस समय क्यों ?" शंकाशील देवाने पूछा ।

" मंजरी बहन, बच्चे, और नए दुर्गपाल पधारे हैं । "

देवाने उतावलीमें सिरसे साफा बाँधा और चकमक रगड़कर मशाल जलाई । " बहन, आप इस समय यहाँ ?"

" हाँ ।" हँसकर मंजरीने उत्तर दिया । " तुम्हारे भाई गए, इसलिए तुम्हारे संरक्षणमें आई हूँ ।"

" कौन नए दुर्गपाल–" देवाने कठोरतासे पूछा " और नेरा तोतला ।"

" देवाजी, नगरमें बलवा हो गया है। रेवापालने पट्टनी सेना कैद कर ली है और काकभट तथा दूसरे पट्टनी अधिकारियोंके घर लूट लिये गए हैं । मंजरी बहनकी रक्षाके लिए हम गढ़में आए हैं ।" कहकर सोमेश्वरने अंदरसे खिड़की बंद कर ली ।

" जब तक पाटनसे सहायता न मिले, तब तक यहीं रहेंगे ।" देवाकी आँखोंमे अंधेरा छा गया हो, ऐसा लगा । वह सिरपर हाथ रखकर पासके चबूतरेपर बैठ गया । " ओ मेरे भगवान !"

मंजरीने पास जाकर सस्नेह पूछा, " देवाजी, क्या है ? ऐसा क्यों कहा ?"

" बहन, बुढ़ापेमें देवाकी बुद्धि मारी गई ।"

" क्यों ?"

" मैंने भाईके हुक्मको न माना ।" देवाकी आवाज काँप रही थी । " मैंने आप सबकी जान ले डाली ।"

" क्या है, क्या ?" मंजरीने पूछा ।

" रेवापालके कहनेसे मैंने सारा कोठार खाली कर दिया ।"

" कोठार खाली कर डाला ?" सब चौंक कर पीछे हट गये ।

देवाने सिर पीट लिया । " बहन, मुझे अब जीना न चाहिए । मुझसे रेवा भाईने कहा कि काकभटको तो पाटनमें कैद कर लिया है और यह नेरा भट बनकर गढ़में रहने आएगा । जब भटराज लौटेंगे, तब कोठार फिर भर दूँगा, ऐसा वचन उसने दिया । मैं ठगा गया । बहन, अब मैं आपको और बालकोंको खिलाऊँगा क्या ?"

" साल-भरका भंडार फेंक दिया ? " आँबड़ मेहताने क्रोधसे आगे बढ़कर कहा । " पापी,—किसके कहनेसे ? " कहकर उसने तलवार खींच ली ।

" मारो, मुझे मार डालो ! " देवाने कहा " मुझे तो अपने आप ही मर जाना चाहिए । "

आँबड़ तलवार चलाने जा रहा था कि उसकी नजर मंजरीपर पड़ी । उसकी आँखोंमें तिरस्कार था ।

" आँबड़ मेहता, " मंजरीने ज़रा क्रोधसे कहा । " अपनी तलवार म्यानमें रखो । इसे निकालनेके और भी बहुत-से अवसर मिलेंगे । देवाजी, गढ़में थोड़ा बहुत भी अन्न नहीं है ? "

" सबके लिए तो आठ दिन भी नहीं चल सकेगा । "

" बहन, ठहरो । हम गढ़में आ पहुँचे हैं, नगरमें किसीको भी इसकी खबर नहीं है । मैं जाकर थोड़ा बहुत अन्न लानेकी व्यवस्था करता हूँ । " सोमेश्वरने कहा ।

" परन्तु तुम बाहर पकड़ लिये गये तो ? " मंजरीने पूछा ।

" भोलानाथकी मरजी । आँबड़ मेहता —" उसके सामने देखकर सोमेश्वर जरा हिचका । " आँबड़ मेहता, आप यहाँ बहनको देखना और मणिभद्र, तुम भी यहीं रहो । नेरा, तू मेरे साथ चल । "

" मैं चलूँ ? " आँबड़ने पूछा ।

" नहीं, हम दोनोंमेंसे एकको तो यहाँ रहना ही चाहिए । " सोमेश्वर बोला ।

" वक्तकी बात है, अगर गढ़को घेर लें, तो सामना कौन करेगा ? "

" ठीक । नेरा, सोमेश्वर भटके साथ जा । "

" ब—ब—बापू, " पीछे खड़े हुए नेराको गढ़से बाहर जाना नहीं रुचा ।

" जा । " आँबड़ने आँखें दिखलाईं । नेरा नीची गर्दन किये सोमेश्वरके साथ चल दिया ।

" देवा, अब कहीं बैठनेका ठिकाना भी है या नहीं ? बच्चे बेचारे थक गए हैं । "

" हाँ, बहिन । " कहकर देवा उन सबको गढ़में थोड़ी दूर एक छोटेसे मकानमें ले गया और उसने आवश्यक चीजें निकालकर दीं । कोई घेरा डाले,

तो पट्टनी सेनाके लिए गढ़में ऐसा प्रबंध था कि रहने करनेमें किसी प्रकारकी असुविधा न हो पातीं।

मणिभद्र पानी खींच लाया, मंजरी घबराए हुए बच्चोंको आश्वासन देकर सुलाने लगी और देवा तथा आँबड़ मेहता गढ़की जाँच करने निकले।

आँबड़ गंभीर हो गया। पाटनकी सत्ताको गढ़में बैठकर टिकाए रखना और जब तक पाटनसे मदद न आ जाए, तब तक मंजरीकी रक्षा करना—इन दो लक्ष्योंने उसके पौरुषको सतेज बना दिया। यह गढ़ सुरक्षित था, और सहज ही फतह नहीं किया जा सकता था, फिर भी तीन चार आदमियोंकी सहायतासे उसे टिकाए रखना सहज बात न थी। और उसमें भी कहीं अन्न समाप्त हो जाए तो क्या हो, यह समझमें न आया। फिर भी आम्रभट हिम्मत न हारा। मंजरीके सामने इस गढ़को टिकाए रखना, अपनी वीरता दिखलाना और समय आ जाए तो मर मिटना—इससे बढ़कर रुचिकर उसे कुछ न लगा।

किसीकी मदद न होनेसे उसने जी लगाकर गढ़की पूरी पूरी जाँच की और किस दिशासे हमला हो सकता है, किस जगहसे बराबर रक्षा हो सकेगी, और किस कोनेसे चारों दिशाओंका निरीक्षण हो सकता है, इसकी उसने जानकारी प्राप्त की।

उसने नगरके तरफकी दीवारपर जाकर नीचे नजर डाली। आधी रात हो रही थी, फिर भी नगरमें जगह जगह जलती मशालें इधर उधर जाती दीख पड़ती थीं, किसी किसी जगहसे जब तब चीख भी सुनाई दे जाती थी। सुदूर किसीके मकानमें आग लग गई है, ऐसा लगता था और नदीतट बिल्कुल शान्त था।

घूमते घूमते आँबड़ मेहताने देवाके साथ बातें कीं, और ज्यों ज्यों वह बातें करता गया त्यों त्यों उसका हृदय, उसका अनुभव और उसका गढ़संबंधी ज्ञान जाननेका उसे अवसर मिला। बात करते करते वृद्ध देवामें उत्साह उमड़ आता और गढ़ परसे कैसे शत्रुओंके दाँत खट्टे किये जा सकते हैं इसका चित्र थोड़े ही शब्दोंमें वह आँखके आगे रख देता। परन्तु हरएक बातका सार और आत्मा–उसके भाई (काक) थे। 'भाईने' यह रास्ता दिखाया, और 'भाई' ने वह कंगूरा बढ़ाया। 'भाई' ने कहा था कि इस कोनेमें खड़े होकर तीन मनुष्य तीनसौके लिए काफी होंगे; और 'भाई' का विचार यह दीवार गिराकर

दूसरी बनवानेका था। और समय होता तो वह इन बातोंसे उकता जाता, परन्तु इस समय उसका हृदय वीर-पूजाके लिए इतना तत्पर हो गया था कि काककी यह प्रशंसा सुनकर उसमें उत्साह आ गया।

आखिर सब जगह घूमकर वे खिड़कीके पास आकर बैठ गये और सोमेश्वरकी राह देखने लगे। परन्तु सोमेश्वर न आया। तब वह देवाकी दिखलाई हुई अटारीपर सोनेके लिए गया और खिड़कीके पास देवा बाट देखता लेट रहा।

आम्रभट लेटा, परन्तु नींद न आई। विचार करनेपर उसने अपनी अंतिम पंद्रह दिनोंकी मूर्खताभरी करतूतोंपर विचार किया। उसने एक पखवाड़ेमें सेनाको निकम्मा कर दिया और संपूर्ण सत्ता हाथमेंसे निकल जाने दी। उसके आचरणसे भले लोग भरमाये और विद्रोहियोंको उत्तेजना मिली, अपनी कुबुद्धिसे उसने पाटनके मित्रोंको तंग किया और शिथिलतासे अपने शत्रुओं-को चढ़ बैठनेका अवसर दिया। आखिर रेवापालने एक घड़ीमें लाट सर कर लिया और आज उसके जैसे पाटनके सत्ताधीश, उदा मेहताके पुत्रको इस तरह चोरकी तरह गढ़में छुपना पड़ा।

रात्रिके एकांतमें उसने अपने पिता और काकके साथ अपनी कारगुजारियोंकी तुलना की। उन दोनोंने अज्ञात मूलमेंसे जीवन-सरिताका प्रारंभ किया और इस समय उनके प्रतापसे चारों दिशाएँ फल-फूल रही थीं। परन्तु उसने इस छोटी-सी आयुमें बापके प्रतापसे मान धन और सत्ता प्राप्त की, फिर भी उसपर पानी फेर दिया।

उसे अपने निकम्मेपनका भान हुआ और साथ ही साथ मंजरी भी याद आई। उसके शरीरमें आनन्दकी बिजली-सी दौड़ गई। इस सारे गढ़में वे दोनों साथ साथ रह रहे थे। जिस प्रसंगके लिए वह तरसता था वह उसके पास आ पहुँचा था और कौन जाने कितने दिन इस तरह बीत जायँगे; तथा उसे रात दिन अपने हृदयकी सम्राज्ञीके पाद-वंदन करनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहेगा। और वह प्रसन्न—

आँबड़ उठकर बिछोनेमें बैठ गया। मंजरी उसपर प्रसन्न हो! उसे कुछ समझमें नहीं आया, पर अभिमान छोड़कर वह आत्म-तिरस्कारसे हँसा। उस-पर प्रसन्न हो! यह गर्विष्ठ, विदुषी, तेजस्विनी और पतिपरायणा मंजरी उस-

पर प्रसन्न हो ! क्यों नहीं होगी ? उसे अपनी वीरता दिखलाने और मंजरीकी उपकार-वृत्ति विकसित करनेका अच्छा प्रसंग मिला था । उसने संकल्प किया कि प्राण भले ही चले जायँ, पर मंजरीको प्रसन्न करूँगा । उसका सिर गरम हो गया, उसे उसने अपने हाथसे दबाया ।

पर कौन जाने क्यों, उसे मंजरी ऐसी लगी कि वह उसे बिल्कुल नहीं समझ सकता । उसने घरोंकी रक्षा करनेवाली गृहिणियाँ देखी थीं, मजूरी करके बच्चोंका पालन करनेवाली माताएँ देखी थीं, अनाज पीस पीस करके पतिका पोषण करनेवाली सतियाँ देखी थीं, पति-विरहसे पीड़ित बहुएँ देखी थीं, और शास्त्रोंका अभ्यास करनेवाली साध्वियाँ भी देखी थीं । परंतु ऐसी स्त्री नहीं देखी थी । काकके वियोगमें उसने आभूषण तो छोड़ दिये थे; पर इसके सिवाय वह पतिके लिए खास कुछ करती हो ऐसा मालूम नहीं होता था । फिर भी उसे देखनेपर काकका विचार आ जाता था और काकका विचार करने पर वह याद आ जाती थी । कल उसने अपने तथा अपने बच्चोंके प्राण बचानेके बदले अपरिचित पुरुषोंके साथ गढ़में आना पसंद किया । आँबड़की समझमें यह विचित्रता नहीं आई । यह स्त्री सबसे जुदी क्यों है ?

इस तरहके अनेक विचार किये पर वह किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सका । अंतमें जब वह थक गया तब उसे नींदका झोका आया । नीचे कुछ गड़बड़ी सुनाई दी तो वह उठकर बैठ गया ।

" कौन सोमेश्वर ? "

" न-नहीं, ब-ब-बापू, " नेराकी हाँफती और रोती हुई आवाज आई । " यह तो मैं, स--स--सोमश्वर भटजी तो रह गये । "

" हें ! तब तेरे साथ कौन है ? आँबड़ने बिछौनेमेंसे खड़े होकर पूछा ।

" म-महाराज, म-म-मेरी घ-घ-घरवाली, " नेराने जवाब दिया ।

५—नेरा घरवालीके साथ क्यों आया ?

सोमेश्वर और नेरा जल्दी जल्दी गढ़के नीचे उतरे, और फिर नावमें बैठकर खाई पार करके शहरमें गये । वे एक दो गलियाँ पार करके एक परिचित

बनियेकी दूकानके सामने पहुँचे। सोमेश्वरने नेरासे बहुत-सी आवाजें लगवाईं और खुद भी जंजीर खटखटाई परन्तु उसने दूकान खोली ही नहीं। थोड़ी दूर एक दूसरी दूकानपर जाकर उन्होंने उसे खुलवानेका यत्न किया, परन्तु वहाँ भी सफलता न मिली। अन्दर सोये हुओंने देर तक चुपचाप बातें कीं, आखिरमें एक स्त्रीकी आवाज आई—" वे तो घरमें हैं नहीं और मैं हूँ अकेली स्त्री ! दरवाजा कैसे खोलूँ ? " सारे नगरमें भय फैल रहा था।

सोमेश्वरके पीछे नेरा चुपचाप चल रहा था। उसे बेहद भय लग रहा था। पाटनकी सेना कैद हो गई और दुर्गपाल भाग गया, इसलिए उसे किसीका सहारा नहीं रहा था। उसने इस नगरमें रहकर इतनी निर्लज्जता दिखलाई थी और लोगोंको उसकी तरफ इतना तिरस्कार था कि सवेरे ही यदि किसीकी नजरपर चढ़ जाए, तो कोई उसे जीता न छोड़े, यह निश्चित था। इसलिए यह तो उसे स्पष्ट लग रहा था कि आँबड़ मेहताके साथ गढ़में छिपे बिना कुशल नहीं।

समय जा रहा था और काम बनता न था; इसलिए सोमेश्वर अधीर हो गया। पकड़े जानेके भयसे भले लोगोंमें जाना संभव न था और छोटे लोगोंमें वह किससे सहायता माँगता ?

" ब-ब-बापू, " उसने धीमेसे सोमेश्वरके कानमें कहा।

" त-त-तुम कहो तो मैं अनाज पानी ले आऊँ। "

" कहाँसे ? " ज़रा असन्तुष्ट होते हुए सोमेश्वरने पूछा।

" म-म-मेरी ससुराल यहीं है। " नेराके गोल मटोल चेहरेपर लज्जा छा गई, ऐसा उसकी आवाजपरसे लगा। नेराकी स्त्री उसे छोड़कर अपने भाईके घर अकेली रहती है, यह उसे मालूम था। सोमेश्वरको इस मनुष्यपर बिल्कुल विश्वास न था, परन्तु इस समय जैसे भी हो वैसे थोड़ा बहुत अन्न प्राप्त किये बिना छुटकारा भी न था।

" हाँ, हाँ, तो ले आ न। "

" त—त—तो चलो। " कहकर नेरा आगे आगे और सोमेश्वर पीछे पीछे चला। थोड़ी देरमें वे एक गरीब मुहल्लेमें जा पहुँचे। एक छोटेसे घरके दरवाजेके सामने जाकर नेराने धीरेसे कहा—" अरी ओ— "

किसीने जवाब नहीं दिया। नेराने फिर कहा " अरी ओ ! यह तो मैं हूँ। "

किसीने उत्तर नहीं दिया। नेराने जंजीर खड़खड़ाई और फिर दुहराया—
" यह तो मैं हूँ।"

" मुए, तू इस समय कहाँसे।" एक कठोर आवाज आई।

" अरी ओ! म-म-मैं तो म-म-मर रहा हूँ! सुन। म-म-मुझे थोड़ा अन्न चाहिए। फ-फ-फिर मैं चला जाऊँगा।"

" इस समय अन्न कहाँसे लाऊँ?"

" घ-घ-घरमें जो हो वही। म-म-मैं आँबड़ मेहताका म—म-मानीता भ-भ-भट हो गया हूँ, और तू ऐसा करती है?" नेराने रोने जैसी आवाज निकाली।"

" झूठा ढोंग करता है?"

' रे—रे—रेवा माँकी सौगन्ध।' नेरा हिचकी लेने लगा।

" द—द—देख, तुझे सोनेकी कंठी दूँगा।" कहकर उसने सोमेश्वरके कानमें कहा " ब—ब—बापू, अपनी कंठी तो दीजिए। यह ऐसी कच्ची नहीं है। इस तरह नहीं मानेगी।"

" तू सोनेकी कंठी कहाँसे लाया?"

" यह रही द—द—द-देख।" कहकर उसने किवाड़के पास कंठी लटकती रखकर द्वार ठोका।

नेराकी अर्द्धांगिनीको कुछ विश्वास हुआ। उसने दीएको तेजकर दरवाजेकी दरारमेंसे झाँका और दो व्यक्तियोंको देखकर पूछा—" और कौन है?"

" ये तो मेरे दोस्त हैं।"

यह सयानपन देखकर सोमेश्वरका मन उसे एक तमाचा जड़ देनेका हो गया। परन्तु वह किसी तरह मन मारकर रह गया।

" कंठी लाओ, देखूँ।"

" उँ हूँ, प—प—पहले अनाज तो ला।"

नेराकी स्त्रीके हृदयमें कुछ विश्वास उपजा, वह दरवाजा खोलकर बोली—
" अन्दर आ जाओ।"

नेरा और सोमेश्वरको ज्यों ही उसने देखा कि मुँह ढँक लिया। " पधारो अन्नदाता।" उसने कहा और वह खड़ी हो गई।

" मुझे पहचानती है ? " सोमेश्वरने पूछा ।

" क्यों नहीं, मेरा भाई तो आपका तेली है । अन्नदाता आप कहाँसे ? "

" प-प-परदेशमें और कैसे ब-ब-ब्याहा जाता है ? " नेराने अपना बचाव पेश किया, परन्तु वह किसीने सुना नहीं ।

" कौन, तू पाँचाकी बहन है ? चल, तब जल्दी कर । तेरे यहाँ जितना अन्न हो उतना ला और कंठी और अँगूठी ये दो चीजें ले ले । "

" पर अन्नदाता, इस समय आप ? " फिर अपने पतिके सामने देखकर कहा, " और फिर इसके साथ ? "

" देख, हम सब गढ़में जा बैठे हैं । वहाँ पूरा अनाज नहीं है और इस समय कोई मोदी दूकान खोलता नहीं । "

" हाय, हाय, आपकी माँ भी हैं ? " तेलिनने कहा ।

" नहीं, उन्हें कोई छेड़ेगा नहीं । परन्तु मंजरी बहन और उनके बच्चे साथ हैं, और हम चार हैं । पाटनसे लश्कर आए, तब तकके लिए अनाज चाहिए न । "

" मंजरी बहन ! " तेलिनने आदरके साथ कहा और उसकी आँखोंके सामने दूरसे देखी हुई एक उँची और गोरी, सुन्दर स्त्री आ गई । सोमेश्वरके मनमें एक विचार आया ।

" देख, मंजरी बहन अकेली हैं । तू हमारे साथ चलेगी ? थोड़े ही दिनोंमें पाटनसे लश्कर आ जायगा और हमें छुड़ा लेगा । "

तेलिनने भयसे नेराकी ओर देखा । सोमेश्वरने उस नजरका अर्थ समझा ।

" मैं हूँ, नए दुर्गपाल आँबड़ मेहता हैं, देवा नायक है, और एक दूसरा ब्राह्मण है । तुझे घबरानेकी जरूरत नहीं । "

" परन्तु पाटनसे लश्कर न आया तो ? "

" जो हमारी गति होगी वही तेरी । और मंजरी बहनकी रक्षा करते हुए हम मरेंगे तो तू भी मरना । "

दो एक क्षण तेलिनके मस्तिष्कमें खींच-तान चली । मंजरी बहनकी सेवा, बड़े बड़े दुर्गपालोंके साथ गढ़में रहना और पाटनका लश्कर आवे, तब धूम,

धामसे बाजे गाजेके साथ लौटना ! तेलिनको अपने क्षुद्र जीवनमें यह भव्यतापूर्ण भविष्य सपने जैसा लगा ।

"प-प-पर भ-भ-भटराज काक वंथलीमें हैं । वे छु—छु—छुड़ाये बिना रह सकते हैं ?" नेराने अर्द्धांगिनीको सहवासके लालचसे आशा दी ।

तेलिनने विचार किया । काक भट छुड़ा जरूर लेंगे । और मंजरी बहनकी सेवा ! उसके मुँहमें पानी आ गया ।

"चलो, मैं चलती हूँ ।" फिर धीरेसे कहा—"वह कंठी दो न ।" कहकर उसने कंठी ले ली और अन्दर जाकर कहीं छिपा दी । थोड़ी देरमें उसने सारे वर्षके लिए रक्खा हुआ अन्न निकाला और तीनों उठा सकें ऐसी गठरियाँ बाँधीं । नेराकी घरवाली मजबूत थी और बालकपनसे मजदूरी करती थी, इस-लिए आसानीसे उसने बहुत बड़ा बोझा उठा लिया ।

तीनोंने अनाज बाहर निकाला । तेलिनने दरवाजा बंद करके चाबी किवाड़के नीचे सरका दी और तीनों गढ़की ओर चल दिये । अन्तमें वे गढ़की खाईके निकट आ पहुँचे । इतनेमें पीछेसे पाँच सात आदमियोंके पैरोंकी आहट सुन पड़ी । सोमेश्वरने सावधानीका उपयोग करके कहा, "तुम दोनों इस बोझेको उस नावमें डालकर फिर मेरा बोझा भी ले जाना । मैं इसे यहीं डाल रहा हूँ । वक्तकी बात है, यदि कोई आया तो मैं रोक रक्खूँगा ।"

आनेवाले पास आ पहुँचे । खड़खड़ाहटसे मालूम हुआ कि उनके पास शस्त्र हैं ।

"कौन है ?" उनमेंसे एक चिल्लाया । सोमेश्वरने उत्तर नहीं दिया । उसने पीछे देखा तो नेरा और उसकी स्त्री नावमें अपना बोझा डाल रहे हैं ।

जब जवाब न मिला, तो आगन्तुकोंमेंसे एकने चकमक निकालकर आग चेतानेका यत्न किया । सोमेश्वरने देखा कि आग चेत जायगी, तो ग़ज़ब हो जायगा । नाव दस कदमपर ही थी, इसलिए उसने एक छलाँगमें ही वहाँ पहुँचकर नेराके कानमें कहा, "नेरा, यह गढ़की खिड़कीकी चाबी है । अनाज लेकर तुम एकदम ऊपर चले जाओ, तब तक मैं इन लोगोंको रोक रखता हूँ । नहीं तो सब अनाजके बिना रह जाएँगे ।" कहकर उसने नावको एक धक्का दिया, और नेराने भी मौकेकी सूझ आ जानेसे बाँस उठाकर नाव चलाना शुरू कर दिया ।

सोमेश्वर उछलकर आगे आ गया और अंधकारमें आग चेत जानेसे वे लोग जब तक चौंधियाए रहे, तब तक तलवार निकालकर आड़ा खड़ा हो गया।

" तू कौन है ? और वह गढ़में कौन जा रहा है ? "

" इस पंचायतमें तुम क्यों पड़ते हो ? रेवाभाईकी आज्ञा है।" सोमेश्वरने कहा।

परन्तु उसकी झूठ चली नहीं। पीछे खड़े हुए एक मनुष्यने आकर कहा " अरे, यह तो काक भटका किलेदार सोमेश्वर है। पकड़ो इसे।"

" परन्तु तुम कौन हो ? मुझे पकड़नेवाले तुम कौन ? " हिम्मतसे, वक्त बितानेके खयालसे सोमेश्वरने पूछा। " जवाब दो। "

" अरे, पर वे भागे जा रहे हैं, उन्हें पकड़ना चाहिए।" कहकर एक आगे दौड़ने चला। " खबरदार ! " सोमेश्वर रास्ता रोककर खड़ा हो गया। " तू कौन है ? बतलाए बिना आगे नहीं जा सकता ! "

" पकड़ो इसे ! " एकने कहा और दूसरा आगे बढ़ा।

" मुझे पकड़ना सहज नहीं है।" कहकर सोमेश्वरने आक्रमण कर दिया, इसलिए वे लोग पीछे हटकर तलवार खींचने लगे।

पतवारकी आवाजसे सोमेश्वरको मालूम हुआ कि नाव तेजीसे खाईके उस पार जा रही है। वह पाँचोंके सामने जमकर खड़ा हो गया। दूसरे गाँवोंसे आए हुए ये सैनिक अनुभवी लड़ाके न थे, इसलिए इन्हें थोड़ी देर तक रोके रखना सोमेश्वरके लिए सहज हो गया। थोड़ी ही देरमें नावके उस पार पहुँचनेकी आवाज आई और नेरा तथा उसकी स्त्री अन्नकी गठरियाँ उठाते जान पड़े। सोमेश्वरको लगा कि अब यदि वह खाईमें गिर जाय, तो सहज ही तैर कर पार लग जायगा, इसलिए उसने धीरे धीरे पीछे हटना शुरू किया।

अक्षय तृतीयाके ज्वारका पानी आगे बढ़ कर पीछे हट गया था, इसलिए खाईसे थोड़ी दूर तककी जमीन गीली और रपटीली हो गई थी। सोमेश्वरको इसका खयाल न रहा, पीछे हटते हटते उसका पैर चूका और वह फिसल पड़ा। सैनिक एकदम टूट पड़े और उसे पकड़ लिया।

सोमेश्वरने कान लगाया तो मालूम हुआ नेरा और उसकी स्त्री तेजीसे ऊपर चढ़ते जा रहे हैं।

" अब उनके पीछे कैसे जाएँ ? " परदेशी सैनिकोमेंसे एकने कहा ।

" हाँ, इस समय कैसे गया जाय ! सवेरे देखा जायगा । इसीको पकड़ ले चलो । " कहकर दो आदमी सोमेश्वरको पकड़कर ले जाने लगे ।

सोमेश्वरने देखा कि इस समय तुरन्त गढ़में जानेकी कोशिश करना बेकार है, इसलिए वह चुपचाप चलने लगा । सैनिकोंने भी धीरे धीरे नदीकी तरफका रास्ता लिया ।

सोमेश्वरको लगा कि ये लोग यदि उसे रेवापालके पास ले जाएँगे, तो वह जरूर ही प्राणदण्डकी सजा देगा, इस लिए किसी न किसी तरह भागे बिना छुटकारा न था । इतनेमें वे नदीके पास जा पहुँचे । सोमेश्वरने नदीके सामने देखा और उसे एक विचार सूझ आया । उसने एकाएक एक ही झटकेमें हाथ छुड़ा लिया और पकड़नेवाले उसे पकड़ें कि उससे पहले ही वह नदीमें कूद पड़ा ।

सैनिक पहले तो कुछ विचारमें पड़े, फिर उनमेंसे दोने हथियार खोलकर सोमेश्वरके पीछे कूदनेका निश्चय किया । किन्तु वे इस नदीसे अपरिचित थे, अँधेरी रात थी, और ज्वारका पानी सागरकी तरह उफन रहा था, इसलिए उनका निश्चय भी टूट गया और लज्जित होकर वे अपने रास्ते लगे ।

सोमेश्वर पहले तो पीछा करनेवालोंको निरस्त करनेके विचारसे बहुत तेजीसे दूर चला गया किन्तु जब उसे विश्वास हो गया कि उसके पीछे कोई नहीं है तब उसने खाईकी ओर तैरना शुरू किया । परन्तु आज उसका भाग्य सीधा न था । रातभरके जागरण और लड़ाईसे वह थक गया था, इस लिए तैरते तैरते उसके पैर ऐंठने लगे । महान् कठिनाईसे वह तैर सका, कितनी ही बार तो चित्त पड़ा रह कर नदीके प्रवाहके इच्छानुसार बहता गया । पानी उतर रहा था, इसलिए वह भृगुकच्छसे दूर बहा चला गया ।

इतनेमें उसे एक नौका आती हुई जान पड़ी । उसने ध्यानसे सुना तो मालूम हुआ कि वह रातोंरात भृगुकच्छसे भागे जाते हुए यात्रियोंकी नाव है । और कोई मार्ग न सूझ पड़नेसे उसने नाववालेको पुकारा और नाववालेने दया करके उसे नावपर चढ़ा लिया ।

नाव लखी गाँव जा रही थी । सोमेश्वरने विचार किया कि अब वापस भृगुकच्छ जाकर गढ़में जानेका इरादा रखना मूर्खता है । इसकी अपेक्षा नावसे

लखी गाँव जाकर, खाड़ी लाँघकर, इस घटनाकी खबर काकको क्यों न पहुँचा दी जाय ?

यह मार्ग उसे बुद्धिमतापूर्ण लगा, इसलिए चुपचाप उसने रात नावपर ही काटी और आँबड़के संरक्षणमें मंजरीका क्या होगा, इसी सोचमें वह रात बीत गई।

६—मंजरीकी शस्त्र-शिक्षा

मंजरीकी सारी रात आँख न लगी। बेनांका आश्रय छोड़नेमें उसने जोखिम उठाई थी, परन्तु इसके लिए उसे पछतावा जरा भी न था। इस तरह चार आदमियोंके साथ गढ़में रहना उसने सहन किया, परन्तु इसकी उसे घबराहट न थी। एक ही विचार उसके मस्तिष्कमें रम रहा था कि दुर्गपालकी अर्द्धांगिनीके लिए अब अपने गौरवकी रक्षा करनेका अवसर आ गया है।

इस काश्मीरी पंडितकी कन्याका स्वभाव और संस्कार जैसे असाधारण थे, वैसे ही उसका विकास भी विचित्र ढंगसे हुआ था। जिस माताने पिताको बिसराया उसे उसने छोड़ दिया, जिस उदा मेहताने जोर जुल्मसे ब्याहना चाहा, उसे उसने छकाया, जिस अनजाने सैनिक काकने उसे बचानेके लिए उसके साथ ब्याह किया, उसे उसने तिरस्कारसे जलाया। परन्तु काकके शौर्यसे वह चकित हुई, उसका बुद्धिबल देखकर प्रशंसा करने लगी; उसके मुत्सद्दीपनसे उसने मात खाई और उसके हृदयकी विशालताका माप करनेमें उसने आत्मश्रद्धा खो दी। उसकी कर्तव्य-परायणता और एकनिष्ठताकी परख करते करते वह अभिमान भूल गई और उसके प्रेमके पूरमें बहते बहते उसने स्वत्व खो दिया। गर्वमें जिस सैनिकको उसने श्वान समझा था, उसीकी पुजारिन बनकर रहनेमें गर्व माना।

उसकी काव्य और शास्त्रोंके अभ्याससे सुसंस्कृत बनी आत्माने पतिको परमेश्वर मानना और परमेश्वर जैसे पतिके न मिलनेपर आजन्म कुँवारी रहकर मर जाना निश्चित किया। जिसे पत्थर समझा था, वही पत्थर पति ब्याहनेके बाद उसे परमेश्वर दीख पड़ा, और उस परमेश्वरकी भक्तिको उसने अपना जीवन-मंत्र बना लिया।

भक्ति अनेक प्रकारकी होती है। कितने ही दंशके भयसे नागकी भक्ति करते हैं, और नागपंचमी मनाते हैं। बहुतसे सुखकी आशासे इष्टदेवकी आराधना करते हैं। कितने ही फलप्राप्तिसे उपजी हुई कृतज्ञताका अनुभव करते करते वरदाताकी भक्ति आरंभ कर देते हैं। कोई कोई नरसी मेहताकी भाँति देवके लिए पागल बनकर उमड़ते हृदयसे भक्तिमें लीन हो जाते हैं और कोई बिरले ऐसे भी होते हैं जो भक्त और भगवानका अन्तर मिटा डालते हैं; तथा देवके स्वरूपके साथ तादात्म्य साध लेते हैं, जिनका पूज्य भाव गर्वभरी श्रद्धाका स्वरूप लेता है, जिनके सेवाधर्ममें अधिकारका प्रताप होता है और जिनका जीवन निरंतर देवमय और अन्तर सर्वदा देवरसिक रहता है।

मंजरीकी पतिभक्ति अंतिम प्रकारकी थी। उसकी पतिभक्ति परपुरुषके समागमके अभावसे प्रकट नहीं हुई थी; पतिके साथ बाल्यकालकी अज्ञान अवस्थाके सहवाससे उत्पन्न नहीं हुई थी। सशक्त पुरुषके डरका उसमें अंश न था, पालनकर्त्ताकी ओर प्रकट हुई उपकार-वृत्तिकी बूँद भी न थी, संतानके पिताकी ओर झुकती हुई भावनाओंपर भी वह नहीं रची गई थी, यौवनकी उछलती हुई तरंगोंको शान्त करने अथवा रसिकताके अद्भुत रंग दिखानेका पतिको एक साधन माननेसे भी यह भक्ति पैदा न हुई थी और न परलोकमें सुख प्राप्त करनेके लोभसे अथवा ईश्वरको रिझानेकी इच्छासे ही यह भक्ति प्रेरित हुई थी।

इस भक्तिका मूल अनिर्वचनीय प्रणय था। इसकी रचना पतिके स्वभाव और जीवनक्रमके साथ साधी गई एकतानतासे हुई थी। इसका पोषण सर्वव्यापी, एकनिष्ठ और उछलती हुई रसिकता तथा संस्कारिता करती थी। काकके निरन्तर साहचर्यकी इच्छा, उसीके जीवनमें दिलचस्पी, उसीकी सेवाकी हौंस, उसपर ही सत्ता चलानेकी आकांक्षा, उसीकी अर्ध्यार्ह होकर रहनेका लोभ–यह इस भक्तिके अंग थे। परन्तु इन अंगोंसे बनी हुई देहसे उसमें रहनेवाली आत्मा निराली थी। इस आत्माके ज्वलन्त प्राबल्यसे मंजरी बिना प्रयासके ही आत्म-समर्पण साधे थी; और शरीरके स्वभावकी भिन्नता भूलकर काकका आधा अंग बनी रहती थी।

जब बेनांने नर्मदाके मंदिरमें उसका अपमान किया, तब इस भक्तिने उसके हृदयमें अद्भुत प्रेरणा की। जिस वीरका वह अंग थी, उसीका प्रताप उसमें स्फुरित हुआ, वह निःशस्त्र एवं निराधार स्त्री मिट गई और कालभैरवको

मात करनेवाले और नवघण रा'को पकड़नेवाले महारथीकी हिम्मत और अडिगताकी मूर्ति बन गई।

सारी रात वह मनसूबे बाँधती रही। दस पाँच दिनमें वंथली खबर पहुँचेगी और उसके बाद दस बारह दिनमें लश्कर छुड़ानेके लिए आएगा। इस तरह बीस पच्चीस दिन तकके लिए तो यह घेरा टिकाना ही पड़ेगा। पाँच पुरुष और एक स्त्री यह भगीरथ काम कैसे करेंगे, वह इसका विचार करती रही। गढ़ मजबूत था। देवा नायक और सोमेश्वर प्रवीण गढ़-रक्षक थे। आँबड़ मेहताको भी घेरा टिकाये रखनेकी कला कुछ आती ही होगी। पर उसे पछतावा हुआ। काश्मीरा देवीने उससे अनेक बार हथियार चलाना सीखने और युद्धकी कला हस्तगत करनेके लिए कहा था परन्तु विद्वत्ता और पतिके शौर्यके घमंडमें उसने उनकी सलाह नहीं मानी और अब इस समय वह पतिकी आबरू खोने बैठी है। जैसे जैसे रात बीतती गई, तैसे तैसे उसे अपनी निर्बलतापर तिरस्कार होता आया।

पौ फटी, वह उठी और उसने देवा नायकको उठाया।

"देवाजी, सोमेश्वर कहाँ सो रहा है? मैं गढ़ देखना चाहती हूँ।"

"बहन!" देवाने कहा और सिर हिलाया। आवाज़ अशान्त थी।

"क्यों?"

"सोमेश्वरभाई तो पकड़े गये।"

"ऐं?" मंजरीके कपालपर पसीना आ गया।

"हाँ।"

"परन्तु यह हुआ कैसे?"

"अनाज लेकर लौटते समय नगरके चौकीदार मिल गये। सोमेश्वरभटने नेरा और उसकी स्त्रीको तो ऊपर भेज दिया और स्वयं लड़नेको रह गये। फिर कौन जाने क्या हुआ, नेराको पता नहीं।"

मंजरी काँप उठी। इस अकल्प्य कठिनाईसे उसकी हिम्मत टूट गई।

"देवाजी, भगवानने न जाने क्या सोचा है!"

"बहन, भगवानकी जो इच्छा हो वह ठीक।"

"परन्तु हमारा क्या होगा?" चिंतापूर्ण स्वरमें मंजरीने कहा। उसके अन्तर-में निराशा प्रवेश करनेकी तैयारी कर रही थी।

" हमें ? " देवाने कहा। " भटराज आवें, तब तक टिकाए रखना। और क्या ? "

देवाके ये सामान्य शब्द सुनकर मंजरीको शर्म मालूम हुई। जो श्रद्धा एक सैनिककी उसके पतिमें है वह भी उसमें न थी। उसके अन्तरकी गहराईमेंसे प्रेम और श्रद्धा झनझना उठी। उसके हृदयमें एक प्रचण्ड तरंग प्रकट हुई। उसका मुख लाल हो गया।

" देवाजी, " उसने गर्वपूर्ण स्वरमें कहा—" हाँ, तुम्हारे भाई आवें तब तक हमें गढ़की रक्षा करनी है। आओ जरा मेरे साथ चलो। मुझे गढ़ देखना है। "

" इस समय देखकर क्या करोगी ? "

" मुझे गढ़रक्षक बनना है। " मंजरीने हँसकर कहा।

देवा नायकको हमेशा मंजरीसे ईर्ष्या होती। मानो उसके भाईके साथ वह बिना अधिकारके ही ब्याही गई हो। अपनी रायमें अब उसने उदार हृदयसे फेरफार करना आरम्भ किया।

" चलिए, " कहकर वह आगे हो गया।

मंजरी और वह गढ़पर घूमने लगे। ज्यों ज्यों प्रभात होता गया, त्यों त्यों गढ़के कंगूरे, नीचेका नगर और दूरके ग्राम स्पष्ट दिखने लगे। धीरे धीरे चाँदीकी मेखलासदृश रेवाके पाटने पृथ्वीका शृङ्गार किया और सुदूर पर्वतोंकी अस्पष्ट दिखती हुई पंक्तिके सम्मुख उषाका प्रकाश लाल हो गया।

मंजरी गढ़ देखने लगी। कहाँसे क्या हो, किस कोनेसे किस रास्तेकी रक्षा की जाय, और किस जगहसे दूरके ग्राम किस तरह पहचाने जायँ, वह यह सब ज्ञान तेजीसे प्राप्त करने लगी।

फिरते फिरते जब वे वहाँ आये जहाँसे होकर चढ़े थे तब देवाने वह जगह बताई जहाँ सोमेश्वरको चौकीदार मिले थे। ध्यानसे उसे देखते हुए मंजरी जरा ऊँची होकर कोट परसे नीचे नजर डालने लगी।

" बहन, यह क्या करती हो ? इतनी अधिक नीचे मत झुको। कोई बाण मार देगा। " पीछेसे आँबड़का घबराया हुआ स्वर सुनाई दिया। मंजरीने एकदम पीछे देखा। आम्रभट दौड़ता आ रहा था।

मंजरी जैसे ही पीछे हटी कि तुरन्त ही सननन-करता हुआ एक तीर आया और मंजरी जहाँसे नीचे झुककर देख रही थी उसके पास ही पत्थरसे टकराया।

" देवा, देखता नहीं ? वह आदमी पास ही खड़ा खड़ा ताक रहा है ? "

आम्रभटने क्रोधमें पूछा और उत्तर पानेकी राह देखे बिना ही देवाके पाससे तीर कमान लेकर तीर मार दिया। नीचे खड़े हुए सैनिकके हाथमें तीर लगा और वह चीख मारकर भागा।

" आँबड़ मेहता," मंजरीने हँसते हुए कहा " आप धनुष्य इतने जोरसे क्यों पकड़ते हैं ? "

आम्रभट मान-भंग होनेसे मंजरीकी ओर घूमा। बालपनसे ही जोरसे धनुष्य पकड़नेकी उसकी आदत थी और गुरुके टोकनेपर भी उसे वह छोड़ न सका था।

" आपने कैसा जाना ? " उसने आश्चर्यके साथ मंजरीसे पूछा।

" आपके दुर्गपाल बहुत ही हल्का पकड़ते हैं, इससे। " मंजरीने स्पष्ट परन्तु धीमी आवाज़से कहा।

आम्रभटके मस्तिष्कमें जरा क्रोध आया " आपके दुर्गपाल ! " वंथलीमें कट मरने गया है, फिर भी हमेशा यह स्त्री उसे बीचमें ले आती है। उसने मंजरीपर एक दृष्टि डाली।

उसका इरादा अपमान करनेका न था। साथ ही काककी प्रतिष्ठा बढ़ानेका भी न था। जिस प्रकार माँ पुत्रको सलाह देती है उसी प्रकार शुद्ध हृदयसे उसने यह सूचना दी थी।

" यदि आपने ढीला पकड़ा होता," देवा नायकने कहा, " तो उसका इस समय कलेजा छिद जाता। "

इसका भान आँबड़को कभीका हो चुका था, परन्तु देवाके स्पष्ट कह देनेसे उसे बड़ा बुरा लगा। परन्तु मंजरीके सामने और इस खराब स्थितिमें क्रोध प्रकट करना उसे शोभावह न लगा। उसने हँसकर बात उड़ाई।

" बहन, मेरी यह आदत किसी तरह जाती ही नहीं। परन्तु इस समय आप क्यों निकली हैं ? अभी कुछ हो जाता तो ? "

" मैं तो गढ़ देखने निकली हूँ। "

" हम सब क्या मर गये हैं ? "

" नहीं, परन्तु सोमेश्वर नहीं है, इसलिए गढ़रक्षक मैं हूँ न ? "

आम्रभट जरा हँसा। " वाह ! इससे अच्छा और क्या है ? "

" हँसनेकी बात नहीं। " मंजरीने गंभीरतासे कहा। " आपके दुर्गपाल आवें, तब तक तो इस गढ़की रक्षा करनी ही है। "

आम्रभटको फिर " आपके दुर्गपाल " शब्दोंसे आघात हुआ।

" हाँ। यदि अन्न समाप्त हो जाए तो...? "

" समाप्त हो जाय तो भूखे रहकर ही..." मंजरीने हँसकर कहा। " चलिए. मैं स्नान करके नित्य कर्म कर लूँ, फिर मुझे शस्त्र चलाना सिखलाना। "

" आप लड़ना सीखेंगी ? " आम्रभटका हृदय मंजरीका शिक्षकपद लेनेकी आशासे उछल पड़ा।

" हाँ, एक घरमें हम दोनोंको ही योद्धा बनना है। "

अनुपस्थित काककी सतत उपस्थितिसे बेचारा आँबड़ ऊब उठा और कुछ उपाय न सूझ पड़नेसे चुप रह गया।

७—आँबड़को गुरुपद खलता है

आँबड़ मेहता जब युद्ध-कला सिखलानेको राजी हुए, तब तीन बातोंकी तरफ उनका ध्यान न था। एक तो उनकी शिष्याकी जबर्दस्त लगन थी। धूपकी, परिश्रमकी थकानकी मंजरीको परवा न थी। अपरिचित कसरतसे उसके हाथ थक जाते, अंग अंगमें दर्द होता और सिर दुखने लगता, परन्तु रात होने तक वह क्षणभर भी विश्राम न लेती और न आँबड़ और देवाको विरमने देती।

दूसरी चीज़ मंजरीकी बुद्धि थी। उसने शस्त्र कभी न पकड़े थे, परन्तु काक, त्रिभुवनपाल और काश्मीरा देवीको शस्त्रोंका व्यवहार करते बहुत ध्यानसे देखा था। और बहुत बार तो यह भेद ही नहीं रहता था कि वे मंजरीको सिखलाते हैं या मंजरी अपने आप ही सीखती है।

परन्तु तीसरी चीज़ आँबड़के धैर्यकी सच्ची कसौटी करती थी। अपनी प्रियतमाके साथ घूमना, फिरना, बोलना, हँसना, उसे शस्त्र चलाना सिखाना, सिखाते हुए

अनजाने शरीरका स्पर्श करना--फिर भी अपने और अपनी प्रियतमाके बीच एक अनुपस्थित व्यक्तिद्वारा निर्मित अभेद्य वातावरणको सर्वदा देखा करना-- इस त्रासदायक कसौटीपर जबसे सृष्टि बनी तबसे कोई भी प्रणयी चढ़ा नहीं थी; यह आम्रभट विश्वासके साथ मानता था। उसने कुछ समय इस अभेद्य वातावरणको छेदनेका प्रयत्न किया। बिलकुल निजी बातें कीं, जीवनके अनेक प्रसंग कह सुनाये, बहुत-सी आशाओंके सुनहरी रंग चित्रित करनेके प्रयत्न किये। इन सबकी ओर मंजरी ममताके साथ देखती रहती, हँसती, बोलती, सलाह देती, सहानुभूति दरसाती किन्तु उसके आसपासका काकमय वातावरण तो ज्योंका त्यों ही रहता और आम्रभटके सारे प्रयत्न निष्फल हो जाते।

कई दिन हो गये परन्तु रेवापालने सावधानी रखनेके सिवाय गढ़ सर करनेके लिए कोई भी कदम नहीं बढ़ाया। इसलिए मंजरीको सिखलानेमें ही आम्रभटका सारा समय चला जाता। इन दिनोंमें उसकी घबराहट बढ़ती गई। सारे दिन उसे काकके स्मरण सुनने पड़ते, और रात्रिमें स्वप्नमें भी काक ही आता। काककी ओर उसका द्वेष बढ़ता गया।

बहुत बार स्वप्नमें जाकर वह उसे खतम कर आया :- एक बार यह विचार आया कि वह जूनागढ़के घेरेमें मर जाए तो! और फिर फिर कर यही विचार आता रहा। उसने उसे घायल देखा, मरा देखा, उसका शव चितापर जलते देखा और उसे आनन्द हुआ।

इन विचारोंके आनेके बाद थोड़ी देरमें वह मंजरीसे मिला। उसे एक और विचार आया—यदि काक मर जाए तो मंजरीका क्या हो? वह कैसी हो जाए? फिर मेरे प्रेमका क्या हो?

शाम हो गई थी। मंजरी ज़रा खिन्न थी। दोनों गढ़के दरवाजे देखने निकले। चार पाँच दिनोंके साहचर्यसे दोनों खुलकर बातें करते थे। आँबड़को तो एक ही विचार आया करता था कि काक मर जाए तो मंजरीकी अवस्था कैसी हो?

बातें करते करते मंजरी कितने ही पुराने प्रसंगोंकी स्मृति ताजी कर रही थी। आम्रभटका ध्यान एक बातपर हमेशा जाता। मंजरीकी बातोंमें उदा मेहताका नाम कभी आता ही नहीं। कितनी ही बार ऐसी बात भी होती कि जहाँ

उसका नाम लेना अनिवार्य हो जाता; ऐसे प्रसंगपर उसका नाम जीभपर आ जाने पर भी वह कहती नहीं। अब आम्रभटसे न रहा गया—" बहन, हमारे खंभातमें भी दुर्गपालकी कई कहानियाँ कही जाती हैं।"

मंजरीने जरा प्रयत्न करके पूछा, " अच्छा ?"

" आपको वे वहींसे तो लाए थे न ?" आम्रभटने पूछा।

" हाँ।"

" मेरे पिता हमेशा आपकी तारीफ किया करते हैं।" आँबड़ने गप मारी। मंजरी मौन रही। उसकी आँखें स्थिर हुईं।

" आप खम्भातसे कैसे भागीं, सो तो सुनाइए।"

मंजरी जरा हँसी—" दुर्गपाल ले आए।" उसकी आवाजमें मृदुता आ गई। " मुझे दूसरे दिन सबेरे ही साध्वीकी दीक्षा दी जानेवाली थी और मैंने साध्वी होनेसे पहले मरनेका संकल्प किया था। वे (काक) तो तुम्हारे हेमचंद्राचार्यको ले जानेके लिए आये थे परन्तु उन्होंने आनेसे इनकार किया, इसलिए उनके बदले मुझे उठा लाए।" वह हँसी। हास्यमें प्रणयकी सुमधुर झनकार थी। " खंभातसे हम नौकामें निकले। जब मैं मूर्छित अवस्थासे जागी, तो मुझे इनकी ओर तिरस्कार आया—" फिरसे उसके मृदु हास्यने आँबड़के कानोंमें रस-सागर उड़ेल दिया।

" और अब ?—" न मालूम हो ऐसी कटुतासे आँबड़ने पूछा—परन्तु साथ ही हँस दिया। उस शान्त और निःशब्द संध्यामें भी उसे मंजरीका मुख तेजस्वी होता दिखलाई पड़ा।

" और अब ?" उसकी आवाजमें प्रणयकी प्रतापी ध्वनि थी। " वह मेरा देव है।"

कोई बोला नहीं। पहली ही बार इतनी अस्वस्थतासे मंजरी बात कर रही थी। पहली ही बार काकके लिए एकवचनका प्रयोग करते हुए उसे सुना। उसका हृदय धड़क उठा।

" दुर्गपाल अद्भुत आदमी हैं।" आँबड़ने कहा।

" अद्भुत !" मंजरीने ज्वलंत आँखोंसे कहा। " आप सब उन्हें क्या जानें ? यह तो मैं ही जानती हूँ, जो उनके जीनेसे ही जी रही हूँ।"

एक क्षण भावभरी शान्ति छाई रही। आम्रभटका हृदय कंठमें आ गया। उसके मस्तिष्कमें घूमता रहनेवाला विचार बाहर निकलनेके लिए उछलने लगा। उसने समझे अनसमझे कह ही डाला-" भगवान करें ऐसा ही हो, किन्तु यदि उन्हें कुछ हो जाए तो—" वह बोला और उसे पश्चात्ताप हुआ। मैंने यह कैसा प्रश्न कर दिया! और किससे! उसका अपनी जीभ खींच लेनेका मन हुआ। किन्तु मंजरी क्रोधित न हुई। यह प्रश्न उसके मस्तिष्कमें भी घूमा करता था। उसकी आँखोंमें क्षण-भरके लिए व्याकुलता आई। उसकी आवाजमें शब्दोंसे भी अधिक मार्मिक और करुणताका अवर्णनीय भाव सुन पड़ा।

उसने सिर ऊँचा किया। " उनके मरनेपर मैं भी मर जाऊँगी। "

शब्द सादे और सरल थे। उसके उच्चारणमें भयंकर शान्ति थी, तो भी आम्रभटकी दृष्टिमें वह सौन्दर्यकी अप्रतिम मूर्ति-इन शब्दोंसे ही मानो स्वयंभू अग्निमें जल मरती हो, ऐसा दीख पड़ा। वह एक शब्द भी न बोल सका। मंजरी म्लानवदन रेवाकी ओर देखती रही।

" बहन, " खँखारते हुए आँबड़ने कहा। " दुर्गपालको कुछ नहीं होगा। वे तो अमर हैं। "

" मुझे भी ऐसा ही लगता है।" मंजरीने अस्पष्ट एवं खिन्न स्वरमें उत्तर दिया और फिर कहा—" यमको उनके पास आनेमें भय लगता है। " दोनों लौट पड़े और चुपचाप अपने अपने मुक़ामपर चले गये।

आँबड़के मस्तिष्कके आगे काकके मरनेपर निराधार बनी हुई मंजरी खड़ी हो गई। यह गर्विष्ठ और सुन्दर स्त्री, जलते हुए सूखे पत्तोंकी तरह, बिना अग्निके ही जल जायगी। इतने पर भी इस स्त्रीको—जो ऐसा प्रसंग आनेपर जीवनकी कल्पना भी नहीं कर सकती वश करनेकी आशा रखना! आँबड़का सिर चकराने लगा। मंजरी तो योंकी यों काकमय वातावरणसे आच्छादित रहेगी, और जब काक अग्नि-सेवन करेगा तब उसकी आँचसे जलते हुए वातावरणमें यह भी जल मरेगी। इन विचारोंके आते आते आँबड़ अल्पताकी अधमसे अधम दशामें आ पड़ा। जिस पुरुषने इस स्त्रीको जीता है, वह उससे इतना महान बुद्धिशाली और शूर वीर था कि उसके स्थानका स्पर्श करनेकी भी योग्यता उसमें न थी।

उसका हृदय बैठ गया, आशाएँ कुचली गई। अल्पतामें मंजरीके प्रेमके बिना जीवन व्यतीत करना उसे व्यर्थ लगा।

"मंजरी! मंजरी!" उसने अपने कमरेके एकान्तमें मन ही मन पुकारा। "तुम्हें भगवानने ऐसा क्यों बनाया!"

एक ऊँची और तेजस्विनी देवी, आत्मतेजसे अंधकारमें उजेला करती, दूरसे दूर जाती हुई उसकी उनींदी आँखोंमें दिखाई दी और कल्पना-मंदिरमें उसे सिंहासनपर विराजती हुई देखकर उसने प्रणाम किया। आँखें कब मिच गईं उसे इसका भान न रहा। वह जब उठा तब पहलेका आम्रभट न था।

दूसरे दिन आँबड़ जब उठा तब उसका उद्वेग कुछ शान्त होने लगा था। निराधार हृदयकी शक्ति उसमें प्रकट हो गई। उसे अपनी परवा न थी, भले ही काक मंजरीको ले जाए, भले ही मंजरी उसे न गिने, परन्तु वह एक निर्जीव मनुष्य उसके लिए जीवन दे देगा। जीवनमें जब और कोई स्वाद ही नहीं रह गया तब मंजरी और काकके जीवनके रसको क्यों न समृद्ध किया जाए?

उसके विचारोंमें न समझमे आनेवाला रासायनिक परिवर्तन हो गया। वह अपनेको काक और मंजरीके सुखका अधिष्ठाता गिनने लगा और इस पदको दिपानेके लिए उसने सर्वस्व समर्पण करनेका निश्चय कर लिया। विचारोंकी धुनमें वह समर्पणके शिखरपर पहुँच गया।

जब आँबड़ मेहता इस प्रकार जुदा जुदा विचारों और भावोंके हिंडोलेपर झूल रहा था तब रेवापाल लाटमें एकाधिकार स्थापित कर रहा था। प्रत्येक बड़े गाँवमेंसे पाटनके अधिकारियोंको पकड़ने या मरवा डालनेमें और उनकी जगह अपने अधिकारी नियत करनेमें वह लगा हुआ था। इसी तरह कहीं खंभातसे पट्टनी सेना न आ पहुँचे, इस खयालसे उसने अपना लश्कर खेटकपुरी (खेड़ा) में एकत्र करना शुरू कर दिया था।

भृगुकच्छका गढ़ लेनेकी ओर ध्यान देनेकी उसे जरूरत न मालूम हुई। गढ़में नाममात्रको ही आदमी थे। उनकी उसे खबर लग गई थी। दहेज तक उसकी आन फिर गई थी, इसलिए नदीके रास्ते कोई गढ़में न जा सकता था। और गढ़में खाद्यसामग्री थी नहीं। इसलिए दस बीस दिनमें गढ़-वासियोंकी शरण आये बिना गति न थी।

८—वंथलीकी प्रवृत्तियाँ

अक्षय तृतीयाके अवसरपर वंथलीमें बहुतसे प्रवृत्तियाँ चल रही थीं। एभल नायक स्वधाम पहुँच गया, पर उसका बदला लेनेकी जूनागढ़में किसीको परवाह है, ऐसा नहीं मालूम हुआ। वहाँसे कोई संदेश भी नहीं आया। जगदेव परमारके घाव अभी भरे न थे और जो तैयारियाँ हो रही थीं उनमें भाग न ले सकनेके कारण वह कुढ़ता हुआ बिस्तरपर पड़ा था।

राजाकी तबीयत कुछ दिनोंमें ही अच्छी हो गई। जबसे उसकी हालत सुधरी तबसे पट्टनी सेनामें अद्भुत शक्ति आ गई। गिरनारको मानो कंकरकी तरह उखाड़ फेंकेंगे, इस प्रकारका उत्साह और आशा सबमें आ गई।

इस सबका कारण राजा और रानी दोनों थे। उस पत्थरकी चौकीके आगे लड़ते लड़ते राजाके स्वभावमें परिवर्तन हो गया था। अब तक उसने प्रथाके अनुसार लड़नेकी प्रणाली स्वीकारी थी और प्रतिष्ठायुक्त शौर्य दिखलाने और घेरेकी योजना करनेमें राजाको योग्य गौरव प्रतीत होता था। परन्तु जबसे चौकीके आगे उसके सिंहसदृश शूर स्वभावने निजी पराक्रमका रक्त चखा, तबसे राजवंशी ठाठसे घेरा डालनेमें उसे निर्बलता दिखी और मंत्रियों तथा सेनापतियोंके शौर्यका यश स्वयं लेनेमें उसे कायरता मालूम हुई।

उसके हाथ कहर मचानेके लिए अधीर हो उठे। उसका हृदय युद्धमें कूद पड़नेके लिए लालायित हुआ। उसकी इच्छा अपने हाथों खेंगारका मद मर्दन करनेके लिए व्यग्र हुई। उसकी महत्त्वाकांक्षा गिरनारके गढ़को अपने हाथों जमींदोज़ करनेकी थी। उसने सेनाकी व्यूह रचना शुरू की, सेनापतियोंको आज्ञायें दी जाने लगीं और चारों तरफकी सेनाको अपना कर खेंगारको उसके गढ़की दीवारके बीच कुचल डालनेका एक महान् प्रयास आरंभ किया।

राजाकी इन समस्त योजनाओंमें लीलादेवी सम्मिलित होती। ये योजनाएँ, उसीके कारण गढ़ी जातीं और व्यवहारमे लाई जाती हैं, ऐसा भी कितने ही लोग आपसमें कहा करते। वह पहलेसे कुछ फीकी पड़ गई। उसकी आँखें अधिक स्थिर और गहरी हो गईं। अब तक जूनागढ़के घेरेका जिसने कभी

विचार तक न किया था वह एकदम जूनागढ़का काल बन बैठी। उसके शांत और गहन हृदयमेंसे द्वेष और जोशके पूरपर पूर आये और वे उनमें संपूर्ण पट्टनी सेनाको खींचकर बहाने लगे।

इस जोश और द्वेषका मूल कारण आसपासके पक्के राजनीतिज्ञ सहज ही देख सकते थे। आज कितने ही दिन हो गए, काकका कोई पता न था। कोई कहता न था, परन्तु सबको विश्वास हो गया था कि काक मारा गया। जैसे जैसे दिन बीतते गये, और यह विश्वास ज्यादा मजबूत होता गया, लीलादेवीका शान्त और अडिग द्वेष जूनागढ़की तरफ बढ़ता गया।

राजाने पहली ही बार भावहीन रानीमें उत्साहके बीज देखे और रानीने पहली ही बार जयदेवको राज्यपदके आडम्बरसे दूर आत्म-शौर्यसे शोभित देखा। जिस तरह दो बालक शरारत करनेको तुल जाते हैं, उसी तरह ये दोनों लड़ाईके लिए तुल गये।

इन दोमें दो जन और आ मिले, त्रिभुवनपाल दंड नायक और काश्मीरा देवी। वे उत्तरकी ओर एक सेनाके साथ थे, काककी हकीकत सुनकर आ पहुँचे; और राजा रानीके निश्चयको अधिक दृढ़ बनाने लगे।

मुंजाल मेहता यह उत्साह देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें जूनागढ़के घेरेकी अपेक्षा राजाके स्वभावका ज्यादा खयाल था। जयदेवमें शौर्य प्रकट हुआ देखकर वे निश्चिन्त हुए। इस समय जयदेवको मिथ्या आडम्बर रखनेका अवकाश न था। बाबरा भूत या जगदेव परमारकी सहायता लेकर त्रास फैलानेकी फ़ुरसत न थी। वह पट्टनी सेनापतिके साथ मित्रके समान मिलता जुलता, युद्धकी योजनायें गढ़ता और अपने शौर्यसे ही अपनी सर्वोपरिता सिद्ध करनेका प्रयत्न करता। राजा और रानीका गाढ़ होता हुआ संबंध भी उनके ध्यानसे बाहर न था और विश्वकर्माके गर्वसे वे इन सबमें रस ले रहे थे।

९—प्रणयीकी छुपी बातें

कुछ दिनों तक वंथलीमें बड़ी हलचल रही। एक बार आधी रातके समय परशुरामकी पुत्री समर्थ खिड़की खोलकर झाँक रही थी। उसे ऐसा लगता था

पड़ा होगा अथवा कुत्ते और गीदड़ उसके मांसको सूँघ रहे होंगे। भृगुकच्छमें उसकी स्त्री आशाभरे हृदयसे उसकी राह देखती होगी। उसके शान्त और कठोर हृदयमें भी मंजरीके लिए प्रेमके दो शब्द उद्भूत हुए।

कमरेमें एक छोटासा दीया जल रहा था। एकदम किवाड़ खुले और प्रेमा आई।

रानीने ऊपरसे बाहरी शान्तिके साथ उसकी ओर देखा। रानीका कठोर और शून्य मुँह देखकर प्रेमकुँवर कुछ अटक कर खड़ी हो रही।

" रानीजी, एक अच्छी खबर लाई हूँ। "

रानी इस समय ऐसी हालतमें थी कि वह मजाकको बिलकुल पसंद नहीं कर सकती थी। उसने कठोरतासे पूछा; " क्या है ? "

" काकभटजी जीते हैं। " प्रेमकुँवरने एकदम कहा।

लीलादेवी उछल पड़ी, " क्या कहती हो ? "

" सचमुच। जूनागढ़में रा' के महलमें हैं, बहुत बीमार हैं। "

रानीके कपालकी नसें बाहर आ गईं। " किसने कहा ? "

" समर्थने। "

रानी कुछ निराश हुई। " उसने कहाँसे जाना ? "

" बाहड़ मेहताने उससे कहा। "

" बाहड़ने ? " लीलादेवीने अधीरतासे पूछा, " उसे कैसे मालूम हुआ ? "

" वह जूनागढ़में काकसे मिलकर आया है। "

" क्या जूनागढ़ ऐसा रास्तेमें पड़ा है कि बाहड़ जा आया ? चल अब ऐसी बे-सिर-पैरकी गप्पें मत लाना। जा, जाकर सो जा। " तिरस्कारसे रानीने कहा, " सबेरे देखे जायगा। "

प्रेमकुँवरका मान भंग हुआ। वह नाक सिकोड़कर चली गई, " कितना मिजाज है ! " वह मनमें बड़बड़ाई, " सोलंकीके पाले पड़ी है, इसलिए सब चलता है। "

लीलादेवीकी अधीरता बढ़ी। यह खबर सची होगी या नहीं, इसका विचार शुरू हुआ। उसे कुछ सूझ नहीं पड़ा। उसकी आकुलताका पार नहीं रहा। आखिर उसे एक रास्ता सूझा और मंगीको बुलाया " मंगी, देख तो आ,

महाराज क्या करते हैं ? और कहती आना कि मुझे उनसे एक जरूरी कामसे मिलना है। "

" इतनी रातमें ? "

" तुझे इसकी क्या पड़ी है ? " शान्तिसे रानीने पूछा।

मंगी एकदम गई और थोड़ी देरमें लौट आई; " महारानीजी, महाराज आए ! " जयसिंहदेव उत्साहसे कदम बढ़ाते हुए आए। उनकी आँखें अधीरतासे चमक रही थीं।

" मैंने नींदमेंसे तो नहीं उठाया ? " रानीने हँसकर पूछा।

" नहीं, मैं अभी एक झगड़ा मिटाकर आया हूँ। क्यों क्या है ? " वे रानीकी गोदीमें हाथ रखकर बोले।

" मुझे एक खबर मिली है। "

" क्या ? "

" काक जीता है, और रा' के महलमें है। "

राजाने अपनी आँखें बड़ी कीं, " यह गप कौन लाया ? "

" कहती हूँ, परन्तु यह गप है या नहीं, इसकी खोज आप कीजिए। शोभकी बहू प्रेमकुँवर खबर लाई है। "

" वह कहाँसे लाई ? "

" उसे समर्थने कहा, और समर्थसे वाहड़ने। वाहड़ उससे जूनागढ़में मिला, ऐसा वह कहती है। यह कैसे बन सकता है ? "

राजा खिलखिलाकर हँसने लगे। " बाहड कवि तो कवि ही रहा। तब बात सच्ची है। बाहड़ अपने पिताके साथ सुलह करनेके लिए जूनागढ़ जा आया है। मैं उदा मेहताके साथ अभी यही बात कर रहा था। "

" सुलह ! " लीलादेवीके हृदयमें होली जलने लगी।

" यह तो यों ही सुलहको फड़फड़ाता है। रा 'ने बिलकुल मना कर दिया। परन्तु तब तुम्हारी बात सच्ची होगी। बाहड़को कुछ पता मिला होगा। "

" पक्का पता लगाइए। "

" अभी लगाता हूँ। मंगी, जा तो बाहड़को बुला ला। " महाराजने हुक्म किया।

१०—वाहड़ काकको छुड़ाने जाता है

इन थोड़े ही दिनोंमें राजामें बहुत परिवर्तन हो गया था। उनकी एकाग्र आँखें, फूलते हुए नथुने और उनके शरीरकी धनुषके समान सज्जता उनके हृदयमें रमनेवाले उत्साहको बता रही थी। न तो वे थकते थे और न उन्हें निद्रा आती थी। उनकी शक्ति अटूट थी, एक भी चीज उनके ध्यानसे बाहर नहीं जाती थी और न वे एक भी साधनका उपयोग करनेसे चूकते थे। महत्त्वाकांक्षी और सत्ताके शौकीन कुमारसे वे एकदम प्रलयंकर बन गये थे।

कितने ही स्वभावोंमें सातत्य और एकतानता हमेशा दिखाई देती है। या तो उग्र एकाग्रता, या स्वस्थ कर्तव्यपरायणता, या सुमधुर रसिकता अथवा निश्चिन्तता या निस्सारता जीवनमें सतत बहती हैं। परन्तु कितने ही स्वभावोंमें जुदे जुदे समयमें जुदी जुदी धुन आती है; इतना ही नहीं, किसी किसी प्रसंगपर तो यह धुन इतने जोरसे आती है कि देखनेवालेको ऐसा लगता है कि कहीं यह मनुष्य अपनी धुन ही धुनमे पागल न हो जाय। जयदेवसिंह महाराज ऐसे ही धुनी थे। अभिमानके सिवाय उनके स्वभावका कोई भी अङ्ग चिरस्थायी नहीं था। पाटणके प्रतापी नरेश, सोलंकी कुलके अवतंस, विजयी सेनाके नायक, और गुजरातकी अटूट समृद्धिके धनी केवल अपने बड़प्पनकी ही शानमें रहते थे। फिर भी धनके आने पर वे सब कुछ भूलकर विलासी बन जाते, घड़ीमें स्वार्थी और वहमी हो जाते, घड़ीमें उदार और साफ दिलके बन जाते। किसी किसी मौकेपर उनके मुत्सद्दीपनकी प्रतापी चमक सबको चौंधिया देती; किसी समय भलाईकी जलधारा चारों ओर फैलती। जो बाबरा भूतकी मददसे अमानुषी होनेका दावा करते थे वे कितने ही अवसरोंपर मनुष्य-हृदयके सद्भाव भी सरलतासे दरसा सकते थे।

हिमालयके प्रदेशोंमे प्रकृति जैसी अनिश्चित होती है महाराज भी वैसे ही थे। क्षणमें असह्य गर्मी, क्षणमें बादलोंसे घिरा हुआ आकाश, और घनघोर वर्षा बंद होकर, क्षण-भरमें प्रकृति हँसने लग जाय। हरियाली और हिम दोनोंका सौन्दर्य वहाँ दिखाई देता है, सारे परिवर्तन जाने बिना ही हो जाते हैं; परंतु चाहे जिस समय देखिए अनेक स्वरूपोंमेंसे एक स्वरूप जो होगा वह श्रेष्ठ तो होगा ही।

महाराजको इस समय एक ऐसी ही प्रचण्ड धुन आई थी। मानों वे रुद्रके अवतार हों, इस तरह उन्होंने जूनागढ़का नाश करनेके लिए ताण्डव नृत्य शुरू कर दिया था।

बीमारीसे उठनेके बाद महाराजकी यह धुन ऐसे स्वरूपमें प्रकट हुई कि जो लोग उन्हें वर्षोंसे पहचानते थे वे भी चकित हो गये। सालोंसे बहादुर दिखाई देनेवाले महारथी भी इस ज्वलंत प्रतापको देखकर चौंधियाँ गए। जो जयदेवकी तलवार या बाबराकी धाकसे कभी कम्पित नहीं हुए थे वे भी महाराजकी यह धुन देखकर क्षुब्ध हो गए। मीनलदेवीको पुत्रकी बीमारीकी जितनी चिन्ता हुई थी उतनी ही चिंता इस धुनको देख कर हुई। बहते हुए पानीके प्रचंड पूरको रोकनेवाला भी उनके इस प्रवाहको नहीं रोक सकता। जिनपर शूरताका पानी चढ़ानेकी जरूर दिखती थी, अब तो कोई उनका शौर्य उतार दे तो अच्छा, ऐसा उन्हें लगा।

दीर्घदर्शी लीलादेवी इस धुनको देखकर हतप्रभ तो नहीं हुई, पर अचंभेमें पड़ गई। उसके उस्ताद हृदयमें यह नवीनता देखकर कुछ दिलचस्पी बढ़ी, उसकी महत्त्वाकांक्षा कुछ संतुष्ट हुई। उसे ऐसा लगा कि यदि महाराजा सदैव ऐसी ही धुनमें रहें, तो पाटण दुःसह नहीं होगा।

मंगी बाहर गई कि महाराज रानीकी ओर मुड़े।

"उदा एक नया रास्ता ढूँढ़ आया है।" उन्होंने कहा।

जरा भौंहें सिकोड़कर रानीने पूछा; "कौन-सा?"

"उदाने रा'के भानजोंको फोड़ लिया हैं।"

"देशल और वीशलको?"

"हाँ, ये हमसे मिल जानेवाले हैं।"

"परन्तु मुझे इनपर विश्वास रखना ठीक नहीं लगता।"

राजा मगरूरीसे हँसे। "और मैं क्या इनपर विश्वास रखूँगा? मैं इन्हें बराबर पहचानता हूँ। खेंगार ही इतना ज्यादा भोला है कि इन्हें घरमें रखता है, पर इनके कारण जूनागढ़के मिलनेकी संभावना है।"

"किस तरह?" कुछ अधीर दिखाई देनेवाली आवाजमें रानीने पूछा।

"इनके कितने ही मनुष्य गढ़में फोड़े हुए हैं।"

" अर्थात् ? " कुछ तिरस्कारयुक्त ध्वनिसे रानीने कहा, " गढ़में चुपचाप घुस सकेंगे ? "

" हाँ । " राजाने हँसकर कहा ।

" महाराज ! " रानीने शान्त और तिरस्कार युक्त वाणीमें कहा, " धोखेसे गढ़ लेना बुरा नहीं है, परन्तु खेंगारकी कीर्ति आपकी कीर्तिको फीकी कर देगी । "

ये शान्त शब्द राजाको चाबुक जैसे लगे। उसने रानीकी ओर कुछ अधीरतासे, कुछ गुस्सेसे देखा; परन्तु रानीके शान्त तिरस्कारमें सदैव ऐसी तटस्थता रहती कि उसमें गुस्सा हमेशा दिखाई देता और उससे राजा बहुत बार भीतरसे डरते थे ।

" कीर्ति !" जयसिंहदेवने अधीरतासे कहा, " क्या खेंगार मेरी कीर्तिको फीका करेगा ? देवी, युद्धमें कीर्ति जीतनेवालेको ही मिलती है । पराजित होनेवालेकी कीर्ति कैसी ? मुझे तो जूनागढ़ सर करना है, और जिस हाथसे वह सर होता है वही मेरा हथियार ।'

" ठीक है । " हँसकर लीलादेवीने कहा, " परन्तु जब कि आपके पास शोभा पाने जैसा शस्त्र है, तब फिर अशोभित शस्त्र किसलिए लिया जाय ? यदि आप अपने बाहुबलसे गढ़ तोड़ सकते हैं, तो फिर किसीको फुसलाकर खिड़कीके रास्ते क्यों घुसें ? '

रानी जवाबकी राह देखती हुई क्षणभर ठहरी । पर राजा प्रश्नको खा गये । वे बल और भेद दोनोंका उपयोग क्यों करना चाहते हैं, इसका कारण लीलादेवीको नहीं बता सकते थे । क्रोधके, वैरके और आवेशके धुएँमेंसे भी बीच बीचमें उन्हें अपने अन्तरमें राणकदेवीका मुँह दिख जाता था और जिस स्त्रीने बचपनमें उनका तिरस्कार किया उसे झुकानेकी लालसा उनके हृदयमें उठ आती थी । यह सब वे लीलादेवीसे कैसे कह सकते ?

राजाने कुछ देरीसे जवाब दिया, " मुझे तो जूनागढ़के सर होनेपर ही कुछ सूझ पड़ेगा । "

" ऐसा ? " जवाबकी असंबद्धता देखकर रानीने ठंडे पेटसे पूछा ।

" अन्नदाता, बाहड़ मेहता आये, " मंगीने आकर कहा ।

" बुलाला । " राजाने जरा हँसकर कहा । रानीके साथ ज्यादा वाद-विवाद

करनेमें उन्हें कुछ सार नहीं दिखाई दिया।

वाहड़ दाखिल हुआ और हाथ जोड़कर खड़ा रहा।

"वाहड़, क्या तुमने जूनागढ़में काकके विषयमें कुछ सुना है?" राजाने पूछा।

वाहड़ चौंका। राजाको इस बातकी खबर कहाँसे लगी?

"क्या सुना?" शान्त और सत्ताधारी आवाजमें लीलादेवीने पूछा।

"मुझे ऐसा लगता है कि भटराज जीते हैं।"

यह सुनकर रानीकी आँखें चमक उठीं।

"तब मुझसे कहा क्यों नहीं?" राजाने क्रोधसे कहा, "अभी सब बातें कह गया, पर इसके सम्बन्धमें एक भी अक्षर नहीं बोला। क्या तू भी अपने पिताकी तरह गुप्त रूपसे सब काम करना सीख गया?"

"महाराज," नीचे देखकर वाहड़ने कहा, "क्षमा कीजिए, मेरा विचार-"

"क्या?"

"कि काकभटको छुड़ा लाकर महाराजको प्रसन्न करूँ।" वाहड़ने कहा।

लीलादेवी हँसीं। राजाकी आँखें भी कुछ हँसीं। उनका क्रोध उतर गया।

"वाहड़, अभीके अभी जाओ।"

"जो आज्ञा।"

"देशल और वीशलके लिए भी तू ही संदेश लेता जा।"

"जी।"

"कहना कि, बात लम्बी जा रही है, और यह मुझे बिलकुल ठीक नहीं लगता। मुझसे आकर मिलना हो, तो एकदम आवें। तुम उन्हें लेकर ही आना। परसों यहाँपर सब मिलनेवाले हैं। यदि उनमें समयपर आनेकी हिम्मत न हो तो कह देना कि जयसिंहदेव सोलंकी चढ़ाई कर देंगे तो फिर किसीकी परवाह करनेवाले नहीं।"

"जी।"

"और उनकी भी मदद लेना तथा काकको वापस ले आना।" राजाने कहा।

"इस समय काकके बगैर काम नहीं चल सकता।" रानीने कहा।

"माताजी, भटराज जीते होंगे तो मैं खाली हाथ नहीं लौटूँगा।"

" परसों तुम चारोंको यहाँ हाजिर होना चाहिए । "

" जो आज्ञा । "

" जाओ, जल्दी जाओ । "

वाहड़ प्रणाम करके गया और मंगी भी जानेको तैयार हुई । परंतु इतनेहीमें महाराज उठे ।

" क्यों, जाते हो ? " लीलादेवीने सूचक आवाजसे प्रश्न किया ।

राजा हँसे । " परमार-रानी आज कितने ही दिनोंसे रूठी हुई है । कितने ही संदेश भेजे हैं । "

लीलादेवी खिलखिलाकर हँसी । " मैं रूठनेवाली नहीं । पधारिए । " वह शान्त और तटस्थ बनकर खड़ी रही । राजाने उसके सामने देखा, और उसका स्वास्थ्य तथा शान्ति देखकर वह उलझनमें पड़ गया । इस स्त्रीको वह पूरी तरहसे समझ नहीं सका था । उसकी यहाँ ही रात बितानेका इच्छा हुई परंतु तलवारके समान धारदार, चमकती और भावहीन स्त्रीके साथ रात बितानेका धीरज उसे नहीं रहा । उसे तो इस समय ऐसी किसीकी जरूरत थी, जो कि लड़ाती, हँसाती और रिझाती । उसने हँस कर चलना शुरू किया ।

लीलादेवीने कुछ समय तक विचार किया, बादमें उसके होठोंपर हँसी आ गई । वह कुछ आत्म-तिरस्कारसे बड़बड़ाई । " यह हीरा तो परखे विना ही रह जाएगा ! " वह मंगीकी ओर फिरी, उसने जोरसे कहा, " मंगी, मैं सो जाती हूँ । "

" महारानीजीकी, मरजी, " कह कर मंगीने किवाड़ोंके सामने अपना बिछौना बिछाना शुरू किया ।

रानीके हृदयमें असंतोष नहीं था, ईर्षा नहीं थी । जूनागढ़के विजेताकी वह स्वयं पटरानी है, और काक जीता है, इस बातसे उसके मनमें संतोष था । वह निश्चिंत होकर सोने लगी ।

११–देशलदेव

दूसरे दिन रातको जूनागढ़में अपनी हवेलीकी छतपर देशलदेव बैठा था।

काकने पाटणके मण्डलेश्वरके पुत्र रा' खेंगारके इस भानजेकी सूरत पन्द्रह वर्ष पहले पाटणमें आते समय जैसी देखी थी, * वैसी ही थी। उसका मुँह स्वाभाविक कुरूपता और उम्र दोनोंके प्रतापसे अनाकर्षक लगता था। उसकी आँखें पीली होनेपर भी तेजस्वी थीं। वह मुँहमें मूँछें दबाकर उन्हें जोरसे चबाता था। उसकी आँखें चंचलतासे घूमती रहती थीं। वह आज असंतोषी था, और स्वाभाविक असंतोषको पाल-पोसकर उसने उसे बहुत बड़ा कर दिया था। इस असंतोषका मुख्य कारण उसका पाटण और सोरठके साथका सम्बन्ध था। इन दोनों प्रतापी सिंहासनोंकी नींवके सामने उसका जन्म हुआ था।

उसका मस्तिष्क हमेशा इस तरह विचार किया करता:—यदि कर्णदेव महाराज अपुत्र मर गये होते, या जयसिंहदेव बचपनमें गुजर गये होते और उन्हे त्रिभुवनपाल जैसे वर्णसंकर या मुंजाल जैसे सहायक नहीं मिलते तो वह स्वयं आज पाटणका स्वामी होता। यदि खेंगार अपुत्र मर जाय, या उसका पुत्र मर जाय, तो वह जूनागढ़का मालिक हो सकता है परन्तु उसकी कमनसीबीसे दोनों सिंहासन नजरके सामने दीखते रहते और पास होनेपर भी और दूर चले जाते।

वह साठ वर्षका हो गया था। पहले तो ननिहालमें रहा फिर पाटणमें रहा, तब सोरठको मदद पहुँचानेके कारण मुंजाल खीझ गया और पाटणसे निकाल दिया। यहाँ आनेपर उदार खेंगारने आश्रय तो दिया; पर पूरा विश्वास नहीं किया। अंतमें थक कर उसने पाटण और जूनागढ़के बीच संधि कराके जयसिंहदेवकी मेहरबानी प्राप्त करनेका प्रयत्न किया। उदा महेताके साथ सलाह मशवरा शुरू किया और उसके द्वारा जयसिंहदेवको नरम किया। बड़ी मेहनतसे खेंगारका दृढ़, निश्चय ढीला किया पर राणकदेवी बीचमें आ गई। तब इसके असंतोषने मर्यादा छोड़ दी। अब उसे किसीका खयाल न रहा—चाहे जूनागढ़का पतन हो जाय, चाहे पाटण मिट जाय और चाहे जयदेव राणकदेवीको उठा कर ले जाय, उसे किसीकी परवाह नहीं रही।

* गुजरातके नाथ पृ० ३

अब तो वह आखिरी चौकीपर बैठा था और तकदीरकी आखिरी पँखुड़ी खोलनेका निश्चय कर रहा था। परन्तु उसे किस तरह खोलना, यह समझमें नहीं आ रहा था।

परन्तु पिछले थोड़े दिनोंसे उसके दिमागमें एक योजनाकी रचना हो रही थी और इस समय वही मनमें रम रही थी। वह मूँछें मरोड़कर हँसा, कितनी बढ़िया योजना!

कुछ दिनों पहले जब उसके भाई वीशलने एक बढ़िया खबर सुनाई तभीसे उसके दिमागमें इस योजनाकी रचना हो रही थी। खबर इतनी ही थी कि राणकदेवी चुपचाप किसी परपुरुषकी चाकरी करती है।

इस बातको सुनकर देशलदेवने अपने वहमको सच्चा समझा। इस साध्वी-सी दिखनेवाली रानीकी साधुता उसके किसी छिपे पापाचारकी ही साक्षी है। अब वह पकड़ी गई।

उसने गहरा विचार किया। जूनागढ़की दुर्जयताका आधार उसका गढ़ था; गढ़के आधार उसके नमकहलाल योद्धा थे; योद्धाओंका आधार खेंगारकी अटलता थी और उस अटलताका आधार देवड़ीकी एकनिष्ठा। यदि यह एक-निष्ठा झूठी ठहरे तो खेंगार डिग जाए, खेंगारके डिगनेपर सोरठी योद्धा निःसत्त्व हो जायँ; और यदि वे निःसत्त्व हो जायँ, तो गढ़ गिरे और गढ़के गिरनेपर जयदेव जीत जाय। जूनागढ़को ले लेनेके बाद जूनागढ़पर शासन करनेके लिए उसे किसी न किसी आदमीकी आवश्यकता तो होगी ही। फिर—फिर—एक सिंहासन तो हाथ लग ही सकता है।

देशलदेवको लगा कि मेरी उम्र अब पूरी होने आई है; और थोड़े ही समयमें आशाकी सब अट्टालिकाएँ धूलमें मिल जायँगी। तो फिर किसलिए यह अवसर हाथसे जाने दूँ?

वह उदा मेहताको बुलाकर उससे चुपचाप मिला, और जयसिंहदेवको जूनागढ़ जिता देनेका वचन दिया। उदा महेता संदेश लेकर वंथली गया।

इतनेमें 'भाग्यशालीको भूत रखे' जैसी बात हुई। एभल नायक लापता हो गया और पट्टणियोंने एभल नायककी चौकी ले ली। यह चौकी जूनागढ़का सच्चा नाका था और इस रास्ते कितने ही सालोंसे जूनागढ़के लिए अनाज जाया करता था। एभल पक्का होशियार और सोरठी था, और चारों ओर उसकी ऐसी धाक

जमी हुई थी कि पट्टणी सेनाने उसे जीतनेकी आशा कभीकी छोड़ दी थी। इस लिए उसे कोई छेड़ता नहीं था और वह चौकीमें बैठा बैठा चारों ओरसे अनाज, घास और जरूरी चीजें इकट्ठी करके, गढ़को टिकाए था। एभलके जानेसे जूनागढ़का अन्नदाता चला गया।

खेंगारने चौकीको फिरसे हाथ करनेके लिए जरूरी कदम उठाए। एभल नायकके ग्यारह लड़कोंने अपने पिताकी टेक रखनेके लिए चौकी वापिस लेनेका बीड़ा उठाया। पहले दो पुत्र गये, और मारे गये। उनकी जगह दूसरे दो गये। उनमेंसे एक कट गया और दूसरा घायल होकर वापस आया।

खेंगारने दूसरे दोको जानेके लिए कहा। छत्रसालने अपने स्वामीके हुक्मको माथेपर चढ़ाया; परंतु दादूका हृदय डिगा। पन्द्रह दिनमें पिता और तीन भाई मारे गये और एक भाई घायल हो गया। खेंगारने यह क्या करना शुरू किया है?

दादू देशलदेवका जमाई था। पतिको मृत्युके मुँहमें जाता देखकर दादूकी पत्नि विकल हो उठी। उसने आकर पिताके सामने आँसू बहाये। तब दादू बच जाय और उपयोगी हो सके, ऐसा एक रास्ता पिताको सूझ पड़ा।

इस समय वह दादूकी राह देख रहा था। इस किलेदारकी मददसे वह उदा मेहतासे जाकर मिल सकता था और समझता था कि इस समय वह उदा महेताका कुछ भी पैगाम लानेवालेका संदेश लायगा।

आखिर देशलदेव अधीर हुआ, चिल्लाया, "भीमा!"

एक वृद्ध अनुचर हाजिर हुआ।

"जा, दादू नायकको बुला ला, और छोटे बापू कहाँपर हैं?"

"अन्नदाता, छोटे बापू अभी तक नहीं आये, दादूभाईको बुला लाता हूँ।"

परंतु इतनेहीमें नीचेसे किसीकी आवाज आई, उसे देशलदेवने पहचाना।

"जा, बहुत करके नायक ही आये हैं। ऊपर भेज।"

"क्या बड़े बापू हैं?" एक आवाज आई।

"कौन नायक? आओ।" देशलदेवने कहा।

दो आदमी आये।

देशलदेव सँभल गया। उसने भीमाको नीचे जानेका हुक्म दिया।

१२–देशलदेवकी चिंता

देशलदेव कुछ चिंतातुर होकर इस नये आनेवालेकी ओर देखता रहा। जब ऐन मौका आता तब उसके छक्के छूट जाते। यह कौन होगा? इसके आनेसे क्या होगा? यह क्या संदेश लाया होगा? " किलेदार, यह कौन? "

वह आदमी पास आ गया। " देशलदेव महाराज, यह तो मैं हूँ। " ढाटा खोलते हुए उसने कहा।

" कौन वाहड़ मेहता? "

" जी, हाँ। " कहकर वाहड़ पास आकर बैठ गया।

" मेहता, ढाटा बाँध लो। "

" जो आज्ञा। "

" कहो, क्या खबर लाये हो? "

" पिताजीने महाराजसे बातचीत की है। महाराज आपपर बहुत प्रसन्न हैं, परन्तु कहते हैं कि आप वहाँ आवें, तब बात होगी। इस समय वे कुछ वचन तो नहीं देते हैं। "

देशलदेवने मूँछें मरोड़ीं, " तब? "

" पिताजीने कहलाया है कि आप आओ, पीछे जूनागढ़का कुछ फैसला हो तो महाराज किसीके लिए भी ' ना ' नहीं कहेंगे। "

थोड़ी देर तक देशलदेव कुछ बोला नहीं।

" अर्थात् मुझे जयसिंहदेवपर विश्वास रखना चाहिए और वह मेरेपर नहीं रखें, यही न? "

वाहड़ने जवाब नहीं दिया।

" और कुछ कहलाया है? "

" हाँ, मैं जब यहाँ आया था तब उड़ती हुई बात सुनी थी कि काक भटराज यहाँपर कैद हैं। "

" काक भटराज? " विस्मित होकर देशलदेवने कहा।

" हाँ। "

" जाओ जाओ– " हँसकर देशलदेवने कहा, " वे तो कभीके स्वधाम पहुँच गये। "

" यह झूठ है। वे आपके राजगढ़में कैद हैं। महाराजने खुद मुझे कहा है कि चाहे जिस तरहसे हो तुम उन्हें ले आना।"

" यह कैसे हो सकता है कि राजगढ़में हों और मुझे इसकी खबर न हो?"

" देशलदेवजी," दादू किलेदारने सिर हिलाकर कहा " मेहताजी जो कहते हैं वह बात सच मालूम होती है।"

" कैसे?"

" पिताजीकी मृत्युके बाद उनकी चौकी परसे मेरा भाई एक डोलीमें किसीको डालकर चुपचाप ले आया था।"

" कौन छत्रसालजी?"

" हाँ।"

देशलदेवके कपालपर सिकुड़न पड़ी। उसने जोरसे मूँछ चबाना शुरू किया। वीशलदेवने जो बात कही थी कहीं उसमें और इस बातमें कुछ सम्बन्ध न हो?"

" काकभट्ट भृगुकच्छवाला ही न?"

" हाँ।" वाहड़ने कहा।

" खेंगार महाराजके साथ राणकदेवीको इन्हींने परणाया था?"

" ऐसा लोग कहते तो हैं।" वाहड़ने कहा।

" अब मैं समझा।"

कुछ देर तक देशलदेव पड़ा रहा। वह जिस जोरसे मूँछें चबाता था उससे उसके विचारोंका वेगका पता लगता था। थोड़ी देरके बाद वह बोला—

" वाहड़ मेहता, क्या आप अभी वापिस जानेके लिए तैयार हैं?"

" हाँ, क्यों?"

" आपको यहाँ रखनेमें डर लगता है।"

" तब मैं जाता हूँ परंतु आप—

" उस दिन मैं जिस जगह आपके पितासे मिला था क्या वह जगह याद है?"

" हाँ।"

" कल रातको आप वहाँपर आइए। मैं आकर आपसे मिलूँगा।"

दादू चौंका, परंतु कुछ बोला नहीं।

"तो मैं जाऊँ ?" वाहड़ने पूछा।

"हाँ।" देशलदेवने कहा, "किलेदार, इन्हें कोटके बाहर छोड़ आओ। देखो, किसीको पता नही लगे। मैं अभी बापूके पास जाता हूँ और कुछ न कुछ, इस पार या उस पार, करके आता हूँ।"

"और मेरा क्या-" दादूने पूछा।

"आपका? घबड़ाते क्यों हैं? जहाँ मैं वहाँ आप। इन्हें बाहर छोड़कर दरबारगढ़में आ जाओ।"

"जी।" कह कर दादू किलेदार वहाँसे चलने लगा।

"देशलदेवजी," वाहड़ मेहताने कुछ ठहर कर कहा, "काक भटराजका क्या होगा।"

"उनका क्या?"

'उन्हें तो साथ लेना होगा?"

"नहीं तो?"

"नहीं तो महाराजके गुस्सेका पार नहीं रहेगा। मुझे खास आज्ञा दी है।"

"अरे हाँ, मुझसे जो कुछ बन सकेगा करूँगा। परंतु उसके विना क्या जयसिंह बैठे हुए हैं?"

"वे उन्हें बहुत मानते हैं।" वाहड़ने अपनी बातकी पुष्टि की।

"ठीक।" कह कर देशलदेवने सिर हिलाकर वाहड़को छुट्टी दी। वाहड़ने यह नहीं सोचा था कि देशलदेव इस तरह शीघ्रतासे छुट्टी दे देगा। परन्तु इस समय उसे कुछ पूछना ठीक नहीं लगा। वह चुपचाप चला गया।

देशलदेवने तुरत उठकर तलवार बाँधी, कमर कसी, मूँछें चबाते हुए वे घरसे बाहर निकले और दरबारगढ़की ओर चले। उनकी चाल-ढालमे तथा उनके शरीरकी लचकमें कुछ असाधारण क्षोभ था।

वे तत्काल ही दरबारगढ़ पहुँचे। जूनागढ़के ऊपर कोटमें जो इस समय मस्जिद है, वह असलमें रा' खेंगारका महल था—दुर्जय जूनागढ़का प्रतापी मध्यबिंदु था। खेंगार और राणकदेवी उसीमें रहते और वहींसे सोरठियोंको शौर्य और उत्साहकी भेंट बाँटते तथा राज्यभक्त सोरठी लोग इस प्रासादके लिए देवमंदिरके समान पूज्यभाव रखते थे।

देशलदेवके मगजमें ऐसे भावोंका अंश भी न था। बहुत बार वे विचार करते कि यह महल मेरा कब होगा? ऐसे विचारोंसे वे इस महलकी ओर आकर्षित होते थे, परंतु उसमें खेंगार रहता है, यह याद आते ही उनका चित्त खट्टा हो जाता था।

" बापू हैं?" उन्होंने द्वारके बाहर बैठे हुए सैनिकसे पूछा।

" कौन देशलदेव महाराज? हाँ, बापू ऊपर बैठे हैं।"

" जाकर पूछ आ कि मैं आऊँ?"

" अरे बापू, क्या आपको भी पुछवाना पड़ता है! जाइए, ऊपर छत-पर हैं।"

" क्या करते हैं?"

" घूमते होंगे।"

" ठीक।" देशलदेव महलमें दाखिल हुआ और झपाटेसे सीढ़ियोंपर चढ़कर ऊपरकी छतपर पहुँचा। वहाँ उसने चारों ओर देखा। छतके पूर्वकी ओर दो जन खड़े थे, यह उसने चन्द्रके मन्द प्रकाशमें देखा। वह धीरे धीरे उस ओर गया।

छत परसे चारों ओरका दृश्य देखकर देशलदेवके हृदयपर अकल्पित भार आ पड़ा हो, ऐसा मालूम हुआ। उसका क्षोभ बढ़ा और उसने चिंतासे हर एक दिशामें देखना शुरू किया।

गढ़के पीछे गिरनार अमानुषी रक्षकके समान खड़ा था। उसकी चोटियाँ शुक्ल पक्षके आधे चन्द्रके प्रकाशमें सुन्दर मालूम होती थीं। उसकी तलहटीके वनोंमें मंद समीर धीमी और मीठी आवाज कर रहा था। थोड़ी दूरसे सोन-रेखाका छोटा-सा पाट किसी किसी जगहपर चमकता हुआ दिखाई देता था।

दोनों बाजूपर चौकियोंकी चमकती शृङ्खलाके मनके निगाहमें आते थे। केवल मेंदरडाकी ओरसे कभी कभी चिल्लाहट सुनाई पड़ती थी और बीच बीचमें दौड़ते हुए घोड़ोंकी आवाज आती थी।

आगे-दूर-वंथलीके दीप जगमगा रहे थे। इन दीपकोंके विस्तारसे वंथलीकी सीमा तुरत मालूम हो जाती थी। वंथलीसे नगाड़ेकी आवाज भी आती थी।

जूनागढ़ और वंथली बारह वर्षसे लड़ रहे थे। पर्वत-शृङ्गके निवासी गरुड़-राजके समान खेंगारने अपने दुर्गम स्थानमें रहते हुए शत्रुका नाकों दम कर

रक्खा था। वनमें विचरनेवाले वनराजके समान जयसिंहदेवने चौगानमें निश्चिन्त बैठे बैठे गरुडराजको डराया था। परन्तु गिरिनिवासीके विहारकी सीमा दिनों दिन कम होती जा रही थी—वनचरका प्रताप दिनों दिन बढ़ता जाता था।

देशलदेवको वहीं खड़े खड़े पाटनके बढ़ते हुए प्रतापका पूरा ख्याल आया। धीरे धीरे जूनागढ़के गलेकी फाँसी सख्त होती जाती थी और एभलकी चौकी हाथमेंसे चले जानेसे थोड़े ही समयमें भूखों मरनेकी नौबत आनेवाली थी। यदि ऐसा ही हाल रहा तो थोड़े ही समयमें गिरनार गढ़ भी जमींदोज़ हो जायगा। देशलदेवके अंतरमें चिंता बढ़ गई। यदि खेंगार उसे नहीं जाने दे तो? जयदेव उसका सम्मान नहीं करे तो? उसके हृदयमें थोड़ी बहुत जो कुछ हिम्मत थी, वह भी चली गई। उसे यहाँसे भाग जानेमें ही अपना मोक्ष दिखाई दिया। उसे पश्चात्ताप हुआ। खुद किसलिए अब तक बैठा रहा? अब तक उसने खेंगारकी क्यों परवाह की? चारों ओर फैलनेवाली चन्द्रिकाने उसका दम घोट दिया। उसकी यहाँसे जीव लेकर भाग जानेकी इच्छा हुई।

खेंगार उसको कट्टर शत्रुके समान मालूम हुआ और उसकी रानी उससे भी भयङ्कर दुश्मन दिखाई दी। उसको अपनी निर्बलताका मूल मिल गया। इस राणकदेवीके जादूमें वह भी फँसा था। वह सचमुच जादूगरनी थी। वह जूनागढ़को दुर्जय गिनती थी और इससे और सब भी गिनते थे। वह पाटनके संधि साथ नहीं करने देती थी। इसलिए सब यह मानते थे कि पाटनके साथ संधिकी बातचीत करना अधमता है। उसके द्वारा फैलाये हुए अभिमानके वातावरणमें किसीका इतना साहस नहीं था कि कोई थोड़ा-सा झुकने तकका विचार करता और इसीसे उसे भी कोई रास्ता नहीं सूझता था।

वह जरा काँपा। देवड़ीको लोग अम्बा भवानीका अवतार मानते हैं। क्या यह बात सत्य होगी? क्या उसीने सबको अपने खप्परमें लेनेके लिए यह विग्रह चालू रक्खा होगा? क्या वह यह जानती होगी कि मैं खुद ऐसा विचार करता हूँ? क्या वह मुझे शाप दे सकेगी?

ये विचार ऐसे थे कि हृदय थम जाय। देशलदेवको पसीना आने लगा। मैं इस जगदम्बाके पाससे भाग जाऊँ या इसके खप्परमें ही पड़ जाऊँ? क्या

यह छोटी-सी निर्बल नारी, उसके, उसके भाईके और उसके पुत्रके प्राण लेगी ?

वह घबड़ाहटमें, अनिश्चिततामें थोड़ी देर तक खड़ा रहा और बादमें उन दोनोंका ध्यान खेंचनेके लिए धीरेसे खाँसा ।

१३—देशलदेवकी दृष्टिमें जूनागढ़का अपवित्र वातावरण

उन दो आदमियोंमें एक तो स्वयं रा' था। वह शान्त और स्वस्थ खड़ा था। उसकी दाढ़ी सावधानीसे सँवारी हुई थी। उसके खुले शरीरपर दिखाई देनेवाले आभूषण उसके शौकीन स्वभावकी इस समयमें भी साक्षी दे रहे थे। सिर्फ उसका चेहरा उदास था और उसकी आँखे वंथलीकी ओर जब घूमतीं तब उनमें खूनी तेज आ जाता था। उसके साथ खड़ा हुआ आदमी ठिंगना और बहुत ही मजबूत था। उसकी बड़ी बड़ी आँखोंकी पुतलियाँ बाहर निकली पड़ती थीं। उसकी बड़ी बड़ी मूँछें मुँहको ढककर जबड़े तक पहुँचतीं थीं। उसकी दाढ़ी चाहे जैसे उगी हुई और अस्त-व्यस्त थी। उसकी आवाज फटी हुई थी। वह बहुत ही मान तथा स्नेहसे रा' की ओर देखता था।

जब देशलदेव आया तब रा' शान्त आवाजसे बातचीत कर रहा था।

"छत्रसाल, जैसा तुम्हें दिखाई देता है वैसा मुझे भी दिखाई देता है। जूनागढ़के दिन पूरे हो गये। एमल नायककी चौकी गई और सोलंकीने आदमी इकट्ठा करना शुरू कर दिया। हम त्रिभुवनपालको भी आते हुए रोक नहीं सके।" उसने वंथलीकी ओर अंगुली की "वहाँ चारों ओरसे मनुष्य आ रहे हैं।" मानों दिव्य-चक्षुसे सैन्य गिन रहा हो ऐसी एकाग्रतासे रा' देखता रहा। "देखना है कि मेरा गिरनार कब तक टिकता है।"

"बापू, चूडासमाका राज्य अमर है। इतने वर्ष हो गये, पर सोलंकी कुछ नहीं कर सका।"

"छत्रसाल, मुझे कुछ भी भय नहीं है। सोलंकी भले ही यहाँ आजाए, और

वह भी रा' खेंगारकी समशेरका स्वाद चख ले। पर हमको अब बैठ न रहना चाहिए।" उसने धीरेसे कपालपर आये हुए बाल हटा कर कहा।

"बापू, आप जो कहें वह मैं करूँ। कल मैं अपने पिताकी चौकी लेने जानेवाला हूँ। यह चौकी हाथ आई कि फिर तो सोलंकी ठंडा हो जायगा।" छत्रसालने मुँहपर हाथ फेरा।

"परंतु तुम्हारा दादू माननेवाला नहीं," हँसकर रा' ने कहा।

"अरे उस नामर्दकी क्या मकदूर है?" छत्रसालने कहा, "बापू, वह तो पहलेसे ही ऐसा है। उसने बताया हुआ काम अभी तक नहीं किया। वह तो मैं साथ जाऊँगा तब ठीक होगा।"

इतनेमें पीछेसे देशलदेवके खाँसनेकी आवाज आई। दोनों उस ओर मुड़े।

"कौन है?" रा'ने पूछा।

"यह तो बापू, मैं।" कहकर देशलदेव आया।

खेंगारके मुँहपर तिरस्कारपूर्ण हास्य छा गया। "कौन देशलदेव महाराज? ओहो, ऐसे वक्तमें?"

"एक जरूरी काम है।" कहकर देशलदेव आया।

"इतना बड़ा क्या काम है?"

"बापू, छत्रसालजीके सामने..."

"देशलदेवजी," जरा मजाकमें रा'ने कहा, "निर्भय हो जाओ। छत्रसाल तो मेरा मित्र है, दाहिना हाथ है।"

"परन्तु--परन्तु--"

"अच्छा तो" रा'ने कहा "छत्रसाल, जरा नीचे चले जाओ, मैं अभी आता हूँ।"

"जैसी आपकी मरजी।" कहकर छत्रसाल चला गया। जाते जाते उसको आँखोंमें गुस्सा दिखा और क्षणभर वह देशलदेवके सामने घूरा।

"बोलो देशलदेवजी, क्या कहना है?" खेंगारने पूछा। उसकी शान्त आवाजमें मजाक था।

"बापू, मुझे जूनागढ़की ग्रहदशा ठीक नहीं मालूम होती।"

"किस ज्योतिषीसे पूछा?" रा'ने निर्दोष आवाजमें पूछा।

"अन्नदाता, मजाक छोड़िए। मुझे लगता है कि अपशकुन हो रहे हैं।"

"देवलदेवजी," गंभीर बनकर रा'ने कहा। "अपशकुन तो स्त्रियोंको होते हैं, तुम्हारे मेरे जैसोंको यह बात शोभा देती है?"

"बापू, क्या करूँ? पर मुझे तो लगता है कि अपनी अब आ बनी है।"

"इससे अच्छा और क्या? हम तुम क्या आरामसे मरनेवाले हैं? मरेंगे तो युद्धमें ही मरेंगे।"

"अन्नदाता, आप ऐसा क्या बोलते हैं?" देशलदेवने रुकते रुकते कहा, "मुझसे तो यह नहीं देखा जाता।"

"क्या किया जाय?" रा'ने मजाकमें कहा, "तो क्या जूनागढ़का पतन देखना है?"

"जूनागढ़के गिरनेमें बाकी क्या रहा है?"

"क्यों?"

"अधिक क्या कहूँ? परन्तु मुझसे इस तरह सहन नहीं होता।"

"क्यों? जूनागढ़को छोड़कर चले जानेकी इच्छा है?" तिरस्कारसे खेंगारने पूछा।

"हाँ, यदि अन्नदाताकी आज्ञा हो तो!"

"क्या कहा?" जरा विस्मित होकर और नीचे झुककर रा'ने पूछा। देशलदेव पीछे हटा।

"बापू, मेरा विचार तो आपकी बगलमें खड़े रहकर लड़ते लड़ते मर जानेका था।"

"तो अब कैसे बदल गया?" रा'ने तिरस्कारके साथ पूछा।

"जूनागढ़की कीर्ति गई, इससे।"

"जूनागढ़की कीर्ति!" खेंगारने तनकर कहा; "देशलदेव, तुम इस घरके हो इसलिए सब छूट है। नहीं तो तुम्हारी जीभ खींच लेता।"

"बापू, खींचनी हो तो भले ही खींच लीजिए। परन्तु हमसे तो यह देखकर सहन नहीं होता। रा' खेंगारके लिए क्या कहा जाता है?"

खेंगार थोड़ी देरतक देखता रहा और फिर कुछ हँसकर बोला, "क्या कहा जाता है?"

"कि,—कहूँ बापू ?—क्या करूँ, कहना पड़ता है। बापू, सब कहते हैं कि जूनागढ़में मर्दका राज्य नहीं, स्त्री राज्य करती है।"

रा' कुछ देर तक चुप रहा। पर बादमें अपनी हमेशाकी शान्त आवाज़में बोला; "हाँ, मेरी सती राज्य करती है। मैं तो इसीमें अपना बड़प्पन समझता हूँ। देशलदेव, तुम्हें भले ही बुरा लगे।"

"बापू, ज्यादा मत बुलवाइए। मैं कुछका कुछ कह बैठूँगा। पर मैं क्या करूँ ? जो सती हो उसके सामने कोई बोल सकता है ?" उसने सती शब्दपर भार देकर कहा।

"क्या कहा ?" खेंगारने जोरसे कहा। उसकी शान्त आवाज गरज उठी, आँखें प्रज्वलित हो उठीं। उसने अनजानमें ही दाहिने हाथकी मुट्ठी बंद कर ली। देशलदेव घबड़ाया। वह बोलते तो बोल गया, पर इन शब्दोंका क्या परिणाम होगा, इसका विचार आते ही वह काँपने लगा।

"क्षमा कीजिए अन्नदाता, बापू, मामाजी, मैंने तो जो किंवदंती सुनी, वह कह दी। कोई कहता था कि सती छुपे छुपे परपुरुषकी चाकरी करती है।"

रा' चुपचाप खड़ा रहा। वह थोड़ी देर तक उस नराधमकी ओर देखता रहा।

"ऐसा ?" उसने दाँत पीसकर मजाककी आवाजमें कहा।

"देशलदेव मैंने बहुत-से हरामी देखे हैं, परन्तु तेरा जोड़ मुझे नहीं मिला।" रा' ने बहुत ही शान्तिसे कहा। "देवड़ीको पगली कहते सुना है—कुलटा कहनेवाला तो तू ही निकला।"

"बापू ! बापू !" गिड़गिड़ाते हुए देशलने कहा. "मुझे माफ कीजिए, मुझे जाने दीजिए।"

"अब कहाँ जाता है ?" कहकर खेंगार आगे आया। "मैं तुझे बराबर पहचानता हूँ। चल।" कहकर रा' ने आगे हाथ किया।

"कहाँ ?"

"रनिवासमें देवड़ीसे मिलनेके लिए।"

"बापू !" देशलदेव बोला।

"चल।" कह कर खेंगारने देशलदेवका हाथ पकड़ा।

देशलदेव निराधारतासे देखता रहा, परंतु आखिर रा' की आवाजके गुस्सेको समझकर घबड़ा गया और आगे चलने लगा, पीछे पीछे खेंगार चला।

छतके एक कोनेपर रनिवासमें उतरनेकी सीढ़ी थी। वहाँ दोनों आये। उतरनेके पहले देशलदेवने कुछ पीछे फिर कर देखा। उसने रा' की विकराल आँखें देखीं और कुछ बोले विना ही वह सीढ़ियाँ उतरा। देशलदेवकी बची हुई हिम्मत चली गई।

उसने साथमें चलते हुए मामाकी ओर तिरछी आँखसे देखा। शान्त स्वरूप-वान् और गौरवशील रा' शानसे चल रहा था। बारह वर्ष तक तकलीफें सहन करने पर भी उसने न तो हिम्मत हारी थी और न अपनी टेक छोड़ी थी। उसे देखकर देशलदेवके हृदयमें द्वेषका तूफान आ गया। उसे लगा कि जब तक इस रा' के भारसे पृथ्वी दब रही है तब तक मेरा सोनेका सूरज उगनेवाला नहीं। यदि मेरा वश चले तो इसी समय इसे उठा कर, स्वयं जूनागढ़की गद्दीपर चढ़ बैठूँ। परंतु क्या करता? चुपचाप चलता रहा। वे रनिवासमें आए।

" सती, भीतर हो? " खेंगारने पूछा।

" पधारिए, " अंदरके कमरेमेंसे आवाज आई। आवाजमें खिन्नता थी, माधुर्य था और फिर भी दबे हुए भावोंकी समृद्धि बतलानेवाला कंप था। रा' ने कुछ उत्साहसे कदम बढ़ाया। देशलदेवके हृदयमेंसे सारी आशाएँ जाती रहीं।

वे अंदर गये। एक मंद दिया जल रहा था। राणकदेवी चौकीपर बैठ कर एक आलेमें स्थापित की हुई अम्बा भवानीकी मूर्तिकी पूजा कर रही थी। वह छोटी-सी देवड़ी अपार्थिव मालूम होती थी। उसके काले कपड़े उसके शरीरकी रेखाओंको रात्रिके अन्धकारके साथ मिला देते थे और उसका छोटा और तेजस्वी मुख अन्धकारमें एक अपूर्व तेजके चक्रके समान शोभित हो रहा था।

" सोमली, चौकी ला। "

" नहीं, जरूरत नहीं। हम चौकीपर बैठनेके लायक नहीं। सती, तुम्हारा भानजा मिलनेके लिए आया है और साथमें न जाने क्या क्या गप्प लाया है। "

राणकदेवी हँसी। उसके मीठे मंद हास्यमें तटस्थ स्नेहवृत्ति थी।

" यह कहता है कि जूनागढ़के दिन पूरे हो गये हैं। "

हास्यमें क्षमाने साथ दिया : " मेरे रा' के जीते जी जूनागढ़का क्या हो सकता है ? " देशलजी, ऐसी बात कहाँसे ले आये ? "

देशलदेवने हृदयमें स्फुरित होनेवाले लज्जाके भावको दबानेका प्रयत्न किया।

" मामी, क्या लोगोंकी जीभपर ताले लगाये जा सकते हैं ? "

" तब लोगोंसे जाकर कहो कि जब तक मेरे रा' हैं, तब तक साक्षात् ब्रह्मासे भी कुछ होनेवाला नहीं। "

" अरे, केवल इतनी-सी ही बात नहीं है। " दाँत पीस कर खेंगारने कहा। वह छलांग मारकर अन्दरके कमरेकी ओर गया और किसीसे बोला : " थोड़ी देरके लिए बाहर तो आओ। " वह फिर लौट आया। उसका शान्त चेहरा चमक उठा, " सती, इस हीरेने एक नई बात खोज निकाली है। "

खेंगारकी आवाजने स्वाभाविक दिखाई देनेवाला स्वास्थ्य खो दिया। उसकी धीमी परन्तु भयंकर आवाजमें खूनी झंकार उठी। उसका हाथ काँपा। देशलदेव बीचमें बोलने लगा, " बापू—"

दाँत पीसकर खेंगार उसके सामने चिल्लाया, " विषैले सर्प, तुझे बहुत वर्षों तक दूध पिलाया, पाला, आश्रय दिया, फिर भी तूने विश्वासघात करके द्रोह किया, दुश्मनके साथ व्यवहार रखा। परंतु मैं कभी अपना धर्म नहीं चूका; आज तू मेरी सतीकी कीर्ति कलङ्कित करनेके लिए आया ! "

" आप क्या कहते हैं ?" जरा खेदयुक्त वाणीमें राणकदेवीने कहा।

" यह पवित्रताकी दुम तुम्हारी जैसी कलङ्किनीके गाँवमें कैसे रह सकता है ? " कटाक्षसे रा'ने आगे कहना जारी रखा, " तुम तो पर-पुरुषकी चाकरी करती हो। " फिर देशलदेवकी तरफ घूमकर कहा ? " वह परपुरुष कौन है, जानना है ? इसे देखा ? " खेंगारने पासके द्वारकी तरफ हाथ कर दिया।

देशलदेवने द्वारकी ओर देखा, तो एक ऊँचा पर तेजोहीन आदमी द्वारके बीच खड़ा था। उसके कपालपर पट्टा बँधा था। उसकी मुखमुद्रा कठोर थी, फिर भी वह हँस रहा था। देशलदेवको ऐसा लगा कि मानों यह मुद्रा कुछ परिचित है और एकाएक वह बोल उठा, " भटराज काक ! "

" हाँ। " खेंगारने कहा " पन्द्रह वर्ष पहले पाटणमें मिला था, याद है ? यह सती जिसकी चाकरी करती है वह यही है। नामर्द, अब बोल, तुझे क्या कहना है ? तेरी जीभ क्यों बंद हो गई ? "

देशलदेवको कुछ भी होश नहीं रहा। भय, क्षोभ, आश्चर्य और निराशाके बीच उसे कुछ भी नहीं सूझा। उसने खेंगारके ज्वलंत मुखकी ओर देखा, और मजाकमें हँसते हुए काकके मुँहकी ओर देखा। दोनों यमदूतके जैसे खड़े थे।

"बापू, मामी, मुझे माफ कीजिए।"

"तुझे माफ करूँ?" रा'ने दाँत पीसकर कहा और देशलके पास जाकर उसका कान पकड़ा। "बदजात! क्या करूँ कि तूने मेरी बहनके पेटसे अवतार लिया है, नहीं तो तेरे प्राण ले लेता। अब तुझे जीते जी कैदखानेमें बंद कर रखता हूँ।"

देशलदेवके होठ फीके पड़ गये। "बापू! बापू!" कानकी दुःसह वेदनासे वह गिड़गिड़ाने लगा।

"अब बापू?" खेंगारने कुछ शान्त होकर कहा, "तू इस पापी गाँवमें कैसे रह सकता है? ठीक है या नहीं? गिरनारपर मेरे गढ़का भोंहिरा है, वहाँ रह सकेगा।"

"क्या मुझे—" देशलदेवके पाँव लड़खड़ाने लगे।

"हाँ—तुझे।"

"मामी!" देशलदेवने कहा।

खेंगारने राणकदेवीकी तरफ देखा। उसके नेत्र क्षणभर देशलदेवपर ठहरे।

"इसे छोड़ दीजिए।"

"क्या कहती हो? सती, यह तो काला सर्प है।"

राणकदेवी हँसी। उसके फीके हास्यमें मिठास थी। "इसकी क्या मकदूर है कि यह जूनागढ़के स्वामीको डॅसे? परन्तु कैद करनेसे आपपर लांछन लगेगा। यह चाहे जैसा हो, फिर भी भानजा है।"

"क्या किसी भानजेको कृतज्ञ होते देखा है?"

"परन्तु मामाकी बड़ाई इसीमें है कि वह भानजेको माफ करे।" राणकदेवीने कहा। "और इसे कुटुम्बियोंमें जाने दो।"

"हाँ।" हँसकर रा'ने कहा। "इसके लिए वंथली बहुत ठीक होगा और साथ ही साथ इसके उस भाईको भी निकाता हूँ। दोनों बराबर हैं।" उसने तानेके साथ देशलदेवकी ओर देखा, "मेरे भानजे, सुना? अपने पिताके यहाँ जाओ। अब इस ननिहालमें जगह नहीं है।"

" मैं कल—"

" कल ? " रा'ने तिरस्कारसे कहा, " क्या ज्यादा गडबड़ करना चाहते हो ? अभीके अभी—इसी घड़ी, चले जाओ, एक घड़ी भी अधिक नहीं रह सकते। चलो, मैं अभी छत्रसालको कहता हूँ। वह वीशलदेवको बुला लाएगा। छत्रसाल! छत्रसाल!" उसने आवाज दी। छत्रसाल आकर द्वारके सामने खड़ा हो गया। " छत्रसाल, मेरे इस सम्बन्धीको गाँवके बाहर निकालना है। इसके भाईको भी बुलानेके लिए किसीको भेज। और यदि इन दोनोंमेंसे एक भी थोड़ी-सी आनाकानी करे, तो तुझे लात मारते तो आता है न ? ठीक, सिधारो।"

देशलदेवने नीचा मुँह किये छत्रसालके साथ चलना शुरू किया।

छत्रसाल देशलदेवको लेकर बाहर आया। सामने उसे दादू किलेदार मिला।

" दादू, " छत्रसालने पूछा, " तुम यहाँपर ही रहना, मैं अभी आता हूँ।"

" ठीक।" छोटे भाईने कहा।

" छत्रसाल, " पीछे आनेवाले रा'की आवाज आई; " जरा खड़ा रह।" रा' बाहर आया। " वापस आते समय सामंत जादवको बुला लाना।"

" जी।"

" इतनेहीमें इस बातका लाभ लेकर देशलदेवने दादूको धीरेसे कहा : " एक दो रात गढ़पर ही रहना।"

दादूने आँखके इशारेके द्वारा 'हाँ' कहा।

१४—खेंगारका संकल्प

रा' लौटकर निवासमें आया, तब काकका मुँह गंभीर हो रहा था।

" क्यों ? तुम्हें ठीक नहीं लगा ?" खेंगारने पूछा।

" आपने भूल की। यह हरामखोर यहींपर ठीक था।"

" बाहर यह क्या कर लेगा ?" राणकदेवीने पूछा।

" इस समय आपको तो थोड़ी-सी भी कठिनाई नहीं बढ़ानी चाहिए। "

" अरे, जाओ जी। इसके द्वारा एक सेका हुआ पापड़ तो टूट नहीं सकता। " खेंगारने कहा; परन्तु उसकी आवाजसे ऐसा लगा कि उसे पश्चात्ताप होने लगा है।

राणकदेवी धीरेसे रा' के पास आई। " ये दोनों चले गये, तो चैन मिली। हमारे धर्मविग्रहमें ये ही कलङ्क थे। " उसने कुछ हँसकर कहा। उसकी आँखें क्षणभर रा' के ऊपर ठहरीं। उनमें श्रद्धा और अटलता थी। खेंगारने अपनी पत्नीकी श्रद्धा देखी और उमंगसे उसके कंधेपर हाथ रख दिया।

" सती, ठीक बात है। ऐसोंके स्पर्शसे हम दूषित होते हैं। काक, " खेंगारने हँस कर कहा। " जूनागढ़के रा' सदासे धर्मयुद्ध ही करते आये हैं। "

" मैं जानता हूँ, बापू। जानता हूँ। " कुछ ऊबकर काकने कहा, " पर मैं उस युद्धको धर्मयुद्ध मानता हूँ, जिसमें विजय हो। "

" काकभटजी, " राणकदेवीने कहा, " मैं आपकी टेक जानती हूँ, भला। हम इस तरह ठगाये जानेवाले नहीं हैं। चलिए, ऊपर छतपर चलें। बहुत गर्मी लग रही है। "

" आप दोनों जाइए। मैं कुछ ही देरमें आ पहुँचता हूँ। "

राणकदेवीकी आँखें रा'की आँखोंके साथ मिलीं। जो प्रेम मानमें, संयममें और विपत्तिमें अदृष्ट रहता था वह क्षणभरको दिखा। देवड़ी धीरे धीरे छटाके साथ कदम बढ़ाती हुई आगे चली, पीछे पीछे खेंगार गया और काककी आँखें इस जोड़ीकी एकतानता देखकर गीली हो गईं।

उसने निःश्वास छोड़ा। ये दोनों विपत्तिमें भी साथ हैं। प्रभुने मुझे अपनी मंजरीके साथ रहनेका सौभाग्य नहीं दिया!

खेंगार और राणक छतपर गये। राणक देवीने स्नेहसे गिरनारके सामने देखा। उसके हृदयमें वह निर्जीव पत्थर नहीं था, परंतु समभावी इष्टदेव था। सुबह और शामको वह उसके सामने देखती और उसके हर घड़ी बदलनेवाले रंग उसके चित्तपर जुदी जुदी असर करते। इस समय वह चाँदनीमें उसे हँसता हुआ मालूम हुआ।

" आज मेरा गिरनार खुश है। " उसने हँस कर कहा।

"तुम्हें देख कर कौन खुश नहीं होता ?" खेंगारने स्नेहसे उसके कंधेपर हाथ रखा, "सती, देखो न, आज यदि तुम नहीं होतीं तो मेरा क्या होता ?"

"वाह मेरे सोरठके धनी !" उसने मंद मुसकराकर कहा, "आप भी पत्नीके पीछे पागल हो गये !" वह कुछ कटाक्षमें बोली, पर उसकी आँखोंमें गंभीर और गहरा स्नेह था। उसने खेंगारके हाथमें हाथ रखा।

"तुम्हारे पीछे पागल होनेमें भी बड़प्पन है। परन्तु सती, हमारा क्या होगा ?"

"क्यों ?" देवड़ीने आश्चर्यसे पूछा।

"क्यों क्या ? उधर वंथलीको देखा ? उसकी सीमा दिनों दिन बढ़ रही है और हमारी चौकियाँ देखीं ? दिनों दिन पास आती जाती हैं।"

"मेरे रा," उसने धीरेसे अपना कपाल खेंगारके कंधेसे छुवाया, "क्या आपका हृदय भी डिगने लगा ?"

"नहीं," गर्वसे रा'ने कहा, "सती, मेरे बाप-दादा लड़ते आये हैं और लड़ते हुए मरे हैं। मैं उनके सामने भी झुक नहीं सका हूँ, तो सोलंकीके सामने क्या झुकूँगा ! परंतु आँखोंने जो देखा, वह क्या अदेखा हो सकता है ?"

देवड़ीने अवर्णनीय भावसे खेंगारके गलेमें हाथ डाला। "मेरे रा, मैं अबला हूँ। ज्यादा तो क्या कहूँ ? परन्तु झुकनेकी अपेक्षा तो न जीना अच्छा।"

खेंगार इस निर्बल दिखाई देनेवाली स्त्रीकी ओर देखता रहा। उसके हृदयमें प्रचण्ड लहर उठी। उसने देवड़ीको छातीसे लगा लिया। उनके भावोंमें, बात-चीतमें, गांभीर्य और संयम था, एक दूसरेमें अगाध श्रद्धा थी।

"सती, तुम हो, तब तक मैं ऐसाका ऐसा रहूँगा।"

"मैं होऊँ या नहीं, परन्तु मेरे टेकीले रा' तो ऐसे ही रहेंगे।"

पाँच पल तक दोनोंमेंसे एक भी नहीं बोला। वातावरणमें भी असाधारण गांभीर्य था, मानों सृष्टिकी पालपर खड़े रहकर अनंत व्योममें कूदनेकी तैयारी कर रहे हों, इस तरह वे खड़े थे।

कोटके बाहर--दूर किसीकी चीख सुनाई दी। रा'ने देखा तो तीनेक कोस दूर दिखनेवाला एक दीपक बुझ गया।

"सती," होठ दबाकर रा'ने कहा, "हमारी एक चौकी गई।"

"कल सुबह वापस ले लेना।" देवड़ीने तुरत जवाब दिया।

रा' ने जवाब नहीं दिया। दोनों बहुत देर तक चुपचाप खड़े रहे। इतने-हीमें बाहरकी सीढ़ीसे कोई ऊपर आया।

"कौन है?" रा' ने पूछा।

"बापू, सामंत थानेदार आये हैं।"

"कौन दादू?"

"हाँ बापू।"

"जा सामंतको ले आ।"

"जी।" कहकर दादू गया?"

"बापू, मैं आऊँ?"

"कौन, काका?"

"हाँ बापू!" नायकने जवाब दिया।

"आओ आओ," खेंगारने हँसकर कहा। दोनों आये, और पहले उन्होंने राणकदेवीको साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

"मैं जाऊँ?"

"नहीं, तुम्हारी जरूरत होगी, बैठो।" खेंगारने कहा और दोनों वहाँपर बिछी हुई गादीपर बैठ गये।

सामंत थानेदार वजेसंग नायकको साथ ले आया था। दोनों वृद्ध थे और दोनोंकी सफेद दाढ़ी उनके गौरवमें वृद्धि करती थी। पीछे दादू भी आया।

सोरठियोंके लिए राणकदेवी रानी नहीं थी, उसी तरह स्त्री भी नहीं थी; उसे वे सती और माता मानते थे। वृद्ध और बाल, पुरुष और स्त्री, उसे पूज्य गिनते थे; इतना ही नहीं, परंतु उसके पास ईश्वरी शक्तियाँ भी हैं, ऐसा मानते थे। सारे सोरठमें उसके नामकी मनौती मानी जाती और दुःखी लोग उसकी आशीष लेकर अपना दुःख दूर करनेकी इच्छा रखते। वह पर्दा नहीं रखती थी और बहुत बार गाँवके लोग उसके दर्शनके लिए आते।

इस समय ये दोनों वृद्ध पुरुष भी देवड़ीको बैठी हुई देखकर कुछ संकोचसे सन्मानपूर्वक बैठे। वे रा' को चाहते थे, परंतु रानीको पूजते थे।

"क्यों काकाजी, सब खुश तो हैं?" राणकने पूछा।

"हाँ माताजी, तुम्हारे प्रतापसे सब खुश हैं। मेरे बापू, आप कैसे हैं?"

"मजेमें, सुना है न? देशलदेवको निकाल दिया।"

" मेरे सोरठके धनी, जीते रहो। इसकी तो यही गति होनेवाली थी। आपके धर्मराजमें इतना-सा ही धब्बा था। '

" अरे, यह दादू खीझेगा, " खेंगारने कहा।

" मेरे बापू, आप बहुत उदार हैं। नहीं तो इतने वर्षोंतक कोई इसे नहीं निभाता। ऐसा कहिए कि दादू नसीबदार है, नहीं तो इसकी क्या गति होती ? "

दादू जरा घबड़ाया। अपने बापकी चौकीकी रक्षा करनेके लिए तो मुझे नहीं भेज रहे हैं ?

" बापू ! " सामंत थानेदारने कहा, " वह चौकी खत्म हो गई, आपने देखा ? "

" हाँ। "

" अन्नदाता, अब हमें कुछ करना चाहिए। "

" मैं भी यही सोचता हूँ। हमें चाहे जैसे हो एभल नायककी चौकी लेनी चाहिए। "

" मेरे सोरठके धनी, जीते रहो। " वजेसंगने कहा। " जैसा तुम्हारा शौर्य वैसे तुम्हारे बोल। मेरे बापू, करो फतह। "

" काका, इसके सिवाय चारा नहीं है। नहीं तो थोड़े दिनोंमें हमें भूखों मरना होगा। इसीलिए मैंने जादवको बुलाया है। "

" बापू " सामंतने कहा, " हम कल आधी रातके बाद निकलें। मैं तीन सौ सोरठियोंको तैयार करता हूँ। "

" सती, तुम क्या कहती हो ? "

" मेरे रा ' चढ़ाई करेंगे और विजयी होंगे। " राणकदेवीने कहा।

" माताजी, जीती रहो।" वजेसंगने कहा। " मेरे वीर, माता कहती हैं वह सत्य है। मेरे स्वामी, विजय करो। "

" इतना ही नहीं, पर मुझे लगता है कि इस तरह बैठे रहनेमें बुद्धिमानी नहीं। यह चौकी लेकर, हम मेंदरडापर छापा मारें। " खेंगारने कहा, " हम बैठे रहते हैं और सोलंकी सबल होता जाता है। "

" मेरे बापू, आपने बिलकुल ठीक कहा। " वजेसंगने कहा।

" बापू, यह भी ठीक विचार है।" सामंतने कहा। "जितने चाहिए उतने आदमी तैयार हैं।"

"ठीक, तब सामंत, तुम और छत्रसाल तैयारी करो और काका, तुम्हें गढ़की रक्षा करनी है।"

"बापूकी मरजी।"

"ऐसा युद्ध करें," होठसे होठ दबाकर गर्वसे खेंगारने कहा, "कि हमारी सात पीढ़ियाँ तिर जायँ।"

राणकदेवी एक म्लान हास्यके द्वारा प्रोत्साहन दे रही थी।

"और दादू, तुम क्या करोगे? चौकी लेने जानेके लिए हिम्मत न करोगे?" रा' ने पूछा।

"बापू, आपकी जो आज्ञा होगी वह करनेके लिए तैयार हूँ।"

"तुम यहाँपर गढ़की रक्षा करना।"

रा' बोलते बोलते रुक गये। नीचे दो चार आदमी दौड़ते हुए आये हों, ऐसी आहट हुई और एकदम कोलाहल मच गया। छतपर बैठे हुए सब खड़े हो गये।

दो तीन आदमी एकदम ऊपर आये। सबसे आगे दादूका भाई रायघण हाँफता हाँफता आया।

"बापू! बापू!"

"क्या है?" रा'ने पूछा।

"छत्रसालजी मारे गये।" वीशलदेवजीको ढूँढ़ने बड़े भाई उनके घर गये, और वहाँ मोघां भाभीने कटार भोंककर मार दिया।

१५—सतीका आशीर्वाद

मोघां भाभी देशलदेवकी पुत्री और दादू किलेदारकी धर्मपत्नी। ससुराल और मायका दोनोंको कँपानेवाली कुलदेवी। असाधारण ऊँचाई, भरावदार शरीर, बड़ी नाक, फटी आँखें, तीखी आवाज, ये सब उसके स्वभावकी उग्रता और मुँहफटपनेका थोड़ा-सा दर्शन कराते थे। उसके हृदयमें यदि किसीके लिए

कुछ स्नेह था तो केवल देशलदेवके लिए, और यदि देशलदेवका हृदय कभी आर्द्रता अनुभव करनेका कष्ट करता तो वह केवल अपनी पुत्रीके लिए।

छत्रसाल देशलदेवको लेकर वीशलदेवको लेने आया, तब मोघां भाभी ससुराल जानेकी तैयारी कर रही थी। इतनेमें बाहरकी बातचीत सुनकर उसके गुस्सेकी सीमा नहीं रही। वह किवाड़के पीछे खड़ी रही। उसने थोड़ा-सा देखा और सुना कि उसका हाथ कमरमें खोंसी हुई कटारपर गया। जैसे ही देशलदेव बाहर जानेके लिए निकले, वह बाहर आ गई।

" बापू, कहाँ जाते हो ? "

" मुझे रा' ने गाँवसे निकाल दिया है।" देशलदेवने कहा।

" और तुम ले जा रहे हो ? " छत्रसालके सामने फुंकार करके मोघांने पूछा।

" तू अपना काम—" जेठ जवाब देने जाता था, परन्तु वह कुछ बोले, उसके पहले ही मोघांने कटार निकालकर उसकी छातीमें भोंक दी।

छत्रसाल गिर पड़ा। देशल और वीशल घबड़ा गये। मोघां शान्त थी। " देखती हूँ कि कौन तुम्हें गाँवके बाहर करता है ? " उसने कहा।

" लड़की, तूने तो सत्यानाश कर दिया।" पिताने घबड़ाहटमें मूँछें उखड़ जायँ इस तरह चबाकर जवाब दिया।

रायघण छत्रसालके साथ आया था, वह घबड़ा गया और एकदम रा' को खबर देनेके लिए दौड़ा।

खबर मिलते ही रा, थानेदार, वजेसंग नायक और दादू किलेदार एकदम रायघणके साथ आ पहुँचे। पीछे थोड़ेसे आदमी भी आये। राणकदेवी भी दो तीन दासियोंको लेकर आई।

देशलदेवकी हवेली राजगढ़के पास ही थी। स्वस्थ रा' वहाँ इकट्ठे हुए लोगोंको दूर हो जानेकी सूचना देकर भीतर बढ़े। किवाड़के सामने ही बेहोश छत्रसालको दो आदमी सहारा दे रहे थे और देशल तथा वीशल खड़े थे। अंदरकी खिड़कीमेंसे घबड़ाई हुई स्त्रियाँ देख रही थीं।

रा' क्षणभर खड़ा रहा और फिर तिरस्कारसे देशलदेवके सामने देखने लगा।

" देशलदेव " उसने भयंकर शान्तिसे पूछा, " तुम कौन-सा मुँह लेकर यहाँ खड़े हो ? थानेदार, इन दोनों सर्पोंको देखा ? इन्हें गाँवके बाहर निकाल आओ। यदि थोड़ी-सी भी फुंकार करें, तो गर्दन मरोड़ देना।"

" बापू, " देशलदेवने काँपते हुए कहा, " यह मेरा काम नहीं है । "

" तुम्हारा नहीं तो तुम्हारी लड़कीका, बहुत अन्तर नहीं । मुझे एक शब्द भी ज्यादा नहीं सुनना है । चले जाओ, काला मुँह करो । "

रा'के मुँहकी उग्रता देखकर वहाँ जो हाजिर थे सब काँप उठे । देशलदेवने चुपचाप थानेदारकी ओर देखा और नीची नजर किये चलना शुरू किया । वीशलदेव पीछे गया । जाते जाते देशलने दादूकी ओर देखा । किलेदार अपने भाईकी ओर गया था और उसके घावमेंसे बहता हुआ खून रोकनेकी कोशिश कर रहा था । वह ससुरकी नजरका अभिप्राय समझा । उसमें कल रात्रिको गढ़पर रहनेका फरमान था ।

इतनेहीमें इकट्ठी हुई भीड़ने दूर होकर मार्ग दिया और राणकदेवी आई । लोग मौन धारण किये खड़े रहे । जिससे उसका थोड़ा-सा भी स्पर्श हो जाता वे उसके पाँव छूने लगते । वह आकर छत्रसालकी ओर गई और उसकी परि-चर्यामें लग गई । थोड़ी देरमें वह वहाँ बैठ गई और एक पंखा लेकर उसपर हवा करने लगी ।

" वह मोघी कहाँ है ? " रा'ने पूछा, और दादूकी ओर देखा ।

अन्दरके द्वारमेंसे कोई आया और पूछा, " क्यों क्या काम है ? मैं यह हूँ । "

सब स्तब्ध हो गये । रा'की हाजिरीमें इस तरह आना और बोलना यह अकल्पनीय था । यह लड़की क्या कर रही है ?

" दादू, अभी तो इसे अन्दर बन्द कर दे, फिर देखूँगा । " रा' ने कहा ।

दादू स्त्रीकी पूजा करनेके लिए कभीका तड़प रहा था, परन्तु रा' और देवड़ीकी हाजिरीसे लज्जित हो रहा था । रा' की आज्ञा होते ही वह आगे बढ़ा ।

" मेरा कौन क्या करेगा ? " आगे आकर मोघी बोली । उसकी बड़ी बड़ी आँखें विकराल लगती थीं और वह क्रोधसे काँप रही थी । उसके हाथ अभी तक खूनसे भीगे थे । वह रा' की ओर देखती रही । रा' ने दादूकी ओर देखा ।

दादूका–बेचारे नरम किलेदारका—खून खौल उठा । उसने बहुत वर्षों तक इस हिडिम्बाका त्रास सहन किया था, परन्तु इस समय उसने उसके बड़े भाईको मार डाला और वह उसके पूज्य रा' का अपमान करनेको तुल गई । इससे

उसमें जो रही सही विनाशक वृत्ति थी वह सबल हो गई। मोघांको मारना, उसे दबा देना, उसे वशमें करना, ऐसा आवेश उसके जीवनमें पहली ही बार प्रकट हुआ। वह पास गया ।

" दादू, " राणकदेवीने कहा, " इसे जाने दे, व्यर्थका पाप अपने सिरपर मत ले। " देवीकी आवाजमें मिठास थी।

हर एक आदमी या तो मोघांकी तरफ देख रहा था या राणककी तरफ। एक ओर बिफरी हुई स्त्री-शक्तिकी प्रतिमा मोघां इस बातकी राह देखती खड़ी थी कि मुझे कौन डराता है ? और दूसरी ओर अपना भिगोया हुआ पल्ला छत्रसालके मुँहपर फेरती संरक्षक वृत्तिकी अवतार देवड़ी बैठी थी।

रा' भी कमरेके बीच अपनी निश्चयात्मकता बतलाता हुआ खड़ा था। आवेशसे अस्वस्थ दादू हाँफ रहा था।

सारे कमरेमें शान्ति फैल रही थी। रानीके बोल चुकनेपर दादू मोघांका हाथ पकड़ने गया।

" रहने दो, " मोघांने अपमानकारक आवाजमें अपने पतिसे कहा, " नहीं तो जैसी तुम्हारे भाईकी गति हुई वैसी तुम्हारी होगी। "

यह अपमानकी पराकाष्ठा थी। दादूने दाँत पीस करके हाथ उठाया। रा' ने भी अधीर होकर तलवारपर हाथ डाला। रानीने छत्रसालकी ओर नजर डाली, मोघांकी ओर देखा और मृदुतासे छत्रसालके कपालपर आये हुए बाल दूर किये।

" दादू, धीरज रख, " रानीने शान्तिसे कहा, " अम्बा भवानी चाहेंगी तो सब कुछ अच्छा होगा। "

बोलते समय राणककी आवाज जरा काँपी, फिर गरजी। कोई चमत्कारिक क्षण हो, इस तरह सारा कमरा हिलने लगा। सभी कंपित हुए और मानों मोघांके जवाबमें हो, या सतीकी आज्ञासे हो इस तरह, छत्रसालने आँखें खोलकर राणकदेवीपर ठहरा दीं।

" सती माताकी जय ! " छत्रसाल धीरेसे बड़बड़ाया। सबने ये शब्द सुने। सबकी छाती बैठ गई।

रा' के मुँहपरसे उग्रता चली गई। उसके गलेसे आँसुओंसे मिली हुई आवाज सुनाई दी, " सती, तुम्हें धन्य है। "

मोघांकी आँखें बिलकुल फट गईं। उसके हाथमेंसे कटार गिर पड़ी, मुँह फीका पड़ गया। मानों भयका निवारण कर रही हो, इस तरह उसने हाथ लम्बे किये। आँखोंपर हाथ रख दिये।

"यह डाइन है—" कह कर वह सबके बीच बेहोश गिर पड़ी।

"सती माकी जय," लोगोंने सन्मानपूर्वक घोष किया।

राणकदेवी उठी और सचेतन छत्रसालको दूसरेको सौंप कर पानीका लोटा लेकर मोघांका उपचार करनेके लिए आई। लोग इस मनुष्यरूपधारी देवीको सन्मानपूर्वक देखते रहे।

"सती, अब महलमें चलो। दादू, छत्रसालको भी वहीं ले चल।" रा'ने कहा।

"यह छोकरी कुछ होशमें आ जाय, उसके बाद मैं आती हूँ। तब तक आप चलिए।"

"मेरे बापू, आप पधारिए!" वजेसंगने कहा, "मैं माताजीको लेकर आता हूँ।"

रा'ने देखा कि जब तक वह यहाँ खड़ा है तब तक कोई दूसरी स्त्री रानीको सहायता देने नहीं आएगी। इसलिए वह वहाँसे चला गया। लोग बिखरने लगे। सारे गाँवमें सती माताके चमत्कारकी बात फैल गई। गाँवके लोगोंके झुण्ड राणकदेवीके दर्शन और पादस्पर्श करनेके लिए आए। चारों ओर उत्साह फैल गया। सब जगह सती माताके भजन-कीर्तन होने लगे। उस रात्रिको जूनागढ़ने आनन्दके उत्साहमें जागरण किया।

१६—भविष्यवाणी

देशलदेवके यहाँसे आनेके बाद रा' गम्भीर बन गये थे। वे अपनी रानीको देवी मानते थे और प्रणयी और पूजक दोनोंकी भक्ति उनके हृदयमें उमड़ रही थी। गाँवके लोगोंमें फैला हुआ उत्साह भी उनके हृदयमें वीरताको उत्तेजित कर रहा था और फिर भी ऐसा लगता था कि मानों एक अकल्प्य खेद उनके हृदयको दबा रहा है।

वे राजगढ़में गये और काकको बुलाकर फिर छतपर चढ़े। उन्होंने काकको सारी सविस्तर बात कही।

" काक, आज तो सोनेके सूर्यका उदय हुआ, " रा' ने कहा, " सचमुच ही मेरी सतीका प्रताप प्रकट हुआ। उसने छत्रसालको जिलाया और उस शंखिनी (मोघां) को मात किया। काक, सचमुच, सती तो अंबा भवानीका अवतार है ! "

" सचमुच बापू, यह तो आपके घरकी और देशकी लक्ष्मी है। जब तक यह है तब तक आपका राज्य अमर है। "

" काक, वह शान्त और सुंदर किस तरह बैठी बैठी छत्रसालको संजीवन कर रही थी ! " रा' ने स्नेहपूर्ण स्वरमें कहा।

" ऐसा लगता है कि लोगोंको भी अद्‌भुत आनंद हुआ है। "

" हाँ, लोग तो इसके पीछे पागल हो गये हैं। काक, आजसे मेरी ग्रह-दशा बदली। " होठ दबाकर खेंगारने कहा।

" बापू, आप जैसे सुखके दिन न देखेंगे तो कौन देखेगा ? " रा' के कहेका उलटा अर्थ करके काकने कहा।

" यह तो कौन जाने ! परन्तु मैं अब कल रातको ही आक्रमण करता हूँ। तुम देख लेना, अब खेंगार अपने हाथ बतलाएगा। "

" भोलानाथ आपका भला करें। "

" काक, परन्तु मेरे जानेसे पहले तुम यहाँसे चले जाओ। मैं यहाँपर नहीं हुआ तो तुम्हारे प्राण नाहक जोखिममें पड़ जायँगे।

" बापू, " काकने कहा, ' मुझे जाने देनेकी इतनी क्या उतावल है ? और यदि आज जाऊँ और आपकी बात कह दूँ तो ? " उसने हँसकर बात बदलनेके लिए कहा।

" काक, तुम विश्वासघात करो, तो फिर भले ही मौत आ जाय। " रा'ने गंभीरतासे जवाब दिया, " भाई, मुझे इसकी चिंता नहीं। कल सबेरा होनेके पहले ही चल देना। "

" ठीक, पर क्या मैं यहाँ रहकर कुछ नहीं कर सकता हूँ ? "

" काक, मैं तुम्हारी टेक जानता हूँ। मैं उसके बीचमें नहीं पड़ना चाहता।

पर यह बात याद रखना कि तुम्हारा मालिक कभी तुम्हारी कद्र करनेवाला नहीं। तुम मेरे साथ रहे होते—"

"बापू, जैसा आपका जूनागढ़ है वैसा मेरे लिए भी मेरा गाँव है।—उसीके लिए तो मुझे यह बेकदर मालिक स्वीकार करना पड़ा है। क्या करूँ?"

"तुम भी मेरी तरह चैनसे नहीं बैठे।" रा'ने कहा।

"और बापू, चैनसे बैठनेवाला भी नहीं। मुझे भी कुछ ऐसा ही होता है—"

"सती आई," उमंगके साथ रा'ने कहा, और सीढ़ियोंकी ओर शीघ्रतासे गया। काक खड़ा खड़ा देखता रहा। कैसी सुयोग जोड़ी है! कैसी श्रद्धा और निर्मलता! काककी आँखोंके सामने उसकी सहचरी आ गई। वे दोनों भी कैसे सुयोग्य, श्रद्धालु और निर्मल हैं। प्रभु ऐसे युगलोंको किसलिए दुःख देता होगा! जुदा करता होगा! काकको कँपकँपी आ गई।

"सती, इस काकको भी अब निकाल देता हूँ। आज मुझे सबको ही निकाल देनेकी धुन लग गई है।" रा' ने खेदयुक्त आवाजसे कहा।

"क्या इसने भी मुझे गालियाँ देना शुरू किया है?" राणकदेवीने हँस कर कहा।

"बहिन, तुम्हें गालियाँ देनेके पहले तो मैं इस जीभको ही खींच लूँगा। महाराज ही अब मुझे दूर करना चाहते हैं।"

"दूर नहीं करूँ तो—" रा' ने आगे कहा "क्या इसे यहाँ मेरे साथ रह कर सुख मिलेगा?"

"तब दूसरी किस जगह सुख पाऊँगा? बादमें बहिन, दादू किलेदारकी स्त्रीका क्या हुआ?"

राणकदेवी हँसी: "थोड़ी देरमें उसकी मूर्छा दूर हो गई, तब मुझे बैठी हुई देख कर उसने फिर आँखें बंद कर लीं। उसके लिए तो मैं जीती जागती डाइन हूँ।"

"एक समय यही कहती थी कि तुम सारे सोरठको खप्परमें लेनेके लिए अवतरी हो।" रा' ने कहा। उस आवाजमें हँसी थी, पर कौन जाने क्यों उसमें भी गंभीरता लगी।

“ बापू, नसीबमें हो वह जीते और नसीबमें हो वह हारे, परन्तु आपके जैसा नर और बहिनके जैसी नारी इस कलिकालमें तो नजरमें आ नहीं सकती । ”

रा’ के कपालपर सिकुड़नें दिखीं । उसने जवाब न दिया ।

“ काक, ” राणकदेवीने कहा, “ इस तरह मत बोलो, नहीं तो हमें अभिमान हो जायगा । ”

“ आपको अभिमान होनेवाला नहीं, यह तो सब हमारी ओर—” कहकर काकने वंथलीकी ओर इशारा किया ।

रा’ और राणी दोनों उस ओर मुड़े और थोड़ी देर तक देखते रहे ।

दूरसे एक भूले भटके कौएकी ‘ काँव काँव ’ सुन पड़ी ।

जिस दिशाकी ओरसे कौएकी आवाज आई थी, उस ओर रा’ फिरा । उसका मुँह फीका पड़ा, उसने होठसे होठ दबा लिया । उसने गहरी और क्रूर आवाजमें कहा, “ काक, जयसिंह सोलंकीने भी कैसा जुल्म किया है ! अंबा भवानी प्रसन्न हों और वह एक बार मेरे हाथमें आ जावे तो उसका सारा अभिमान उतार दूँ । ”

काक चुप रहा ।

“ क्या कभी किसीका अभिमान रहा है जो इसका रहेगा ? ” राणकदेवीने कहा, “ परन्तु मेरे रा,’ टेक तो तुम्हारी ही रहेगी । ”

“ सती, इस समय तो जूनागढ़ टिकेगा या नहीं, यह पहली बात है । ” रा’ की आवाज अधिक गंभीर हो गई । उसका हृदय चारों ओरकी घटनाओंसे घुट रहा था, वह इस समय अधिक कठोर कृत्रिमता धारण नहीं कर सका । “ टेक तो रखता हूँ और मरते दम तक रखूँगा; परन्तु मुझे अपशकुन हो रहे हैं । इस काकको भी इस समय भेज देनेकी छाती नहीं होती । कल तुम्हें छोड़कर रणमें जानेकी इच्छा नहीं होगी । मुझे कुछ समझमें नहीं आता, मेरा हृदय इस तरह कभी रुँधा नहीं था । ऐसा लगता है कि मानों हमारे, जूनागढ़के, चूडासमा वंशके दिन पूरे हो गये हैं । वह वंथली देखी ? मानों वहाँसे-ज्वालामुखीके मुँहमेंसे-ज्वलंत और विनाशक प्रवाह चारों ओर फैलता जा

रहा है; गगन और पृथ्वीका श्वास रुँध रहा है; वह मुझे, तुम्हें—मेरे नामको—मेरी कीर्तिको जलाकर भस्म करती दिखती है।

रा' बोलता बोलता रुक गया। सचमुच वातावरण दम घुँटने जैसा लगा। राणक वंथलीकी ओर देखती ही रही। काक बीचमें बोला, "महाराज, आपको ऐसे विचार मनमें नहीं लाने चाहिए। सोरठके धनी, सात पीढ़ियोंकी टेक और सोरठकी स्वतंत्रता आपके बलपर टिकी हुई हैं," काकने रा'के कंधेपर हाथ रखा, "जिसका जो होनेका हो वह हो–इस समय तो संग्राम करना है। कभी सोरठके रा'को डिगते हुए सुना है?"

रा'ने कपालपर हाथ रखा: "काक मैं कभी डिगनेवाला नहीं...परंतु भावीमें क्या लिखा है वह मालूम हो तो—

"भावी!" एक अमानुषी जैसी आवाज आई। रा' और काक चौंके। चौथा कोई था नहीं, परंतु राणकदेवीके मुँहमेंसे भावहीन, अपार्थिव, शान्त और निश्चेतन आवाज निकली थी। छतकी पालपर दोनों हाथ रख कर, आँखें फाड़ कर वंथलीकी ओर भविष्यकी लिपि पढ़ रही हो, इस तरह वह खड़ी थी। उसके हाथ कुछ काँप रहे थे, भौंहें मिल गई थीं, आँखें स्थिर और तेजोहीन हो गई थीं। उसकी सारी आकृति शवके समान थी। दोनों पुरुषोंके हाथ पैर ढीले हो गये। मुँह फाड़ कर देखते सुनते रहे।

"भावी!" राणकने बोलना शुरू किया, "मुझे कुछ गहरा दीख रहा है। सोलंकीकी सेना सीमाएँ मिटा रही है। यह सोहन सोरठ देश...था या नहीं जैसा हो रहा है।" बोलते बोलते मानों वह गाती हो ऐसा राग बन गया—

गरवा ओ गिरनार, गरव ताहरो गली गयो;
जूनागढ़नो टेक हाय! हवे क्यां ये ना रह्यो।[1]

रा' और काक दोनों काँपें और रा'ने काकका हाथ पकड़ा। राणक मानों अँधेरेमें कुछ न दीखा हो और ध्यानसे देखनेके लिए प्रयत्न कर रही हो इस तरह देखती रही। आवाजमें अधिकसे अधिक खिन्नता आने लगी।

१—हे महान् गिरनार, तुम्हारा गर्व गल गया। जूनागढ़की टेक, हाय अब कहीं न रही।

'सोलंकीनी आण, फरती चारे कोर आ;
ने धरणी ध्रूजे हाय, लोकु पामे त्रास सहु ।
रा' ए सपना सेवीआं, ते सहु...अणसर्ज्यां रह्यां...'

रानीकी आवाज टूटी । उसने निःश्वास छोड़ा । थोड़ी देरमें उसने फिर तेजीसे बोलना शुरू किया । आवाजमेंसे खिन्नता कम हुई, "परन्तु सोलंकीको पिण्ड देनेके लिए पुत्र नहीं—नाम नहीं, और निशान नहीं । पाटन उजाड़ हो गया...नये राजा और नई प्रजा...परन्तु—

रंढियालो मुज गिर, गरवो गगने शोभशे ।
ने अमर रा' खेंगार, सोरठने सोहावशे ॥
त्रणे काले टेक......वीर खेंगार कहावशे ।
ने सतीयानु जे सत, ते रंक राणकनुं ॥

आवाज बिलकुल टूट गई और वह रुक गई । उसकी आँखें बंद हो गईं । उसके मुँहपर फेन आ गये और खेंगार उसके पास जाय कि उसके पहले ही वह बेहोश होकर गिर पड़ी । काक नीचेसे पानी लानेके लिए दौड़ा ।

कांक पानी लाया, रा' ने उसे मुँहपर छाँटा; थोड़ी देरमें वह होशमें आई और रा' के सामने देख कर कुछ मुस्कराई ।

"मेरे रा', मुझे क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं ।" रा' ने कहा । उसे ऐसा लगा कि रानीको कुछ भी स्मरण नहीं है । जैसे तैसे रानी बैठ गई ।

"मेरा सिर घूम रहा है । मैं जाकर लेटती हूँ ।" उसने धीमी आवाजसे कहा । रा' उसके साथ जानेके लिए तैयार हुआ, तो बोली : "आप किसलिए

२—यह सोलंकीकी आन चारों ओर फिर रही है । पृथ्वी काँप रही है और सब लोग त्रास पा रहे हैं । रा' के जो सपने थे, वे सब पूरे हुए बिना रह गये ।

३—मेरा सुन्दर और महान् गिरनार आकाशमें शोभित रहेगा और अमर रा' खेंगार सोरठको शोभित करता रहेगा । तीनों कालोंमें टेक रखनेवाला वीर खेंगार कहलाएगा और सतियोंका जो सत्त है वह इस रंक राणकका..."

आते हैं ? थोड़ी देर बैठो । काकके साथ बातचीत करो। मैं बहुत थक गई हूँ। कह कर वह चली गई।

वह दस कदम सीढ़ीकी ओर गई और काक तथा खेंगार दोनों उसके अदृष्ट होनेवाले शरीरकी ओर देखते रहे ।

एकदम दोनोंकी नजर वहाँ गई जहाँपर कि देवड़ीने पाँव रखे थे । दोनोंने घबड़ाहटमें एक दूसरेका हाथ पकड़ा । दोनोंकी आँखें खुलीकी खुली रह गईं। दोनोंके श्वास रुँध गए... ।

रानी सीढ़ी उतरकर चली गई । जहाँ जहाँ देवड़ीने पैर रखे थे, वहाँ वहाँ कुंकुमके पगले पड़ रहे थे, ऐसा उन्होंने अँधेरेमें भी देखा ।

" काक, देखा ? " रा' ने घबड़ाई और खिन्न आवाजमें पूछा ।

" हाँ बापू, सती माताकी जय । "

रा' ने अपनी आँखोंपर हाथ रखा । काक उन पगलोंकी ओर देखता रहा । देखते ही देखते लाल पगले अदृष्ट हो गये । छतपर पहलेके समान अन्धकार फैला रहा ।

" महाराज, देखा ? " काकने खिन्न हृदयसे कहा, " पगले न रहे । "

रा' ने आँखपरसे हाथ हटाकर देखा और पदचिह्नोंको अदृश्य हुए देखा ।

" काक, जब सती चितापर चढ़ती है तब ऐसे पगले पड़ते हैं, यह वृद्ध आदमी कह गये हैं । मेरे दिन पूरे हो गये । " रा ' ने गद्गद् कण्ठसे कहा ।

" बापू, " काकने हिम्मतसे कहा, " आपको मौतका डर लगता है ? यदि लगेगा तो आप सतीकी श्रद्धाको कलङ्कित करेंगे । "

" नहीं, मैं डरता नहीं हूँ । ऐसी सती पा करके मैं भाग्यशाली हूँ । जिससे उसकी शोभा हो, वही मृत्यु मैं अपनाऊँगा । "

" शाबाश मेरे वीर ! " काकने कहा ।

" परन्तु काक, मेरी एक प्रार्थना स्वीकार नहीं करोगे ? "

" प्रार्थना ? महाराज, इच्छा हो वह हुकम दीजिए । "

" मैं चौकी जीतकर वापस आऊँ तब तक तुम यहींपर रहना । बीचमें यदि कुछ हो जाय, तो बादमें देवड़ी और कुमारोंका कौन होगा ? "

" बापू, आप निश्चिन्त रहिए, खुशीसे संग्रामके लिए प्रस्थान कीजिए । मैं यहाँ रहूँगा और मेरा वश चलेगा तो किसीपर आँच नहीं आने दूँगा । "

" काक, तुमने कितना अनुग्रह किया ? भाई, आओ हम भेंट कर लें। शायद अब हम फिर नहीं मिल सकें।"

चुपचाप दोनों भेंटें और रा'नीचे देखता हुआ चला गया।

काक वंथलीकी ओर देखता रहा और थोड़ी देरमें उसने निःश्वास छोड़ा।

१७—वाहड़ मेहताका हृदय टूटा

दूसरे दिन जयसिंहदेव महाराजने शामको वंथलीके राजगढ़में सारे अग्रणी योद्धाओंको बुलाया।

अन्दरके किवाड़के पास खुद महाराजा जरीदार गद्दीपर तकियेके सहारे बैठे थे। उनका मुँह और आँखें उनके हृदयमें जलती हुई ज्वालाको बता रही थीं। उनका एक हाथ पासमें रखी हुई तलवारकी रत्नजटित मूठके साथ खेल रहा था।

द्वारके भीतर लीलादेवी और काश्मीरादेवी बैठी थीं और चलती हुई बातमें जरूरत पड़नेपर स्वीकृतिसूचक 'जी' कह देती थीं। कुछ और अन्दर मीनलदेवी बैठी बैठी पान खाती थीं और बाहरकी बातें ध्यानसे सुन रही थीं।

राजाके पास मुंजाल मेहता, तेजस्वी दण्डनायक त्रिभुवनपाल और सशक्त तथा शान्त दण्डनायक परशुराम बैठे हुए थे। एक तरफ गुजराती बनियोंके आदर्श उदा मेहता घुटनोंको दुपट्टेसे बाँधे हथेलीपर गाल रक्खे थे। दादाक मेहता, दो तीन मण्डलेश्वर और सेनापति भी बैठे हुए थे। मृत्यु-शय्यासे उठ कर जगदेव परमार भी अपनी बुद्धिका लाभ देनेके लिए पहली ही बार आया था।

सब तैयार था। जूनागढ़की तमाम चौकियोंपर एक साथ छापा मारनेकी व्यवस्था हो चुकी थी और चौकियाँ लेकर गढ़पर एक बहुत बड़ा हमला करनेके लिए हर एक दिशाके सैनिकोंको तैयार रहनेका आदेश दिया जा चुका था। कहाँसे कौन संदेश ले जाय, कौन किसे मदद पहुँचावे, कोई पीछा हटे तो कौन मदद करे यह सब निश्चित हो चुका था। आक्रमण

करनेमें दुःसह त्रिभुवनपाल जूनागढ़का बड़ा दरवाजा तोड़ेंगे, दादाक मेहता और दो सेनापति गिरनारकी तरफकी दो खिड़किओंपर हमला करेंगे, स्वयं महाराज और परशुराम बीचकी चौकियाँ लेकर दोनों ओर आवश्यक मदद पहुँचाएँगे। उदा मेहता मेंदरडे रहकर चारों ओरके लश्करको टिकाएँगे। मुंजाल मेहता वंथलीकी रक्षा करनेके लिए रहेंगे।

सबपर महाराजके आवेशका असर होने लगा था। त्रिभुवनपाल इस चिंतामें पड़े थे कि खेंगारका क्या किया जाए? परशुरामको यह फिक्र हुई कि यदि जूनागढ़ सर हो, तो वह किसे सोंपा जाए? लीलादेवीके हृदयमें एक ही जलन थी कि वह खुद सिर्फ एक ही सैन्यके साथ रह सकेगी। जगदेव परमार यही बात बार बार किया करता कि मैं बिलकुल ठीक हो गया हूँ।

परंतु इन सबमें महाराजका जोश सबसे अलग दीख पड़ता था। वह निर्जन वनमें जलती हुई दावाके जोरसे जला करता; चारों ओर उसकी ज्वालाओंकी लपटें लपकतीं और उनकी आँच अकल्पित जगहपर पहुँचती थी।

"बापू, मुझे दण्डनायक महाराजके साथ दरवाजेपर जाने दीजिए।" परमारने तीसरी बार प्रार्थना की।

"जगदेव, निकम्मी सिरपच्ची मत करो" महाराजने अधीरतासे कहा। मुझे तुम्हें दूसरे हजार कामोंके लिए भेजना है। परशुराम, ये सोरठी लोग बड़े बदमाश हैं; गढ़ लेनेके बाद भी कुछ दिनों तक हमें दम न लेने देंगे। इसलिए जितना जीतो उतना हाथमें ही कर लेना।"

"इसके लिए कहना नहीं पड़ेगा।" परशुरामने कहा।

"वह देशल भी वहाँ पड़ापड़ा कुछ न कुछ मदद करेगा, परंतु वह है बड़ा नीच मेहताजी।" उदाकी ओर फिर कर राजाने कहा, "वाहड़ गया सो गया, कुछ जवाब नहीं लाया।"

"आता ही होगा" उदाने मिठाससे कहा।

"तुम्हारे इस लड़केमें ज्यादा पानी नहीं दिखता" और फिर त्रिभुवनपालको उद्देश कर कहा, "और तुम आक्रमण करो तो हाथीपर मत बैठना, हाथी बिगड़ जाय तो अपना ही कचूमर निकाल दे।" इतनेमें बाहर कुछ गड़बड़

होनेसे महाराजकी भौंहें तन गईं—"यह क्या धाँधली मच रही है? और बाहर पहरेपर खड़े हुए वे ढोर क्या कर रहे हैं?"

एक द्वारपाल आया। "अन्नदाता, भृगुकच्छसे कोई खबर लेकर आया है।"

"कह दो कि शोभ मेहतासे मिले, हमें खबर सुननेकी फुरसत नहीं है।"

"अन्नदाता, आपसे ही मिलना चाहता है।"

"सारे गाँवसे किस किससे मिलूँ? जाओ, कहो कि शोभ मेहतासे मिले।"

"यदि नहीं माने तो?"

"तेरी तलवारमें धार है या नहीं?" राजा गुस्सेमें चिल्लाया।

"उसका नाम क्या है?" त्रिभुवनपालने पूछा।

"सोमेश्वर भट।" द्वारपालने कहा।

"भृगुकच्छका किलेदार?" त्रिभुवनपालका मुँह चिंतातुर हो गया। "वह यहाँ क्यों आया?"

"बुलाओ तो सही," मुंजालने कहा, "इसमें क्या हर्ज है!"

"यह क्यों आया होगा?" लीलादेवीने धीरेसे पूछा।

"बुलाओ, बुलाओ," महाराजने उतावलीसे कहा। उनके मुँहसे ऐसा लगता था कि इस समय जूनागढ़को जीतनेके सिवाय दूसरी कोई बात उन्हें पसंद नहीं। लीलादेवी जरा आगे आकर उनको देखती रही।

फटी धोती पहने हुए एक आदमी आया। उसके शरीरपर कीचड़ था। उसका मुँह कँटीले पौधोंसे नुचा हुआ था, उसके उलझे हुए बाल सेहीके काँटोंकी तरह माथेपर खड़े थे। आनेवाले इस विचित्र आदमीकी ओर सब देखने लगे।

"क्या यह सोमेश्वर भट है?" महाराजने कुछ क्रोधसे पूछा।

"हाँ अन्नदाता, मैं ही सोमेश्वर भट, भृगुकच्छका किलेदार।"

"क्यों आया है?" महाराजने अधीरतासे पूछा।

"महाराज, रेवापालने विद्रोहका झंडा उठाया और भृगुकच्छको हाथ कर लिया। सारे लाटपर उसका अधिकार हो गया है।"

"क्या बकता है?"

सोमेश्वरको यह व्यवहार अपमानजनक लगा। गुजरातके धनीके पास यह खबर पहुँचानेके लिए उसने रात और दिन अनेक यातनाएँ सही थीं। परन्तु यहाँ उसका और उसकी बातका कोई मूल्य ही नहीं!

" मैं बकता नहीं हूँ—होशमें हूँ, " काकके शिष्यने गर्वके साथ कहा। " यह खबर सुनानेके लिए ही मै वहाँसे भागा भागा आया हूँ। "

" पट्टणी सेनाका क्या हुआ ? " मुंजाल मेहताने पूछा।

" सब कैद हो गई। सिर्फ आँबड़ मेहता, मंजरी बहिन, और एक वृद्ध सैनिक भृगुकच्छके गढ़में बंद होकर बैठे हैं। "

" मंजरी–काककी पत्नी ? " महाराजने पूछा।

" हाँ। "

त्रिभुवनपालने बीचमें कहा, " सेनापति भी पकड़े गये ? "

"हाँ, अक्षय तृतीयाके मेलेका मौका पाकर रेवापालने सबको कैद कर लिया।"

" अपना गढ़ टिका रहे, ऐसी हालतमें तो है न ? " त्रिभुवनपालने पूछा।

" महाराज, नहीं टिक सकता। सिर्फ तीन चार आदमी भीतर हैं और रेवापालने रक्षकको फोड़कर सारा अनाज नदीमें फिकवा दिया है। यदि जल्दीसे जल्दी मदद नहीं पहुँचेगी, तो गढ़ जरूर गिर जायगा। "

" वटपद्र और खेटकपुरके गढ़ोंका क्या हाल है ? " मुंजाल मेहताने पूछा।

" रेवापाल कच्चा नहीं है। भृगुकच्छ ले लिया तब उनकी क्या गिनती ? माण्डलसे खेटकपुर तक सब जगह बलवा हो रहा है। यहाँसे तुरन्त ही लश्कर जाना चाहिए, नहीं तो—"

" हमें तुम्हारी सलाहकी जरा भी जरूरत नहीं, " जैसें कोई लोहेसे दाग़ दे, ऐसी आवाजमें जयसिंहदेवने कहा।

" हम क्या करेंगे ? " त्रिभुवनपालने कहा।

मुंजाल मेहता बोलना चाहते थे, कि उसके पहले ही महाराजने गुस्सेमे जवाब दिया, " क्या क्या, करेंगे ? इस समय कुछ नहीं; जब तक जूनागढ़ सर नहीं हो जाता तब तक कुछ नहीं हो सकता। "

" परन्तु लाट हाथसे चला गया तो—" लीलादेवी बीचमें बोलीं।

जयदेवसिंहका गुस्सा समाया नहीं," जाता है तो जाने दे। और तुझे रखना हो, तो इस पागलको लेकर मददको दौड़। भट, बाहर जाओ। जरूरत होने पर तुम्हें बुलाऊँगा। जाओ, इसे बाहर ले जाओ। " राजाने द्वारपालोंको आज्ञा दी। क्षणभर सोमेश्वरने दाँत किचकिचाकर चारों ओर देखा। जिस आशासे

उसने यह मुसाफिरी अपने सिर ली थी, वह धूलमें मिल गई। उसे ऐसा लगा कि लाट, भृगुकच्छ, गढ़, मंजरी बहिन और अपने गुरुके बच्चे इन सबपर विनाशका पूर आ गया है। उसने देखा कि किसी भी तरहका प्रयत्न हास्यजनक हो जायगा। उसके खयालसे तो लाट और काक बहुत बड़े थे; पर यहाँ तो उनकी एक रजकण जितनी भी कीमत नहीं दिखाई दी। वह निराशा और तिरस्कारसे कमरा छोड़ कर चला गया।

"मुझे तो लगता है कि इसका दिमाग खिसक गया है," राजाने नरम होकर कहा, "चलो, हम अपना काम शुरू करें। वह काक भी नहीं है, नहीं तो उसे भेज देता।"

"दो चार दिनमें कुछ खट्टा-अलोना होनेवाला नहीं।" मुंजाल मेहताने कहा। उसने देखा कि इस समय यहाँके जोशको ठंडा होने देनेमें कुछ लाभ नहीं। "पर सब ख्याल रक्खें कि यह बात बाहर न जाने पावे; नहीं तो लाटसे आये हुए लश्करमें घबराहट फैल जायगी।"

"मुझे घबड़ाहटके लिए समय ही नहीं देना है। हम आज रातको ही चढ़ाई कर दें।" महाराजने कहा।

"जैसी आज्ञा," मुंजालने कहा। सब तैयारी थी, इसलिए फिजूल देरी करनेकी जरूरत नहीं थी।

"त्रिभुवन भाई, तुम तैयार हो जाओ।"

"जी।" कहकर त्रिभुवनपाल उठे।

"मैं भी आज्ञा लेता हूँ।" दादाक मेहताने उठते उठते छुट्टी ली।

"हाँ।" महाराजने जवाब दिया। त्रिभुवनपाल, दादाक मेहता और सेना-पतियोंने उठकर आज्ञा ली।

सोमेश्वरकी बात सुनकर उदा मेहता धीरे-धीरे अपने पाँव परसे दुपट्टा छोड़ने लगा था। उसने भी धीरेसे आज्ञा ली। महाराज और परशुराम विगतें निश्चय करनेमें लग गये।

"मेहताजी, अब आप भी सिधारें।" महाराजने मुंजाल मेहताको कहा, इसलिए वे भी उठे और रानियाँ भी धीरे धीरे चली गईं।

महाराज, परशुराम और जगदेव परमार तीनों आदमी रहे। इतनेहीमें एक अनुचर आया।

" क्यों, फिर और क्या है ? " महाराजने पूछा।

" अन्नदाता, वाहड महेता किसीको लेकर आये हैं। "

" आने दे," एकदम जयसिंहदेवने आज्ञा की और दण्डनायककी ओर फिर कर कहा, " काक आया। "

" काक ? " चकित होकर परशुरामने पूछा।

जगदेव बिल्कुल तकियेके सहारे बैठा था, वह भी तनकर बैठ गया।

" हाँ, मैंने वाहड़को उसको लानेका काम सौंपा था, " कुछ खुश होकर महाराजने कहा।

वाहड़ मेहता और दो पुरुष अन्दर आए, जो ढाटे बँधे रहनेसे बिलकुल नहीं पहिचाने जा सके। महाराजने नजर डाली, पर उन दोनोंमेंसे एकका भी शरीर काकके जैसा नहीं दीखा। महाराजका मुँह एकदम लाल हो गया।

" काक कहाँ है ? " वे गरजे।

" महाराज, " खिन्न मुखसे वाहड़ने कहा, " मुझे भटराज नहीं मिले। "

" तब—तू—लौट क्यों आया ? " महाराज चिल्लाये।

" जीता तो है न ? "

" हाँ अन्नदाता। " रोती-सी आवाज़में वाहड़ने कहा। एक तो वह सोमको दिये हुए वचनका पालन नहीं कर सका, इसलिए पत्नी पानेकी आशा गई, और फिर महाराज क्रोधित हुए।

महाराजके कपालकी नसें निकल आईं। " नामर्द, " महाराजने तिरस्कारसे कहा, " पट्टणी योद्धा होकर निश्चित कामको पूरा किये बिना कौन-सा मुँह लेकर जीता लौट आया ? जा—नामर्द, इस बार छोड़े देता हूँ। पर अभीका अभी वंथली छोड़कर चला जा। मुझे तेरा मुँह नहीं देखना है। तू खंभात चला जा, और कविता कर। " वाहड़ खड़ा रहा।

" क्यों, क्या कहना है ? "

" जानेके पहले मैं अपने पिताजीसे मिल लूँ तो कोई हर्ज तो नहीं है ? " जैसे तैसे फीके होठोंसे वाहड़ने कहा।

" अपने पितासे मिल ले और जरूरत हो तो मातासे भी मिल, परन्तु यहाँसे चला जा। " महाराजने कहा।

नीचा मुँह किये हुए भग्नहृदय वाहड़ बाहर गया।

१८—पूर्वाशाका प्रादुर्भाव और चढ़ाईकी तैयारी

" परमार, तुम बाहर जाकर बैठो। काम होनेपर बुला लूँगा। " जयसिंहदेव महाराजने कहा।

" जो आज्ञा " कहकर परमार उठा। वह निर्बल हो गया था।

" मैं भी अब जाता हूँ " परशुरामने भी जानेकी आज्ञा ली।

" वे मेरे वंशज–" महाराजने दण्डनायकके कानमें धीरेसे कहा। "मामाका पक्ष छोड़कर यहाँ आये जान पड़ते हैं। "

" सावधानीसे काम लीजिए। " धीरेसे दण्डनायक सलाह देकर उठे।

वे गये कि महाराज उन दो पुरुषोंकी ओर मुड़े।

" कौन देशलदेव ? और यह कौन, विशलदेव ? बैठो। चाहे तो ढाटा निकाल दो। "

" अन्नदाता, जैसी आज्ञा, " कह कर देशलदेव ढाटा अलग करके महाराजके सामने जा बैठा। " अन्नदाता, आपके संदेशके जवाबमें हम लोग आ पहुँचे हैं। बोलिए, क्या काम है ? "

महाराजको देशलदेवकी आवाजका मिजाज पसन्द न आया।

" मैंने संदेश कहाँ भेजा ? तुम मुझसे मिल लेना चाहते थे। मुझे तो इतना ही जानना है कि तुम मुझे क्या मदद कर सकते हो। "

" हम सभी तरहकी मदत कर सकते हैं। " देशलदेवने कहा।

" क्या ? "

" आप चाहें तो जूनागढ़ दिलावें। "

" कब ? "

" अभी। "

" किस तरह ? "

" आपके आदमियोंको गढ़में ले जाकर। "

" गढ़ तो तुम्हारी मददके विना भी ले सकता हूँ। "

देशलदेवके मुँहपर उदासी छा गई और उसने हमेशाकी आदतके अनुसार मूँछें चबाना शुरू किया। उसने तो जूनागढ़ दिलाकर, जूनागढ़का मालिक बननेकी आशा कर रखी थी।

" बापू, आप तो सर्वशक्तिमान् हैं, परंतु हम जो कुछ बन सकता है वह करनेके लिए तैयार हैं। आपकी क्या आज्ञा है ?" देशलदेवने बहुत ही नम्रतासे कहा।

" तुम मुझे गढ़में किस तरह ले जा सकोगे ?"

" गढ़की एक खिड़कीपर हमारा आदमी है।"

कहते तो कह दिया पर देशलदेवको जरा चिन्ता हो गई। कहीं दादू किलेदार अपने भाईके मारे जानेके क्रोधके कारण गढ़पर नहीं आए तो ? और दूसरा आदमी हमीर भी जिसे कि उसने गढ़पर रहनेके लिए सूचित किया था न आवे तो ? देशलदेवको लगा कि पक्ष बदलना कोई खेल नहीं है।

" पर गढ़ तक जा कैसे सकेंगे ?"

" मैंने एक चौकीको साध लिया है।"

" वहाँसे कितने आदमी जा सकेंगे ?"

" आप कहें उतने ?"

" भीतर कितने आदमी साथमें चाहिए ?"

" अन्नदाता, खेंगार आधी रातको गढ़की खिड़कियाँ देखनेके लिए निकलता है, इसलिए चाहे जितने आदमी होंगे उसे तो हम खतम कर देंगे। फिर तो अगला दरवाजा खोलकर आपके लश्करको अंदर दाखिल करना-भर रह जाएगा।"

जयसिंहदेवकी आँखमेंसे एक धिक्कारदर्शक ज्वाला निकली। मामाके यहाँ पन्द्रह वर्ष तक रह कर उसके पैसेसे मौज उड़ा कर ऐसा बदला देनेवाले आदमी भी इस दुनियामें रहते हैं ! थोड़े समय तक महाराजने विचार किया : कहीं इसमें कुछ दगाबाजी न हो ?

" तुम्हें मेरे साथ चलना होगा।"

" जी।" मिठाससे हँसकर देशलने विश्वास दिलाया।

" यदि कुछ भी बाधा पड़ी, तो तुम दोनोंके माथे धड़से जुदा कर दूँगा।"

" खुशीसे। पर यदि सब ठीक तरहसे पार पड़ गया तो ?"

" तो क्या ? जयसिंहदेवने किसी दिन सिरोपाव देते समय हाथ पीछे खींचा है ?"

" परन्तु बापू, कुछ निश्चित कर लेना ठीक है। " देशलदेवने कहा और वह कुछ जोरसे मूँछें चबाने लगा।

महाराज क्रोधित हुए : " जयसिंहदेव जो दे, वह लेना होगा। "

" आपपर पूरा भरोसा है, " देशलदेवने धीरेसे कहा, " परन्तु मुझे दुनियामें ऐसे अनुभव हुए हैं बापू, स्पष्टवक्ता ही सुखी होता है। "

" देशलदेव, मेरा दिल सदा ही उदार रहा है। "

" मैं कहाँ नहीं जानता हूँ ? परन्तु पाटणमें मेरे इतने दुश्मन हैं...मैं तो आपके ही विश्वासपर आया हूँ। "

" मेरा भरोसा हो तो फिर किसकी परवाह रखनी है ? " महाराजने कहा।

" इसीसे तो बापू, मैं दिल खोल कर कहता हूँ। मै अब वृद्ध होने आया हूँ। यहाँ तो मुंजाल मेहतानि मेरा मण्डल भी जप्त कर लिया है, और जूनागढ़को छोड़ देनेसे खेंगारके मरनेपर मेरा गद्दीका हक भी डूबा—"

जयसिंहदेवके कपालपर सिकुड़न पड़ गई। " तुम्हारा गद्दीका हक ? खेंगारके तो दो लड़के हैं ! "

" ऊँह,—बहुत छोटे—"

" देशलदेव, " असंतुष्ट होकर महाराजने कहा। " मुझे इस बातका विचार नहीं करना है कि तुमने क्या खोया और क्या नहीं। पर मैं एक बात कहता हूँ। " महाराज कुछ समय तक विचारमें डूबे रहे, " मेरी इच्छा पूरी होगी तो जो माँगोगे वह दूँगा। "

देशलदेवने स्पष्ट देखा कि महाराजको एक नया विचार आया है। जूनागढ़की जीतकी अपेक्षा भी उन्हें कुछ अधिक प्रिय है। वह चीज क्या होगी ? क्या यह सच है कि राणकदेवीके पीछे जयसिंहदेव पागल हुए थे ?

" आपकी जो इच्छा हो वह निःसंकोच कहिए। "

महाराजाने कुछ जवाब नहीं दिया।

देशलदेव धीरे धीरे महाराजके मनकी इच्छा जाननेका रास्ता ढूँढ़ने लगा।

" मैं तो महाराज, दो काम कर सकता हूँ, " उसने कहा।

" क्या ? "

" एक तो जूनागढ़ दिलवाऊँ—"

" और दूसरा ? "

" जिस स्त्रीने आपका अनादर करके अपमान किया था उससे मिलाप करा दूँ।" देशलदेवकी मूँछें दाँतोंमें चली गईं। महाराज चौंक पड़े। उन्हें लगा कि मानों देशलदेव कोई जादूगर है। उनके मगजमेंसे विजयके विचार जाते रहे और ऐसा लगा कि यह सब विग्रह राणकको प्राप्त करनेके लिए ही किया जा रहा है। जूनागढ़ मिले या न मिले; पर राणक तो मिलनी ही चाहिए। उन्हें एकदम ऐसा भास हुआ कि इतने वर्षों तक वे राणकके लिए ही तरस रहे थे। देशलदेवकी दी हुई लालचसे उनका सारा मिजाज नरम पड़ गया और उनपर ऐसी छाप पड़ी कि मानों देशलदेव परम दानेश्वर है।

" किस तरह ? "

" आपको राणकदेवीके आवासमें ले जाऊँ—"

" फिर ? "

देशलने देखा कि इस राजाको रिझानेके लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है।

" मैं मामीका मानीता हूँ।"

" अच्छा ! "

" आपके लिए दो बोल कह सकता हूँ। जो वस्तु आपसे नहीं कही जाए वह मैं ही कह सकता हूँ। मैं चाहे जैसा हूँ, परन्तु उसका बड़ा—पूज्य —हूँ।"

महाराजको इस बुड्ढेके आडम्बरसे हँसी आ गई।

" एक बार मैं उससे मिलूँ, तो सब बात साफ हो जायगी।" महाराजने कहा।

" पर कुछ हठीली है।"

" कौन-सी स्त्री हठीली नहीं होती ? " जयसिंहदेवने अपना ज्ञान बताया। देशलदेवने हँसकर हाथ जोड़े, " बिलकुल सच है बापू।"

" पर मैं आपको मिला दूँ, तो फिर मुझ गरीबपर आपको दया करनी होगी।"

" अब भी अविश्वास है ? "

" बापू, अविश्वास कहाँ है ? पर क्या आप नहीं जानते कि बूढ़े आदमीका स्वभाव कुछ अधीर होता है ? आपको तो अभी तक मेरे साथ काम नहीं पड़ा

परन्तु आपको मुझ जैसा आदमी मिलना कठिन है। मैं तो जिसे दूँ उसे अपना माथा भी दे दूँ, ऐसा हूँ।"

महाराजको इस आत्मप्रशंसाके विरुद्ध कुछ भी कहना लाभदायक नहीं लगा।

"तुम्हें चाहिए क्या?"

"मैंने आपको कहा नहीं कि मेरा जप्त किया हुआ मण्डल—"

"ठीक! फिर?"

"आपको जूनागढ़के लिए भी किसी सामन्तकी तो जरूरत होगी ही। मैं भी आपके कुटुम्बका ही हूँ।" देशलदेवने हिम्मत की। उसने अपने दाँतोंके बीचसे सारी मूँछें निकालकर हाथसे साफ कीं।

महाराज चौंके। उन्हें यह नहीं सूझा कि इस हरामखोरकी हिम्मतकी भी कुछ सीमा है। परंतु यदि यह आदमी जितना कह रहा है उतना दिला दे तो उसे एक अच्छा सिरोपाव जरूर देना चाहिए, और आखिरमें क्या देना यह तो उनके ही अधिकारकी बात है।

"समझा। ऐसा कहो न!" जयसिंहदेवने कहा, "देशलदेव, तुम अपना दिया हुआ वचन पूरा करो। फिर मैं अपने वचनका पालन किये बिना नहीं रहूँगा।"

देशलदेवके मुँहपर खुशी छा गई। "बापू, आपका वचन?"

"हाँ। अब और क्या बाकी है?" जयसिंहदेवने कहा।

"तो महाराज, अब तैयारी कीजिए। आज बारह बजे गढ़में पैठनेका समय है।"

"ऐसा? चलो, तैयारी कराऊँ। जगदेव," महाराजने आवाज दी। उनके मुँहपर प्रणयीका हर्ष फैल गया। उनका मुँह कुछ मुस्कराता हुआ मालूम हुआ। उन्होंने होठ चबा लिये—गुस्सेसे नहीं परंतु निमंत्रित प्रणयीकी अधीरतासे।

"अन्नदाता," कह कर जगदेव परमार आया।

"परमार, दो सौ होशियार सवारोंको लेकर तैयार हो जा। हम जुदी ही जगहसे हमला करेंगे।"

"जैसी आज्ञा।"

"और इन लोगोंका आगत-स्वागत कर और परशुराम तथा उदा मेहताको मेरे पास भेज।"

'जी' कहकर जगदेव वहाँसे गया और उसके साथ देशलदेव और विशलदेव नीचे झुक कर प्रणाम करके बाहर गये।

महाराज थोड़ी देर तक जमीनके सामने देख कर बैठे रहे। उनकी उत्तेजित कल्पनाशक्तिने पन्द्रह वर्षोंके पहले देखी हुई एक बालिकाका कोमल मुख सामने चित्रित किया। हाय! उसी मुखने उनका हृदय हरा था, उसी मुखके पास न होनेसे दुःखी थे और उसी मुखके वगैर उनकी कीर्तिमें कलङ्क था। उनकी उस जयश्रीको दुश्मन हरकर ले गया था, और अब वह लौटकर अपने धामपर आएगी। राणक उनके रनिवासमें आएगी, तभी वे सच्चे जयसिंह होंगे।

उनके हृदयमें उर्मियाँ सदा प्रचण्ड ही आती थीं। इस समय ऐसी ही एक उर्मि आई। जो विजयके लिए पागल थे वह वनिताके लिए पागल हुए। वे देखते देखते घोर कामीकी तीव्र अनुभूतियोंका अनुभव करने लगे। इतना ही नहीं, उन्हें राणकके बिना अपना जीवन निरर्थक लगने लगा; उन्हें अनेक सम-विषम विचार आए। रा' खेंगारकी विधवाको वे परण लें, तो पाटण कैसे स्वीकार करेगा? दूसरी रानियाँ उसे पटरानी पद कैसे देंगी? महाराज हँसे और मन ही मन बड़बड़ाये, राजा कालस्य कारणम्। किसीकी मकदूर है जो मेरी इच्छाके विरुद्ध जा सके? राजा मैं हूँ या कोई दूसरा?

परन्तु राणक मना करे तो? उसकी गिनती सतीमें होती है। महाराजने मूँछें मरोड़ीं। चंचल स्त्री किसीकी हुई है कि खेंगारकी होगी? और होना चाहे तो भी मेरे इतने प्रतापके सामने उसकी क्या मकदूर कि मेरी इच्छाके विरुद्ध जा सके? मैं कलिकालका विक्रमादित्य हूँ, मुझसे क्या नहीं हो सकता?

इतनेहीमें परशुराम और उदा मेहता आ पहुँचे।

"दण्डनायक," महाराजने कहा, "देशल और विशल आ गये हैं। इनके हाथमें एक चौकी है, उसे चुपचाप पार करके गढ़पर चलें। मैं उदा मेहताके साथ खिड़कीसे जाऊँ और त्रिभुवनपाल गढ़के दरवाजेपर आ पहुँचे।"

"बराबर है," उदा मेहताने अपनी योजना सफल होती हुई देखकर सहर्ष कहा। "अर्थात् फिर कुछ करनेको रहता ही नहीं है।"

"पर आप खिड़कीसे जायँ, यह एक जोखिम उठाने जैसा है।" परशुरामने कहा।

"जरा भी नहीं," महाराजने कहा, "यदि चौकी पार नहीं की जा सके तो अपनी पुरानी रचना कायम ही रहेगी और यदि पार कर गये तो फिर कितना फायदा होगा? और ज्यादा जोखिम मैं नहीं उठाऊँ तो कौन उठाएगा?"

"समयकी बात है, यदि कुछ हो गया तो?"

"कुछ भी नहीं होनेका। मेरा क्या होनेवाला है?" दैवी सत्ताका डौल करते हुए जयसिंहदेवने कहा।

"तो खिड़की तक मैं भी चलता हूँ। आपको इस तरह जाने देनेमें मेरा मन नहीं मानता।" परशुरामने कहा।

"भले ही चलो।" महाराजने कहा। "मेहता तैयार हो जाओ, सबको कूच करनेका हुक्म दे दो। हम दो तीन घड़ीके बाद निकलेंगे। मैं रानीसे तैयार होनेके लिए कह आता हूँ।"

"जैसी आज्ञा।" कह कर दोनों गये।

"मुझे अपने बाबरेको भी साथमें लेना होगा," महाराज मन ही मन बड़बड़ाये।

१९—सोमेश्वरकी योजना

जब सोमेश्वर जयसिंहदेवके पाससे आया तब पागल जैसा हो गया था।

जब वह भृगुकच्छसे निकला तब उसके हृदयमें गुजरातके स्वामीके प्रति श्रद्धा थी। वह अनाथका नाथ वंथलीमें बैठा है, वहीं उसका महाप्रतापी गुरु भी है और वह जाकर जैसे ही भृगुकच्छकी दशाकी बात करेगा वैसे ही उसकी मददके लिए एक बहुत बड़ा पट्टणी सैन्य रवाना कर दिया जायगा और उसका महारथी गुरु जरा भी दम लिये विना अपनी पत्नी और अपने नगरकी रक्षाके लिए दौड़ पड़ेगा।

इस श्रद्धासे उसने अनेक दुःख भोगे, भूखा प्यासा रहनेके साथ कितनी ही रातों तक नींद न ली, दौड़ते दौड़ते मंजिलें काटीं। भूखसे मरती हुई मंजरी और उसके बालकोंको छुड़ानेके लिए न मालूम उसने क्या क्या सहा और आखिरमें वह वंथली आ पहुँचा।

वहाँ आनेके बाद वह जैसे तैसे राजाके पास जा सका, पर आखिरमें उसे क्या मिला? उसके गुरुका पता नहीं, उसके देशकी किसीको परवाह नहीं, और राजाको तो किसीकी लेश मात्र भी परवा नहीं। यही जयसिंहदेव सोलंकी है? इसीके लिए सब अपने प्राण न्योछावर करते हैं? और इसे ही अर्वाचीन विक्रमादित्य मानते हैं? इसीके लिए काक भटराज अपना तन, मन, धन और पत्नी सब कुछ समर्पण करनेके लिए बैठे हैं? उसका माथा भन्ना उठा, उसे इन सबसे बैर लेनेका आवेश हो आया, पर उसे हँसी आ गई। क्यों कि यह क्रोध व्यर्थ था। वह अपना सिर दे मारे, तो भी इस प्रबल राज्यसत्ताकी एक कंकड़ी भी खिसकनेवाली नहीं। जिस त्रिभुवनपाल दण्डनायककी लाटमें परमेश्वरके समान पूजा होती है, उसकी भी यहाँपर कोई गिनती नही।

हँसी-ठट्ठा करते हुए सैनिकोंने मानों वह पागल कुत्ता हो इस तरह मारकर निकाल दिया। उसकी रो लेनेकी इच्छा हुई; दो चार खून कर डालनेका मन हुआ, उच्च स्वरसे पाटणको शाप देनेकी इच्छा हुई। परन्तु कुछ होना जाना न था।

आखिरमें बिल्कुल आगेके बरामदेमें वह आया और एक तरफ खड़ा होकर विचार करने लगा कि अब क्या करना चाहिए? इस समय तो उसे यह लगा कि उसका काककी अपेक्षा रेवापाल सच्चा गुरु था। लाट दुःखी भले ही हो, पर उसे गुलामीमें किसलिए सड़ने देना? इस लापरवाह राजाकी प्रजा होनेकी अपेक्षा कटकर मर जाना क्या बुरा है? उसे लगा कि सुखकी अपेक्षा स्वाधीनता अधिक कीमती है और काकके अनुचरके रूपमें इस तरह तिरस्कृत होनेकी अपेक्षा रेवापालका अनुचर होकर मर जानेमें अधिक गौरव है।

वह मन ही मन अपनी मूर्खतापर हँसा। इस समय ये विचार किस कामके? वह इस समय भूखा और थका है, बैठनेके लिए कहीं ठौर ठिकाना नहीं, उसका देश दूर है, इस समय ठीक सवाल तो यह है कि उसे क्या करना चाहिए?

वह इस तरह विचार करता ही रहा। थोड़ी देरमें उसने ऊपरकी ओर देखा तो एक वृद्ध बनिया उसके पास खड़ा खड़ा उसके सामने देख रहा है।

"क्यों भाई, क्या लाटसे आये हो?" उसने मिठाससे पूछा।

"हाँ बापू, क्या है?" थके हुए सोमेश्वरने जवाब दिया।

"कुछ खाया पिया है?"

"जहाँ खड़े रहनेको ठौर नहीं, वहाँ खाने-पीनेको बात पूछते हो?" सोमेश्वरने कटुतासे कहा।

"यह क्या बात है? जयसिंहदेव महाराजके यहाँ क्या खाना खत्म हो गया? चलिए, मैं प्रबन्ध कर दूँ।" वृद्धने कहा।

सोमेश्वरको इतना ही चाहिए था। वह वृद्ध उसे लेकर अन्नशालाकी तरफ गया और रसोई बनानेके लिए आवश्यक सामग्रीका प्रबन्ध करके अदृष्ट हो गया। सोमेश्वर भी बहुत भूखा था, इस लिए उसने झटपट नहा धोकर भोजन बनाकर खा लिया। इतनेमें वह वृद्ध लौट आया।

"सोमेश्वरभट, भोजन कर लिया?"

सोमेश्वर चकित हुआ। इस वृद्धने उसका नाम कैसे जाना?

"हाँ बापू, क्यों?"

"चलिए, आपको बुलाते हैं।"

"कौन?"

"महा अमात्य।"

सोमेश्वरने अनेक वार काकके मुँहसे महाअमात्यकी प्रशंसा सुनी थी। राजाके साथ बहुतसे आदमी बैठे थे। उनमें महाअमात्य थे या नहीं, यह वह नहीं जानता था। इस विख्यात मुत्सद्दीका भयजनक नाम सुनकर उसका हृदय धड़क उठा।

"मुंजाल मेहता?"

"हाँ।"

"सोमेश्वर एक भी शब्द बोले बिना उस वृद्धके पीछे हो गया। थोड़ी देरमें वह ऊपरके एक कमरेके सामने आया और उस वृद्धने उसे वहाँ खड़ा रहनेके लिए कहा। सोमेश्वर खड़ा रहा और वृद्ध भीतर गया।

सोमेश्वरको क्षोभ हुआ। मंत्रीने यह कैसे जाना कि मैं यहाँ आया हूँ। और यदि वे राजसभामें बैठे थे तो इस तरह पीछेसे बुलानेका कारण क्या? वे क्या करना चाहते हैं? उसे हठात् अपने आपपर क्रोध आया। यह क्षोभ किस लिए? उसे मुंजाल मेहताकी क्या परवाह? उसके साथ मेरा क्या

सम्बन्ध ? कुचले जाते हुए लाटके निवासीको स्वाधिकार-प्रमत्त जयसिंहके मंत्रीकी क्या चिन्ता ? उसका देश बेहाल हुआ, देवके जैसे उसके गुरु बेहाल हुए और अंबा जैसी गुरुपत्नी भूखों मर रही है। यह इन सबके लिए ही तो ? फिर किसलिए इनकी ओर थोड़ा-सा भी सौजन्य बताया जाय ?

इतनेहीमें वृद्ध आयाः " भटजी, अंदर चलिए।" सोमेश्वर अंदर गया। गद्दीपर एक वृद्ध पुरुष बैठा था। वृद्धावस्थामें भी उसके मुखका सौंदर्य और गौरव चौंधिया देनेवाला था। उसके स्नायुओंमें बल था। इस समय उसकी आँखोंमें हँसी थी। सोमेश्वरने उसे पहचाना। ये मंत्री ही जयसिंहदेवके पास बैठे थे और फिर भी मेरा अपमान किया गया! सोमेश्वरने होठ बंद कर लिये।

" आओ सोमेश्वर! वस्ता, " उसने वृद्धसे कहा, " तुम बाहर खड़े रहो। क्यों सोमेश्वर, भोजन कर लिया ? "

" जी हाँ। " कहकर सोमेश्वर चुप रहा।

" भृगुकच्छके गढ़में खानेकी सामग्री कितनी बची है ? "

" अब तो खतम हो गई होगी। " सोमेश्वरने कड़वाससे कहा।

" और सब सैनिक बंदी हो गए ? "

" जी हाँ। "

" माधव सेनापति कहाँ है ? "

" कैदमें। "

" निश्चित ? "

" मैंने खुद उसे बंदी होते हुए देखा। "

" गढ़में कौन कौन हैं ? "

" भटराजकी पत्नी और बच्चे, आँबड़ मेहता, एक सैनिक और एक ब्राह्मण।"

" गढ़ तो बहुत मजबूत है। " मुंजालने कहा।

" पर अंदर रहनेवाले क्या हवा खाकर जिएँगे ? "

" रेवापाल तो लोगोंका प्यारा है, नहीं ? "

" लोगोंके प्यारे दो आदमी हैं। उनमेंसे एकको आपने बुला लिया, इसलिए दूसरेकी बन आई। " कड़वासके साथ सोमेश्वरने कहा।

" काककी बात कहते हो ? "

"हाँ।"

"तुम काकके शिष्य हो?" मुंजालने हँसकर पूछा।

"जी हाँ, शिष्य कहिए, पुत्र कहिए या सेवक कहिए-जो कहिए वही।"

"यह तो तुम्हारी रीतिपरसे ही दिखाई देता है। तुम यहाँपर किस तरह आये?"

सोमेश्वर कुछ देर अचककर खड़ा रहा, पीछे उसने जवाब दिया, "मैं गढ़में मंजरी बहिनके साथ था, परंतु आपके राजाको खबर देनेके लिए नदीमें कूदा और जैसे तैसे यहाँ आया।"

"अब क्या करोगे?" मुंजालने मजाकमें हँसकर पूछा।

"अब!" कुछ देर विचार कर सोमेश्वरने कहा, "अब मैं देखूँगा कि जो काम आपके राजा नहीं करते वह मुझ अकेलेसे होता है या नहीं।"

"क्या?"

"भृगुकच्छके गढ़को टिका रखनेका काम।"

"सो तुम किस तरह करोगे?"

"शंकर बुद्धि देगा। आप तो मेरी बहिनको मरने दोगे; पर अनाथका नाथ भोलानाथ कैसे मरने देगा?"

"तुम कितने वर्षोंसे लश्करमें हो?" हँसकर मुंजालने पूछा।

"आठ-नौ वर्ष हुए।" सोमेश्वरको जो कुछ आशा बँधी थी वह भी नष्ट हो गई। यह बूढ़ा तो केवल खबरें ही निकालना चाहता है।

"मंत्रीराज," सोमेश्वरने गुस्सेसे कहा, "जब तक मैं आपके राजाको अपना गिनता था तब तक जुदी बात थी। अब मैं अपनी नजरमें जो ठीक लगेगा, वह करूँगा।"

"तुम तीन बार 'आपके राजा' बोले हो, तो क्या मेरे राजा तुम्हारे राजा नहीं हैं?"

"जो हमारी रक्षा नहीं करता उसे राजा कैसे कहा जाय? मेरा अपमान करके, जबसे मेरे लाटको निराधार रखनेका निश्चय किया गया तबसे वे मेरे राजा नहीं।"

मुंजाल खिलखिलाकर हँसने लगा। "मुझे तुम्हारी बातोंमें बहुत मजा आता है।"

"नहीं क्यों आएगा?" सोमेश्वरने कटुतासे कहा, "यहाँके लोग दूसरोंके दुःखमें हँसना अच्छी तरह जानते हैं।"

"हमारी ऐसी आदत तो है," मजाकमें मुंजालने कहा, "परन्तु लड़के, अब तू अकेला जाकर गढ़की रक्षा करेगा, उससे क्या होगा?"

"गढ़ अगर टिकेगा तो आपके लिए नहीं, मेरे भटराजके लिए। वे जीते होंगे तो आ पहुँचेंगे और बादमें जो करना होगा करेंगे। वे देवलोक चले गये होंगे तो मुझे जो ठीक लगेगा वह करूँगा।"

"तुम्हें क्या ठीक लगता है?"

"रेवापाल भटराजका बाल-मित्र है। भटराजकी पत्नी और उनका शिष्य सोमेश्वर लाटके सैन्यसे जा मिलेगा।"

"रेवापाल? वह तो तुम्हारे भटराजका दुश्मन है।"

"किसने कहा? अब तक दोनों विरोधी हैं, यह ठीक है, परंतु अब लाटका सुख एक ही पक्षमें है।"

"कैसे जाना?"

"मंत्रीवर्य," क्रोधके आवेशमें सोमेश्वरने कहा, "बहुत हुआ, अब मुझे ज्यादा बातें नहीं कहनी है, परंतु आपके सवालका जवाब दूँगा। यदि भटराजकी मुंजाल मेहतामें खोटी श्रद्धा नहीं होती तो आज लीलादेवी इस प्रकार बेचारी बनकर हमारे दुःख नहीं सुनतीं रहतीं। मेरे गुरु लाटके अधिपति होते, तो हम सब आपके पाटणकी मजाक उड़ाते।"

"मेहताजी, मैं आऊँ?" पासके द्वारसे एक स्त्रीकी आवाज आई, "मेरा नाम कैसे आया?"

"ओहो, लीलादेवी, आओ।" कह कर मुंजाल खड़ा हुआ और युद्धमें जानेकी आधी पोशाक धारण किये रानी आई। उसने सोमेश्वरकी ओर देखा, परंतु वह क्रोधके मारे कुछ बोला नहीं।

"कौन सोमेश्वर? मैंने सुना कि तुम यहाँपर हो, इसलिए चली आई हूँ," मंत्री या सोमेश्वर दोनोंमेंसे कोई कुछ नहीं बोला।

२०—मुंजाल मेहताकी राजनीति

"क्यों सोमेश्वर, पहचानते हो या नहीं? अपनी राजकुमारीको भूल गये?"

सोमेश्वरने क्रोधसे देखा, "मेरी राजकुमारी कहाँ है? यहाँ तो मैं पाटणकी पटरानी देखता हूँ, जिसे मैं नहीं पहचानता।"

"वाह!" लीलादेवीने शान्तिसे कहा, "बड़ोंके साथ तुम भी खूब बोलना सीख गये हो!"

"बड़ी हैं तो प्रभु आपका बड़प्पन अमर रक्खे, परंतु हमारे लिए वह किस कामका? जिस आदमीने आपको महारानी बनाया उसके स्त्री-बच्चे मर रहे हैं, परन्तु आपको परवाह नहीं। जिन लोगोंने आपकी महत्ता बढ़ानेके लिए परदेशियोंकी गुलामी स्वीकार की, उनके लिए आपके हृदयमें प्रेम नहीं। आप हमारी नहीं, तो हम भी आपके नहीं।" सोमेश्वर क्रोध ही क्रोधमें बोल गया। बोलते समय उसकी आँखोंसे क्रोधके आँसू टपक पड़े।

"तुम्हारी बात सच्ची है।" रानीने शांतिसे कहा, "पाटण न तो पहले किसीका हुआ और न आगे होगा।"

मुंजालने ऊपर देखा। उसने रानीमें साधारण गांभीर्य देखा।

"और जो पाटण आता है वह भी पट्टणी हो जाता है," सोमेश्वरने कुछ कड़वाससे कहा।

"पर पद्मनाभ राजाकी कुमारी नहीं," लीलादेवीने शान्तिसे कहा। "मेहताजी, आपमेंसे किसीको लाटकी चिंता नहीं, पर कहीं मेरा छुटकारा हो सकता है? सोमेश्वर, निश्चिन्त हो जाओ, मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ। हम दोनों मिलकर लाटका उद्धार करेंगे।"

मुंजाल मेहता इतने वर्षोंके राजनीतिक जीवनमें पहली ही बार चौंके। इस दृढ़, सख्त, शान्त रानीके मुखपर गांभीर्य और आँखोंमें निश्चयात्मक बुद्धि थी।

"क्या कहती हो?" मुंजालने पूछा।

"सुना नहीं?" रानीने तिरस्कारसे कहा।

"परन्तु मैंने सोमेश्वरको यह सब पूछनेके लिए ही तो बुलाया है। मैं

लाटकी सहायताके लिए आदमी भेजनेकी अभी व्यवस्था करता हूँ।" मुंजालने मिठाससे कहा।

"आदमी भेजनेसे क्या होगा? लाटकी कुमारीको ही लाटको सहायताके लिए दौड़ना चाहिए, आपको तकलीफ उठानेकी जरूरत नहीं। मैंने ददा नायकको बुलाया है। मेरे पचास सैनिक अभी तैयार हो जायँगे।"

"परन्तु बेटी, अभी तुम जाओगी तो जूनागढ़का क्या होगा?" मुंजाल मेहताने धीरेसे कहा।

"क्या आप सब यहाँ नहीं हैं?" रानीने तिरस्कारसे पूछा।

"हम हैं, पर तुमको तो होना ही चाहिए।"

"लाट मेरा है सोरठकी बात आप पट्टणी जानें। सोमेश्वर, हम कितने दिनोंमें लाट पहुँच जाएँगे।"

"पाँचवें दिन तो जरूर पहुँच जाएँगे।"

"परंतु इतनेसे आदमी ले जाकर क्या करोगी?"

"मेहताजी, आपको लाटकी खबर नहीं है। मैं अकेली ही काफी हूँ। यहाँ मेरी कोई गिनती नहीं, परंतु वहाँके लोग मुझे पूजते हैं। रेवापाल मुझे देखते ही मेरे चरणोंकी रज माथेपर चढ़ाएगा।"

"परंतु हम जूनागढ़ सर करेंगे और काकको भेजेंगे।"

"जूनागढ़ सर हो, तब तक मैं राह देखनेवाली नहीं।" रानीने दृढ़तासे कहा। काक जीता हो तो उससे कहिए कि जल्दी ही लाट पहुँचे। वहाँ उसके गुरु ध्रुवसेन हैं, बाल-मित्र रेवापाल है, रानी मैं हूँ और अर्धाङ्गना मंजरी है। कहिएगा कि वहीं आवे। सोमेश्वर, तुम मेरे साथ चलो।"

मुंजाल इतने समय तक यह सब देखता रहा। उसने अनेक विकट प्रसङ्ग देखे थे, पर ऐसा विकट प्रसङ्ग बरसोंसे नहीं आया था। कई वर्ष पहले जब पाटणने विद्रोह किया था, तब उसकी पैनी राजनीतिज्ञताने अकल्पित चमत्कार दिखाया था। आजका भी ऐसा ही प्रसंग था। वह इस शान्त और दीर्घदर्शी स्त्रीका हेतु, लाटकी स्थिति, सोरठकी जीत और पाटणकी महत्ता—इन सबका तेजीसे विचार करने लगा। उसकी तेजस्वी आँखें चमक उठीं। उसके होठ बंद हो गये।

" ठहरो, " उसने सत्ताशाली आवाजमें कहा, " रानी, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ। "

" कहाँ ? " रानीने कुछ सख्तीसे पूछा।

" लाटकी रक्षा करने। " महामात्यने दृढ़तासे कहा।

" आप ? " रानीने चकित होकर पूछा।

" हाँ। "

" आपकी जरूरत नहीं। " रानीने अपमानकारक ढँगसे कहा।

" सोमेश्वर, जरा बाहर जाकर खड़ा रह। वस्ता, किवाड़ बंद कर दे। " मुंजालने हुक्म दिया।

सोमेश्वरने देखा कि यहाँपर कुछ ऐसा खेल हो रहा है जो उसकी समझमें नहीं आ सकता। पर इससे लाटको फायदा ही होगा, यह स्पष्ट दिखाई देता था। वह चुपचाप बाहर गया और वस्ता आकर किवाड़ बंद कर गया।

चार पाँच क्षण तक मुंजाल और लीलादेवी एक दूसरेके सामने देखते रहे। मुंजालकी आँखोंमें दुर्धर्ष प्रताप था: उनमेंसे तेजकी किरणें निकल रही थीं। लीलादेवीकी आँखोंमें शान्त और गहन स्थिरता थी; उनमेंसे धारदार तीर जैसी तीक्ष्णता बाहर निकलती थी। दोनोंकी आँखोंमें जीवलेन दृढ़ता थी।

" मैं भी चलता हूँ। " मंत्रीने फिर दृढ़तासे कहा।

" आपका काम नहीं। " रानीने वैसी ही दृढ़तासे कहा।

" रानी, तुम्हारा मतलब क्या है ? " मुंजालने एकाग्रतासे देखकर धीरेसे कहा।

लीलादेवीने जवाब नहीं दिया। मुंजाल नीचे झुका और उसने धीमेसे कहा, " यदि राजा पटरानी बना ले, तो तुम्हें लाटमें जाकर रेवापालकी मददसे राज्य करना है ? "

लीलादेवी स्तब्ध हो गई। एक क्षणके लिए उसकी स्वस्थता चली गई। वह पीछे हटकर महामात्यकी ओर व्याकुल दृष्टिसे देखती रही। यह मनुष्य है या कोई जादूगर ? तुरत ही उसने अपने दाँत पीसे और जरा जोरसे पर शान्तिसे जवाब दिया। " किसलिए नहीं ? "

" आप समझती हैं कि जयसिंहदेव राणकदेवीको पटरानी बनानेवाले हैं ? "

" मुझे विश्वास है। "

मुंजाल खिलखिलाकर हँसने लगा। "मुझे तुम्हारी बातोंमे बहुत मजा आता है।"

"नहीं क्यों आएगा?" सोमेश्वरने कटुतासे कहा, "यहाँके लोग दूसरोंके दुःखमें हँसना अच्छी तरह जानते हैं।"

"हमारी ऐसी आदत तो है," मजाकमें मुंजालने कहा, "परंतु लड़के, अब तू अकेला जाकर गढ़की रक्षा करेगा, उससे क्या होगा?"

"गढ़ अगर टिकेगा तो आपके लिए नहीं, मेरे भटराजके लिए। वे जीते होंगे तो आ पहुँचेंगे और बादमें जो करना होगा करेंगे। वे देवलोक चले गये होंगे तो मुझे जो ठीक लगेगा वह करूँगा।"

"तुम्हें क्या ठीक लगता है?"

"रेवापाल भटराजका बाल-मित्र है। भटराजकी पत्नी और उनका शिष्य सोमेश्वर लाटके सैन्यसे जा मिलेगा।"

"रेवापाल? वह तो तुम्हारे भटराजका दुश्मन है।"

"किसने कहा? अब तक दोनों विरोधी हैं, यह ठीक है, परंतु अब लाटका सुख एक ही पक्षमें है।"

"कैसे जाना?"

"मंत्रीवर्य," क्रोधके आवेशमें सोमेश्वरने कहा, "बहुत हुआ, अब मुझे ज्यादा बातें नहीं कहनी है, परंतु आपके सवालका जवाब दूँगा। यदि भटराज-की मुंजाल मेहतामें खोटी श्रद्धा नहीं होती तो आज लीलादेवी इस प्रकार बेचारी बनकर हमारे दुःख नहीं सुनतीं रहतीं। मेरे गुरु लाटके अधिपति होते, तो हम सब आपके पाटणकी मजाक उड़ाते।"

"मेहताजी, मैं आऊँ?" पासके द्वारसे एक स्त्रीकी आवाज आई, "मेरा नाम कैसे आया?"

"ओहो, लीलादेवी, आओ।" कह कर मुंजाल खड़ा हुआ और युद्धमें जानेकी आधी पोशाक धारण किये रानी आई। उसने सोमेश्वरकी ओर देखा, परंतु वह क्रोधके मारे कुछ बोला नहीं।

"कौन सोमेश्वर? मैंने सुना कि तुम यहाँपर हो, इसलिए चली आई हूँ," मंत्री या सोमेश्वर दोनोंमेंसे कोई कुछ नहीं बोला।

२०—मुंजाल मेहताकी राजनीति

"क्यों सोमेश्वर, पहचानते हो या नहीं? अपनी राजकुमारीको भूल गये?"

सोमेश्वरने क्रोधसे देखा, "मेरी राजकुमारी कहाँ है? यहाँ तो मैं पाटणकी पटरानी देखता हूँ, जिसे मैं नहीं पहचानता।"

"वाह!" लीलादेवीने शान्तिसे कहा, "बड़ोंके साथ तुम भी खूब बोलना सीख गये हो!"

"बड़ी हैं तो प्रभु आपका बड़प्पन अमर रक्खें, परंतु हमारे लिए वह किस कामका? जिस आदमीने आपको महारानी बनाया उसके स्त्री-बच्चे मर रहे हैं, परन्तु आपको परवाह नहीं। जिन लोगोंने आपकी महत्ता बढ़ानेके लिए परदेशियोंकी गुलामी स्वीकार की, उनके लिए आपके हृदयमें प्रेम नहीं। आप हमारी नहीं, तो हम भी आपके नहीं।" सोमेश्वर क्रोध ही क्रोधमें बोल गया। बोलते समय उसकी आँखोंसे क्रोधके आँसू टपक पड़े।

"तुम्हारी बात सच्ची है।" रानीने शांतिसे कहा, "पाटण न तो पहले किसीका हुआ और न आगे होगा।"

मुंजालने ऊपर देखा। उसने रानीमे साधारण गांभीर्य देखा।

"और जो पाटण आता है वह भी पट्टणी हो जाता है," सोमेश्वरने कुछ कड़वाससे कहा।

"पर पद्मनाभ राजाकी कुमारी नहीं," लीलादेवीने शान्तिसे कहा। "मेहताजी, आपमेंसे किसीको लाटकी चिंता नहीं, पर कहीं मेरा छुटकारा हो सकता है? सोमेश्वर, निश्चिन्त हो जाओ, मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ। हम दोनों मिलकर लाटका उद्धार करेंगे।"

मुंजाल मेहता इतने वर्षोंके राजनीतिक जीवनमें पहली ही बार चौंके। इस दृढ़, सख्त, शान्त रानीके मुखपर गांभीर्य और आँखोंमें निश्चयात्मक बुद्धि थी।

"क्या कहती हो?" मुंजालने पूछा।

"सुना नहीं?" रानीने तिरस्कारसे कहा।

"परन्तु मैंने सोमेश्वरको यह सब पूछनेके लिए ही तो बुलाया है। मैं

लाटकी सहायताके लिए आदमी भेजनेकी अभी व्यवस्था करता हूँ।" मुंजालने मिठाससे कहा।

"आदमी भेजनेसे क्या होगा? लाटकी कुमारीको ही लाटको सहायताके लिए दौड़ना चाहिए, आपको तकलीफ उठानेकी जरूरत नहीं। मैंने ददा नायकको बुलाया है। मेरे पचास सैनिक अभी तैयार हो जायँगे।"

"परन्तु बेटी, अभी तुम जाओगी तो जूनागढ़का क्या होगा?" मुंजाल मेहताने धीरेसे कहा।

"क्या आप सब यहाँ नहीं हैं?" रानीने तिरस्कारसे पूछा।

"हम हैं, पर तुमको तो होना ही चाहिए।"

"लाट मेरा है सोरठकी बात आप पट्टणी जानें। सोमेश्वर, हम कितने दिनोंमें लाट पहुँच जाएँगे।"

"पाँचवें दिन तो जरूर पहुँच जाएँगे।"

"परंतु इतनेसे आदमी ले जाकर क्या करोगी?"

"मेहताजी, आपको लाटकी खबर नहीं है। मैं अकेली ही काफी हूँ। यहाँ मेरी कोई गिनती नहीं, परंतु वहाँके लोग मुझे पूजते हैं। रेवापाल मुझे देखते ही मेरे चरणोंकी रज माथेपर चढ़ाएगा।"

"परंतु हम जूनागढ़ सर करेंगे और काकको भेजेंगे।"

"जूनागढ़ सर हो, तब तक मैं राह देखनेवाली नहीं।" रानीने दृढ़तासे कहा। काक जीता हो तो उससे कहिए कि जल्दी ही लाट पहुँचे। वहाँ उसके गुरु ध्रुवसेन हैं, बाल-मित्र रेवापाल है, रानी मैं हूँ और अर्धाङ्गना मंजरी है। कहिएगा कि वहीं आवे। सोमेश्वर, तुम मेरे साथ चलो।"

मुंजाल इतने समय तक यह सब देखता रहा। उसने अनेक विकट प्रसङ्ग देखे थे, पर ऐसा विकट प्रसङ्ग बरसोंसे नहीं आया था। कई वर्ष पहले जब पाटणने विद्रोह किया था, तब उसकी पैनी राजनीतिज्ञताने अकल्पित चमत्कार दिखाया था। आजका भी ऐसा ही प्रसंग था। वह इस शान्त और दीर्घदर्शी स्त्रीका हेतु, लाटकी स्थिति, सोरठकी जीत और पाटणकी महत्ता—इन सबका तेजीसे विचार करने लगा। उसकी तेजस्वी आँखें चमक उठीं। उसके होठ बंद हो गये।

" ठहरो, " उसने सत्ताशाली आवाजमें कहा, " रानी, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ। "

" कहाँ ? " रानीने कुछ सख्तीसे पूछा।

" लाटकी रक्षा करने। " महामात्यने दृढ़तासे कहा।

" आप ? " रानीने चकित होकर पूछा।

" हाँ। "

" आपकी जरूरत नहीं। " रानीने अपमानकारक ढँगसे कहा।

" सोमेश्वर, जरा बाहर जाकर खड़ा रह। वस्ता, किवाड़ बंद कर दे। " मुंजालने हुक्म दिया।

सोमेश्वरने देखा कि यहाँपर कुछ ऐसा खेल हो रहा है जो उसकी समझमें नहीं आ सकता। पर इससे लाटको फायदा ही होगा, यह स्पष्ट दिखाई देता था। वह चुपचाप बाहर गया और वस्ता आकर किवाड़ बंद कर गया।

चार पाँच क्षण तक मुंजाल और लीलादेवी एक दूसरेके सामने देखते रहे। मुंजालकी आँखोंमें दुर्धर्ष प्रताप था: उनमेंसे तेजकी किरणें निकल रही थीं। लीलादेवीकी आँखोंमे शान्त और गहन स्थिरता थी; उनमेसे धारदार तीर जैसी तीक्ष्णता बाहर निकलती थी। दोनोंकी आँखोंमें जीवलेन दृढ़ता थी।

" मैं भी चलता हूँ। " मंत्रीने फिर दृढ़तासे कहा।

" आपका काम नहीं। " रानीने वैसी ही दृढ़तासे कहा।

" रानी, तुम्हारा मतलब क्या है ? " मुंजालने एकाग्रतासे देखकर धीरेसे कहा।

लीलादेवीने जवाब नहीं दिया। मुंजाल नीचे झुका और उसने धीमेसे कहा, " यदि राजा पटरानी बना ले, तो तुम्हें लाटमें जाकर रेवापालकी मददसे राज्य करना है ? "

लीलादेवी स्तब्ध हो गई। एक क्षणके लिए उसकी स्वस्थता चली गई। वह पीछे हटकर महामात्यकी ओर व्याकुल दृष्टिसे देखती रही। यह मनुष्य है या कोई जादूगर ? तुरत ही उसने अपने दाँत पीसे और जरा जोरसे पर शान्तिसे जवाब दिया। " किसलिए नहीं ? "

" आप समझती हैं कि जयसिंहदेव राणकदेवीको पटरानी बनानेवाले हैं ? "

" मुझे विश्वास है। "

" आप मानती हैं कि राणकदेवी यह पद स्वीकार कर लेगी ? "

" समय है, शायद स्वीकार कर ले। पर जो स्वामी क्षण क्षणमें बदलता है, उसका क्या भरोसा ? " रानीने ठंडे कलेजेसे जवाब दिया।

मुंजालने कुछ गर्वशील आवाजसे कहा, " मैं तो अभी बैठा हूँ। "

" आप ? " रानीने तिरस्कारसे कहा, " आप तो पाटणकी सत्ताके तार खीचनेके चरखे हैं। इसके सिवाय आपका भाव कौन पूछता है ? "

" बेटी, अभी मैं ऐसा नहीं हुआ, घबड़ाओ मत। यहाँपर ऐसा कोई नहीं, जो मेरे वचनका उलंघन कर सके। "

" पाटण तो आपका लड़का है। क्या पिताको अपने पुत्रके लिए कभी ऐसा बोलते हुए सुना है कि मेरा निर्वंश हो जाए ? इस बाबतमें मैं ऐसी नहीं हूँ कि किसीके वचनपर विश्वास कर लूँ। मैं यहाँ सबको पहचानती हूँ और मैं पटरानी मिटकर नौकरानी नहीं बनना चाहती। "

" बेटी, जब तक मैं जीता हूँ तब तक तुम्हारा पद नहीं जा सकता। मेरे वचनमें विश्वास नहीं है ? "

" देखिए ज्यादा गड़बड़ करेंगे, तो यह विक्रमादित्य किसी दिन आपका गला काट डालेगा। आपके वचनपर विश्वास रखकर मैं नहीं बैठ सकती। "

" ज्यादा हठ मत करो। " मुंजालने समझाते हुए कहा। " मैं कौन हूँ, इसकी अब भी तुम्हें खबर नहीं। "

" मैं अच्छी तरह जानती हूँ। आप सोलंकीकी सत्ता बढ़ानेवाले एक शस्त्र हैं। जैसी एक शस्त्र मैं हूँ वैसे ही आप हैं। आपको ऐसा लगता है कि मैं लाट चली जाऊँगी तो एक उपयोगी शस्त्र हाथसे निकल जायगा। सो भले ही निकल जाय, पर मुझे यहाँ शस्त्र रूपसे नहीं रहना, रानी होना है; और पाटणकी नाम मात्रकी महारानी रहनेकी अपेक्षा तीन गाँवकी स्वामिनी बनकर मैं अधिक संतोष मानूँगी। "

" मेरी बात नहीं सुनोगी ? " मुंजालने कुछ सख्तीसे कहा।

" नहीं। "

" तो मैं तुम्हारे लाटको कुचल डालूँगा। "

" लाटकी माताके रूपमें मैं कुचला जाना ही पसंद करूँगी। "

"शाबाश!" मुंजाल खिलखिलाकर हँस पड़ा, बोला "बेटी, चलो हम एक शर्त करें।"

"क्या?"

"तुम्हारा पद न जाए, तब तो कुछ आपत्ति नहीं?" मुंजालने कहा।

"पर इसका विश्वास क्या?"

"अभी सोमेश्वरके साथ दो हजार आदमी लाटकी ओर भेजता हूँ। दो सौ लाट सैनिक तुम्हारे लिए तैयार रखता हूँ और यदि जयसिंहदेव राणकदेवीके साथ ब्याह करें तो तुम भी मुक्त और मैं भी मुक्त। तुम लाट जाकर सोमेश्वरसे मिल जाना।"

लीलादेवीने सिर हिलाया।

"तुम जूनागढ़ चलो और मैं भी चलता हूँ। फिर देखता हूँ कि जयसिंह-देव उसको कैसा ब्याहता है।" गर्वसे मुंजालने कहा।

"और ब्याह लें तो—"

"बेटी," मुंजालकी भौंहें तन गईं। उसकी वाणीमें रौद्र रसकी झंकार थी। "मैंने जो कुछ गढ़ा है उसे मिटानेमें भी देर नहीं लगेगी। वस्ता,"

लीलादेवी चुप रही।

"जी।" कहकर वस्ता आया।

"जा, वाहड़ मेहताको बुला ला," अमात्यने आज्ञा दी "और सोमे-श्वरको भी बुला।"

"जी," कह कर वस्ता गया और सोमेश्वर आया।

"सोमेश्वर, तुम कितने सैनिक लेकर रेवापालका सामना करनेके लिए तैयार हो?"

"पच्चीस सौ होंगे, तो बहुत हैं।" सोमेश्वरने हर्षसे कहा।

"देखो, इस समय मैं तुम्हारे साथ लाटके एक हजार सैनिक भेजता हूँ। तुम्हारे साथ वाहड़ मेहता जायगा और खंभातसे दूसरे पन्द्रह सौ सैनिक ले लेना। जयसिंहदेव महाराज, लीला रानी और मैं परसों निकल कर आ रहे हैं।"

सोमेश्वरने हाथ जोड़े। उसका हृदय भर आया। "जैसी आज्ञा।"

"अब तो ठीक हुआ?" रानीकी ओर मुड़कर मुंजालने कहा।

" अभी नहीं कहूँगी।" हँसकर लीलादेवीने कहा। इतनेहीमें वस्ता आया। " वाहड़ मेहता आए।"

" अंदर भेज।" अमात्यने कहा।

" वाहड़ मेहता नीचे देखते, घबड़ाते और लज्जित होते हुए आये।

" वाहड़, आज तुम बिलकुल नालायक ठहराये गये हो," वाहडने जवाब नहीं दिया। " देखो, आज मैं तुम्हें एक दूसरा काम सौंपता हूँ।" वाहड़के मुँहपर आशाके किरण फूट पड़े। " सोमेश्वर हजार सैनिक लेकर लाटके विप्लव-को शान्त करनेके लिए जाता है, इसके साथ तुम भी जाओ। खंभातसे दूसरे पन्द्रह सौ सैनिक ले लेना। अभी आज्ञापत्र दिलाता हूँ। तीन दिनमें महाराज, लीला रानी और मैं लाटको सर करनेके लिए आते हैं।"

" जैसी आज्ञा," चकित होकर वाहड़ने कहा। उसका हृदय नये जोशसे उछलने लगा।

" जाओ, विजय करो। हमारे आनेके पहले हाथसे बाजी जाने दी, तो मुँह मत बतलाना।"

" महाराज," सोमेश्वरने कहा, " जरा भी फिक्र न करें। मैं भी आपको बताऊँगा कि भटराजका शिष्य क्या कर सकता है।" कह कर उसने और वाहड़ने दोनोंने आज्ञा ली।

मुंजाल रानीकी ओर मुड़कर हँसा। काक भटराजके विना लाटमें कोई जीता हो ऐसा दिखता ही नहीं है।"

लीलादेवी जवाबमें हँसी।

" बेटी, अब जाकर तैयारी करो। मुझे पहचान लो तो भी बोलना मत और यदि जयदेव तुम्हें दूसरे दरवाजेसे जानेके लिए कहे तो मना मत करना। तुम जितनी दूर रहोगी उतना ही मेरा निश्चित कार्य पूरा करनेमें सरलता होगी। मैं तैयार होता हूँ।" कहकर वह जाने लगा।

लीलादेवीने हँस कर पूछा, " क्या बड़ी माँके पास जा रहे हैं?"

" हाँ, क्यों?"

" यह सब कहोगे?" लीलादेवीने पूछा।

" तुम क्या सोचती हो?" मुंजालने हँसकर कहा।

" कुछ नहीं। आप भी गजबके आदमी हैं।" रानी हँसी।

" क्या आजका हूँ ? पर बेटी, तुम्हारा मनचाहा न करने दिया होता और जाते समय रोक देता तो क्या करतीं ? " मुंजालके मुँहपर वात्सल्य भाव था।

" किस तरह रोकते ? "

" कैद करता । "

लीलादेवीने हँसकर अपने पल्लेमें खोंसी हुई कटार बताई, " मेहताजी, मुझे यमराजके सिवाय कौन रोकनेवाला है ? " उसने ठंडे कलेजेसे कहा, " मुझे कैद करने जाते तो पाटण महा-अमात्य-विहीन हो जाता । "

मुंजाल प्रशंसापूर्ण निगाहसे देखता रहा, " तुम तो अद्भुत हो ! "

रानीने हँस कर आज्ञा ली ।

२१—विजयप्रस्थान—पहला

महाराजकी आज्ञानुसार दो घड़ीमें सब तैयारी हो गई । राजगढ़मेंसे शान्ति और त्वरासे हुक्मपर हुक्म निकले और उनपर बहुत जल्दी अमल किया गया।

वंथलीमें लोग संदेश लेकर आ जा रहे थे । वंथलीसे जुदी जुदी छावनियोंको सवार छूटे और सैनिकोंने जुदे जुदे स्थानोंको कूच करना शुरू किया ।

कुछ इधर जाते और कुछ उधर, कुछ पैदल और कुछ घोड़ेपर सवार । दो सैनिक मिलते तो थोड़ी देर पासमें खड़े रहकर शब्द बोले विना ही अलग हो जाते । कितने ही स्थलोंपर सैनिकोंका समूह चुपचाप चला जाता । घोड़ोंके सुम भी मानों आवाज किये विना जमीनपर पड़ रहे हों, ऐसा लगता । चारों ओर निःशब्दता थी, फिर भी वातावरण ऐसा लगता जैसे भूतोंका जमाव हो और चारों ओर त्रास फैल रहा हो ।

थोड़ी देरमें सब शान्त हो गया । सैनिकोंका आना जाना भी बंद हो गया। ऐसा भास हुआ कि सारी वंथली निश्चेतन पड़ी हुई है ।

राजगढ़के चौकमें आठ दस घुड़सवार अधीर हो रहे थे । सात घुड़सवार गढ़मेंसे बाहर निकले, उनमेंसे एक सबसे आगे चल रहा था ।

पासके द्वारसे एक शस्त्रसज्जित पर छोटे कदका योद्धा निकला और उसने पहले व्यक्तिसे कुछ तिरस्कारपूर्वक शान्तिका भंग करते हुए कहा, "राजाजी, मुझे तो भूल ही गये।"

पहला सवार अधीरतासे खड़ा रहा, "तुम भी चल रही हो?" राजाकी आवाजमें असंतोष स्पष्ट रूपसे दिख रहा था।

"क्यों? मैं तो तुम्हारे साथ आनेवाली थी न!"

राजाने होठ काटे "तुम किसलिए जोखिम उठाती हो?"

"हम दोमेंसे जोखिम तो मैंने ही अधिक उठाये होंगे," रानीने तिरस्कारसे कहा।

राजाने जवाबमें केवल इतना ही कहा: "चलो।"

रानी तुरत साथ चल पड़ी। सारे पट्टणी योद्धाओंको भी राजाका अभिप्राय ठीक लगा। क्या यह जोखिम स्त्रीको उठाना चाहिए? परंतु देशलदेवने विशलदेवके कंधेको हाथसे दबाया। इसका अर्थ वह जुदा समझा।

चुपचाप सब चले और घोड़ोंपर सवार हुए। थोड़ी ही देरमें सब गाँवके बाहर लश्करके पड़ावके सामने आये और चार पाँच सौ घुड़सवार लेकर तेजीसे जूनागढ़की ओर चल दिये।

चन्द्रमा ऐसा दिखता था जैसे गिरनारके शृङ्गोंपर लटक रहा हो। चाँदनीमें मनुष्योंकी हलचल न दिखे, इसलिए ज्यादातर लश्कर जुदी जुदी दिशाओंकी ओर पैदल जा रहा था। वंथली और जूनागढ़के बीचमें आये हुए घने जंगलके कारण इस हलचलको पहचानना मुश्किल था। इसके सिवाय मेंदरडेसे एक टुकड़ी डंकेकी चोटके साथ निकल चुकी थी। इससे केवल एक ही ओरसे हमला हो रहा है, इस भ्रमसे सोरठियोंके धोखेमें पड़ जानेकी संभावना थी।

मानों पर्वतपर चारों ओरसे कुहरा चढ़ रहा हो, इस तरह पट्टणी सैन्य बहुत धीरे धीरे पर्वतपर चढ़ने लगा। राजावाली टुकड़ी थोड़ी देरमें जंगल पार करके चौकीके आगे आ पहुँची।

"देशलदेव, क्या यही तुम्हारी चौकी है?" जयसिंहदेवने पूछा।

"हाँ महाराज," कहकर देशलदेव आगे बढ़ा और अपने भाईको साथमें लेकर सबसे आगेके चौकीदारके पास गया।

देशलदेवने सबको मिला रक्खा था, इसलिए चौकीदार कुछ भी बोले नहीं और पट्टणी सैन्यने चौकीपर तुरत अपना अधिकार जमा लिया। यहाँ सब सवार घोड़े परसे उतर पड़े और आगे पैदल जानेको तैयार हुए।

यहाँसे पाँच सौ आदमी, त्रिभुवनपालके साथ, मेंदरडेसे आनेवाली टुकड़ीसे मिलकर जूनागढ़के मुख्य दरवाजेकी ओर जानेवाले थे और बाकीके आदमी महाराजा, परशुराम और उदा महेताके साथ गुप्त रूपसे दाखिल होनेवाले थे। इसलिए सब झटपट अलग अलग बँट गये।

राजाका मुँह गुस्सेसे भरा था। उसकी आँखोंमें खुनस दिखाई दे रही थी। ज्यों ही सबके निकलनेकी तैयारी हुई कि राजाने त्रिभुवनपालसे कहा, "भाई त्रिभुवनपाल, लीलादेवीको अपने साथ ले जाओ।"

रानी ये शब्द सुनकर कुछ कहना ही चाहती थी कि राजाने कहा, "रानी, तुम जाओ।" राजाकी आवाजमें गुस्सा था। रानी मनमें हँसी। उसने और मुंजालने इस स्थितिका विचार पहले ही कर रखा था।

"आप जरा सँभले रहें," रानीने मजाकमें कटाक्ष किया और वह त्रिभुवनपालके साथ गई। जाते जाते उसने पदातियोंपर निगाह डाली, उन सबके बीच गुप्त वेषमें आये हुए महामात्यको पहचानना अशक्य था, परन्तु उसे इस पुरुषके वचनमें श्रद्धा हो गई थी। महाराज और उनके साथी चुपचाप, छाया ढूँढ़ते ढूँढ़ते आगे बढ़े। आगे आगे देशलदेव और विशलदेव चलते और पीछे पीछे महाराज, परशुराम, उदा महेता और जयदेव परमार। पैदल सिपाही धीरे धीरे एक एक दो दो छिप छिपकर आते थे। कोई एक अक्षर भी न बोलता था।

सबसे दूर अँधेरेमें बड़ेसे काले कुत्ते जैसा जानवर तेजीसे साथ साथ चल रहा हो, ऐसा बार बार दिखाई देता, पर उस दिशामें शायद ही कोई देखनेकी हिम्मत करता था। उसपर जिसकी निगह पड़ती वह काँप उठता। सबको ऐसा लगता कि बाबरा भूत साथ साथ आ रहा है। यह भूत जिसका सहायक हो वह युद्ध-वीर कैसे हार सकता है? इससे महाराजकी दुर्जयतामें लोगोंकी श्रद्धा बढ़ती थी।

सबके हृदय क्षोभसे धड़क रहे थे और आजकी रातका क्या परिणाम आएगा, इसका विचार कर रहे थे। कल पाटणका भविष्य कैसा होगा इसका

विचार महारथी कर रहे थे। कलका सूर्योदय देख सकेंगे या नहीं, इसमें हर एकको संशय था।

जयसिंहदेवका मुँह क्रोधसे तमतमा रहा था। उसकी आँखें विकराल हो गई थीं। उसके पाँव सबसे अधिक मजबूतीसे पड़ते थे। उसके हृदयमें क्षोभ नहीं, किन्तु विनाशक उत्साह था। इस समय वह जूनागढ़ जीतने और राणकसे मिलनेके लिए तड़प रहा था। उसे विश्वास था कि सूर्योदय होनेपर वह राणकको अवश्य ब्याहेगा।

बड़ी बड़ी काली चींटियोंके झुण्डकी तरह सब लोग बोले विना, धीमे धीमे, आगे और आगे, ऊपर और ऊपर चढ़ने लगे। किसीका एक निश्वास भी मानों किसीको सुनाई नहीं देता था। चारों ओर शान्ति थी। किसी किसी समय केवल पाँवकी ठोकरसे लुढ़कता हुआ पत्थर या घबड़ाया हुआ पक्षी एकदम आवाज करके प्रलयकालके कड़ाकेकी तरह सबके हृदयमें त्रास पैदा कर देता था। सब गढ़के पास पहुँच गये, गढ़पर कोई फिर रहा हो, ऐसा मालूम हुआ। हर एकका हृदय अकुलाने लगा।

दूसरी ओरसे आगे बढ़ते हुए पट्टणी सैन्यके डंके मानों स्वप्नमें कोई आवाज सुनाई दे रही हो इस तरह सुनाई देते थे, वे अब बंद हो गये। थोड़ी-सी चीखें, थोड़ी-सी गड़बड़ परलोकसे आई हो ऐसा भय फैलाकर कानपर आती थी। ऐसा लगता था कि मेंदरडेसे निकली हुई टुकड़ीने बड़ी चौकीके साथ युद्ध शुरू कर दिया है। उस अशान्तिमें दूरसे आनेवाली मार-काटकी आवाज वातावरणको भयानक बना डालती थी।

आगेके आदमी एक बड़े वृक्षकी छायाके नीचे छिप कर खड़े हो गये।

"देशलदेव," जयसिंहदेवने कहा। उसकी आवाज खुरखुरी हो गई थी। "तुम जाकर किलेदारसे मिल आओ और मेहता," उदा मेहतासे कहा, "तुम त्रिभुवनपालसे मिल कर, बड़ी चौकीके आगे क्या हो रहा है, इसकी खबर लेकर जल्दी आओ।"

उदा मेहता समझ गया। महाराजकी दानत थी कि वह त्रिभुवनपाल और लीलादेवीको लेकर सीधा बड़ी चौकीपर जाय। उसने नमस्कार करके साथमें सैनिक लिये और जिस रास्ते त्रिभुवनपाल गये थे उस ओर चलना शुरू कर दिया।

देशलदेवने चारों ओर सावधानीसे देखा। जहाँ वह खड़ा था उस वृक्षके और गढ़की खिड़कीके बीच कोई वृक्ष नहीं था, पर थोड़ेसे थूहड़ उगे थे। देशलदेव उनकी ओटमें चारों पाँवोंसे चलकर आगे बढ़ा। वृक्षके नीचे खड़े हुए सब लोग उसकी प्रवृत्ति देखते रहे।

थूहड़की ओटमेंसे एकदम निकलकर देशलदेव गढ़के दरवाजेमें छिप गया। थोड़ी देरमें उसने हाथ लंबा करके खिड़कीका कुंडा खटखटाया और तीन बार दो दो टकोरे दिये।

"कौन है?" धीरेसे आवाज आई। देशलदेव खुश हुआ। यह आवाज़ उसके शागिर्द हमीरकी थी।

"कौन हमीर?" देशलदेवने धीरेसे पूछा, "यह तो मैं हूँ। किलेदार है?"

"हाँ, हूँ। क्यों, क्या काम है?" दादूकी गुस्साभरी आवाज आई।

"किलेदार, खिड़की तो खोलो।"

"क्या काम है? इस समय खिड़की नहीं खुल सकती।" दादूने हठपूर्वक कहा। कलकी घटनासे श्वसुरपरसे उसका चित्त हट गया था।

"दादू, जरा तो खोलो, मुझे एक बात कहनी है। तुम मेरे लड़केके समान होकर यह क्या कर रहे हो? मुझे कल खड़े खड़े निकाल दिया और मैं अपनी माल-मिल्कियत किसीको सौंपतक न सका। मेरे लड़के कहो तो तुम और जमाई कहो तो तुम। और कल उठनेपर न जाने मेरा क्या हो।"

दादूने जवाब नहीं दिया।

"मैं बूढ़ा हूँ, मेरा कौन है? तुम दो शब्द तो सुन लो। अपनी लड़कीसे मुझे दो शब्द कहलवाना है और अपनी सारी जायदाद ठिकाने लगानी है। मैं फिर वापस नहीं आऊँगा। किलेदार, जरा अंबा भवानीके खातिर दो शब्द तो सुन लो।"

देशलदेव गिड़गिड़ाने लगा, उसकी आँखोंमेंसे टपटप आँसू पड़ रहे हों ऐसी उसके गलेकी आवाजसे लगा।

"जो कुछ कहना हो, ऐसे ही बाहरसे कहो।"

"ऐसे कैसे कहा जा सकता है? कहीं कोई चौकीदार सुन ले तो? और जैसे तुम हो वैसा क्या हमीर है? भैया, जरा तो खोलो। नहीं तो मेरी जिंदगीमें इकट्ठा किया हुआ किसीके भी हाथ नहीं पड़ेगा।"

दादूको दया आ गई। इस बूढ़ेको कल आधी घड़ीमें ही गढ़के बाहर निकाल दिया। बेचारेके दो अक्षर सुन लेनेसे मेरा क्या जाएगा? उसने किवाड़के छेदसे देखा। बाहर कोई दिखाई न दिया, इसलिए उसने साँकल खोली। खिड़की थोड़ी-सी खोलकर सिर निकाला।

"किलेदार," देशलदेवने धीरेसे कहा, "खिड़की खोलो।"

"बोलिए, क्या है?" दादूने अधीरतासे कहा। उसे इस समय यह ससुर प्राणघातक शत्रु जैसा लगा।

देशलदेवने देखा कि दादूने थोड़ी-सी खिड़की खोली है और उसे भी अपने हाथसे पकड़े है। पीछे हमीर खड़ा था। उसकी और देशलकी आँखें मिलीं।

देशलदेवको पाटणकी महत्ता या सोरठके स्वातन्त्र्यकी परवाह न थी। परन्तु उसे ऐसा लगा कि इसी क्षणपर उसके सारे जीवनका आधार है। उसके हृदयकी धड़कन बढ़ने लगी। उसके हाथ-पाँव काँप रहे थे। जितने क्षणकी देरी होती थी जयसिंहदेव उतने ही अधीर होते थे और देशलकी जिंदगी जोखिममें पड़ती थी।

"किलेदार, तुम मेरी एक मात्र पुत्रीके धनी, मेरे उत्तराधिकारी हो।"

"फिर?" दादूने कहा।

"मैंने व्यवस्था की है।"

"किसकी?"

"जूनागढ़की गद्दी मुझे, और मेरे पीछे तुम्हें मिले, इसकी।"

"क्या कहते हो?" दादूने चौंककर पूछा, "देशलदेवजी, तुम्हें चित्त-भ्रम हो गया है।"

"नहीं, उस वृक्षके नीचे पाटणका धनी राह देख रहा है। खिड़की खोलो।"

"क्या? पाटणके धनीको जूनागढ़में—" दादू आँखें फाड़ कर आश्चर्य-चकित होकर बोला। उसकी आवाज कुछ बुलंद हुई।

देशलदेव धीरज नहीं रख सका। दादू खिड़की और उसके किवाड़के बीच गर्दन रखकर बात कर रहा था। उसने हमीरकी ओर नजर डाली और दादू अधिक कुछ बोले कि उसके पहले ही उसने एक हाथ दादूके मुँहपर और दूसरा हाथ उसकी गर्दनपर रख कर उसे जोरसे दबाया।

"हमीर, खिड़की दबाओ।" देशलदेवने कहा।

हमीर समझा। उसने तुरन्त जोरसे खिड़की दबाई। दादूका गला द्वारकी खिड़कीके बीचमें फँस गया। ऊपरसे देशलदेव उसका सिर दबा रहा था और नीचेसे मुँह दबा रहा था। वह छूटनेको बहुत फड़फड़ाया, चिल्लानेका प्रयत्न किया, पर व्यर्थ गया। उसका सिर घूमने लगा। आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। देशलदेवने आखिरी प्रयत्न किया और दादूकी गर्दनपर वजन डाला। दादू फड़फड़ाता हुआ बेहोश हो गया, और देशलदेवने हाथ छोड़ दिया।

"हमीर, मालूम नहीं यह जिंदा है या नहीं, पर इसको मुँह बाँधकर डाल दे और खिड़की खुली रहने दे। मैं लश्कर लाया हूँ। कल सोरठ हमारा है"

"कौन है?" हमीरने दादूका मुँह बाँधते हुए पूछा।

"जयसिंहदेव सोलंकी स्वयं—"

"सब निश्चित है?"

"हाँ।"

"तो जल्दी करो।" हिंस्र पशु जैसी फुर्तीसे देशलदेव फिर वृक्षकी ओर गया।

"महाराज, खिड़की खुली है, पधारिए।" देशलदेवने कहा।

"चलो।" जयसिंहदेवने कहा।

"नहीं।" परशुरामने कहा। मैं साथ जाता हूँ, फिर सब आदमी आवें और उसके बाद आप। मुझे अब कोई भी जोखिम नहीं लेना है।"

"अच्छा, तुम जाओ। मैं पीछे आऊँगा।"

"आपके साथ परमार रहेगा।" परशुरामने कहा।

"धीरे धीरे दो दो चार चार पट्टणी सैनिक खिड़कीके रास्ते अंदर दाखिल हुए। जयसिंहदेव अधीरतासे देखते रहे। अंतमें परमार रह गया।

"महाराज, पधारिए। आखिर सोरठ सर हुआ।" परमारने कहा।

महाराजने जवाब नहीं दिया। वे मन ही मन गुनगुनाए, "और आखिर राणक भी मिली।"

दोनों गढ़में दाखिल हुए।

———

२२—विजयप्रस्थान-दूसरा

उस दिन खेंगारके हृदयमें उत्साह समाता न था।

रा' भोला और विचारशील, उदार और हँसमुख, दृढ़ और दीर्घदर्शी था। उसमें राजपूतका स्वाभाविक शौर्य था, चूडासमाका सुविख्यात साहस था और वंशपरम्परासे चली आई वीरोंकी वीरता उसके स्वभावका मुख्य लक्षण थी। परन्तु अडिग टेक, उदार स्वभाव, उच्च अभिलाषा, राणकके लिए निस्सीम प्रेम और उसके सहवासके परिणामस्वरूप प्राप्त हुई उच्च प्रकारकी भावनाशीलता, इन सब गुणोंने मिलकर उसमें ऐसा अद्भुत परिणाम पैदा किया था कि रा' खेंगार मनुष्य मिटकर मूर्तिमान् भावना जैसा अपूर्व बन गया था।

जीवन, शब्द और आचरणसे वह श्रद्धा, मान और भक्ति प्रकट करता था। वह सब मनुष्योंसे श्रेष्ठ और निराला दिखाई देता था; फिर भी सामान्य मनुष्य उसे देखकर प्रसन्न और प्रेरित होते थे। वह सबके साथ प्रेमसे, औदार्यसे और निष्कपटतासे बर्तता था और सब उसके लिए प्राण अर्पित करनेके लिए तत्पर रहनेमें जीवनको सार्थक समझते थे।

ऐसे व्यक्तित्ववाले रा' पर भी आज पानी चढ़ा था। उसकी आँखोंमेंसे आज हास्य फूटता था और मुँहमेंसे स्नेह झरता था। देवके समान तेजस्वी और पार्थके समान स्वरूपवान् यह जहाँ जाता, इसके उमंग-भरे शब्द जहाँ सुनाई देते; इसके काले लम्बे बाल हवामें जहाँ लहराते और इसकी आँखोंकी किरणें जहाँ पड़तीं वहाँ उत्साह भर जाता था। वह सदासे तो जूनागढ़का देव था; आज प्रेरणा देनेवाले चैतन्य जैसा लगा। उसकी प्रेरणाके कारण एक भी पुरुषमें कायरता न रही, एक भी स्त्रीमें स्वार्थ न दीख पड़ा।

उसने प्रचण्ड रणोत्सव खेलनेकी तैयारी की। गढ़ दुर्जय था, उसकी रक्षाके लिए ज्यादा आदमियोंकी जरूरत नहीं थी, इसलिए उसने हर एक चौकीपर आदमी भेजे; जगह जगह पुरानी चौकियोंसे आगे बढ़कर नई नई चौकियाँ स्थापितका करनेका प्रयत्न किया और खुद चुने हुए सैनिकोंको लेकर एभल नायककी चौकी फिर अपने हाथ कर लेनेकी तैयारी शुरू की।

इस उत्साहमें वह पिछली रातकी चिंता और भविष्यवाणी भूल गया। सन्ध्याके समय जूनागढ़के ऊँचे कोटपर गर्वसे फिरते समय उसका हृदय उछल रहा था। मानों वह खुद गिरनारका सचेतन स्वरूप हो, इस तरह चारों ओर उल्लाससे देख रहा था। उसके पूर्वजोंने इस गढ़में रहकर सदियों पहले विजय-घोषणा की थी। आज वह भी वैसी घोषणा करके अनंत कालको अपनी वीरता देखनेका सौभाग्य देनेवाला था।

उसने बार बार वंथलीकी ओर देखा। अनेक वर्षोंसे वहाँकी चालाकी, हरामखोरी, क्रूरता और नीचता उसकी टेकको हिला रही थीं। रामने रावणके सामने जिस पुण्य-प्रकोपसे शस्त्र छोड़े थे वही प्रकोप उसके हृदयको ज्वलन्त कर रहा था।

उसने सूर्यास्तके समय सोरठकी ऊजड़ भूमिपर नजर डाली। दूरपर सागर-तरंगोंकी चमकती हुई माला देखी। उसकी नजरके सामने सोमनाथ पाटनका गगनविहारी देवालय तैर गया। भगवान सोमनाथको उसके पूर्वज ग्रहरिपुके पाससे मूलराज सोलंकी ले गया था। "महादेव! शंभो! क्या तुम फिर मेरे पास लौटकर नहीं आओगे?" उसने गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की।

विचार करते करते वह यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्णका स्मरण करने लगा। बचपनसे वह अपनेको भी यादवश्रेष्ठ मानता था। बचपनमें उसे अनेक बार उस पुरुषोत्तमकी कीर्तिको भी फीकी करनेके स्वप्न आए थे। वह खुद उनके कुलका था इसलिए उसने अनेक बार आर्यावर्तका अधिष्ठाता होनेका दावा अपने समक्ष रखा था और इस गढ़में बंद होकर, छोटी मोटी लड़ाइयाँ लड़ते और अनेक वर्षों तक विपत्तियाँ सहन करते हुए भी उसके वीर हृदयमेंसे वासुदेव मधुसूद-नका आदर्श दूर नहीं हुआ था।

सोमनाथ पाटनकी याद आते ही उसे देहोत्सर्गका पुनीत स्थल याद आ गया। उस ओर देखते ही उसे मानों वासुदेवकी मूर्ति दिखाई दे गई।

विशाल पीपलकी शीतल छायाके नीचे यादवोंके नाथ घायल होकर पड़े हैं। उनके मुँहपर दुःखकी रेखा नहीं है; पर जिस भव्यतासे दुर्योधन डर गया था वह फैल रही है। बरसों पहले रीझी हुई गोपियोंका स्मरण आ रहा हो इस तरह उनके होठोंपर मंद और मधुर हास्य है। उनके विशाल नेत्रोंकी गहनतामें

अर्जुनको जो प्रेम, शौर्य और कारुण्य दिखाई दिया था, वह दीखा। उसने उन परम पुरुषोत्तमको अपने पाँवमें लगे हुए तीरकी ओर देखते हुए देखा और फिर उस ओरसे धीरेसे अपने नेत्रोंको मोड़ कर उसकी ओर ममताभरी दृष्टिसे देखते हुए देखा तथा पुत्रको देख कर जिस तरह पिता हँसता है उस तरह वे हँसे। रा' ने उनकी ओर भक्तिभावसे हाथ जोड़ लिये।

वह दर्शन अदृष्ट हो गया—खेंगारने अकुलाकर चारों ओर देखा। उसने निःश्वास छोड़ा। उसने देवाधिदेव गोवर्धनधारीके सौम्य स्वरूपका साक्षात्कार किया था, इसलिए उसके हृदयमें हर्ष नहीं समाता था। वह यह कहकर बड़बड़ाया कि "हे यादवश्रेष्ठ, मैं भी तुम्हारी अमर कीर्तिका भागीदार यादव हूँ।" अधिक नहीं बोला गया, पर उसके हृदयमें उत्साह उछलने लगा।

इतनेमें कितने ही सामंत, नायक और भाट-चारण आ गये और जूनागढ़के रा'ओंकी कीर्तिके गान शुरू हो गये। रा'ने इन सबके साथ भी हँसी-मज़ाक किया। सामंतोंने उसे पानी चढ़ाया और उसने सामंतोंपर पानी चढ़ाया।

अंतमें सब भोजन करनेके लिए उठे और भोजनसे छुट्टी पाकर तैयार होनेको चल दिये। रा' भोजन करके रनिवासमें गया। राणक उसके वस्त्र और शस्त्र तैयार कर रही थी।

राणक देवड़ीने कलसे बोलना कम कर दिया था। उसने सारा दिन तैयारी करनेमें और पूजामें बिताया था।

"काक कहाँ है?" रा' ने पूछा।

"वजेसंग और कुमारोंके साथ गढ़ देखनेके लिए गये हैं। उन्हें यहाँ किसलिए रखा?"

"मैं आऊँ तबतक तुम्हारी रक्षा तो करेगा!" रा' ने हँस कर कहा।

"मेरा कोई क्या कर सकता है?"

रा' देवड़ीके सामने देखता रहा। इस समय देवड़ीकी निर्मल कान्ति अधिक निर्मल और अपार्थिव दिखाई दे रही थी। इस समय उसका छोटा-सा कद हलके फूल जैसा लगता था। रा' को कल रातके समय देवड़ीके द्वारा दिखाया हुआ चमत्कार याद आया। क्या इस नाज़ुक स्त्रीमें इतना अधिक देवत्व है?

उसका हृदय स्नेहसे भर गया। उसने देवड़ीके हाथमेंसे शस्त्र ले लिया और उसका हाथ अपने हाथमें लेकर वह उसकी ओर देखने लगा।

"क्या देखते हैं?"

"तुम्हें। तुम्हें देखते हुए मैं अभी तक अघाया नहीं।"

"मेरे रा', इस समय मेरी ओर मत देखो, अपनी कीर्तिकी ओर देखो।"

"घबड़ाओ नहीं, मैं कायर होनेवाला नहीं। तुम्हें देख देख करके ही मैं हिम्मत रखता हूँ।" खेंगार हँसा। उसके हास्यका उल्लास चारों ओर फैल गया। उसने चारों ओर देखा, तो कोई नहीं था, उसने झुककर एक चुंबन ले लिया। "देवड़ी, मुझपर पानी चढ़ानेके लिए तुम तो कुछ कहती ही नहीं।"

राणकके मुँहपर मंद और म्लान हास्य छा गया। "मेरे रा', तुम्हारे शौर्यसे तो सारा सोरठ जूझता है, मरता है, फिर तुम्हें कौन पानी चढ़ावे?"

"क्या इसका नाम पानी चढ़ाना नहीं है?" रा'खेंगारने छोटे बच्चेकी तरह हँसते हुए कहा और उसने राणकके कंधेपर हाथ रख कर एक निःश्वास छोड़ा। थोड़ी देर तक कोई कुछ बोला नहीं।

"देवड़ी," रा'की आवाज़ गद्गद हो गई। "मुझे कहीं कुछ हो जाय तो बच्चोंको सँभालना।"

"मेरे रा," राणकने हिम्मतसे ऊपर देखा, "यह काम मेरा नहीं। दूसरी तीन रानियाँ हैं, उन्हें यह काम सौंपो।"

"पर बच्चे तुम्हारे—"

"पहले रा'—पीछे बच्चे। पर, इस समय आप यह विचार क्यों करते हैं? मैं विजयमाला लेकर बैठी हूँ। आप जल्दी पीछे लौटिए न!" राणकने कहा।

रा'को अगली रात्रिकी भविष्यवाणी याद आई और उसने एक निःश्वास छोड़ा।

"देवड़ी, मुझे आज अपने पूर्वज श्रीकृष्ण यादवके दर्शन हुए।

देवड़ीने ऊपर देखा, "अपने अहो भाग्य!"

"मैंने उन्हें देहोत्सर्गके आगे पड़े हुए देखा। वे नीचे देखते हुए घायल पाँवकी ओर देख रहे थे। उन्होंने मुझे देख कर ऊपर देखा और आशीर्वादमें जरा हँस दिया।" रा'ने छोटे बच्चे जैसी श्रद्धासे कहा।

"मेरे रा, जब द्वारकाधीश आपके सहायक हैं तब वह पामर क्या कर

सकता है ?" राणकने उत्साहसे कहा और नीचे झुके हुए रा'के गालके साथ अपना गाल लगा दिया।

दोनोंने तुरत चौंककर ऊपर देखा, मानों इस सवालके जवाबमें ही, दूरसे डंकेकी गड़गड़ाहट सुनाई दी।

"मेंदरडेसे कटक चढ़ा जान पड़ता है," रा'ने आँखें फाड़कर कहा। "तुम तैयारी करो। मैं ऊपर जाकर देख आऊँ। इतनेहीमें वजेसंग, काक और रा'के दोनों कुमार आ पहुँचे।

"महाराज, मालूम होता है कि जयसिंह सोलंकीने भी आज चढ़ाई कर दी है।" वजेसंगने कहा।

"काका, इससे अच्छा क्या है ? काक, गढ़ देखा ?"

"हाँ महाराज, गढ़ गिरनेवाला नहीं है। आप इस सम्बन्धमें बिलकुल चिन्ता न करें।"

"काक, मेरी आज्ञाके विना इस गढ़में एक पक्षी भी नहीं पैठ सकता।"

"किलेदार तो सब विश्वासी हैं न ?"

"सब चार चार पीढ़ीके हैं।" रा'ने विश्वासपूर्वक कहा।

"मेरे धनी, अब तैयार हो जाइए।" वजेसंगने कहा।

"काका, जरा ध्यानसे देखने दो। समय है, शायद मेदरडाके आगेकी बड़ी चौकीकी मददको भी जाना पड़े।" खेंगारने चारों ओर देखते हुए कहा।

"मेंदरडेकी बड़ी चौकी तो मज़बूत है। वहाँ सोलंकीकी नहीं चल सकती। यदि वह थोड़े समय तक सफल न हो, तो फिर मैं एभल नायककी चौकीपर छापा मारकर उसे अपने कब्जे करके बादमें बड़ी चौकीकी सहायताके लिए जाऊँ। बड़ी चौकीपर तो कई आक्रमण हुए जो पीछे लौटा दिये गये और यदि वहाँ सोलंकी कुछ सफल होता दीखे तो फिर मैं चौकीपर मदद भेजूँ।"

"ठीक बात है," काकने कहा, "आपका गढ़ इतना जबर्दस्त है कि हर रोज एक चौकी जाए, तो भी इसपर थोड़ी-सी भी आँच नहीं आ सकती।"

"क्यों बेटा," रा' ने अपने बड़े पुत्र मानासे पूछा, "मैं जाऊँगा तो तुम गढ़की रक्षा करोगे न ?"

मानाने * पिताके सामने देखा। उसकी बड़ी बड़ी आँखें गर्वसे पितापर ठहर गईं। " पिताजी, जूनागढ़का रा' कभी डिगा है ? "

" शाबाश, " कहकर रा'ने उसे गले लगा लिया और फिर छोटे लड़केको गोदमें ले लिया। " जाओ, अब तुम चुपचाप सो जाओ। हम गढ़ देखने जाते हैं। "

" पिताजी, मैं नहीं चलूँ ? "

" नहीं, यह तकलीफ उठानेको अभी बहुत समय पड़ा है। "

लड़केको विदा करके रा', काक और वजेसंगने गढ़पर घूमना शुरू किया। मेंदरडेके सिवाय सब दिशाओंमें शान्ति थी, कभी कभी पत्तों और पत्थरोंके गिरनेकी आवाज कानोंमें आती थी। परन्तु एमल नायककी चौकीके दीपक अखंड जल रहे थे, इसलिए उन्हें किसी भी दिशामें भय जैसा वातावरण नहीं लगा। एमल नायककी चौकीकी ओर अध-बीचमें सोरठका थाना था, वहाँ भी दिया जलता था।

इस तरह घूमते फिरते आधी रात होने आई। मेंदरडाका पट्टनी सैन्य चौकीके पास आ गया था और उसके तथा सोरठके सैन्यके बीच युद्ध शुरू हो गया था। ऐसा लगता था कि विकट युद्ध हो रहा है, पर यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि उसमें पट्टनी सफल नहीं हो रहे हैं।

" अब हरकत नहीं, " रा'ने कहा। " सुबह तक तो इस चौकीका कुछ बिगड़नेवाला नहीं। इतनेमें तो मैं एमल नायककी चौकी लेकर वापस आता हूँ। चलो महल चलें, सब तैयार होकर खड़े होंगे। "

वे तेजीसे महलमें गये और रा'ने शस्त्र धारण किये। गिरनारकी ओरकी खिड़कीसे रा' बाहर जानेवाला था। वहाँ तक काक और वजेसंग पहुँचा आनेके लिए तैयार हुए।

" नहीं काक, तुमने बहुत किया है और बहुत करनेवाले हो। "

---

* मि० फार्बसको वार्ता सुनानेवाले चरणों—तुरीओंने माणेरो और डगायचे ये नाम बतलाये थे। मालूम होता है कि सोरठी राजपूतोंके नाम इन हलके गवैयोंके मुँहमें विकृत हो गये हैं। संभव है कि माणेरका नाम माना रा' हो। —रासमाला, प्रकरण ९

" पर मैं खिड़कीतक-चलता हूँ ।"

" नहीं, तुम वजेसंगके साथ लौटोगे, तो कैदी जैसे मालूम होओगे, और इस तरह मेरे साथ चलोगे तो कोई मित्र समझेगा । कोई पट्टनी तुम्हें देख ले और मेरा कुछ हो जाय, तो वह सोलंकी तुम्हारे प्राण ले लेगा । कुछ खबर है ?"

" मैं एक वार फिर गढ़ देख आऊँ ?"

" अभी तो तुम सो जाओ । अभी तुम्हें अनेक रातें जागकर बितानी हैं ।"

" जैसी आज्ञा," कहकर काक रा' से स्नेहके साथ भेटा ।

रा' अन्तःपुरमें गया । देवड़ीने स्थिर प्रेमके अनंत संदेश देते हुए आँखोंके द्वारा रा' को विदा दी । दूसरी रानियोंने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे जल्दी लौटनेका संदेश कहा । रा' ने सोये हुए पुत्रोंका चुंबन लिया, और छोटी बहनके हाथसे विजयका कुंकुम-चिह्न करा कर बाहर निकला ।

राणकदेवी जाते हुए रा'को खिड़कीके रास्तेसे देखती रही । एकाग्र और खिन्नतासे भरे हुए नेत्रोंके द्वारा उस तेजस्वी प्रेममूर्तिको निरखती रही । उस स्वरूपवान् मुँहकी हृदयमें धारण की हुई रेखाओंकी पहिचान ताजी की । वह फिर उसके लंबे घुंघराले बालोंपर मोहित हुई । उसने दूर जाते हुए अपने उस स्वजनके गठीले शरीरकी गतिसे मोहक बनी हुई लटकको फिरसे अपने हृदयमें उतारा । जब रा' दूसरे रास्तेकी ओर मुड़ जानेसे अदृष्ट हुआ तब उसने उस परिचित आवाजके प्रतिशब्द हृदयमें धारण करके सारे जीवनके स्नेहपूर्ण संस्कार जगाये । आवाज आती बंद हुई । अंतमें वे प्रतिशब्द भी बंद हो गये । उसकी आँखोंमेंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी । उसने एक हृदयको विदीर्ण करनेवाली करुण आह ली और वहाँसे वापस लौटी ।

आते ही उसने अपने हाथोंकी चूड़ियाँ उतार दीं । अन्तःपुरकी स्त्रियाँ यह देखकर स्तब्ध हो रहीं ।

२३—जयसिंहदेव क्यों युद्धमें गये ?

गर्वसे फूलते हुए हृदयसे जयसिंहदेवने जूनागढ़में पैर रखा। वर्षोंसे जूनागढ़ उनके जीवनका परम लक्ष्य था, आज वह सिद्ध हुआ।

अंदर गए तब वहाँ सिर्फ तीस चालीस आदमी थे। परशुराम और अन्यको न देखकर महाराज विस्मित हुए।

" देशलदेव, परशुराम कहाँ गये ? "

" अन्नदाता, उन्हें आपकी राह देखना ठीक न लगा। ज्यों ही सुना कि खेंगार गढ़ छोड़कर जानेकी तयारी कर रहा है त्यों ही उसके पीछे चले गए। कुछ आदमी बड़े दरवाजेपर, कुछ गिरनारी खिड़कीकी तरफ और कुछ राजमहलकी निगरानीके लिए भेज दिए हैं। आपके लिए ये रहने दिए हैं। "

" शाबाश परशुराम ! " राजाने कहा। " खेंगारको इतनेमें ही खबर लग गई और वह भाग गया ? "

" नहीं महाराज, इस समय तो वह एभल नायककी चौकीपर अधिकार करनेके लिए बाहर जा रहा था। "

" अच्छा! तो अब ले चौकी, मकदूर हो तो ! " राजा क्रूरतासे बडबडाया। " सोलंकी आ पहुँचा है। देशलदेव, इधर तो आओ। "

" जी " कहकर देशलदेव महाराजके साथ ज़रा दूर गया।

" बोलो, अब तुम्हारे दूसरे वचनकी बात ? "

" मैं अपना वचन पालनेके लिए तैयार हूँ। "

" किस प्रकार ? "

" आप चलिए, राणक महलमें है। आप जो चाहें वह करें। "

" किन्तु यदि इन्कार कर दे तो ?—" राजाको संशय हुआ।

" अन्नदाता, यह छोकरी है तो जिद्दी। किन्तु आप समर्थ हैं और मैंने एक दूसरा रास्ता तैयार कर रखा है। "

" क्या ? "

" बहुत देर लगे तो उसे यहाँसे उठा ले जाना। फिर जो होगा सो होता रहेगा। "

"हाँ, यह बात ठीक है।" जयदेवसिंहदेवने विचार करते हुए कहा। "किन्तु कहाँ ले जाया जाए?"

"इसकी व्यवस्था मैंने कर रखी है। एक घड़ीमें एक योजन चलनेवाली साँड़नी तैयार है। आप उसपर जहाँ चाहें वहाँ जा सकते हैं।"

"किन्तु वंथली जाना ठीक न होगा।"

"महाराज, सरधार जाइए, बढ़वाण जाइए, सूझ पड़े वहाँ जाइए, किन्तु जितना दूर हो उतना ही अच्छा।"

"ठीक—"

"अन्नदाता—" सूचक स्वरमें देशलदेवने कहा।

"क्या?"

"जूनागढ़ सर हुआ। अब मेरे लिए आज्ञा—"

जयसिंहदेवने भौंहें तानी, "अभी आज्ञापत्रका समय है?" उसने अधीरतासे पूछा।

"मैंने वंथलीमें तैयार करवा रखा है। आपके हस्ताक्षर—"

"देशलदेव, मेरे बोल ही वचन हैं। इस समय उनपर श्रद्धा रखे बिना छुटकारा नहीं।" महाराजने जिद्दी आवाज़में कहा। "परमार, इस खिड़की-पर दो आदमी छोड़कर मेरे साथ चलो।"

"अन्नदाता, इसे साथ लेना है?" देशलदेवने पूछा।

"हाँ।" सख्तीसे राजाने उत्तर दिया। देशलदेव चुप रहा। उसने जयसिंहदेवको जैसा भोला और बन जानेवाला समझा था वैसा वह न निकला। "चलो, रास्ता दिखलाओ।"

देशलदेव आगे हो गया, किन्तु राजा वहाँसे न हटा। वह एकदम गहरे विचारमें पड़ गया।

उसने जूनागढ़ लिया—देशलदेवकी तरकीबसे; वह राणकको उठाये ले जा रहा है—देशलदेवकी सलाहसे। पर उसकी कीर्तिका क्या होगा? उसपर राणकके लिए पागलपन सवार था, उससे मिलनेके लिए वह एक पैरसे खड़ा था। उसे ब्याह कर पटरानी बनानेका उसने निश्चय कर लिया था। किन्तु कौन-सा मुँह लेकर वह राणकके पास जायगा? किस मुखसे वह मुंजाल मेहतासे

अपनी बहादुरीकी बात कहेगा ? और किस मुखको लेकर वह अपनी दुर्जयताका दावा सिद्ध करेगा ? कलतक वह विजेता था, आज देशलदेवने उसे चोर बना दिया। नहीं, उसने ओठ चबा लिये। खेंगारका सिर जबतक उसके धड़पर है, तब तक उसकी स्त्रीके पास कैसे जाए ?

"देशलदेव," उसने अधीरतासे कहा। "मैं खेंगारसे लड़ने जाता हूँ।"

"किन्तु महाराज—"

"सब्र करो। परमार, देशलदेवके साथ जाओ और महलको घेर लो। एक चिड़िया भी भीतर बाहर न आने जाने पाए। मैं अभी आता हूँ।"

"आप अकेले कहाँ जा रहे हैं ?" परमारने पूछा।

"देशलदेव मुझे रास्ता दिखलाएँगे। चलो। परमार, तुम यहीं खड़े रहो।" कहकर देशलदेवको साथ लेकर राजा चल दिया।

एक ऊँचा पट्टनी सैनिक दूर खड़ा यह सब देख रहा था। वह मन ही मन हँसा। "आखिर जयदेवका मस्तिष्क ठिकाने आया।"

जयसिंहदेव तेजीसे बस्तीमें गया। गढ़की अभेद्यता और किलेदारोंकी प्रामाणिकताको ध्यानमें रखकर खेंगारने बस्तीमें थोड़े ही सैनिक रखे थे, और लड़नेवाले आदमी अधिकांशमें चौकियोंपर चले गए थे। सारे दिन इन पुरुषोंको जूझनेके लिए उभाड़ा गया था और संध्याको खेंगारके जानेकी तैयारीका उत्साह था। इसलिए इस समय नगरवासी शान्तिसे सो रहे थे। गलियाँ निर्जन थीं। किसी किसी चबूतरेपर वृद्ध पुरुष सोए दीख पड़ते थे।

चुपचाप वे गिरनारी खिड़कीकी ओर गये।

परशुराम लगभग तीनसौ आदमी लेकर इसी खिड़कीकी ओर आया था। ये चुने हुए आदमी थे, इसलिए सावधानी और शांतिसे आगे बढ़े थे। उन्हें चुपचाप हल्ले गुल्लेके बिना कत्ल करनेका हुक्म मिला था और वे उसे व्यवहारमें लानेको तैयार थे।

जहाँ आजकल अडीकडी बावड़ी है, उसीके सामने गिरनारी खिड़की थी। पास ही खेंगारके पिता नवघणके नामसे अमर हुआ विशाल कुआँ था।

जब परशुरामके आदमी वहाँ पहुँचे, तब खेंगारके साथ जानेवाले सब आदमी गढ़के बाहर नहीं गए थे। खेंगार गढ़के बाहर प्रजेसंग

आदि सामंतोंके साथ बातें कर रहा था, थोड़ेसे आदमी खिड़कीमेंसे बाहर निकल रहे थे, और थोड़ेसे खिड़कीके सामने खड़े थे। सब विजयके उत्साहसे भरे थे।

एकदम जैसे कोई काला बादल गिरनारके तेजस्वी शिखरको घेर ले, उसी प्रकार काले, निकट आते हुए समूहने, देखते ही देखते उन्हें घेर लिया और खड़े हुए आदमी बोलें चिल्लायें कि उसके पहले ही उनके प्राण चले गए और वे पृथ्वीपर गिर पड़े। किसीको कुछ स्पष्ट दिखा नहीं, किसीके कुछ समझमें आया नहीं। सोरठी योद्धा यह दैवकोप जैसी सर्वग्राही विनाशक शक्ति देखकर घबरा गए।

एकने आवाज दी "अरे बापरे!" दूसरेने पूछा "कौन है?"

किन्तु ये शब्द आधे ही बाहर निकल सके, और बोलनेवाले मरण-शरण हो गये।

बाहर खेंगार उत्साहसे बातें कर रहा था। इस धाँधलीकी अस्पष्ट आवाज़ सुनकर चौंका, "यह क्या है?"

खिड़कीमें खड़ा हुआ एक सैनिक दौड़ता हुआ आया। "अन्नदाता, सोलंकीकी सेना नगरमें मार-काट मचा रही है।"

"क्या कह रहा है?"

इतनेमें "बापरे—" की पुकार और मरते सैनिककी चीख सुन पड़ी। खेंगारने सिर ऊँचा किया। उसकी आँखोंमेंसे तेज निकल रहा था। होठसे होठ दबाते हुए वह पीछे लौटा।

"जाकर देखूँ, क्या है?"

एक सामंत सामने आया, "महाराज, इस रास्ते उतर जाइए। मैं तलाश करके आता हूँ। सोलंकियोंने गढ़ ले लिया मालूम होता है।"

"क्या कह रहे हो! कोई बात है!"

इतनेमें कुछ मुठभेड़की आवाज़ आई। "मेरे धनी," एक सामंतने कहा। "आप गिरनारपर जाइए। आप जीते रहेंगे, तो सब ठीक होगा।"

"जैसे चोरकी तरह सोलंकी घुस आया, क्या वैसे ही चोरकी तरह मैं भी भाग जाऊँ? नहीं जूनागढ़ वहीं उसका रा'। सोरठी वीरो, पीछे लौटो।" उसने हुक्म दिया और वह खिड़कीके पास आया।

खिड़कीमेंसे कुछ सैनिक घबराये हुए बाहर निकल रहे थे, क्रोधसे खेंगारने पूछा—" नामर्दो, भाग क्यों रहे हो ? तुम्हारे हाथ कहाँ गये ? वापस लौटो ! " खेंगारकी आवाज़ सुनकर एकदम सब ठहर गये । उसने तलवार निकालकर हुक्म दिया । " पीछे लौटो ! जय महादेव ! अंबा माताकी जय ! " कहकर खेंगार खिड़कीमें घुसा । खिड़कीमेंके सोरठी सैनिक लौट पड़े और शस्त्र चलाने लगे । खेंगार खिड़कीमेंसे जोरसे कूद पड़ा, उसके साथके योद्धा भी उसी जोरसे आगे बढ़े । पट्टनी सैनिकोंकी आगे बढ़नेवाली कतार टूट गई, पाँच सात सैनिक गिर गये ।

खेंगारने एक ही क्षणमें सब स्थिति समझ ली । धोखेबाजीसे पट्टनी गढ़में पैठ गये हैं । इस समय सैनिकोंके बिना नगर निराधार था—उसे बचाना अशक्य था । उसकी आशाका अंत आ गया—उसकी रानीकी वाणी सत्य निकली । उसके जीवनको अमर कीर्तिसे मढ़नेका भयानक अवसर आ गया । जैसे कोई उल्लास-मत्त वर नव परिणीतासे साथ मिलनेके लिए दौड़े, उसी प्रकार वह इस अवसरसे मिलने कूद पड़ा । उसके हाथोंमें रक्त उतर आया । उसके हृदयमें विजयका घंटानाद होने लगा, उसकी बुलन्द और भयंकर आवाज गूँज उठी ।

" वजेसंग, खिड़की बंद करो । सोरठी वीरो, टूट पड़ो । राजमहलकी ओर बढ़ो । सतीकी जय ! " प्रत्येक घोषके साथ एक एक पट्टनी गिरने लगा । प्रत्येक तलवारके झपाटेसे पट्टनी-कतार खंडित होने लगी ।

किसी सोरठीने खिड़की बंद कर दी, इसलिए खिसकनेका मार्ग बंद हो गया । उस सँकरी जगहमें भी सोरठियोंने ब्यूहकी रचना कर ली । पट्टनियोंकी पंक्तिके सामने सोरठियोंकी भी छोटी टुकड़ी खड़ी हो गई । चंद्र अस्त होनेकी तैयारी कर रहा था और अंधकार फैलता जा रहा था । इस अंधकारमें योद्धाओंकी दो पंक्तियाँ आमने सामने रुद्रताल ले रही थीं ।

रा' का जोश दुःसह था । जहाँ वह जाता वहाँ पंक्ति रहना ही अशक्य था । उसकी तलवार भी अनेक विद्युत्-मालाओंकी तरह चारों ओर जिधर चाहती चमक उठती । उसके पैर अडिग थे, जहाँ होते वहाँसे आगे ही बढ़ते—पीछे हटते ही नहीं ।

कुछेक क्षणोंमें ही वहाँ रक्तकी धाराएँ बहने लगीं । जहाँ दोनों पंक्तियाँ टकराती वहाँ शवोंके सीमा-चिह्न फैल जाते ।

खेंगारकी घोषणाके बाद शायद ही कोई कुछ बोला हो। तलवारकी काट और मृत्युकी वेदना इन दोके परिणामसे ही कुछ आवाज होती थी। भूतोंकी सृष्टिमें यादवस्थली बन गई हो, ऐसा लगता था।

२४—जयसिंहदेव युद्धसे वापस क्यों लौटे ?

परशुराम जो पीछे था सोरठियोंका हमला होते देखकर आगे बढ़ने लगा। उसके आगे सोरठियोंका ऐसा जमाव था कि उसे पार करके बढ़ना मुश्किल था। तो भी वह आगे बढ़ा। जूनागढ़की विजय—यही उसके पिताका और बाल्यकालसे स्वयं उसका लक्ष्य था; आज इस धन्य घड़ीमें रा'के प्राण लेकर उस लक्ष्यको साधनेमें वह तत्पर हुआ।

किन्तु सोरठियोंका वेग जबर्दस्त था, दोनोंमें एक भी पीछे हटनेवाला नहीं था।

एकदम पट्टनियोंके पीछेसे किसीने घोष किया, 'जय सोमनाथ' और कोई मनुष्योंकी इन उछलती हुई तरंगोंमें कूद पड़ा। आवाज स्पष्ट और गर्वयुक्त थी। पट्टनियोंने उसे पहचाना और उनकी छातीमें जोश उबल पड़ा। उन्होंने प्रतिध्वनि की 'जयसिंहदेव महाराजकी जय।'

खेंगारने किसीको निकट आते देखा और घोषणा सुनी। उसे ऐसा लगा कि जयसिंहदेव सोलंकी आ पहुँचा। उसके रोम-रोममें आग लग गई। उसने उछलकर ललकारा, "कहाँ है सोलंकी ?"

सोरठियोंमें फिर जोर आया और दोनों पक्ष श्वास साधकर एक दूसरेका विनाश करने लगे।

जयसिंहदेवकी घोषणाके बाद शान्ति न रह सकी; दोनों पक्षके योद्धाओंने गर्जन करना शुरू किया। मरे हुओं और घायलोंकी चीखें भी सुनाई देने लगीं। तुमल युद्धकी खींचतानमें सोरठी योद्धा सामने बढ़ रहे थे।

योद्धाओंको अंधकार अड़चन देने लगा। किसीको इस बातका भान न रहा कि मैं किस पक्षके योद्धाके साथ लड़ रहा हूँ। वह राजमहलकी ओर बढ़ रहा है

अथवा बावड़ीकी ओर अग्रसर हो रहा है, इसीपरसे उसके पक्षका पता लगाना था।

अंधकारमें भी जयसिंहदेव पट्टनियोंके आगे आ पहुँचा। ऐसा लगा कि उसके प्रत्येक आघातसे एक एकके प्राण जा रहे हैं। परशुराम उसके साथ साथ उसे मदद करने या जरूरत पड़नेपर बचानेके लिए जूझ रहा था। खेंगार और जयदेव एक दूसरेको वैर-यज्ञमें होमनेके लिए खोज रहे थे; किन्तु उस सँकरी जगहमें और अंधकारमें किसीकी खोज सफल न हो सकती थी।

युद्धके नादमें जरा-सी शान्ति आई कि खेंगारकी आवाज़ फिर सुन पड़ी "सोरठी वीरो, राजमहलपर बढ़ो।" जयसिंहदेव इस आवाजको सुनकर उस ओर लौटा।

चंद्र नीचे उतरा और चारों ओर अंधकार फैल गया। परशुरामको आजका साहस मूर्खतापूर्ण लगा। इस समय युद्धका क्या परिणाम निकलेगा?

"सोरठी एकदम पीछे रहे और पट्टनी जयघोष कर आगे बढ़े। किस पक्षके कितने बचे हैं, इसका किसीको भान न था। शेष रात बीतनेपर कौन विजयी होगा, यह प्रश्न सबके हृदयमें उठता था। ज्यों ज्यों समय बीत रहा था त्यों त्यों परशुरामकी चिंता बढ़ती जा रहीं थी। उसने जयसिंहदेवसे पीछे लौटनेके लिए कहना शुरू किया, किन्तु रणपर चढ़ा सोलंकी किसीकी सुननेवाला न था।

बावड़ीकी ओर बढ़ते हुए पट्टनियोंपर एकाएक राजमहलकी ओरसे हमला हुआ। "सोरठियो, पट्टनियोंको काट डालो।" हमला करनेवालेकी आवाज सुन पड़ी।

जयसिंहदेव और परशुराम दोनोंको इस हमलेका अर्थ समझमें आया। खेंगारने किसी जाने हुए मार्गसे तिरछा जाकर पीछेकी ओरसे हमला किया था। यह नहीं कहा जा सकता कि कितने आदमी उसके साथ थे। ऐसा लगा कि पट्टनीं सरौतेके बीच सुपारीकी तरह आ गए हैं। जयसिंहदेव और परशुराम उछलउछलकर चोटें करने लगे। 'जय सोमनाथ' की घोषणा चारों तरफ फैल गई। सामनेसे सोरठियोंने 'रा खेंगारकी जय!' की प्रतिध्वनि की।

दो दलोंकी मुठभेड़के बदले एक दूसरेकी कत्ल होती रही। चारों ओर

घोर नाद होने लगा। दिशा और समयका किसीको भान न रहा। सबेरे तक कौन जीवित रहेगा, यह समझमें नहीं आया।

जयसिंहदेवको ऐसा लगा कि मैं पूरी तरह फँस गया हूँ और दो सेनाओंके बीचसे बचनेका अवसर भाग्यसे ही मिल सकता है। निराशाने उसे बल दिया; 'जय सोमनाथ!' की गर्जना करके उसने विनाश चालू रखा।

धीरे धीरे बिना जाने ही, युद्धका स्थान राजमहलकी ओर खिसका जा रहा था।

जिस ऊँचे पट्टनी सैनिकको जयसिंहदेवके बर्तावके विषयमें अभिप्राय प्रकट करते देखा था, उसकी हलचल विचित्र थी। जैसे ही युद्धका कोलाहल उसके कानोंमें पड़ा त्यों ही अनुभवी और तेज आहवाश्वकी चपलतासे वह खड़ा हो गया और जहाँसे आवाज आ रही थी उस ओर चल दिया। फिर जहाँ मार-काट हो रही थी उससे दूर एक चबूतरेपर खड़े होकर वह देखता रहा। खेंगारके आदमियोंने एक गलीमेंसे आकर पट्टनी योद्धाको पीछेसे घेर लिया, यह उसने देखा। तुरन्त ही वह पट्टनी सेनाकी कठिनाईको समझ गया और तेजीसे राजमहलकी ओर गया। वहा जगदेव पच्चीस तीस सैनिकोंके साथ पहरा दे रहा था।

" परमार, " उस सैनिकने सत्तापूर्ण स्वरमें कहा। " महाराजको सोरठियोंने घेर लिया है, वहाँ चलो। "

ढाटा बाँधे हुए एक अज्ञात सैनिक उसे इस तरह सम्बोधित करे, यह जगदेवको जँचा नहीं, साथ ही उसे यहीं रहनेका हुक्म हुआ था, इसलिए इस सत्ताका आडम्बर भी उसे अच्छा न लगा।

" तू कौन है ? " जगदेवने तुच्छतासे कहा।

" मैं जहाँ युद्ध हो रहा है वहाँसे आया हूँ। "

" मेरे पास आनेको किसने कहा ? "

" किसीने नहीं, मैंने। "

" तेरा दुस्साहस महान् है, तू अपना काम देख। "

वह सैनिक ज़रा सतर हुआ। उसकी आवाज़में तलवारकी धार जैसी तीक्ष्णता थी।

" जगदेव, तुम्हें आज्ञापालन करना भी नहीं आता और भंग करना भी नहीं आता। "

उस सैनिकने सत्ताके साथ कहा। जगदेवको आवाज़ परिचित-सी लगी। वह किसकी है, इसका विचार वह कर ही रहा था कि उस सैनिकने निकट खड़े सैनिककी ओर मुड़कर हुक्म दिया, "मूला नायक, आदमी लेकर चलो मेरे साथ।"

"कौन मेहताजी ?" ज़रा घबराये हुए स्वरमें परमार बोला और दूसरे सैनिकोंने सम्मानके साथ उसको चारों ओरसे घेर लिया।

"हाँ। तुम्हें अब भी पहचाननेमें बहुत देर लगती है। तुम्हें यहाँ खड़ा रहना हो तो खड़े रहो। बहादुरो, चलो मेरे साथ, वहाँ महाराजको खेंगारने घेर लिया है।"

"महाराज, मैं देशलदेवसे कह आऊँ।" घमंडी जगदेवने कहा।

"हाँ जाओ और कहकर आ पहुँचो।" कहकर मुंजाल मेहता सैनिकोंको लेकर चल दिये। थोड़ी ही देरमें संग्रामस्थल आ पहुँचा।

"परम भट्टारक जयसिंहदेव महाराजकी जय ! जय सोमनाथ।"

मुंजाल मेहताने गगनभेदी गर्जना की। यह गर्जना युद्धकी धमाचौकड़ीमें भी चारों ओर सुन पड़ी। जयसिंहदेव, परशुराम और कितने ही सैनिकोंने यह प्रचंड आवाज सुनी और जवाब दिया। "जय सोमनाथ ! मुंजाल मेहताकी जय।"

मुंजाल मेहताके नामसे पट्टनियोंमें नया शौर्य प्रकट हुआ। मुंजाल और उनके आदमी बिल्कुल ताजे होनेके कारण उनका हमला भी ऐसा सख्त हुआ कि थोड़ी देर तक मनुष्योंकी कतारें बिना समझे ही इधर उधर झोंके खाने लगीं। अब तो दूसरे पक्षकी कतार अथवा दिशा जैसी कोई चीज रह ही नहीं गई थी। 'जय सोमनाथ' और 'जयसिंहदेवकी जय' अथवा 'अंबा भवानीकी जय' और और 'रा' खेंगारकी जय' से ही दुश्मन पहिचाने जाते थे।

मुंजालके अद्भुत बल और आक्रमणके जोशका असर तुरन्त ही हुआ। निराश होते हुए पट्टनियोंमें विजयकी श्रद्धा प्रकट हुई; परशुरामको अपने सिरसे जोखिम गई-सी लगी, जयसिंहदेवके हाथोंमें दूना जोर आया।

किन्तु सोरठी इस तरह हार जानेवाले न थे। क्षण क्षणपर 'खेंगारकी जय' की घोषणा गूँजती थी और धीरे धीरे वे संग्राम-स्थलको राजमहलकी

ओर ले जा रहे थे। नगरके भी कितने ही लोग एक एक दो दो करके आ रहे थे और सबके बीच खेंगार घूमता था। थोड़ी थोड़ी देरमें वह एक दिशासे दूसरी दिशामें चला जाता था। वह सोरठियोंको गर्जनासे उत्तेजित करता और पट्टनियोंका संहार करता जाता था। वह कहाँ है, इसकी दिशा सोरठियोंकी जयघोषणा कहाँ अधिक होती है, इसपरसे बताई जा सकती थी। किन्तु जब तक वहाँ कोई पट्टनी महारथी पहुँचता था तब तक दूसरी ही दिशामें उसकी उपस्थिति मालूम होती थी।

खेंगारको राजमहल पहुँचनेकी इच्छा थी, वहाँ अपने पूर्वजोंके विजय-स्तम्भके सामने उसे अपना कीर्ति-स्तम्भ खड़ा करना था। उसे यह भी आशा थी कि सोरठियोंके शौर्यसे पट्टनी पराजित होंगे अथवा किसी चौकीपरसे लौटकर कोई सोरठी टुकड़ी मददके लिए आ पहुँचेगी। दिन उगे बिना कौन जीता, इसका निर्णय न हो सकता था और जब तक वह जीता है तब तक क्यों विजयी न होगा?

वह धीरे–धीरे मरनेपर तुल गया। उसे जीतनेकी आशा न रही। वह मूर्तिमान विनाशक-वृत्ति बन गया। उसकी आँखोंमेंसे चिनगारियाँ निकल रही थीं; उसके कंठमेंसे गर्जना निकलती और उसके हाथकी तलवार सुदर्शन-चक्र जैसी चारों तरफ फिरती थी। उसके दूसरे हाथकी ढाल उसके शरीरको अमरत्व दे रही थी। उसे थकान नहीं लगती थी, मेहनत नहीं करनी पड़ती थी, तुमुल नाद या शस्त्रोंका संघर्ष उसे भीत न कर पाता था। काल भैरवके समान वह तो केवल विनाश-क्रीड़ा ही कर रहा था।

जयसिंहदेव भी उछल उछलकर लड़ रहा था, किन्तु अब उसका जी ऊबने लगा। इस अंधकारमें खेंगारको खोजकर मार सकना संभव न था, तो फिर इस युद्धको लम्बे करनेसे क्या लाभ?

इतनेमें एक दिशासे जोरका हमला हुआ। बहुतसे लोग आड़े तिरछे खिसक गये और बढ़ावकी लहरने जयसिंहदेव महाराजको संग्रामके एक किनारे फेंक दिया। पीछे ही राजमहल था जिसे राजाने देखा और राणक याद आ गई। "खेंगार इस अंधकारमें मिल न सकता था, इसलिए उसका युद्ध छोड़ जानेको मन हो आया, किन्तु यदि उसकी अनुपस्थितिसे पट्टनी हार गये तो?..."

एकदम दो चार मशालोंका प्रकाश दूरसे दिखा और दौड़ते हुए सैनिक आ पहुँचे। सब एक क्षण लड़ना छोड़कर देखने लगे कि किस पक्षके आदमी आये। जयसिंहदेव बिल्कुल पास थे, उन्होंने आगे आते हुए सैनिकोंके नेताओंको पहिचाना। त्रिभुवनपाल और लीलादेवी अपनी सेनासहित बड़े दरवाजेमेंसे घुसकर सहायताके लिए आ पहुँचे थे। उन्होंने जयघोषणा की 'जयसोमनाथ' 'जयसिंहदेव महाराजकी जय' पट्टनी सैनिकोंने उस घोषणाको दुहरा दिया।

सोरठियोंके पैर ढीले पड़ गये। उनका विनाश निश्चित हो चुका। जयसिंहदेवने देखा कि अब वहाँ रहनेमें लाभ नहीं। नए आनेवालोंकी गड़बड़से लाभ उठाकर वे कोई देख न सके इस तरह, संग्राममेंसे चल दिये।

आखिर मैंने खेंगारको झुकाया और जूनागढ़ ले लिया—इस विचारसे उनका हृदय हर्षसे उछलने लगा।

२५—खम्मा मेरे रा' की

जयसिंहदेव महाराज जहाँ युद्ध हो रहा था वहाँसे जरा दूर चले गये। जो थोड़ेसे घाव लगे थे, वे उन्होंने बाँध लिये और शृगाल जैसी आवाजमें पुकारा। तुरन्त ही किसी जगह छिपा हुआ बावरा आ पहुँचा और उसे लेकर महाराज नंगी तलवार हाथमें लिये राजमहलकी ओर चले।

राजमहलमें अभी अँधेरा ही था। उसमें रहनेवाली स्त्रियोंने घबराहटसे दीए भी नहीं किये थे। थोड़े बहुत वृद्ध अनुचर भी महलकी रक्षा करनेके लिए द्वारके पीछे छुपे बैठे थे।

जैसे ही महलके चौकमें महाराज आये कि एक खंभेके पीछे छिपा हुआ देशलदेव निकला। उसका मुख फीका पड़ गया था। उसे भी लग रहा था कि उसका जीवन भी बावड़ीके आगे जो युद्ध हो रहा है उसपर निर्भर है।

"अन्नदाता क्या हुआ?" चिन्तातुर स्वरमें उसने पूछा।

"क्या क्या? खेंगारको मार डाला।" जयसिंहदेवने गौरवसे विश्वास दिलाया।

"चलो छुट्टी मिली।" देशलदेवने निःश्वास छोड़ा। "अब काहेकी राह देख रहे हैं?"

"किसीकी नहीं। अब रनिवासमें चलो।"

"किन्तु महाराज, वहाँ कुछ अनुचर होंगे।"

"क्यों, घबरा गए?" हँसकर महाराजने कहा, "जयसिंहदेवको हराना सहज बात नहीं है।"

"क्या मैं नहीं जानता अन्नदाता!" देशलदेवने कहा। उसने आगे चलना शुरू किया। पीछे महाराज और उनके पीछे बावरा, इस प्रकार वे महलमें पैठे।

"देशलदेव, तुम्हारी साँड़नी तैयार है क्या?"

"जी। हमीर पीछे तैयार खड़ा है।"

"ठीक।" वे अन्दर घुसे।

"कौन है?" एक अनुचरने पूछा।

"जयसिंहदेव सोलंकी।" महाराजने कहा और देखते देखते उसे मार दिया।

अंदरके कमरेमें तीन चार आदमी शस्त्र लिये तैयार थे।

"महाराज, इन सबको बचाकर जाना चाहिए।"

"कोई हर्ज नहीं। मैं जानता हूँ कि तुम तो निकम्मे हो।" महाराजने कटाक्षसे कहा और लौटकर बावरासे कहा, "रास्ता कर।"

सारे कमरेमें एक छोरसे दूसरे छोरतक बावराने छलांग मारी और दो आदमियोंको बाँहोंमें जकड़ लिया। एक घबराकर भाग गया। चौथा शस्त्र लेकर सामने आया किन्तु महाराजकी तलवारके एक ही झपाटेमें कौन जाने कहाँ जा गिरा। महाराज भीतरके कमरेमें गए।

देशलदेव और महाराज एक निर्जन कमरा पारकर दूसरी छोटी कोठरीमें गये।

"यहीं देवड़ी होगी।" देशलदेवने कहा। इस कोठरीमें एक तेलका दीआ दीवालपर लटकते पीतलके शमादानमें जल रहा था। उस दीपकके निकट जमीनपर एक स्त्री बैठी थी। उसके सामने आलेपर अंबाजीकी मूर्ति थी और उसके आसपास घीके दो दीए जल रहे थे। वह नीचा सिर किये माला जप

रही थी। दूसरी दीवारके पास खाटपर दो बालक एक दूसरेसे लिपटे सो रहे थे। थोड़ी-सी स्त्रियाँ वहाँसे भाग रही हों, ऐसा लगा।

दरवाजेमें पैठकर जयसिंहदेव ठहरे। उनके हृदयकी धड़कन जोरसे होने लगी। उन्हें इस समय ऐसा लगा कि इस स्त्री-रत्नके बिना मेरे जीवनमें हमेशा ही कमी मालूम होती थी। उनका मन हुआ कि इसके चरणोंमें गिर पड़ूँ और इसे बाँहोंमें भरकर छातीसे चिपका लूँ। यदि पंद्रह वर्ष पहले इसे ब्याह लिया होता, तो मैंने क्या क्या न कर डाला होता! देशलदेवने दो कदम आगे आकर कंठ साफ करके कहा—" मामी!"

कोठरीमें शान्ति थी। उस स्त्रीने ऊपर देखा और फीकी बड़ी बड़ी आँखें निर्भीकतासे देशलदेवकी ओर फेरकर पूछा, " कौन, देशलदेव?"

" हाँ, मामी—" देशलदेवकी जीभसे बड़ी मुश्किलसे यह शब्द निकला। " जयसिंहदेव..."

" क्या सोलंकीको लाये हो?" कड़वी आवाजमें राणकने पूछा। " शाबाश भानजे! मामा जीते हैं या—"

" देवड़ी," जयसिंहदेवने आगे आकर कहा, " मैं हूँ जयदेव। हम कितने बरसोंमें मिले?" महाराजकी आवाज क्षोभसे काँपती थी।

" न मिले होते तो तुम और मैं दोनों सुखी होते।"

" देवड़ी, पन्द्रह वर्षमें तुम मिलीं। आज मेरा जीवन सार्थक हुआ।" जरा उतावलीसे महाराजने कहा।

" सोलंकी," मैं तो रा' की रानी हूँ। तुम क्या कह रहे हो, इसका तुम्हें होश नहीं है।" देवड़ीके स्वरमें गौरव और खिन्नता दोनों भाव थे।

" नहीं, तुम रा' की रानी नहीं, आजसे सोलंकीकी पटरानी हो।"

" नहीं-नहीं-नहीं—" देवड़ी मानो वेदना हो रही हो इस तरह बोली, " सोलंकी, मैंने तो रा' को वरा है।"

" नहीं।" जयसिंहदेवने कहा। " रा' तो कभीका जमके घर चल गया।"

" नहीं, नहीं गये।" विश्वासके साथ रानीने कहा।

जयसिंह चौंका। " तुमने कैसे जाना?"

" मैंने? मुझे पता है। मेरे रा'—मेरे प्राण—अभी इस दुनियाको छोड़कर नहीं गए। सोलंकी, तुम जाओ। इस देहसे मैं किसी दूसरेके कामकी नहीं।"

जयसिंहदेवने हठसे ओठ बन्द कर लिये। इस स्त्रीकी बात करनेकी रीतिसे उसका मोह बढ़ा। उसका ध्यान जिन फीके किन्तु सुन्दर होठोंमेंसे शब्द झर रहे थे उनपर ठहर गया।

" देवड़ी, इसी देहसे तुम्हें अपनी बनाना है। तुम्हारे लिए ही तो जूनागढ़ घेरा, तुम्हारे लिए ही खेंगारको मारा और तुम ही ऐसा कहोगी तो कैसे चलेगा? राणक, तुम तो पाटनकी पटरानी बनकर ही शोभा दोगी।"

" मुझे तुम्हारे पाटनसे क्या मतलब? मेरा तो सोरठ ही मेरे लिए बना है।"

" नहीं, नहीं बना है। उठो। " जयसिंहदेवने चिल्लाकर कहा, " अभी बातें करनेका समय नहीं है। बाहर साँड़नी तैयार है। पन्द्रह वर्षका बदला आज चुकेगा। खेंगार तुम्हें पन्द्रह वर्ष पहले ले गया था, आज मैं वापस लिये जाता हूँ।"

" सोलंकी! सोलंकी! मुझे ले जानेमें सार नहीं।" खिन्नतासे राणकने कहा। मैं तो जलता अंगार हूँ। छूनेसे जल मरोगे।"

" तुम्हारे लिए मैं जल मरनेको तैयार हूँ। चलो, उठो।" कहकर जयसिंहदेव पास गया।

राणक पीछे खिसककर खड़ी हो गई। " हैं-हैं—मुझे छूना मत।" उसने गिड़गिड़ाकर कहा।

" क्यों, क्या है?"

" मुझे—सोरठके धनीकी स्त्रीको—उसके जीतेजी कैसे छू सकते हो?"

" तब चल मेरे साथ।" महाराजने अधीरतासे आज्ञा की।

" रा' और उनके पुत्रोंके होते इस महलमेंसे मुझे कौन ले जानेका साहस करेगा?" जरा सख्तीसे राणकने पूछा।

" कौन-कौन? मैं जयसिंहदेव—सोरठका, तेरे रा'का और तेरा धनी। चल।" जयसिंहदेवने जोरसे कहा।

महाराजकी आवाज सुनकर सोए हुए कुँवर जाग उठे और एकदम बिस्तरमें बैठकर आँखें मलने लगे।

" माँ—माँ!" माताने बिस्तरपर खड़े होकर पूछा—" क्या है? यह कौन है?"

जयसिंहदेवने इस बालककी ओर सख्तीसे देखा।

" यह है तेरे देशका और तेरे बापका काल—सोलंकी । "

" जयदेव सोलंकी । " माना चिल्लाया, " माँ-माँ, यह कहाँसे आ गया ? पिताजी कहाँ हैं ? "

" पूछ सोलंकीसे । " पल्लेसे आँसू पोंछते हुए राणकने कहा । " बेटा, हमारा पुण्य समाप्त हो गया । "

" क्या पिताजी मारे गए ? " बालकने बिस्तरके नीचेसे एक छोटी तलवार निकालते हुए पूछा ।

" हाँ, लड़के, " महाराजने जवाब दिया । " तेरा बाप मारा गया, तेरी माँ मेरे साथ परणेगी और तेरे बापसे अधिक जयसिंहदेव तुझे जूनागढ़की गद्दीपर बिठाएगा । "

" अरे रे रे रे । " राणकदेवीने कानोंपर हाथ दे लिये । " बोलते हुए तुम्हारी जीभ नहीं जल जाती ? "

" मेरा बाप ! मेरी सती माताको—" कहकर माना तलवार निकालकर जयसिंहदेवकी तरफ दौड़ा । महाराजने खेलकी तरह अपनी तलवारसे कुँवरकी तलवार दूर फेंक दी ।

" जैसा बाप वैसा ही जहरीला बेटा है । " जयसिंहदेवने कहा, " राणक, देर हो रही है । चल, चाहे तो लड़के साथ ले ले । "

" पापी, लड़के साथ लेकर तेरे यहाँ बैठ जाऊँ ? " देवड़ीकी आँखोंमें क्रोध आ गया ।

" तो लड़कोंके विना ही चल । " जयसिंहदेव आधे क्रोधसे और आधी लिप्सासे काँप रहे थे । उन्हें यह भी भय था कि यदि अधिक देरी हुई तो मुंजाल मेहता और लीलादेवी जरूर आ पहुँचेगी ।

" मामी, उठो । " देशलदेव बीचमें ही बोला ।

" भानजे, " तिरस्कारसे राणकने कहा । " मेरे दोषोंसे जो अपवित्र हो रहा था, वह अपना मुख तो यहाँसे काला कर । सोलंकी, दुखियाको किसलिए दुखी कर रहे हो ? तुम भी जाओ । "

" मैं तेरे विना जानेका नहीं । राणक, तू तो मेरी जीवन-मूल है । तू जो चाहे माँग ले, चाहे जो वचन ले ले किन्तु इस समय तेरे बिना मैं यहाँसे न जाऊँगा । "

"मेरी माँको ले जाना चाहता है, क्यों?" माना झल्लाया।

इतनेमें छोटा लड़का जो दूर खड़ा-खड़ा देख रहा था एकदम पीछेसे आया और उसने मानाकी पड़ी हुई तलवार उठाकर जयसिंहदेवके पैरोंपर पीछेसे वार कर दिया। जयसिंहदेव वेदनासे चीख पड़े और गुस्सेमें अपने हाथकी नंगी तलवार कुँवरपर चला बैठे। उन्होंने ओंठ चाबे और वेदनाको शमन करनेका प्रयत्न किया। राणकने आँखोंपर हाथ दे लिये। माना रोने लगा। एक हृदयभेदी चीख मारकर कुँवर पृथ्वीपर गिर पड़ा और उसके प्राण उड़ गये।

तुरन्त ही जयसिंहदेवको अपने अविचारी साहसका पश्चात्ताप हुआ। पुत्रका रक्त बह रहा था, पर क्या राणक माननेवाली थी? किन्तु पश्चात्ताप करनेका अथवा भूल हो जाय तो क्षमा-याचना करनेका उनका स्वभाव न था। उन्हें उलटी जिद हो गई। उन्होंने झुककर घावपर पट्टी बाँधी और क्रूर बनकर राणककी ओर देखा।

"यह तेरा लड़का—"

"मा—मा—" रोते हुए मानाने कहा।

"बेटा," राणकने शान्तिसे कहा। "मरते मा न पुकारिये, कुलकीं लाजै कीर्ति।"

इस शान्तिसे जयसिंहदेव चिढ़ गये और उनका उग्र स्वभाव सीमा लाँघ गया। वे आवेशमें आगे बढ़े। "मैं थक गया हूँ। चल, नहीं तो उठा ले जाऊँगा।" उन्होंने कहा और वे आगे बढ़े।

"दुष्ट!" कहकर माना महाराज आगे बढ़ें कि उसके पहले ही उछला और जैसे कोई वृक्षकी डालपर चढ़ता हो इस प्रकार उनकी गर्दनपर चढ़ गया।

बालक जबर्दस्त था, इसलिए जोरसे चिमटा रहा। जयसिंहके हाथमें घाव था, पैरमें भी सख्त घाव लगा था, इसलिए चिमटकर काटनेका प्रयत्न करते हुए बालकका उपद्रव वे, बहुत बली होने पर भी एकदम शमन न कर सके। उनकी पगड़ी गिर पड़ी। उन्होंने तलवार फेंक दी और काटनेको बढ़ते हुए मानाके मुखको दोनों हाथोंसे महाप्रयत्नसे दूर रखा।

"राणक, अपने लड़केको बुला।" महाराज क्रोधसे चिल्लाये, किन्तु राणक कुछ न बोली। देशलदेव पास जाकर काँपते हाथों बालकको छुड़ानेका निष्फल

प्रयत्न करने लगा। जयसिंहदेवने भी बालकको छुड़ानेका भारी प्रयत्न किया, किन्तु वे सफल हों इसके पहले उस प्रयत्नके बलसे उन्हें गोलाकार घूमना पड़ा। एकदम उनकी कलाई मानाके मुखमें आ गई और उसने पूरी शक्तिसे दाँत चुभा दिए। वहींपर जयसिंहदेवको घाव लगा था, इसलिए वेदनाका पार न रहा।

" ओः !—" कहकर वे चीख उठे और मानासे मुक्त होनेके लिए अपने भारी शरीरको इतने जोरसे झटका दिया कि माना एकदम छूटकर उसके जोरसे पासकी दीवारपर पड़ा। मानाका सिर दीवालसे टकराया, भयंकर आवाज हुई। उसका सिर फट गया और वह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

महाराजने पगड़ी और तलवार उठा ली, और दम लिया।

" राणक, अब चलती है कि नहीं ? " अपने किये हुए विनाशकी ओर क्रूरतासे देखकर राजाने पूछा।

देवड़ीका मुख कठोर हो गया था। वह खड़ी हो गई और बोली " मैंने क्या कहा ? मेरे बालक मर गये, पर मेरे धनी अभी जीते हैं। "

जयसिंहदेवने ओठ काट लिये। इस हठी स्त्रीको मात करनेकी उनमें एक अविचारपूर्ण लहर आ गई।

" चलती है कि नहीं ? " कहकर हाथ फैलाकर उसे पकड़नेको आगे बढ़े।

" ठहरो ! " देवड़ीने आवेशके साथ हाथ आगे कर दिया। वह एकदम सतर हो गई। उसके मुखपर तेज प्रसरित हो गया, उसकी आँखें एकदम चमक उठीं। यह परिवर्तन देखकर जयसिंहदेव सकपका गये। मानो श्वास रुद्ध हो रहा हो, इस प्रकार राणकने चारों ओर देखा और उसने एक करुण चीत्कार किया।

" मेरे रा,' मेरे नाथ, मेरे धनी ! " उसने फटी आँखों बोलना शुरू किया— घणी खम्मा, घणी खम्मा ! उसने अपने गलेपर हाथ रखा। " जय अंबे ! जय अंबे ! मेरे रा' की घणी खम्मा। " उसकी आवाज टूट गई। " ओह ! मेरे रां'— रे–" उसने छातीफाड़ चीत्कार किया, वह हिचकियाँ लेकर रोने लगी और पृथ्वीपर गिर पड़ी।

२६—राणक-हरण

जयसिंहदेवकी आँखोंके आगे अँधेरा छा गया। ऐसा लगा कि खेंगार उसी क्षण मर गया है। वह कहाँ था, यह उसकी समझमें न आ रहा था। वह वहाँ क्या कर रहा था, यह भी उसे स्मरण न रहा। वातावरण अपार्थिव तेजसे दीप्त हुआ, उसके और राणकके बीच एक ऐसा पुरुष आकर खड़ा हो गया जो मानों तेजका पुंज है। उसे उसने पहचाना। उसकी सूरत खेंगार जैसी थी, उसके हाथोंमें खड्ग, आँखोंमें विजय और मुँहपर तिरस्कारमय हास्य था। उसकी इस तेजस्वी मूर्तिके बीच अमाप अन्तर फैलता...

जयसिंहदेव दो चार कदम पीछे हट गये और उन्होंने अपने कपालपर हाथ फेरा। तेज चला गया। अँधकार फैल गया। एक मंद दीपकके ओछे प्रकाशमें दो मृत कुमार, मूर्छित देवड़ी और एक ओर हाथोंसे मुँह छिपाए काँपते हुए देशलदेवको उसने देखा। पीछे अँधेरे दरवाजेमें बावरा बैठा था। उसे सब कुछ स्मरण हो आया।

"बावरा, इस देवड़ीको उठा तो ले।" उसने अपने बैठे हुए गलेसे हुक्म दिया और देशलदेवको जाकर एक लात लगादी और कहा, "उठ!"

बावराने उछलकर राणकको उठा लिया और देशलदेवने खड़े होकर चलना शुरू किया। विरोधी भावोंसे, भय क्रोध और कामसे भरे हुए जयसिंहदेव पीछेकी ओर देखे बिना ही चल पड़े। "देशलदेव, साँड़नी कहाँ है?" जयसिंहदेवने पूछा।

"महाराज, इस तरफ—इस तरफ—" कहकर देशलदेव एक दरवाजेसे बाहर निकला।

बाहर साँड़नी लेकर हमीर खड़ा था।

"बावरा, इसपर चढ़ जा।" महाराजने हुक्म दिया। तुरन्त ही बावरा राणकको लिये साँड़नीपर चढ़ गया। महाराज उसके पीछे चढ़ने जा रहे थे कि देशलदेवने टोका, "अन्नदाता,"

"क्यों?"

"अन्नदाता, मैं चलूँ?"

"कहाँ ?"

"बढ़वाण।"

"मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं।" तिरस्कारसे जयसिंहदेवने कहा।

"किन्तु महाराज,—"

"क्या ?"

"वह आज्ञापत्र—"

"कौन-सा ?" जरा विस्मृति हो जानेसे जयसिंहने पूछा।

"मुझे जूनागढ़ देनेका—"

जयसिंहदेवका क्रोध भड़क उठा। "कुत्ते, तूने अपने मामाको मारा, और अब मामीको बेचकर उसके बदले जूनागढ़ लेकर मेरी गर्दन मारना चाहता है ? दुष्ट!—"

"अन्नदाता, आपका बचन।—"

"पिशाच," जयसिंहदेव गरज उठे, "तेरे साथ वचन! आज रातके सारे घोर कर्मोंका पाप तेरे सिर है।"

"मेरे कारण तो—" हाथ जोड़कर देशलदेव बोला।

"हाँ, तेरे ही कारण आज मुझे यह सब करना पड़ा। पापी, अब पृथ्वीपर तेरा बोझ न रहना चाहिए। ले यह तेरा सिरोपाव—" कहकर महाराजने दाँत पीसकर एक ही वारमे उसका सिर उड़ा दिया और साँड़नीपर चढ़ गये। "हमीर, बड़े दरवाजेकी तरफ हाँक।" साँढ़नी चली कि महाराज देशलदेवकी ओर देखकर बड़बड़ाये। "अच्छेसे अच्छा काम तो मैंने यही किया।"

हमीरने देखा कि इस समय आज्ञा-पालक बननेमें ही लाभ है, इसलिए उसने साँढ़नी हाँक दी।

दूरसे युद्धका हल्ला सुनाई पड़ रहा था। शेष जूनागढ़ श्मशानके समान शान्त था और सूनी गलीमें केवल साँढ़नीकी पदध्वनि ही सुन पड़ती थी।

जब वे बड़े दरवाजेपर पहुँचे तब वहाँ पट्टनी सैनिकोंका पहरा था। उसके नायकने तुरन्त आवाज लगाई, "कौन है ?"

"नायक कौन है ?" महाराजने पूछा।

"क्यों ?" कहकर नायक सामने आया।

" कौन खेमा नायक ? "

" क्या अन्नदाता हैं ! " चकित होकर खेमा नायकने पूछा। उसने आगे बैठे बावरा और उसके हाथोंके शरीरकी ओर घबड़ाहटसे देखा।

" चुप, इधर आ। "

खेमा महाराजके पास गया।

" खेमा, मैं एक जरूरी कामसे जा रहा हूँ। अभी किसीसे कुछ कहना मत। खेंगार मारा गया। अब यह युद्ध बंद हो जायगा। हो जाए, तब मुंजाल मेहतासे कहना कि मैं वंथली गया हूँ, मेरी चिन्ता न करें।

" जो आज्ञा। " खेमाने कहा।

" दरवाजा खोल। "

" जी " कहकर खेमाने दरवाजा खोल दिया और महाराज बाहर निकले।

" हमीर, बढ़वाणका रास्ता पकड़। " धीरेसे महाराजने कहा।

" जो आज्ञा—"

खेमाने दरवाजा बन्द कर लिया।

दो ही घड़ी बीती होंगी कि घोड़ेके पैरोंकी आवाज़ आई। खेमा एकदम चौंककर खड़ा हो गया। एक घुड़सवार दौड़ता हुआ आया।

" खेमा ! " एक परिचित आवाज़ आई।

" कौन, काक भट्टजी ? "

" हाँ, जरा इधर तो आ। "

" क्यों ? " कहकर खेमा आया।

" अभी इधरसे कोई गया है ? "

" बापू, आपसे कहनेमें कोई हर्ज नहीं, किन्तु मनमें ही रखिए। महाराज अभी गए हैं। "

" मुझे भी ऐसा ही लगा। एक स्त्री साथ थी ? "

" एक काले भूत जैसा कोई था—"

" बावरा ?—"

" हाँ, उसकी गोदीमें कोई बेहोश पड़ा था। "

" तब तो वे साँड़नीपर होंगे ? "

" हाँ। "

"कहाँ गये ?"

"मुझसे तो कहा कि सबेरे मुंजाल मेहतासे कहना कि महाराज वंथली गये हैं।"

काक हँसा। "किन्तु गये किस रास्ते ?"

"इस तरफसे।"

"कितनी देर हुई ?"

"चारेक घड़ी पहले।"

"हत्तेरेकी।" काकने निःश्वास छोड़ा। "कोई हर्ज नहीं। दरवाजा खोल।"

"जैसी आज्ञा।" कहकर खेमाने दरवाजा खोला, काक बाहर निकला, और जिस रास्ते महाराज गये थे उसी रास्ते घोड़ेको छोड़ दिया। इतनेमें खेमाको स्मरण हुआ कि काकसे भृगुकच्छका समाचार कहना तो रह गया !

"भट्टजी ! अन्नदाता !—" उसने पुकारा, किन्तु काकका ध्यान नहीं गया। उसने तो घोड़ेको एड़ लगाई और उसकी गति बढ़ानेका प्रयत्न शुरू किया।

२७—काक कैसे आ पहुँचा ?

अब देखें कि काक जयसिंहदेवके पीछे कैसे लग गया।

'रा' खेंगारको विदा करके काक विश्राम करनेके लिए ऊपर छतपर गया। उसका मस्तिष्क भी जरा अशान्त था। उसे ऐसा लगा कि भावीकी सूचना मिल रही है। थोड़ी देर उसने विचार किया और फिर उसे नींद आने लगी।

उसे पता नहीं कि वह कितनी देर सोया। किन्तु ज्यों ही जागा त्यों ही उठ बैठा और कान लगाकर सुनने लगा। मेंदरडाकी ओर तो तूफान चालू था ही, किन्तु गढ़में भी कुछ हो रहा है, ऐसा मालूम हुआ। क्या हो रहा है, यह समझमें नहीं आया, काहेकी आवाज है यह जाना नहीं जा सका, कहाँसे आ रही थी यह भी पता न चला। उसने तुरन्त ही शस्त्र धारण किये और वह गढ़की छान-बीनके लिए निकल पड़ा।

वह महलसे निकलकर, गढ़पर होकर, बड़े दरवाजेकी ओर तेजीसे चला।

एकदम उसे गिरनारी खिड़कीकी ओरसे चिल्लाहट सुन पड़ी और 'जय जय' का घोष भी। सन्देह हुआ कि क्या पट्टनी गढ़में घुस आये?

वह एकदम शोर-गुलकी तरफ जानेके लिए मुड़ा कि सामनेसे पच्चीसेक आदमी आते हुए दिखे। ये आदमी सोरठी न थे।

"कौन है?" वह चिल्लाया।

इसके उत्तरमें वे सब उसपर टूट पड़े। काक तुरन्त चेत गया कि पट्टनियोंने गढ़ ले लिया है। उसने देखा कि इन आदमियोंका सामना करनेमें कुछ सार नहीं है, इसलिए वह चुपचाप बन्दी हो गया। उनमेंसे किसीने उसे पहचाननेकी चेष्टा नहीं की, और उसने स्वयं भी अपनेको परिचित करनेकी परवा नहीं की। स्थितिको ठीक तरहसे देखे बिना कुछ भी करना उसे उचित न लगा। किस प्रकार यहाँसे छूटकर, खेंगारको दिये वचनका पालन किया जाय और राणकके बालकोंको बचाया जाय, वह इसकी योजना बनाने लगा।

वे लोग बड़े दरवाजेपर गये और पहरेदारोंको कैद करके उन्होंने उसपर कब्जा कर लिया।

पकड़े हुए सैनिकोंको भी काकके साथ बिठा दिया। काकने बैठे बैठे सारे पट्टनी सैनिकोंको ध्यानसे देखना शुरू किया। इतनेमें उनके नायककी आवाज़ सुन पड़ी और उसने उसे पहचान लिया। खेमा नायक सामनेसे निकला कि उसने पुकारा—"अरे खेमा नायक, मैं तो सोरठियोंका भी कैदी और पट्टनियोंका भी।"

खेमाने अपने मालिककी आवाज पहिचानी और जिसे मरा समझ रखा था उसे देखकर वह हर्षसे पागल होकर बोला, "कौन, भटराज?" और हाथ लम्बे करके दौड़ता आया। काकने हँसकर कहा, "किन्तु कोई मेरे हाथ भी छोड़ेगा या नहीं?"

"अरे गधे," जिस सैनिकने काकके हाथ बाँधे थे उसे खेमाने इस प्राणी-की उपाधि दी और उसके लक्षणोंकी याद दिलानेके लिए एक लात जमा दी। "लाटका होकर भटराजको नहीं पहचानता?" खेमाने काकके बंधन खोले और काकने खेमाको हृदयसे लगा लिया।

"तुम तो बड़े भरोसेके आदमी बन गये हो!"

"जी।"

" यहाँ कैसे ? "
" खिड़कीमेंसे चुपचाप घुसे हैं ।"
" कौन कौन ? "
" महाराज, दंडनायक, परशुराम और परमार ।"
" कितने आदमी हैं ? "
" चार-सौके लगभग ।"
" कबसे आए हो ? "
" कोई चार घड़ियाँ हुई होंगी ।"

काकको धीरज बँधा । यदि पट्टनी सेना चार घड़ी पहले ही आई होगी, तो खेंगार गढ़ छोड़कर बाहर निकल गया होगा ।

इतनेमें एक सैनिक दौड़कर खेमाके पास आया । " नायक ! नायक ! बाहर कई आदमी आये हैं ।"

खेमा और काक झपटकर दरवाजेके पास पहुँचे और खिड़कीमेंसे देखा कि चार पाँच सैनिक आ गये हैं ।

" कौन हैं ? " खेमाने पुकारा ।

" जय सोमनाथ ! " बाहरसे आवाज आई ।

" त्रिभुवनपाल महाराजकी जय ! " एक दो सैनिकोंने घोष किया ।

" कौन, महाराज ? " काकने कहा । " जय सोमनाथ ! त्रिभुवनपाल महाराजकी जय ! खेमा, दरवाजा खोल । अरे ओ ! उस तरफ कोनेमें मशाल होगी, उसे चेता दे ।"

तुरन्त दरवाजा खुला । मशालें चेतीं और त्रिभुवनपाल, लीलादेवी तथा उनके साथके आदमी दाखिल हुए ।

जयसिंहदेव महाराजकी योजना तो ऐसी थी कि त्रिभुवनपाल और लीलादेवीकी टुकड़ी बड़ी चौकीपर पीछेसे हमला करे जिससे कि मेंदरडेसे आनेवाले लश्करको सहायता मिले और इससे सुबहतक लीलादेवी भी जूनागढ़ न पहुँच सकें ।

किन्तु मुंजाल मेहता चाहे जितना विश्वास दिलाएँ फिर भी वे अपने पतिको अधिक अच्छी तरह पहिचानती थीं । लीलादेवी इस तरह ठगानेवाली नहीं थी ।

जैसे ही वे महाराजसे अलग हुईं कि त्रिभुवनपालसे उन्होंने महाराजके विषयमें चिन्ता प्रदर्शित करना आरंभ कर दिया। कहीं खेंगार हरा न दे, मार न डाले, इत्यादि भय प्रतिक्षण बढ़ता गया और यह चिंता प्रतिक्षण इतनी बढ़ती गई कि अन्तमें रानीकी सूचनाके अधीन होकर त्रिभुवनपालने बड़ी चौकीकी ओर बढ़ना रद कर दिया और यह टुकड़ी बड़े दरवाजेकी तरफ मुड़ी। उन्हें विश्वास था कि यदि सब कुछ ठीक ठीक हुआ होगा तो बड़ा दरवाजा पट्टनियोंके अधिकारमें होगा।

किन्तु इस समय काकको बड़े दरवाजेपर देखकर उनके हर्षका पार न रहा। त्रिभुवनपाल तो उसके गलेसे लिपट गये। लीलादेवीकी आँखें हँस रही थीं।

" क्यों, महाराजकी क्या खबर है ? " लीलादेवीने पूछा।

" मुझे पता नहीं। " काकने कहा, " मुझे तो पहले पट्टनियोंने भी पकड़ा। मेरे भाग्यमें तो कैद होना ही लिखा लगता था। इतनेमें खेमा नायक मिल गया और मुझे छुड़ाया। "

" तब चलिए, महाराजको खोज निकालें। " लीलादेवीने कहा।

" चलिए। " कहकर काक, त्रिभुवनपाल और लीलादेवीने अपने सैनिकों सहित जिस ओर मार-काटका हल्ला सुन पड़ता था उस ओर चल दिया।

जहाँ युद्ध चल रहा था वहाँ ये सब कैसे पहुँचे यह हम देख चुके हैं। किन्तु वहाँ पहुँचनेपर काकने सोचा कि अब इस तूफानमेंसे खिसककर, रणकदेवी और उसके बालकोंको किसी जगह सुरक्षित पहुँचा देना चाहिए। बड़े दरवाजेपर खेमा पहरेदार था, यह भी एक संतोषकी बात थी। इस कारण पहले तो वह संग्राममें कूद पड़ा और अपनी हाजिरी बतलानेके लिए जयघोषणा करता रहा। इतनेमें मशालें बुझ गईं और पहले जैसा अंधकार छा गया। तुरन्त ही काक युद्धमेंसे निकल पड़ा और दौड़ता हुआ राजमहलमें पहुँचा।

राजमहल शान्त और अंधकारग्रस्त था। क्या पट्टनी अपनी विनाश-लीला महलमें दिखा चुके ? वह अन्दर गया। सारे द्वारपाल डरकर भाग गये मालूम हुए। वह सावधानीसे रनिवासमें गया। दरवाजेके आगे ही उसके पैरोंसे एक आदमी टकराया। उसने तुरन्त चकमक निकालकर आग चेताई और दो आदमी मरे पड़े देखे। काकको चिन्ता हुई। वह तो सोचता था कि जयसिंह

देव महाराज युद्धमें ही हैं; किन्तु कहीं उनका आगमन रनिवासमें न हुआ हो ?

वह अंदरके कमरेमें गया। वहाँ दीवारपर दिया टिमटिमा रहा था। कमरा निर्जन-सा लगता था—परन्तु ध्यानसे देखनेपर दोनों कुँवर पृथ्वीपर पड़े दीखे। आलेमें बैठी अंबा भवानी, घीके दिएकी चंचल ज्योतिमें मानो सजीव हों, इस तरह इस भयंकर निर्जनताको क्रोधसे देख रही थीं।

" हाय हाय ! मुझे देर हो गई।" काक बोला और दोनों बालकोंको देखने लगा। उन्हें देखते ही उसका मुख उतर गया। दोनों कुँवर मर चुके थे।

काकको क्रोध आया। अधमता, क्रूरता, विनाशकवृत्तिकी हद हो गई! माताको वशीभूत करनेके लिए उसके पुत्रोंका वध करनेवाले प्रणयीका राक्षसी स्वभाव कैसा होगा ? यही उसका मालिक, यही उसका राजा है! इसीकी सेवामें उसने अपना जीवन खोया ! उसे अपने प्रति तिरस्कार हुआ। इस नराधमको दंड देनेके लिए वह आतुर हो उठा।

" कोई है ? मैं काक हूँ। अरे यहाँ कोई है ?" जवाबमें यही शब्द प्रतिध्वनित हो उठे। सबके सब घबराहटमें कहीं जा छिपे थे।

" अरे भोलानाथ ! सोरठके स्वामीका यह हाल ! माँ अम्बा, तुम बैठी बैठी क्या देखती रहीं ! यही तुम्हारा न्याय है ?"

काकको अधिक देर तक वहाँ रुके रहना उचित न लगा। उसने एक दृष्टि बालकोंपर डाली और श्मशानसे भी घोर उस कमरेमेंसे अंदरके भागमें वह गया। वहाँ भी कोई न था। उसने निश्चयसे समझ लिया कि यहाँ जयसिंहदेव ही आया था। राणकको भी वही उठा ले गया होगा। नहीं तो इस प्रकार बच्चोंको मरा छोड़कर देवड़ी नहीं जाती। देवड़ीको कहाँ खोजा जाए ? जयसिंहदेव ऐसा कच्चा न था कि उसे यहाँ रहने दे।

उसने ध्यानसे देखा तो एक जगहपर रक्तसे सनी नंगी तलवार सीधी रक्खी थी। उसमेंसे बहकर रक्तका छोटा-सा गड्ढा बन गया था और वहाँसे फिर उस तलवारसे टपकनेवाली बूँदें बाहर निकल रही थीं। वह बाहर निकला और उसने अगले कमरेमें मरा पड़ा हुआ एक दूसरा अनुचर देखा। ध्यान देनेसे मालूम हुआ कि यह तलवार जमीनपर रखकर घसीटी गई थी। तब ध्यानपूर्वक

उस तलवारसे बने चिह्नोंको देखता हुआ वह बाहर निकला। कुछ आगे जानेपर उसने दूरसे एक आदमी पड़ा हुआ देखा। काकने पास जाकर उसे देखा और पहिचाना। देशलदेवका धड़ और मस्तक अलग अलग पड़े थे।

"यह दुष्ट मर गया, अच्छा ही हुआ।" काकने दाँत पीसते हुए कहा।

एक साँड़नी वहीं सामने बैठी रही होगी, ऐसा उसे मालूम हुआ। "जान पड़ता है जयसिंहदेव भाग गया। कहाँ जायगा? देवड़ीको लेकर वंथली तो कौन-सा मुँह लेकर जायगा? चलो, बड़े दरवाजेपर चलकर तलाश करूँ।"

वह तुरन्त घुड़सालमें गया, एक अच्छा पानीदार घोड़ा खोलकर कस लिया और बड़े दरवाजेपर पहुँचा। वहाँ खेमाके साथ क्या क्या बातें हुईं, यह हम देख चुके हैं।

२८—जय सोमनाथ

त्रिभुवनपालके आदमी आये और सोरठियोंपर आ बनी। अब सामना करनेकी बात न थी; किन्तु किस प्रकार सोरठियोंको बीन-बीनकर खत्म किया जाय, यही रह गया था। 'खेंगार की जय' या 'जय अंबे' की अपेक्षा 'जयसोमनाथ' की घोषणा तीन गुनी अधिक थी। कितनी ही बार तो पट्टनी लोग आपसमें ही एक दूसरेके साथ टकरा जाते और एक दो चोटें कर चुकने पर अपने आदमियोंको पहिचान पाते।

किन्तु सोरठिए अद्भुत पराक्रम दिखला रहे थे। हर एक आदमी सब ओर घूमता और अचूक वारसे शत्रुके प्राण लेता। अक्सर गिरा हुआ सोरठी उठकर लड़ने लगता और लेटे लेटे ही जरा उठकर खड़े हुए पट्टनीके पैर काट डालता। जहाँ तहाँ शवोंके ढेर लग गए।

खेंगारने लड़ते लड़ते पट्टनियोंकी नई सेना आते देखी और उसके बाहुओंमें नया जोश आ गया। उसके सारे शरीरसे रक्त बह रहा था। उसने अनेक बार हाथ बदले थे। वह कितनी ही बार गिरकर खड़ा हो गया था। उसकी वीरताने हद कर दी। उसका होश जाने लगा, किन्तु उसके हाथ न रुके।

एक ही वृत्ति उसमें रह गई—विनाश करनेकी। उसके मस्तिष्कने और कोई काम करना ही बंद कर दिया।

मानो एक प्रचण्ड काले बर्तनमें मनुष्य खदबदा रहे हों, ऐसा उसे आभास होता गया। अंधकार बिलोया जा रहा हो, शस्त्रधारी पुरुष उसमें ऊपर नीचे हो रहे हों और वे सब वृत्ताकार घूम रहे हों, ऐसा उसे लगने लगा। इस चक्राकार प्रवृत्तिका वह स्वयं मध्यबिंदु था; वह घूमता था इसलिए और सब घूमते थे।

किन्तु यह सब क्यों घूम रहे हैं, यह उसे याद न रहा। सब घूम नहीं रहे थे बल्कि गोलाकार नाच रहे थे। सब तानमें थे, किसीको किसीकी चिन्ता न थी। वह स्वयं सबसे अधिक जोरसे नाच रहा था और 'जय अंबे' 'जय अंबे' पुकारता था। उसके कितने हाथ हैं, यह भी उसे याद न रहा, किन्तु उसका धड़ और हाथ चक्कर-मकर घूम रहे थे।

धीरे धीरे उसके मस्तिष्कके सामनेसे अंधकार खिसक गया। लाल और पीले बादल दीखने लगे। वे रंग बिरंगे बादल ऊपर नीचे होकर नाचने लगे। उस रंगमें जब तब श्वेत बिजलियाँ-सी चमक उठतीं और सब चकर-मकर घूमने लगते। वह स्वयं भी मानो इन बादलोंपर नाच रहा हो, ऐसा लगा। वह स्वयं पृथ्वीपर पैर रखता है या नहीं, भूल गया।

बादल लाल हुए, गहरे हुए, उसकी आँखोंमें सिर्फ लाल रंग ही दीख पड़ा। वह लाल रंग नाचता ही रहा। उसमें काली बदलियाँ आने लगीं; किन्तु वह तो नाचता ही गया। उसके कानोंमें बिजलीकी भारी कड़क जैसी धड़कन सुनाई देती रही। उसे मानो किसीकी आवाज, परिचित जैसी, 'जय अंबे' सुन पड़ी, उसे हँसी आ गई।

एकदम लाल वातावरणमें श्वेतमूर्ति दीख पड़ी। उसने उसे पहिचाना। वह स्त्रीकी थी। वह कौन थी? उसकी बहुत परिचित, उसकी प्राण थी। उसे पहिचाना—वह उसकी राणक सती थी। वह कहाँसे आई, कैसे आई, उलझन हुई। वह सती थी। उसकी बड़ी बड़ी आँखें गर्वसे देख रही थीं। 'सतीकी जय' 'जय अंबे!' उसने पुकारा। पुकार बहुत दूरसे आती सुन पड़ी। फिर भी वह तो मानों नाचता ही रहा।

राणक श्वेत रंगकी थी, वह फीकी होने लगी। बादल सफेद थे, वे भी श्यामल होने लगे। तो भी उसने आँख गड़ा गड़ा कर देखा और नाचता ही रहा। उसने 'जय अंबे' कहना शुरू किया किन्तु कंठमें कुछ अटक गया। उसने गला साफ किया और 'सतीकी जय' कहा।

एक दम बादल और मूर्ति—सारा दृश्य डावाँडोल होने लगा, औंधा सीधा हो उठा। वह उसे सीधा करने चला किन्तु वह काला होता गया। एकदम कुछ अटका, सब गोलगोल फिरा। उसने पुकारनेका प्रयत्न किया किन्तु पुकारा नहीं गया और अंधकार फैल गया।

खेंगार पृथ्वीपर गिर पड़ा। थोड़ी देरमें उसे होश हुआ और वह उठने लगा। एक लाल बिजलीकी चमक हुई—और अंधकार फैल गया। वह पुनः गिर पड़ा—दो चार शवोंसे बनी हुई शय्यापर। उसके मुखसे रक्त निकला और उसके प्राण चले गये।

इस तरह विश्वासघातसे जूनागढ़के अन्तिम स्वतंत्र 'रा' का अन्त हुआ। वह चूड़ासमा कुलका मुकुटमणि मध्यकालीन गुजरातकी वीरताका अप्रतिम प्रतिनिधि तो था ही, साथ ही उसकी भलमनसाहत और स्मृतियाँ शताब्दियोंसे लोक-हृदयमें बसी रहीं। उसका औदार्य न कभी समाप्त होता और न बदलता। उसका शौर्य बरसों तक पाटनकी सर्वभक्षी सत्ताद्वारा भी न घटा और न पीछे हटा। उसका गौरव, जिसने दरिद्रता, निराधारता और विपदामें भी सोरठके मान और महत्त्वको टिका रखा; उसकी टेक जो गिरनारके समान अडिग थी, और जिसने कठिनाइयोंसे घिरे रहनेपर भी अपने चरित्रको निष्कलंक रखा। उसका स्वदेशानुराग और स्वातंत्र्य-प्रेम जिसने उसके जीवनको विशुद्ध रखनेके लिए उसे आपद-यज्ञमें होम दिया। ये सब बातें उसे मध्यकालीन हिंदू वीर-कथाओंमें अग्रगण्य स्थान देती हैं। राजपूतानाके राजपूत वीरोंमें, मेवाड़के शूर वीर महारथियोंमें भी उसकी बराबरी करनेवाला तो भले ही कोई हो, किन्तु उसे भुला देनेवाला कोई नहीं है। करुणात्मक भव्यतामें उसे भुला देनेवाला देखनेके लिए हजारों बरसोंकी इतिहास-यात्रा करके, भारत-कालके अस्पष्ट जीवनमें, वीरोंमें वीर, दाताओंमें दानेश्वर, टेकवालोंमें भी टेकीले, पापसृष्टिमें भी पुण्यधाम सदृश, अस्वाभाविक मातासे लेकर अन्यायी गुरु तक सबकी अनु-

दारतासे रचे गये प्रतिकूल संयोगोंके सम्मुख भी समरांगणमें सतत जुटे रहनेवाले दानेश्वर कुंतीपुत्र कर्ण तक जाना पड़ेगा।

खेंगारके साथ जूनागढ़की टेक गई, सोरठका स्वातन्त्र्य गया, केवल शौर्य-पर रची गई सत्ताकी भावना गई और अपने पीछे अमर कीर्ति, रोती हुई प्रजा और सती राणकको छोड़कर वह चला गया।......

धीरे धीरे 'जय अंबे' की पुकार जब तब सुनाई पड़ने लगी और फिर तो वह नाम मात्रको ही रह गई। बहुत बार 'जय सोमनाथ' की पुकार करते हुए योद्धा ही आपसमें जूझने लगे। तो भी कहीं सोरठी योद्धा कोई दाव न खेल जायँ, इस भयसे पट्टनी घूमते ही रहे।

"महाराज! लीलादेवी! परशुराम! त्रिभुवनपाल! जगदेव! सब हैं क्या? पट्टनी जीत गये मालूम होते हैं। बोलो 'जय सोमनाथ'।"

'जय सोमनाथ' की घोषणा चारों तरफ गूँज उठी। "मेहताजी, मैं परशुराम।" "मैं लीलादेवी।" एक चबूतरेपर बैठी हुई रानीकी आवाज़ आई। "मैं जगदेव।"

"मामा!" एक कोनेसे त्रिभुवनपालकी आवाज आई। "मैं जीता हूँ पर मेरा पैर घायल हो गया है और मुझपर तीन मुर्दे पड़े हुए हैं। घबराना नहीं।"

"महाराज, हम सब पट्टनी ही हैं।" जीवित सैनिकोंने पुकारा।

"किन्तु महाराज कहाँ हैं?" परशुरामने कहा।

"महाराज! महाराज!" मुंजालने पुकारा।

"और काक कहाँ है?" लीलादेवीने पूछा।

"काक! काक!" परशुरामने पुकारा।

"कहाँ गये? अरे सिपाहियो, जाओ मशाल ले आओ।" मुंजाल मेहता-ने हुक्म दिया।

थोड़ेसे सैनिक मशाल लेने दौड़े। इतनेमे एक जमीनपर पड़े सोरठीने आधे खड़े होकर मुंजाल मेहतापर तलवारका वार कर दिया और कहा "जय अंबे!" दूसरे ही क्षण महा अमात्यने उसे तलवारसे पृथ्वीपर सुला दिया और "जय सोमनाथ" का घोष किया। "तूने भी खूब मरते मरते मुझे घायल कर दिया! घबराना नहीं, थोड़ा ही लगा है। मैं उस चबूतरेपर बैठता हूँ।"

इतनेमें राजमहलके चौकके सामने एक घरकी खिड़कीमेंसे लाल धुआँ निकला और थोड़ी ही देरमें घरके छप्परमेंसे ज्वाला भड़क उठी, चारों तरफ लाल प्रकाश हो गया। किसीने घरमें आग लगा दी थी। उस घरके जलते ही दूसरा भी चेत उठा और चारों तरफ ज्वालायें दिखने लगीं।

उस प्रकाशमें रणक्षेत्र भयंकर दीखने लगा। सात आठ सौ मुर्दे एक दूसरेपर, चाहे जैसे, पड़े थे। जब तब वेदनाकी कराहें सुन पड़ती थीं। रक्तसे रँगे हुए दो सौके लगभग पट्टनी मानो प्रेतलोकसे लौटे हों, इस प्रकार धीरे धीरे निकट आ रहे थे। युद्धमें ही वृद्ध हुए सैनिक भी यह दृश्य देखकर काँप उठे।

"परशुराम, उठो, पानीकी तजबीज करो। किसीने नगरमें आग लगा दी है।" मुंजाल मेहताने पैरपर पट्टी बाँधते हुए कहा। परशुरामने सशक्त सैनिकोंको बावड़ीकी ओर भेजा। घरोंमें दुबके हुए स्त्री-बालक घबराकर, कोलाहल करते हुए घरोंसे बाहर निकले। लँगड़ाते हुए मुंजाल मेहता उनके पास पहुँचे।

"कोई घबड़ाना नहीं। जूनागढ़में जयसिंह सोलंकीकी आन फिर रही है, सब निर्भय हो जाओ। चलो, आग बुझाएँ। परशुराम, तुम आग बुझाओ। परमार, तुम मशाल ले आओ। जल्दी करो, महाराज और काकको तलाश करें।"

सबने झटपट चुपचाप आज्ञाका पालन करना शुरू किया। स्त्रियाँ घरोंमेंसे पानी लाने लगीं; पट्टनी सैनिक बावड़ीमेंसे पानी लाये और आग बुझाने लगे। नगरके कितने ही रहे सहे आदमी आगके भयसे आ पहुँचे। पट्टनियोंने उन्हें तुरन्त ही पकड़-पकड़कर बाँधना शुरू किया।

इतनेमें खेमा नायक मशालें लेकर आ पहुँचा।

"कौन, खेमा?" मुंजाल मेहताने पूछा, "तुम कहाँसे आये?"

"मैं बड़े दरवाजेकी रखवाली करता हूँ।"

"तुम और परमार इन मुर्दोंको देखो, मरे हुए और जीते हुए अलग अलग करो। सैनिको, चलो, जल्दी करो। महाराज और काक नहीं मिल रहे हैं। परमार, जल्दी करो।" मुंजालने कहा।

"बापू, एक बात कहूँ?" खेमाने मुंजालके पास आकर कानमें धीरेसे कहा। "दोनोंमेंसे एकको भी तलाश करनेकी जरूरता नहीं।"

"क्यों?"

" महाराज बाहर चले गये हैं और कह गये हैं कि आपको सूचित कर दिया जाय कि वे वंथली गए हैं।"

" वंथली! किसलिए?"

" मुझे क्या मालूम?"

" —और काक?"

" भट्टराज घोड़ेपर बैठकर उनके पीछे गये हैं?"

मुंजाल चकित हुए। " दोनों साथ गये?"

" नहीं, अन्नदाता। पहले महाराज गये।"

" घोड़ेपर?"

" जी नहीं, साँड़नीपर।"

" कितने आदमी थे?"

खेमा उलझनमें पड़ गया।

" घबराओ मत, जो हो, सच सच कह दो।"

" एक भूत था और एक बेहोश स्त्री।"

मुंजाल मेहताकी आँखें चमक उठीं। " खेमा, एक साँड़नी तैयार कर। मैं अभी आता हूँ।" यह धीरेसे कहा और फिर परशुरामसे जोरसे कहा, " परशुराम, महाराज जरा वंथली गये हैं, मैं भी जाता हूँ। आप जूनागढ़पर कब्जा करो और आग बुझाओ। मैं सबेरे ही लौट आऊँगा। देखो, सोरठी दग़ा न करें। लीलादेवी, जरा इधर तो आओ।" मुंजालने कहा।

लीलादेवी मुंजालके पास आई। मुंजालने धीरेसे कहा, " आप मेरे साथ चलें।"

रानी चेत गई और मुंजालके साथ जानेको तैयार हो गई। मुंजाल और रानी धीरे धीरे बड़े दरवाजे गये। वहाँ साँड़नी तैयार थी, उसपर दोनों चढ़ गये।

" खेमा, महाराज किस रास्ते गये?"

" उस रास्तेसे।"

" वह कहाँको जाता है?"

" मैंने यहाँके लोगोंसे पूछा था, वह रास्ता वढ़वाण जाता है।"

" अच्छा, मुझे वंथली ले जाए, ऐसा आदमी दे।"

" अन्नदाता, साँड़नीवाला सोरठी है, किन्तु रखवाला अपना है। यह सब रास्ते जानता है।"

" अच्छा तो चलाओ।" मुंजालने कहा और साँड़नी चल दी। नगरके बाहर होनेपर मुंजालने धीरेसे कहा, " रानी, शिकार सटक गया।"

" कैसे ?"

" राणकको लेकर महाराज चले गये।"

" अच्छा ?" तिरस्कारसे लीलादेवीने कहा

" हाँ। पर हर्ज नहीं, मैं उन्हें पातालमेंसे खोज लूँगा। इस समय तो वंथली जाकर मीनलदेवीको खबर देनी है और महाराज गये हैं, यह खबर ढँक रखनेका प्रयत्न करना है।"

" मेहताजी, आप इन लोगोंको कहाँ तक ढँकते रहेंगे।"

" जिऊँगा तब तक। मैं चाहे जैसा हूँ परन्तु हूँ तो पाटनका चाकर।" हँसकर मुंजालने कहा।

२९—भावी महापुरुषका परिचय

महाराजकी आज्ञासे हो सकी उतनी तेजीसे हमीरने साँड़नी दौड़ाई। हमीरके तो हाथ पैर ही ढीले हो गये थे। जूनागढ़का पतन, खेंगार और अपने मालिक देशलदेवकी दुर्दशा, जयसिंहदेव जैसे महाप्रतापी महाराजका सानिध्य, और बावरा जैसे अमानव और भयंकर जीवकी सोहबतसे वह ऐसा घबरा गया कि पीछेको देखे बिना ही साँड़नी हाँकता गया।

सुबह होते ही बेहोश राणक जयसिंहदेवको सौंपकर बावरा साँड़नीपर पीछेकी तरफ औंधे माथे पड़ गया। बाबराके साथ किसीका परिचय न हो, इसलिए दिनमें उसे सबसे अलग रखा जाता था; और यदि अगत्या साथ लेना ही पड़ता तो वह औंधा माथा रखकर पड़ा रहता था।

सुबह होने पर किसी छोटे गाँवके पास साँड़नी रोककर एक झाड़के नीचे सब उतरे। हमीर महाराजके लिए कुछ खाना पकानेमें लग गया, और महाराजने

पानी छिड़ककर राणकको होशमें लानेका प्रयत्न किया। बड़ी मेहनतके बाद राणकको चेत हुआ। जैसे ही वह होशमें आई कि दूर जाकर बैठ गई और माथा पकड़कर रातकी भयंकर घटना याद करने लगी। उसका मुख मुरझा गया था।

" मुझे कहाँ ले जा रहे हो ? " उसने भावहीन आवाज़में पूछा।

" बढ़वाण। वहाँ हम विवाह करेंगे। "

" किसलिए व्यर्थ ही सिर मार रहे हो ? "

" क्यों ? "

" कहीं भी ले जाओ, मेरा तो एक ही रास्ता है। "

" क्या ? "

" मेरे 'रा' का। " उसकी आँखोंमें आँसू न थे; किन्तु उससे भी अधिक शोकदर्शक शुष्कता थी।

" राणक उतावली न करो। बढ़वाण पहुँचकर हम शान्तिके साथ बात करेंगे। "

राणकने जवाब नहीं दिया। तबसे वह गूँगी हो गई। उसने खानेसे इनकार कर दिया, वह चुपचाप साँड़नीपर चढ़ी और हमीरने साँड़नी हाँक दी।

थोड़ी ही देरमें घोड़ेके पैरों जैसी आहट सुन पड़ी। महाराजने हमीरको साँड़नी खड़ी रखनेका हुक्म दिया। साँड़नी खड़ी रही और राजाने कान लगाये, किन्तु घोड़ा उसी ओर आ रहा है या नहीं, समझ न पड़ा; और फिर टापोंकी आहट आना बन्द हो गया। तब खाली आहट ही होगी, ऐसा मानकर महाराजने साँड़नीको दौड़ानेका हुक्म दे दिया।

सन्ध्याको फिर उन्होंने विश्राम लिया। रास्तेमें जहाँ तहाँ पट्टनी थाने आते थे किन्तु पाटनके राजाका संदेश ले जा रहा हूँ, यह बहाना कर देनेसे रास्ता साफ हो जाता था।

रात्रिको चंद्रमाके उजालेमें भी राजाने अपनी यात्रा जारी रखी। कभी कभी राजाको घोड़ेकी टापोंकी आहट सुन पड़ती किन्तु उसने इसकी परवाह नहीं की। चन्द्रमा डूबने लगा और वे बढ़वाण जा पहुँचे।

महाराजकी आज्ञासे हमीरने कोटकी खिड़कीमेंसे चौकीदारको पुकारा।

" किससे काम है ? "

" विजयधवल किलेदारको बुलाओ । " महाराजने आज्ञा दी ।

" कौन हैं आप ? "

" जयसिंहदेव सोलंकी । "

चौकीदार स्तब्ध हो गया और चुपचाप किलेदारको बुलाने चला गया। थोड़ी ही देरमें जलती हुई मशालके ठाठके साथ विजयधवल किलेदार आ पहुँचा।

" किलेदार, द्वार खोलो। मुझे कब तक इस तरह खड़े रहना होगा ? " महाराजने पुकारा। विजयधवलने खिड़की खोलकर देखा और वह महाराजको पहिचान कर चकित हो गया। उससे कुछ बोलते न बना और तुरंत द्वार खोल दिया।

" हमें राजगढ़में ले चलो, और मेरे आनेकी खबर बाहर न जाने पाए। ध्यान रखना। "

" जो आज्ञा। " कहकर विजयधवल आगे चला।

राजगढ़ पास ही था। नया मकान था किन्तु अधिकांश आदमी लड़ने चले गये थे, उसमें कोई न था। अँधेरी रातमें वह छोटे पर्वत जैसा गहरा दीख पड़ता था।

" अन्नदाता," विजयधवलकी जिज्ञासा किसी प्रकार भी दबी न रह सकी। " महारानीजी कैसी हैं ? "

" ठीक हैं। " राजाने तुच्छतासे उत्तर दिया। विजयधवलको अधिक पूछनेका साहस न हुआ।

" विजयधवल, 'रा' मारा गया और हमने जूनागढ़ ले लिया। "

" अच्छा ? " चकित हुए किलेदारने इस तरह आए हुए राजाके सामने देखकर कहा।

" हाँ। " राजाने जवाब दिया।

राजगढ़ आ गया और किलेदारके आदमियोंने दरवाजा खोल दिया। " हमीर, इन्हें अंदर ले जाकर बैठाना। मैं अभी आया। " महाराजने आज्ञा की।

राणकदेवी साँड़नीपरसे उतरनेके बाद चुपचाप राजाके पीछे पीछे चल रही थी।

उसके निस्तेज मुखपर एक प्रकारकी निश्चलता छा गई थी और मानो बिना इच्छाके ही वह चल रही हो ऐसा लगता था।

राजाने आज्ञा की, इस लिए वह यंत्रवत् हमीरके साथ चबूतरेपर चढ़कर अंदर गई। साथमें एक मशालची अंदर गया। राजा किलेदारकी ओर फिरा। "किलेदार, यहाँ कोई ब्राह्मण है?"

"अन्नदाता—"

"राजगढ़का पुजारी नहीं है?" राजाने अधीरतासे पूछा।

"अन्नदाता," हाथ जोड़कर किलेदारने कहा। "यहाँ कोई है नहीं, इसलिए वह गाँवमें सोने चला जाता है; किन्तु देखता हूँ शायद उसका कोई शिष्य हो तो—"

मानो किलेदारके वाक्यका उत्तर मिल रहा हो, इस प्रकार कुछ दूरकी एक कोठरीमेंसे वेदोच्चरण सुन पड़ा—

"**चत्वारि शृंगा त्रयोऽस्यपादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तसोऽस्य।**"

कोई बाम्हन-सा ही तो दीखता है।" राजाने कहा। किलेदार वहाँसे उस कोठरीकी ओर दौड़ता हुआ गया और थोड़ी देरमें एक ऊँचे कदके लड़केको साथ ले आया। राजा इतनी देर अधीरतासे खड़ा रहा।

"अन्नदाता, यह एक लड़का है।"

वह एक पन्द्रहेक वर्षका लड़का था। उसने एक छोटी-सी लँगोटी पहिन रखी थी, शरीरपर भस्म लगा रखी थी और भालपर त्रिपुंड। किलेदारके शब्द सुनकर वह अभिमानसे हँसा। लड़का हूँ, तो मुझे लाये किसलिए?" और

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।

कोई समझनेवाला न था, तो भी उसने आत्म-संतोषके लिए कहा।

अधीर राजाने पूछा, "कैसे ब्राह्मण हो?"

"कान्यकुब्जमें मेरा जन्म हुआ है।"

"कुछ आता है?"

बालक अभिमानसे फिर हँसा। "क्या काम है?"

"किलेदार, तुम जाओ।" राजाने विजयधवलको आज्ञा दी। "सुबह फिर आना।"

किलेदारको स्पष्ट लग रहा था कि कोई विचित्र प्रसंग उपस्थित हो गया है; किन्तु राजाकी आज्ञाका अनादर न हो सकता था, इसलिए विवश होकर चला गया।

" बाम्हन,—तू विवाह करना जानता है ? "

" आपको ब्राह्म, गांधर्व, पैशाच अथवा राक्षस किस विधिकी जरूरत है. सो बतलाइए न ? "

" किसीसे भी काम चल जायगा, चल। "

" अरे अन्नदाता ! " जरा ठंडे कलेजे लड़केने कहा, "इस प्रकार उतावले क्यों हो रहे हैं ? आप हैं कौन, यह तो बतलाइए। "

" मैं चाहे जो हूँ। तू चल। "

" चलता हूँ। किन्तु आपको जितनी ब्याहकी उतावली है, उतनी मुझे आपको पहचाननेकी है। " लड़केने ठंडे कलेजे कहा।

" क्यों ? " लड़केके संकोचहीन बोलनेके ढंगसे विस्मित होकर राजाने कहा।

" मैं उचित दक्षिणाके बिना आपकी जल्दबाजीसे कुछ करनेवाला नहीं हूँ। आप जल्दीमें हैं और कोई बड़े आदमी मालूम होते हैं। "

" तू क्या चाहता है ? " क्रोधसे महाराजने कहा।

" आप कौन हैं ? " हँसकर शान्तिसे लड़केने पूछा।

" पाटननरेश जयसिंहदेव सोलंकी। " तंग आकर राजाने कहा, " मुझे नहीं पहिचानता ? "

" अहो पृथ्वीपति ! " लड़केने हँसते हुए हाथ जोड़े। " मेरे धन्य भाग्य ! चलिए, क्या करना है ? "

" तुझे क्या चाहिए है ? "

" अब मुझे दक्षिणाकी परवाह नहीं। मैं परम भट्टार्क जयसिंहदेव महाराजके चरणोंकी रज हूँ। चलिए। " कहकर जरा हँसकर वह लड़का आगे चला।

" तेरा नाम क्या है ? " राजाने पूछा।

" मेरा नाम है—भाव।" लड़केने आत्मश्रद्धासे कहा। राजाने वह देखी नहीं। यह नाम भविष्यमें कितने वर्षोंमें और किस विधिसे कानोंसे टकरायेगा, इसकी उसे खबर न थी।

राजाको यह लड़का बड़ा ही विचित्र लगा और उसकी छोटी उम्रके लिहाजसे उसकी बोलनेकी रीति असाधारण प्रतीत हुई। किन्तु इस समय इसके विषयमें विचार करनेका अवकाश न था। उसने लड़केको अंदर आनेकी आज्ञा दी।

महाराज अंदरके कमरेमें पहुँचे। प्रभात हो रहा था, इसलिए महलमें कुछ उजाला हुआ। उस उजालेमें उन्होंने एक कोनेमें राणकको देखा। हमीर थोड़ी दूर पर खड़ा था।

" हमीर, बाहर जा और साँड़नीकी खबर ले।"

हमीर " जो आज्ञा।" कहकर चला गया। जैसे ही वह गया तुरन्त ही राजाने जाकर दरवाजा बंद कर दिया और अर्गला लगा दी। लड़का यह सब ध्यानसे देखता रहा।

" देवड़ी।"

राणक देवीने उत्तर नहीं दिया।

" राणक," जयसिंहदेवने गला साफ करके कहा। " यह ब्राह्मण तैयार है। चलो, अब विवाह कर लें।"

राणक देवीने नीचे झुका हुआ सिर ऊँचा किया। उसकी फीकी आँखें राजाको देखती रहीं। " मुझे किसलिए दुःख देते हो? सोरठके जीवनदाताके जानेसे मैं तो यों ही मर रही हूँ।"

" नहीं राणक, जयसिंहदेवकी पटरानी होनेपर तुम सजीवन हो जाओगी।"

" जयसिंह! जयसिंह! खेंगार जैसे रणधीर काम आये, किन्तु तुम्हारा गर्व नहीं गला। मेरे सोरठके अजीत 'रा' चले गये, तो तुम्हारी क्या गिनती?" राणकने जरा अधीरतासे कहा।

" मेरी गिनती सारी पृथिवी करती है और आज तुझे भी करनी है।" गर्वसे राजाने उत्तर दिया।

" पागल राजा, मेरी दृष्टिमें तो पुरुष एक ही था। वह मरा और मुझे तथा पृथिवीको दोनोंको रँड़ापा आ गया। पृथ्वी भले ही तुम्हें स्वीकार कर ले, किन्तु मैं तो उसीकी थी और रहूँगी।"

" राणक, पृथ्वी उसकी कभी थी नहीं और होनेकी नहीं। तुम भी कभी

उसकी थीं नहीं और रहनेकी नहीं। उठो, चलो, इस ब्राह्मणको देर हो रही है। महाराज, जो कुछ तुम्हें पढ़ना हो पढ़ना शुरू करो।"

"खबरदार!" देवड़ीने भावसे कहा। उसकी बैठी हुई आवाजमें भी जरा सत्ता दिखी। "ब्राह्मणका बेटा होकर यह अत्याचार देख रहा है?"

"बहिन," बहुत ही शान्तिके साथ भावने कहा। "ऐसी हठ किसलिए कर रही हो? शास्त्रका वचन है कि जिसने देश जीता उसने देशाधिपकी दयिता भी जीती। महाराजको आपसे विवाह करनेका अधिकार है और आपको महाराजके कंठमें वरमाला डालनेका अधिकार है।"

राणक देवीने अकुलाकर कानोंपर हाथ रख लिये।

"जूनागढ़में रहते हुए मुझे कैसे पता लगता कि ऐसा कलियुग आ गया है? यह राजा और यह भूदेव! जाओ–जाओ, अपना मुँह काला करो। मुझे किसलिए सता रहे हो?"

"राणक देवी," राजाने अधीरतासे कहा,' जो कुछ हूँ सो हूँ। चलो।" कहकर उसने हाथ फैलाया। राणकने अपना हाथ आँचलमें छुपा लिया।

"हाथ बढ़ाओ।

"सात जन्म सिर मारकर मर जाएगा, तो भी इस हाथका धनी तू नहीं होनेका।" देवड़ीने ज़रा क्रोधसे कहा।

"मैं देखता हूँ कि तुम कैसे इनकार करती हो?" राजाने होठपर होठ पीसकर कहा। उसकी आँखोंकी पुतलियाँ बाहर निकल आईं, उसकी नाक फूल उठी, उसके कपालकी बिचली नस उभर आई। "इस समय तुम मरोगी तो भी मेरी स्त्री होकर मरोगी। चलो, हाथ बढ़ाओ।" राजाने चिल्लाकर कहा और अपना हाथ राणकके बिल्कुल पास ले जाना शुरू किया। भाव पाणिग्रहण हो कि मंत्रोच्चारण करनेके लिए तत्पर हो गया।

राणकने अधिक जोरसे हाथ खींच लिया।

"हाथ बढ़ाओ, नहीं तो समूची ही उठा लूँगा।" राजा क्रोधके आवेशमें चिल्लाया।

"मुझे छूनेका पाप करेगा? दुष्ट, जनमजनम तू जीते जी नरकमें पड़ेगा।" राणकने होठ काट लिये।

भविष्यवाणी करते समय उसका मुख जैसा शववत् निश्चेतन हो गया था, इस समय भी एकदम वैसा ही हो गया। उसकी आँखोंकी पुतलियोंका रंग कुछ बदला और उसमें ज्योति प्रकट हुई। भाव यह परिवर्तन देखकर चकित हुआ और राजा जरा झिझका।

तुरन्त ही राजाका क्रोध फिर फट पड़ा। उसके हृदयमें एकत्र हुई सारी विषमता, क्रूरता, उन्माद और क्रोध—मेंसे भारी ज्वाला निकली। कोई सामना करता, तो वह साधारणतः सहन न कर सकता था। और इस प्रसंगमें तो इस हठी स्त्रीकी हठ तोड़नेकी प्रबल इच्छाने उसका सारा ज्ञान लुप्त कर दिया।

"तू-तू-मेरा सामना करती है—" उसने दाँत पीसे। उसकी आँखोंमें खून उतर आया।

अमानुषी शुष्कतामें—धीरेसे—राणकने जवाब दिया—"हाँ।" राजाका हाथ जोरसे राणकको पृथ्वीपर दे मारनेके आवेगकी झनझनाहटका अनुभव करने लगा।

सूर्योदय होते ही पूर्वकी जालीमेंसे एक लाल किरण तेजस्वी रक्तकी रेखाके समान कमरेके बीच आ पड़ी। बाहरसे किसीने बंद दरवाजेमें लात मारी।

"दरवाजा खोलो।" एक प्रचण्ड आवाज़ आई।

३०—राजा तहखानेमें उतरे

जयसिंहदेव इस आकस्मिक आवाजसे चौंक उठे, और पीछे घूमकर राणकको मारनेके लिए उठाया हुआ हाथ तलवारकी मूठपर ले गये। उनकी हिंसक वृत्ति सतेज हुई। वे दरवाजेकी तरफ मुड़े।

"अन्नदाता, भले ही कोई चिल्लाए, आप अपना काम कीजिए।" भावने राजाको सलाह दी। "समय क्यों व्यर्थ खो रहे हैं?"

महाराजको यह सलाह अच्छी लगी और वे फिर राणककी तरफ फिरे। किन्तु बाहर आनेवालेकी अधीरता भी बढ़ती जा रही थी और उसने दरवाजा

खोलनेका प्रयत्न जोरोंसे शुरू कर दिया था। उसने एक—दो—तीन—चार लातें ऐसे जोरसे मारीं कि दरवाजेको अर्गला ढीली हो गई और राजा राणकको छुए, इसके पहले ही पाँचवीं लातसे उसके दो टुकड़े हो गये और दरवाजा तड़ाकसे खुल गया। महाराज गुस्सेसे लौट पड़े। देखा कि दरवाजेपर रौद्ररूप धारण किये काक नंगी तलवार लिये खड़ा है। काकका मुँह क्रोधसे लाल था। उसकी आँखें ऐसा लगता था कि एक ही दृष्टिपातसे सबको भस्म कर डालेंगीं। वह हाँफ रहा था, तो भी स्वस्थता जैसीकी तैसी थी।

"आप यहाँ।" काकने कटाक्षके साथ कहा, "पाटनका धनी लश्कर छोड़कर, छावनी त्यागकर, चोरकी तरह देवड़ीको लेकर इस तरह भागता फिरता है!" काककी दृष्टि भावपर पड़ी। "तू कौन? ब्राह्मण है? यहाँ कैसे? क्या राजाका ब्याह कराने आया है?" काक तिरस्कारसे हँसा।

"तू क्यों आया? चला जा।" राजा घुमड़ते हुए क्रोधके आवेशमें थे, इसलिए बड़ी कठिनाईसे ये शब्द निकाल सके।

"फिक्र न करें महाराज," काकने थोड़ी-सी शान्तिसे कहा। मैं यहीं रहूँगा और राणकदेवी सती हो जाएँगी, तब जाऊँगा।"

"काक! निर्लज्ज! नमकहराम! तूने मेरा पीछा किया! खड़ा रह।" कहकर राजा एकदम तलवार निकालकर झपटे।

"सब्र कीजिए!" काकने कहा, "आप मालिक थे और हैं। आपके सामने मुझे शस्त्रका उपयोग नहीं करना है; किन्तु यदि आपकी नीयत देवड़ीको ब्याहनेकी है—"

"मुझे जैसा दिखेगा वैसा करूँगा।"

"मैं वैसा न करने दूँगा।"

"तू-तू कौन! मेरा दास—"

"हाँ, किन्तु इस समय मेरी मान जाओ। मेरा रक्त उबल रहा है। मैं कुछ का कुछ—" किन्तु वह कुछ और बोले उससे पहले ही महाराजा छलाँग मारकर उसपर टूट पड़े। काक सावधान था। राजाकी तलवार उसकी तलवारके साथ जोरसे टकराई और उसमेंसे चिनगारियाँ निकल पड़ीं। दोनोंने तलवारें फिर ले लीं और राजाने काकको घायल करनेके लिए फिर तलवार साधी।

"जयसिंहदेव," गर्जना जैसे गंभीर स्वरमें काकने कहा, "तुम्हें मरना है!"

जवाबमें राजाने एक वार किया। काकने एक तरफ उछलकर वार चुका दिया और राजा फिर तैयार हो उसके पहले ही वह उसके पास जा पहुँचा।

महाराज तलवारको फिरसे खींचकर ज्यों ही झुके कि इतनेमें काकने एकदम पास आकर उनका हाथ पकड़कर मरोड़ा। काकने महाराजका हाथ ऐसी फुर्तीसे पकड़ा और ऐसे जोरसे मरोड़ा कि महाराजको भान हो, इसके पहले ही वह हाथ कोहनीमेंसे टूटता-सा लगा।

"तलवार छोड़ दो, छोड़ो--छोड़ो।" उसने कलाइको मरोड़ते हुए कहा। नहीं तो यह टूट जाएगी।"

राजाने काकके मुँहकी ओर देखा। उसकी आँखें गहरी चली गई थीं और उनकी किरणें मानो जला रही हों, ऐसा लगता था। उसने देखा कि काक इस समय जरा भी मान या दया न रक्खेगा। राजाने दाँत पीसते हुए तलवार डाल दी। काकने उसपर अपना पैर रख दिया और महाराजका हाथ छोड़ दिया।

"जयसिंहदेव, अब दूर जा बैठो। मैं देवड़ीको ले जाता हूँ।"

"तू!" द्वेषसे गर्दन हिलाकर महाराजने कहा। "मैं देखता हूँ।

"अच्छा तो देख लो।" कहकर काकने देवड़ीकी तरफ एक कदम बढ़ाया। देवड़ी खड़ी होनेके लिए जरा सीधी हुई। महाराजने छलाँग मारकर काकको कमरसे पकड़ लिया। तलवार छिन जानेके बाद महाराज शारीरिक युद्ध आरम्भ कर देंगे, यह काकने न सोचा था। वह एकदम पीछे हटा और पीछे हटते आड़ा हो गया। काकको क्रोध आ गया। उसने तलवार फेंक दी और पीछे चिपटे हुए महाराजको उलटे हाथों पकड़ा। कुछ क्षण दोनों प्रतिद्वन्द्वी जोरसे अडिग खड़े रहे। महाराजने दबाया तो काक नीचे झुक गया। ऐसा दिखा कि अब वह पृथ्वीपर लोटता ही है, परन्तु उसने एकदम पूरी ताकतसे पिछले हाथों महाराजको पकड़ कर उलट दिया।

महाराजने एकदम चीख मारी। किन्तु चीख मारते हुए उनका ध्यान जरा व्यग्र हुआ कि काकने तिरछे झुककर अपने शरीरसे छुड़ाकर उन्हें एक कोनेमें

फेंक दिया। राजा सशब्द पृथ्वीपर जा पड़ा, और भग्न-मान होकर ज्यों त्यों उठनेका उपक्रम करने लगा।

काकने राजाकी चीख सुनी थी, इसलिए दरवाजेकी ओर नजर रखके वह खड़ा रहा। एकाएक एक कालस्वरूप वहाँ कौन जाने कहाँसे कूद पड़ा।

" बाबरा, इसे पकड़। " राजाने हुक्म दिया।

बाबरा काकपर झपटनेको फिरा, और काकने कहा—" खबरदार बाबरा, यदि मुझे छेड़ा तो एक बार तो जीता जाने दिया था परन्तु अब नहीं जाने दूँगा। "

बाबराने भौंहोंके बड़े बड़े बाल ऊँचे चढ़ाकर नजर डालकर अपने विजेता काकको पहचाना। उसकी डग जहाँकी तहाँ रह गई। उसकी आँखें भयसे सफेद हो गईं, उसका काला मुख भी फीका होता दीखा।

" पकड़ इसे—" जयसिंहदेवने हुक्म दिया। जवाबमें डरा हुआ कुत्ता जैसे घुरकता है वैसे ही बाबरा घुरका और पीछे हट गया। निचला ओठ लटकाए वह काकको एकटक देखता रहा। राजा यह फेरफार देखकर घबरा गया।

काक खिलखिलाकर हँस पड़ा। " क्यों महाराज, जोर खत्म हो गया? और किसीको बुलाना है? चलो, उस कोनेमें बैठ जाओ। "

राजाने ऐंठकर जवाब नहीं दिया और बाबराकी ओर तिरस्कारसे देखा। " तेरी मौत आई है! "

" महाराज, परकी आशा सदा निराशा। " काकने कहा।

राजाने उसकी ओर देखे बिना दरवाजेकी तरफ जाना शुरू किया। काक दरवाजेके बीच जा खड़ा हुआ।

" महाराज, यह सब घमंड इस समय रहने दो। बाहरका दरवाजा बंद है और विजयधवल किलेदारको घायल करके मैंने एक कोठरीमें बंद कर दिया है। समझदार हो, तो चुपचाप एक कोनेमें बैठ जाओ। "

महाराज चुपचाप दरवाजेके बीच खड़े रहे।

" चलो, बैठ जाओ। "

" जयसिंहदेवने देखा कि अधिक गड़बड़ करूँगा तो काक जोर-जबर्दस्तीसे

बिठा देगा। वे चुपचाप दूर जाकर खड़े रहे। बाबरा इधर उधर देखता चला गया।

" ऐ लड़के, इधर आ। "

" क्यों, क्या है ? " भाव दूर एक कोनेमें खड़ा था, सामने आया।

" इधर आ। " काकने चिल्लाकर हुक्म दिया। भाव पास आया।

" राजमहलका तहखाना कहाँ है ? "

भावने जवाब नहीं दिया।

" क्यों, सुनता नहीं है ? " काकने पूछा।

" अन्दरकी दूसरी कोठरीमेंसे वहाँ जाते हैं। "

" तुझे रास्ता मालूम है ? "

" हाँ। "

" चल, रास्ता बतला। " भावने महाराजकी ओर देखा।

" सुना नहीं क्या ? " भावका कान पकड़कर काकने कहा।

" हाँ। " कान सुहलाते हुए भावने कहा।

" तो चल। " काक महाराजके निकट गया। " अन्नदाता, आगे चलिए। "

" कहाँ ? " ऐंठसे राजाने पूछा।

" मैं कहता हूँ वहाँ। उस तहखानेमें। " महाराजने चकित होकर काकके सामने देखा। उसका मुख भयंकर निश्चयसे बंद हो रहा था। " चलिए। "

" क्यों ? " राजाने चारों ओर अपनी निराधारताके लक्षण देखते हुए पूछा।

" मंत्री और रानीके बिना अकेला राजा शोभा नहीं देता। थोड़ी देरको अलग हुए तो देखिए आपने क्या कर डाला ? अब आप इस तहखानेमें एक दो दिन मौज करें। मैं मुंजाल मेहता और लीलादेवीको संदेशा भेज आया हूँ। एक दो दिनमें वे रा'का मस्तक लेकर राणक देवीको चितापर चढ़ानेके लिए आ पहुँचेंगे। फिर आप जो चाहे करें। इस समय तो मैं जो कहूँ वही आपको करना होगा। आइए, पधारिए। "

महाराजाने काकके सामने जिदसे देखा। सामना करनेका विचार हुआ, परन्तु तुरन्त अनुभव किया कि इस समय सामना करनेमें लाभ नहीं। "

" क्यों महाराज, पैर नहीं उठते क्या ? उठाऊँ ? " जरा ऊँचा हाथ करके काकने कहा।

महाराजने तिरस्कारकी एक दृष्टि काकपर डाली, होठपर होठ चढ़ाये और दिखाये हुए रास्तेपर धीरे धीरे चलना शुरू किया।

" चलो भूदेव, रास्ता बताओ।" काकने भावसे कहा। भावपर इस विचित्र और दुर्जय योद्धाका आतंक छा गया था, उसने धीरे धीरे रास्ता बताना शुरू किया।

" बहिन, ज़रा ठहरना, मैं अभी आता हूँ।" काकने राणक देवीसे कहा।

आगे भाव, उसके पीछे महाराज और अन्तमें काक, इस तरह तीनों आदमी एक दो कमरे पार करके अंदरके भागमें गये। वहाँ वे एक आधे अँधेरे कमरेमें आ पहुँचे।

" महाराज, यही है तहखाना।" भावने कहा।

" पत्थर हटाओ।" काकने कहा।

" मुझ अकेलेसे कैसे हटेगा ?"

" अन्नदाता, जरा नीचे झुकिए। इज्जत नहीं जायगी।"

जयसिंहदेवने गर्वसे गर्दन हिलाई।

" अभी तक आपको अपनी स्थितिका भान नहीं हुआ, क्यों? काकने कठोर आवाजमें पूछा। " मैं नीचे झुकूँ, इतनेमें आपको कुछ उपद्रव करनेका अवसर मिल जाए, क्यों ? चलिए।" कहकर काकने महाराजकी बाँह पकड़ी, आँखमें द्वेष और क्रोधकी ज्वालाएँ थीं तो भी जयदेव नीचे झुके और काकको पत्थर हटानेमें मदद दी। पत्थर हटते ही सीढ़ियाँ दीख पड़ीं।

" चलो, सीढ़ियोंकी खिड़की खोलो।" काकने भावको आज्ञा दी। भावने पैरसे ठेलकर खिड़की खोली। उसके खुलते ही भीतरसे हवाका झोंका आया।

" चलो, तहखाना है तो अच्छा। पधारिए अन्नदाता।" काकने महाराजसे कहा और जयसिंहदेवने अन्तिम बार काककी ओर देखा। " पता है, इसके लिए तेरी क्या गति होगी ?" द्वेषभरी आवाजमें राजाने कहा।

" मैं आपको अच्छी तरह पहचानता हूँ।" काकने शान्तिके साथ उत्तर दिया; " मेरी फिक्र न कीजिए, चलिए।"

" तेरी फिक्र करनेको अब क्या रह गया है ?" तिरस्कारसे राजाने कहा। " तेरी स्त्री, और बच्चे भृगुकच्छमें भूखों मर रहे हैं, और तुझे मैं यहाँ क्या करूँगा।"

"क्या?" आँखें फाड़कर काकने पूछा।

राजा लापरवाहीसे तहखानेमें उतरे। काककी भौंहें मिड़ गईं। उसने महाराजकी गर्दनपर हाथ रखा। "बोलो, क्या कहा?"

"कुछ नहीं।" राजाने जवाब दिया। काकने राजाकी गर्दन पकड़कर हिलाई। "बोलो, क्या कहा?"

"क्या, क्या? रेवापालने लाटमें विद्रोह कर दिया है। तेरे स्त्री बच्चे गढ़में घिरे हुए हैं और वहाँ रसद कभीकी खत्म हो चुकी है। अब तक तो वे पूरे हो चुके होंगे।"

"कैसे जाना?" काकने गर्जना की।

"तेरा कोई सोमेश्वर था, वह कह गया है।"

"फिर तुमने क्या किया?" काककी आँखें फट गईं। उसके स्वस्थ मस्तिष्कमें ऐसा तूफान आ गया, जो बिल्कुल अपरिचित था।

"कुछ नहीं। तू जाने और तेरा लाट।"

"कृतघ्न, घातकी, अविचारी, दंभी, तुमने सोलंकीके घर कहाँसे अवतार लिया?" सर्पके मुखकी फुंकारकी तरह काकने कहा। "याद रखना, यदि मेरी स्त्री और बच्चोंको कुछ हुआ, तो तुम्हारा नाम निशान न रहने दूँगा।" भयंकर तूफानमें बिजलीकी कड़कके साथ घोर गर्जना हो, इस तरहका वातावरण हो गया। महाराजकी आँखोंमें डर समा गया और वे तहखानेमें उतर पड़े। काकने भावको उतरनेके लिए कहा।

"मैं?" भावने कहा। "परन्तु मुझे क्यों?"

"बाहर जाकर गप्प मारनी है? और फिर महाराजके पास कौन रहेगा? चल, उतर।"

"किन्तु मैं—और यह—"

"मैं भी ब्राह्मण हूँ। ब्राह्मणको ब्राह्मणका पाप नहीं। चल उतर।"

"आप जबर्दस्त आदमी हैं।" बड़बड़ाता हुआ भाव तहखानेमें उतर गया।

"मैं थोड़ी ही देरमें खाने-पीनेको ले आता हूँ। तुम्हें भूखों नहीं मारूँगा।" काकने राजासे कहा।

काकने तहखानेकी खिड़की बंद कर दी, पत्थर ठीकसे लगा दिया और वह रागकदेवीके पास गया।

३१—राजाका छुटकारा

काक जब वहाँसे निकला तब उसका क्रोध शान्त होकर उसकी जगह चिन्ता हो गई थी। जिस उत्साहसे वह आया था और जो उन्माद उसे प्रेरित कर रहा था वह अदृष्ट हो गया और निराशाका शीत उसके हृदयमें फैलने लगा।

क्या महाराजने ठीक कहा? क्या भृगुकच्छमें सचमुच ही विद्रोह हो गया है? क्या मंजरी गढ़में पड़ी हुई भूखों मर गई? यह कैसे हुआ? क्या पट्टनी सेना कट मरी? क्या रेवापालने वचनका पालन नहीं किया? देवांनायक नमकहराम निकला? और क्या गढ़मेंसे अनाज चोरी चला गया? ऐसी अनेक समता-विषमताकी भयंकर प्रतिध्वनियोंसे उसका मस्तिष्क भन्ना गया। जिसका कभी अनुभव न हुआ था, ऐसा भय उसके मनपर बैठ गया। उसकी क्रोधसे तपी हुई आँखें निस्तेज हो गईं। वह धीरे धीरे राणकदेवीके पास गया। उसने गला साफ करके कहा, "बहिन, अब कुछ चिन्ता नहीं।"

"भाई, तुम्हारे इन दो दो उपकारोंको कौनसे भवमें चुका सकूँगी?"

"बहिन, इसी भवमें चुकानेका अवसर आ गया है।"

चकित होकर राणकने सामने देखा। "कैसे?"

"मेरे अन्नदाताने मुझसे अभी कहा कि भृगुकच्छमें विद्रोह खड़ा हो गया है और मेरी स्त्री और बच्चे गढ़में भूखों मर रहे हैं। बहिन, सती, आशीर्वाद दो। मुझे आशीर्वादकी बहुत जरूरत है। मेरे निराधार बालक—मेरी—मेरी—मंजरी भूखों मरती होगी। मैं यहाँ और वे वहाँ।" काकने कपाल-परसे पसीना पोंछा। "भोलानाथ! तुमने मुझे ऐसे धनीकी सेवा स्वीकार करनेकी बुद्धि क्यों दी?"

"मेरे भइया," राणकदेवीने मृदु स्वरमे आश्वासन दिया, "माता अंबा तुम्हारा सब भला करेंगी। मेरी भीर पर दौड़नेवालेको माँ कभी दुखी न करेंगी। तुम अब यहाँसे जाओ।"

"नहीं बहिन," काकने सिर हिलाकर कहा, "मेरा अन्नदाता जहरीला नाग है। मेरे पीठ फेरते ही वह कौन जाने क्या कर बैठे? जैसे इतने दिन गये वैसे दो और ज्यादा। रानीके आनेपर उन्हें आपको सौंप दूँगा तब जाऊँगा। बहिन,

अब तुम शान्तिसे बैठो। इतनेमें मैं बाहर जाकर सारी तजबीज कर आऊँ और कुछ खाने पीनेका भी बन्दोबस्त करूँ।" काक वहाँसे उठा और बाहर निकला।

बाहरकी एक कोठरीमें घायल किलेदारको बाँधकर डाल दिया था, पहले उसकी खबर ली। "किलेदार, अब तुम निश्चिन्त रहना। मैं क्या करूँ, महाराजके हुक्मके माफिक मुझे यह सब करना पड़ा। ज्यादा चोट तो नहीं आई? अभी अच्छे हो जाओगे। महाराजने कहा है कि किसीसे एक शब्द भी न कहना, नहीं तो जानपर आ बनेगी।"

किलेदारने सिर पीट लिया। "मेरा ऐसा क्या अपराध—"

"किलेदार, यह पूछनेमें सार नहीं। तुम्हारा घर कहाँ है, यह मुझे बतलाओ, तो मैं आदमी ले आऊँ। तुमने मुझे पहचाना नहीं?"

"नहीं—"

"मेरा नाम भटराज काक।"

"भृगुकच्छवाले—?"

"हाँ। देखो, खेंगारकी रानीको सती होना है, इसलिए महाराज उसे यहाँ ले आये हैं; किन्तु यह लोगोंको जताना नहीं है, एक दो दिनमें राजमाता मीनलदेवी, मुंजाल मेहता और रानियाँ आवेंगी, तब राणकदेवी सती होंगी। परन्तु तब तक यह सब छुपाये रखना है।"

"अच्छी बात है।"

"अब तुम घर जाओ, और मुझे चार-पाँच विश्वासयोग्य आदमी दो।"

"भटराज, इतना ही था तो पहले कह देते। व्यर्थ ही मुझे क्यों घायल कर दिया?" किलेदारने असन्तोषसे कहा।

"कुछ हर्ज नहीं, कल अच्छा हो जायगा।"

किलेदारने काकको अपने घरका पता दिया और उसने वहाँ जाकर उसके आदमियोंको सूचना दी। वे उसे डोलीमें डालकर घर ले गए और तब किलेदारने कुछ आदमी काकको दिये।

काकने पुजारीको बुलाकर भोजन बनवाया, स्वयं खाया और फिर राजा और भावको भी जाकर दिया। थोड़ी देर बाद एक दो गद्दे राजाको जाकर दिये और निश्चिन्तासे सोनेके लिए कह दिया।

काकने बाहर आकर जूनागढ़के जीते जानेका ढिंढोरा पिटवाया और साथ ही साथ विजयी जयसिंहदेव आनेवाले हैं, ऐसा कहकर उनका सत्कार करनेके लिए उत्सव मानननेकी आज्ञा दी। कुछ सैनिकोंको महाराजके स्वागतके लिए भी भेजा।

यह सब किया सही, किन्तु काककी स्वस्थता जैसी थी वैसी न रह गई थी। उसके मस्तिष्कपर भार अधिक है, यह उसकी आँखें ही कह देती थीं। जो हमेशा शान्त रहता था वह इस समय दबाई हुई भावनाओंके जोरसे अशान्त दीखता था। सन्ध्याको उसके हृदयकी व्यथा बढ़ गई। गढ़पर चढ़कर वह भृगुकच्छकी दिशामें न जाने कब तक देखता रहा। शान्त सन्ध्यामें उसे ऐसा लगा कि उसकी आर्त्त प्रियतमाका क्रंदन सुनाई पड़ रहा है। उसके हृदयने समय और स्थलका अन्तर भूल कर, अपनी देहको त्यागकर, मंजरीके पास पहुँचनेके लिए प्रयाण आरम्भ कर दिया।

पहले अनेक बार वह मंजरीको छोड़कर युद्धमें गया था; किन्तु किसी भी समय उसे ऐसा भय न लगा था। इस समय कैसे लगा, यह उसकी समझमें न आया। यह अपरिचित भय मानो किसी भयंकर परिणामकी सूचना दे रहा है, ऐसा मालूम हुआ।

संध्याकालका मंद पवन बहने लगा। ऐसा भास हुआ कि वह पवन मानो मंजरीके हस्तस्पर्शकी मृदुता, उसके मुखकी उच्छ्वास-गंध ले आया है, और उसके चुंबनका स्पर्श मानो गतक्षणमें ही हुआ है।

अब तक युद्ध-व्यवसायमें और राजनीतिके फेरमें पड़े रहनेसे सूक्ष्म भावोंके अनुभव करने अथवा उनका पृथक्करण करनेका उसे समय ही न मिला था, किन्तु अब उसके संपूर्ण जीवनके संचित संस्कारोंने भाव-परम्परा प्रकट की। मंजरीका उसके अन्तरमें क्या स्थान है, इसका उसे इस समय स्पष्ट भान हुआ। यह पृथक् देहवाली स्त्री, उसकी भार्या, अथवा उसके पुत्रोंकी माता न थी; वह उसकी प्राणेश्वरीके रूपमें निराले सिंहासनपर भी न विराजती थी; वह उसका प्राण थी—उसके जीवकी भी जीव थी। वह था केवल उसके ही आधारपर और जिस प्रकार जीव जब जानेकी तैयारी करता है तब सारा शरीर उसके पीछे जानेको तयार हो जाता है, उसी प्रकार मंजरीपर संकट आनेपर वह भी उसके निकट दौड़ जानेको तैयार हो गया। उसका

मस्तिष्क एक ही चिन्तन कर रहा था मंजरीसे मिलनेका, उसकी रगें एक ही कार्यके लिए—मंजरीसे जाकर मिलनेके लिए तरसती थीं। भीमद्वारा फाड़ी हुई जरासंधकी जंघाके दो टुकड़े जिस प्रकार एक होनेको आकर्षित होते थे, उसी प्रकार काक मंजरीसे मिलनेको अधीर हो गया।

कितनी ही बार उसे ऐसा लगा कि राणकको यहीं छोड़कर चले जानेमें अब कोई भय नहीं है। किन्तु सतीको इस प्रकार छोड़ जानेमें उसे जोखिम दिखी। उसकी कर्तव्य-परायणता और मित्र-भक्ति यह जोखिम उठानेको तैयार न हुई।

दूसरा दिन भी ऐसे ही चला गया। तीसरे दिन उसकी अधीरताका पार न रहा। थककर उसने सामने जानेका निश्चय किया। अन्तमें तीसरे दिन संध्याको एक घुड़सवार मीनलदेवी आदिके आनेकी खबर लाया। काक घोड़ेपर सवार होकर लेनेको गया।

बड़वाणसे पाँच कोस दूर मीनलदेवी और मुंजाल मेहता सेनाके साथ आ गये। वे सब डेरेमें बैठे थे और घोड़ा दौड़ाते हुए काक जा पहुँचा।

सब काकको देखकर जरा चौंके। उसका मुख दृढ़तासे बंद था। उसकी आँखें फटी हुई थीं, और उसमें उन्मादमिश्रित निस्तेज स्थिरता थी।

मुंजाल मेहता उठकर आगे आए। "कहो, क्या है काक?" महामात्यने आयुवृद्धिके साथ वात्सल्य भावको खूब विकसित कर लिया था।

"सब ठीक है।" उसने खोखले कंठसे कहा, चारों तरफ देखा और दोनों रानियोंको नमस्कार किया। मुंजालकी आँखके संकेतसे अनुचर दूर हो गये।

"माताजी और मेहताजी, इस बार मैंने पाटनकी कीर्ति बचाई है अन्तिम बार।" काकने निःश्वास छोड़ा। तीनों व्यक्ति जिज्ञासासे देखते रहे।

"क्या हुआ?" मीनलदेवीने पूछा।

"माताजी, मैं जब पहुँचा तब वे एक ब्राह्मणसे विवाह करा रहे थे। दरवाजा तोड़कर मैं अंदर दाखिल हुआ, महाराजको निःशस्त्र किया, उनके बाबरा भूतको धमकाया और बड़ी कठिनाईसे उन्हें तहखानेमें बंद किया। नगरमें ढिंढोरा पिटवा दिया है। आपके पहुँचनेपर कल राणकदेवी सती होगी। अब मैं मुक्त हुआ। रा' का शव लाई हैं?"

" हाँ, सिर लाये हैं।" मुंजालने कहा। महाराज तहखानेमें बंद हैं, यह खबर सुनकर लीलादेवीके मुखपर अस्पष्ट हँसी आकर चली गई।

" अच्छा किया माताजी।" मीनलदेवीकी ओर मुड़कर काकने कहा। " इस सतीका आशीर्वाद माँगिए कि पाटनका राज्य अमर हो। उसे छेड़नेमें सार नहीं है। अब मुझे छुट्टी दीजिए।"

" छुट्टी ? " मीनलदेवीने पूछा।

" कहाँ जाते हो ? " लीलादेवीने अचरजसे आँखें फाड़ीं।

" मैं ?" दाँत पीसकर काकने कहा। " माताजी, आपके पुत्रकी सेवामें कोई सार नहीं। मैंने उन्हें तहखानेमें बंद किया तब उन्होंने खबर सुनाई कि मेरी स्त्री और बच्चे भृगुकच्छके गढ़में भूखों मर रहे हैं। इतने वर्षोंकी सेवाका यह पुरस्कार ! और आपमेंसे किसीको भी भृगुकच्छके लिए लश्कर भेजनेकी फुर्सत नहीं मिली।" क्रोधसे वह मुंजालकी ओर देखता रहा।

" काक, शान्त होओ।" मुंजालने कहा। " मैंने तुम्हारे सोमेश्वरको और उदा मेहताके लड़के बाहड़को लश्कर लेकर कभीका भेज दिया है और हम सब पीछेसे जाते हैं।" काक थोड़ी देर घूरता रहा।—" मेहताजी, यह लाट जीतनेकी नहीं गढ़में पहुँचनेकी बात है। लश्कर लेकर रेवापालको हरानेमें कितना ही समय चला जाएगा। मुझे तो गढ़में खानेको ले जाना है। मुझे अब आपकी हार-जीतसे कुछ मतलब नहीं। मैं अपनी स्त्रीको बचाऊँगा या मर जाऊँगा।"

मुंजालने जाकर काककी पीठपर हाथ फेरा। " भाई, घबराओ मत। तुम्हारी बात सच है। भले ही तुम जाओ। तुम्हें आदमी चाहिए ? तुम बैठो। अब यों दो चार घड़ीमें कुछ बिगड़ न जाएगा ?"

काक निःश्वास छोड़कर बैठा।

" मुझे आदमियोंकी जरूरत नहीं। खेमाको लाए हैं ? "

" नहीं, वह तो जूनागढ़में रह गया।"

" ठीक, मैं अकेला ही बस हूँ। मैं दो साँड़नी खंभातसे ले जाता हूँ। मुझे सोमनाथ पाटनसे आवश्यक सहायता मिले, ऐसा आज्ञापत्र लिख दीजिए।"

" अच्छा। और हम कुछ ही दिनोंमें आ रहे हैं।"

काक कठोरतासे हँसा।

" राजमाता, " मुंजालने मीनलदेवीसे कहा। " जरा अन्दर आइए, कुछ बात कहनी है। " मुंजालके साथ मीनलदेवी भीतर गईं। लीलादेवीकी स्नेह-सिक्त आँखें काकपर ठहरीं।

" काक, इस प्रकार घबरानेसे क्या होगा? भोलानाथ सब कुछ ठीक करेंगे।"

काकने चुपचाप सिर हिलाया।

" तुमने यह सब मेरे लिए किया, इसका कैसे बदला चुकाऊँ ? "

काकने ऊपर देखा " बहिन, मुझे कुछ सूझ नहीं पड़ता। मुझे कुछ हो जाए, तो अपने गरीब लाटको देखना। अब कोई रहा नहीं। "

काक ऐसी अपशकुनकी बात क्यों कर रहे हो! तुम्हें कुछ होनेका नहीं। "

" मुझे कुछ सूझ नहीं पड़ता। " काकने सिर हिलाया। रानीने काकको इस प्रकार अस्थिर और निराश कभी नहीं देखा था। उसके हृदयमें भी समझमें न आए, ऐसा भय बैठ गया।

काकने थोड़ी देरमें सिर ऊँचा किया। " मेहताजी, आज्ञापत्र लिखा ? "

" यह लो। " कहकर मुंजाल मेहताने वह काकको दिया।

" तहखाना अंदरके कमरेमें जहाँ राणकदेवी हैं वहाँसे तीसरे कमरेमें है। ऊपर पत्थर है। राणकदेवीको मैंने बतला दिया है। "

" ठीक, तुम चिंता मत करो, जाओ। "

काक एक शब्द न बोला। वह बाहर जाकर साँड़नीपर सवार हो गया। मुंजाल मेहता और लीलादेवी देखते रहे और शान्त कौमुदीके क्रूर प्रकाशमें दूर और दूर जाती हुई काककी साँड़नी विलुप्त हो गई।

३२–भोगावाके तीरपर

बहुत रात बीते मीनलदेवीकी सवारी बढ़वाण पहुँची और गाजेबाजेके साथ राजगढ़में दाखिल हुई।

साँड़नीसे उतरकर मीनलदेवी तुरन्त ही राणकदेवीके पास गईं। मीनलदेवीको रा' खेंगारसे चाहे जितना वैर रहा हो, और उनके पुत्रको छोड़कर रा'को

ब्याहनेके कारण राणकसे चाहे जितना द्वेष हो; परन्तु इस समय मृत शत्रुकी विधवाका योग्य सम्मान करनेके लिए वे तैयार हो गईं। वे अपने पुत्रकी स्त्री-लालसाको अच्छी तरह पहिचानती थीं। उन्हें उसके अयोग्य आचरणके कारण पश्चात्ताप होता था।

वे और लीलादेवी राणकदेवीके पास गईं और 'जय अंबे' गुनगुनाती सतीके पैर छुए। राणककी आँखोंमें दैवी तटस्थता आ गई थी।

"अंबा भवानी तुम्हारा भला करें।" सतीने शत्रुकी माता और स्त्रीको आशीर्वाद दिया। "मीनलदेवी, मेरे रा' को लाई हो?" उसकी आँखें सूख गई थीं।

"हाँ, मस्तक लाई हैं।"

राणकने निःश्वास छोड़ा। "कल सवेरे मुझे सती होना है।"

"जैसी सतीकी आज्ञा।"

"मेरे रा' को यहाँ भिजवा दो।"

"माना, ला तो।" मीनलदेवीने अनुचरको आज्ञा दी।

अनुचर शालमें लिपटा हुआ रा'का मस्तक ले आया। राणकके मुखपरसे क्षणभरके लिए फीकापन जाता रहा। वह एकदम उठ खड़ी हुई और आगे बढ़कर उसने अनुचरके हाथोंसे मस्तक ले लिया।

राणकने मस्तक अपने हाथोंमें—मानों वस्त्रसे लिपटा हुआ छोटा बालक हो, इस तरह ले लिया और धीरेसे, अनिर्वाच्य मृदुतासे उसके ऊपरका पल्ला अलग कर दिया।

"मेरे रा'—" राणककी अश्रुपूर्ण आवाज निकली, किन्तु उसकी आँखोंमें आँसू न थे। वह थोड़ी देर तक घायल रा'के मुखकी ओर देखती रही, और बहुत ही स्नेहसे उसके लोहूसे लथपथ कपालपर आई हुई जुल्फोंको ऊँचा किया।

वह धीरेसे हँसी—म्लान वदनसे "मेरे रा, मेरे सोरठके धनी, मैं भी आई।" कहकर उसने पतिका मस्तक छातीसे लगा लिया।

मीनलदेवी और लीलादेवीकी आँखें सजल हो गईं।

राणकने रा'का मस्तक चौकीपर रखा। "मुझे घीका दीआ करना है।"

" हाँ, अभी भिजवाती हूँ । " कहकर मीनलदेवी उठीं और दोनों पट्टनी रानियाँ वहाँसे चली गईं ।

थोड़ी देरमें घीके दो दीए रा'के मस्तकके सामने रखकर राणक बैठ गई और एकाग्रचित्त होकर देखती रही। उसकी आँखोंमें न जाने क्या क्या भाव आये और गये। वह थोड़ी थोड़ी देरमें ' मेरे रा ' के सिवाय दूसरा कोई शब्द उच्चारण नहीं करती थी । रात धीरे धीरे जाने लगी ।

पौ फटी, तब भी राणक जहाँकी तहाँ बैठी थी ।

× × × ×

मुंजाल मेहता आए। एक दो विश्वस्त आदमियोंको लेकर सीधे अन्दरके कमरेमें गये और तहखाना खोज निकाला । उसे स्वयं खोला और भीतर उतरे । दो गद्दोंपर जयसिंहदेव शुष्क एवं निस्तेज होकर पड़े थे ।

" कैसे आया ? " जयसिंहदेवने निर्बल स्वरमें पूछा।

" यह तो मैं हूँ महाराज ! " मुंजालने कहा ।

राजा जैसे-तैसे हाथ टेककर उठ बैठे । " कौन मेहताजी ? आप आ गये ? कहाँ गया वह बदमाश ? उसे पकड़ो, भाग न जाए । "

" घबराइए नहीं, सब कुछ ठीक कर दिया है । चलिए । "

राजा चुपचाप उठे और मुंजालके पास आये । " आपके साथ जो ब्राह्मण था, वह कहाँ है ? "

" यह हूँ । " भाव कोनेमेंसे निकल आया ।

"देख लड़के," मुंजालने कठोर स्वरमें कहा । "तुझे चुप रहना आता है ?"

" अरे, इसके लिए मुझे कहना नहीं पड़ेगा । " भावने जरा हँसकर कहा ।

" मुझसे फिर मिलना । "

" जी हाँ, अवश्य । " भावने कहा ।

मुंजाल मेहता महाराजको ऊपर ले गये । महाराजके शरीरपर धूल थी और पैर लड़खड़ाते थे । " महाराज, सीधे रनिवासमें पधारिए और नहा-धोकर भोजन कर लीजिए । "

" दूसरा और कौन आया है ? "

" मीनलदेवी और लाटी रानी । "

" सारे नगरको ही ले आना था न ! " राजाने झुँझलाकर कहा । " और काक कहाँ गया ? "

" कहीं भी नहीं गया है । पहले आप स्वस्थ तो हो लें । "

" किन्तु वह है कहाँ ? " राजाने जिद की ।

" जयसिंहदेव, " मुंजालने जरा सख्तीसे कहा । " हम श्रावकोंका एक पाँचवाँ व्रत है । जो उसे पालता है उसे परस्त्री-विरमणका पुण्य लगता है और जो पालन कराता है उसे भी पुण्य होता है । मैं जो कहता हूँ वह तो अभी करो, फिर सब कुछ हो जायगा । "

राजाका जवाब देनेको मन हुआ किन्तु शक्ति न थी, इसलिए चुप रहना पड़ा । रनिवासमें लीलादेवीका शान्त तिरस्कार सहन करनेके लिए जाना उसे प्राणलेवा लगा, किन्तु दूसरा रास्ता न होनेसे मुंजालकी सलाह स्वीकार करनी पड़ी ।

\+ \+ \+ \+

प्रातःकाल होते ही सारा बढ़वाण घरोंसे बाहर निकल पड़ा । खेंगारकी रानी सती हो रही है, उसे पूजनेके लिए पुरुष और स्त्रियाँ कुंकुम और फूल लिये बाहर निकलीं । लोगोंकी भीड़ रास्तोंमें समाती न थी, सभी भोगावाके किनारे श्मशानकी ओर जा रहे थे ।

शहनाई और नक्कारेकी आवाज़ गूँज रही थी । घुड़सवारों और पैदलोंका जुलूस निकला । सम्पूर्ण नगरमें 'जय अंबे' 'जय अंबे'की घोषणा गूँजने लगी ।

सूर्योदय होनेपर राजगढ़मेंसे श्मशानयात्री निकले । अर्थीमें पुष्पोंके ढेरपर खेंगारका मस्तक रक्खा था और चारों तरफ जरीके कपड़े थे । श्मशानयात्रियोंमें दुखीसे दिखते महाराजाधिराज जयसिंहदेव, और महामात्य मुंजालको लोग देखते रहे ।

पीछे ' जय अंबे ' उच्चारण करती हुई सती राणक आई, उसके पीछे राजमाता, रानी और अन्य स्त्रियाँ थीं ।

सती जहाँ जाती, वहाँ हजारों आदमी ' जय अंबे ' कहते, कुंकुम उछालते और फूल बरसाते । ' जय माताकी जय ' की आवाजें सुन पड़तीं । रास्तेमें दोनों ओर खड़े स्त्री-पुरुष सतीके पास आते, साष्टांग दंडवत प्रणाम करते और

आशीर्वादकी याचना करते। बढ़वाणका राजमार्ग सतीके पैरोंसे कुचले गये पुष्पोंसे शोभित हो रहा।

सभी श्मशान-यात्री भोगावाके तीरपर आए। सैनिक चारों ओर खड़े रहे, बीचमें अर्थी उठानेवाले और स्त्रियाँ खड़ी हुईं। सबकी आँखोंसे आँसू बहने लगे।

चिता रच दी गई और धीरेसे निडर होकर राणक उसपर चढ़ गई। उसके मुखपर आनन्द छा रहा था, ब्राह्मणोंने उसके ललाटपर कुंकुमकी बिंदी लगाई, श्रीफल पासमें रखा और रा' का मस्तक सौंप दिया।

'खम्मा मेरे राकी' कहकर राणकने पतिके मस्तकको स्नेहसे गोदीमें ले लिया और 'जय अंबे जय अंबे, जय अंबे' कहा।

जयसिंहदेवने आग दी, और डंका, शहनाई, तुरहीकी आवाजसे आकाश गूँज उठा। चारों ओर गुलाल और कुंकुमने वातावरण लाल कर दिया।

'जय अंबे,' 'सती माताकी जय' की आवाज गूँजती ही रही।

चिताके चारों ओर कुंकुम और गुलाल उछलती रही। अग्निदेव लकड़ीसे लकड़ीपर कूदने लगे। एक महाज्वाला भभकी और राणकके बाल जल उठे।

चारों ओर तुमुल नाद हुआ, चारों ओरका वातावरण कुंकुममय हो गया। एक 'जय अंबे' की पुकार—एक चीख—इस शोरमेंसे सुननेमें आई न आई कि सती राणक देह त्यागकर रा' के साथ जा बसी।

भोगावा नदी इस सतीकी भक्तिकी परम कसौटी देखती रही।

———

चौथा खण्ड

१——भृगुकच्छके गढ़में

भृगुकच्छके गढ़में किसी भी तरह दिन नहीं कटते थे। मंजरीका सारा उत्साह भंग हो गया था। थोड़ा-सा समय वह महादेवके मन्दिरमें या बच्चोंके पास बिताती, और बाकीके समयमें कोटपर इस तरह फिरा करती जैसे नष्ट हुए राजाकी राज्यलक्ष्मी निर्जन प्रसादोंमें फिरती है। वह मानिनी होनेपर भी सुंदर, निस्तेज होनेपर भी मोहक लगती थी। बारम्बार वह नदीके मुखकी ओर नजर डालती। कितनी ही बार उसकी आँखोंमें अवर्णनीय भाव दीख पड़ते। आज रातको ही काक आ जाएँगे, ऐसा उसे लगता और प्रणयीकी अधीरतासे वह उनके आनेकी राह देखा करती।

प्रणयीकी राह देखना, इससे बढ़कर हृदयभेदक अनुभव जीवनमें एक भी नहीं। उसका ध्यान अन्यत्र कहीं नहीं जमता, कोई नहीं आया, ऐसा विश्वास होनेपर भी आनेवालेको देखनेकी उत्सुकता बढ़ जाती। हजारों काम छोड़कर केवल नजर टिकाकर देखते रहनेमें ही उसे जीवनका सार जान पड़ता। वहाँसे हटते ही आनेवाला कहीं आनेका विचार न बदल दे, ऐसा कुछ भय बना रहता। वहाँ खड़े खड़े की जानेवाली तपस्याके बलसे ही आनेवाला खिंचकर आ जाएगा, ऐसी भी कुछ श्रद्धा दीख पड़ती।

फिर भी आनेवाला न आता था। पत्ता पड़े, या कंकरी खिरे, तो उसका परिचित पद-शब्द उसे सुन पड़ता। क्षितिजपर सूर्यकिरणके पड़ते ही उसे पतिकी नाव आती दीखती। उड़ता पक्षी उसकी नावका पाल हो ऐसी आशा उत्पन्न करता, पवनकी सनसनाटमें, दूरसे आई हुई किसी भी ध्वनिमें, काककी ही आवाज़ सुन पड़ती। ऐसा अनुभव होनेपर क्षणभर हृदय धड़क उठता और वह आशासे भरकर चारों ओर देखती—आशाका रचा हुआ मृगजल परखती और दूसरे ही क्षण अकुलाती घुटती निराशा, चारों ओर फैलकर उसे डुबा देती।

इस प्रकार आनेवाले प्रणयीकी बाट जोहनेमें मंजरीको चौरासी लाख जन्मों-के दुःखोंका अनुभव हो गया। उसे एक एक क्षणमें एक एक युगके अनुभव हुए, एक एक क्षणकी उर्मि या वेदनामें जीवन-भरकी करुण कथा आ गई। फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी। अपने पतिकी शक्तिमें, साहसमें, चातुर्यमें उसे विश्वास था। उसके भाग्यपर उसे श्रद्धा थी, विश्वास था। वह आये बिना न रहेगा।

किन्तु जब बच्चे अधीरता दिखलाते तब उसे हिम्मत रखना कठिन हो जाता। महाश्वेता कभी कभी दयनीय मुखसे पूछती "माँ, बापू कब आएँगे?" तब उसका उत्तर देनेमें मंजरीकी आँखें सजल हो जातीं।

किन्तु ऐसी निर्बलता वह अधिक समय तक न रहने देती। वह मानती थी कि इस निर्बलतासे उसके पतिका गौरव खंडित होता है और उसकी महत्ताकी मैं कीर्ति-ध्वजा हूँ, ऐसा मान कर वह हिम्मत रखती। उसका सुकुमार शरीर क्षीण होता जाता था और कोमल मुख निस्तेज। उसकी बड़ी बड़ी आँखें और भी बड़ी दीखती थीं, किन्तु उसका गौरव जैसा था उससे भी ज्यादा अडिग होता जाता था। और कहीं निर्बलता न बढ़ जाए इसलिए वह अन्तरकी भावनाओंको अन्तरमें ही दबाये रखती।

उसे विश्वास होता जाता था कि मुझे शस्त्र-संचालन आनेका नहीं, तो भी सीखनेका क्रम उसने जारी रक्खा। इससे उसका समय कट जाता, रातको नींद आ जाती और इस विचारसे उसके हृदयमें कुछ संतोष भी होता कि मैं पतिके योग्य होती जा रही हूँ।

इधर आँबड़ मेहताने थोड़े दिनोंसे नया अवतार-सा ले लिया था। वे गंभीर हो गए थे और उनका मोह बिलकुल चला गया था। उन्हें लगा कि पाटनकी कीर्ति उनकी हिम्मतपर ही अवलम्बित है, इसलिए उनका लड़कपन और अविचार अदृष्ट हो गया। पाटनके सत्ताधीशके नाते उन्हें जो गर्व था उसने टेक और विस्तारका स्वरूप ले लिया। काक और त्रिभुवनपाल, परशुराम और मुंजाल, देवप्रसाद, विमल मंत्री और परम बाणावली भीमके ज्वलन्त यशकी स्मृतियाँ उसके चरित्रको गढ़ रही थीं। इन सबकी कीर्तिका उत्तराधिकारी वह स्वयं उत्तराधिकारकी योग्यता प्राप्त करनेके

लिए प्रयानशील हो गया। वह सबको उत्साह देता, गढ़के चारों तरफ नजर रखता और भृगुकच्छमें क्या हो रहा है, इसपर ध्यान देता। गंभीर और सत्ता-शील वह, बालक मिटकर वीर हो गया।

मंजरीके प्रति भी उसकी दृष्टि बदल गई। वह मंजरीको चाहता किन्तु दूसरे ही भावसे। उसका सुभीता देखनेमें, उसे सिखानेमें, और उसका उत्साह कायम रखनेमें वह सदा जुटा रहता—प्रणयके पागलपनसे नहीं किन्तु भक्तिसे। उसकी समझमें मंजरी पार्थिव न थी, दूर उसके जीवनकी अधिष्ठात्री—कोई दैवी, अस्पर्श्य शक्ति—वह हो, इस प्रकार वह उसे देखा करता। उसकी दृष्टिमेंसे विकार निकाल गया और भक्तिमेंसे वासना चली गई। विशुद्ध भावनाओंके अर्घ्यसे ही पूजित होने योग्य मंजरी उसकी समझमें योग-माया थी। माताका निर्मल प्रेम और बहिनका विशुद्ध स्नेह जो मंजरी उसके प्रति रखती वही उसके लिए पर्याप्त था। काकके स्मरणसे अब वह घबड़ाता नहीं, किन्तु काक मानो उसका ही हो, उसके संस्मरण मानो उसके ही गौरवको बढ़ा रहे हों, ऐसा उसे लगने लगा।

महाश्वेता और वौसरी दोनों बालकोंके अज्ञान मस्तिष्कपर भी बादल छाए हुए थे। सब उन्हें लाड़ प्यार करते थे किन्तु उन्हें चैन नहीं मिलता था। गंभीर बना हुआ मणिभद्र रसोई करता और बच्चोंको सँभालता। नेराकी स्त्री गंगली तेलिन सारा काम करती। देवा कोटकी रखवाली करता और नेरा काममें लगे होनेका डौल।

एक दिन सवेरे देवा नायक आँबड़ मेहताको कोटपर बुलाकर ले गया। नीचे एक सैनिक दूसरे दस बारह सैनिकोंको गढ़से उतरनेका रास्ता दिखला रहा था। यह देखकर आँबड़को चिन्ता हुई।

"यहाँ क्या ये पहरा बिठा रहे हैं?"

"ऐसा ही लगता है।" देवाने कहा।

"क्या रेवापालको अब फ़ुरसत मिली?"

"जीतसे छुट्टी मिल गई होगी।" देवाने असंतुष्ट होकर कहा। "बहिनजी कहाँ हैं?"

"पूजा करने गई हैं, क्यों?"

" अन्नदाता, " देवाने धीमे स्वरमें कहा " बहिनको, और बच्चोंको यहाँसे भेज देना चाहिए। "

आम्रभट चकित हुआ। " क्यों ? "

" दस बारह दिन हो गए, पर कुछ खबर नहीं आई। भटराज—" देवाका स्वर भंग हुआ। "नहीं आनेके।" उसने सिर हिलाया। "वे जब गए तब मेरी झोंपड़ीपर उल्लू बोलता था। " मानो सारे भयको इस अपशकुनसे पुष्टि मिल रही हो, इस प्रकार वृद्धने कहा।

" किन्तु हमारे पास अभी अन्न तो काफी है। "

" नहीं, वह तो आठ दिन भी न चलेगा। "

आँबड़ने आँखें फाड़ी " एँ ? "

" हाँ। आजसे हम लोग एक बार ही खाना खायँगे। "

थोड़ी देर आँबड़ मेहता ध्यानसे देखते रहे। स्थिति गंभीर होती हुई मालूम हुई।

" और यह देखा—" देवाने फिरसे नीचे खड़े हुए मनुष्योंकी हलचलकी ओर आम्रभटका ध्यान खींचा।

आम्रभट चुपचाप देखता रहा।

" अब बाहर निकलनेका रास्ता बंद हो जायगा। "

" तब ? "

" बहिनजीको और बच्चोंको नगरमें जाकर कहीं छिपा दो। हम लोग गढ़को टिकाये रखेंगे। "

आँबड़ने थोड़ी देर विचार किया और सिर हिलाया। देवाकी बात उचित मालूम हुई। " ठीक, मै बहिनजीसे पूछ देखूँ। "

वह चल दिया। देवा थोड़ी देर देखता रहा और बड़बड़ाया। " नहीं तो मेरे छप्परपर उल्लू बोलता ही क्यों ? "

आँबड़ वहाँसे महादेवके मंदिरकी ओर मुड़ा। इस समय हमेशा मंजरी पूजा करने जाती थी। आँबड़ने जाकर देवको नमस्कार किया और वह मंदिरके चबूतरेपर बैठ गया।

मंजरी पूजा करके बाहर आई। वह पहले श्वेत थी किन्तु इस समय फ़ीकी लग रही थी, उसके मुखपर चिन्ता थी।

" बहिन !"

" क्यों भाई ? " उसके उत्तरमें मृदुता थी।

" हमारे खानेका अन्न खत्म हो रहा है।" आँवड़ने कहा।

" हाँ, मुझे मणिभद्रने बतलाया।" मंजरीने उत्तर दिया " क्या अभी तक वंथली खबर न पहुँची होगी ? "

" बहिन, ये तो अशान्तिके दिन हैं, खबर न भी पहुँची हो। "

" आजसे ये सब एक बार ही खाकर रहेंगे। "

"हाँ। इससे पंद्रह दिन तक कोई कठिनाई न पड़ेगी। किन्तु उसके बाद फिर क्या होगा ? "

" मैं भी एक बार खाना शुरू करूँगी। "

आम्रभट चबूतरे परसे खड़ा हो गया। " क्या पागल हो गई हैं ? "

" क्यों ? "

" आप ही एकासन करेंगी तो गढ़की रक्षा कैसे होगी ?" मंजरीकी सुकुमार कायाके कुम्हला जानेका डर आँवड़को हुआ। " आपको चाहिए उतना अन्न तो है। "

" किन्तु सब एक बार खाएँ और मैं दो बार खाऊँ ?"

" नहीं, आप, बालक और मैं—दो बार खा लेंगे। अन्त तक गढ़ हमें ही तो टिकाये रखना है। पाँच दिन रास्ता और देखें। फिर जरूरत हुई तो देख लेंगे। आप भूखी कैसे रह सकेंगी ? "

" दूसरी स्त्रियाँ तो दिनोंके दिन उपवास किया करती हैं। "

" वे तो भूखों मर मर कर मजबूत हो जाती हैं। आप तो चलती बनेंगी। "

" ठीक, देखूँगी। " मंजरीने कहा। " किन्तु आखिर यह किये बिना छुटकारा नहीं। " मंजरीका हास्य अब भी वैसा ही मोहक था।

" बहिन, ऐसा न करके एक काम करें तो कैसा ? आपको और बच्चोंको नगरमें छुपा दें तो कैसा ? हम लोग गढ़की रक्षा करेंगे। "

मंजरीका हास्य अदृष्ट हो गया। उसकी बड़ी बड़ी आँखें स्थिर हो गईं। " आँवड़ मेहता, यह गढ़ तुम्हारे राजाका नहीं, मेरे दुर्गपालका है। देहमें प्राण हैं तब तक मैं तो यहीं रहूँगी। "

"किन्तु बहुत भुगतना पड़ेगा, बहिन," आँबड़ने गिड़गिड़ाते हुए कहा। "हम लोग गढ़ सँभाले रहेंगे।"

"आँबड़ मेहता," मंजरीने गर्वसे मस्तक ऊँचा करते हुए कहा।—"गढ़ छोड़ना ही पड़ा तो जीतेजी नहीं छोड़ूँगी। दुर्गपाल यहाँ आवें और मैं किसी जगह छिपकर बैठ रहूँ? नहीं। वे भी तो निश्चित कर बैठे होंगे कि वे नहीं हैं इसलिए अन्ततक मैं ही गढ़की रक्षा करूँगी।"

आँबड़ मेहताने देखा कि मंजरी नहीं मानेगी, इस लिए वह चुप हो रहा। इस स्त्रीकी सरल दृढतासे वह हमेशा मात खा जाता।

२—नेराका अन्तिम पराक्रम

उसी दिन देवा, मणिभद्र और गंगलीने अन्नके हिस्से किये और यह निश्चय किया कि मंजरी, बच्चे तथा आँबड़ मेहताके सिवाय दूसरे सब लोग एक ही बार खायेंगे।

इतने दिनोंमें सच्ची आफत तो नेरा भटपर ही आई थी। स्वच्छन्द फिरना, दिनमें चारछः बार भरपेट खाना, दोपहरको चार छः घड़ी आराम करना, और सिका हुआ पापड़ भी जहाँ तक बने नहीं तोड़ना, ये उसके जीवनके अचल सिद्धान्त थे, और इनका उसने धार्मिक श्रद्धासे इतने वर्ष तक चुस्तीके साथ पालन किया था। इससे एक जगह कैद रहना, देवाकी ताबेदारी करना, दिनमें दो ही बार खाना और दोपहरको सोना नहीं—इस भयंकर आपत्ति-परम्पराका असर उसपर होने लगा था। उसकी आँखोंमें हमेशा ही दुःख दिखा करता। उसकी घुटकीका निचला भाग खाली थैलीकी तरह लटक गया। उसकी विशाल तोंद पचकने लगी और उसकी पतली टाँगे थर थर काँपने लगीं। ज्यादा वक्त तो वह एक कोनेमें हारकर पड़ा रहता और किसीको भी जाते देखता तो मरते हुए कुत्तेकी जैसी दयनीय दृष्टिसे देखा करता।

इतने इतने दुःखोंके पहाड़ोंके पड़नेके कारण उसपर आँबड़ मेहताकी धाक नहीं रही थी, मंजरीके प्रति मान नहीं रहा था और बच्चोंके प्रति सहानुभूति नहीं

रह गई थी—उसे सभी दुश्मन दिखते थे। वे सब उसे न पूरी खुराक देते, न भर-नींद सोने देते और न नगरमें भाग जाने देते। अपनी तेलिनसे तो वह तंग आ गया था। उसकी भयंकर जीभ देवाके डंडेसे भी ज़बर्दस्त थी, भूख और दुःखोंसे बचे खुचे प्राणोंको यह गंगली निकाले बिना नहीं रहती। जब वह बोलने लगती तब बेचारे नेराको प्रेतलोक भी स्वागतके योग्य मालूम होता। जिस प्रकार भैंसासुरकी समझमें कालिका थी, उसी प्रकार उसकी दृष्टिमें धर्मपत्नी। उससे वह त्रस्त होता और उसकी धाकके शिकंजेमें तड़पती हुई मछलीकी मनोदशाका अनुभव करता।

वह एक दीवारके सहारे पड़ा पड़ा, चौड़ा मुँह किये, पेटकी भूखको हवा खाकर शान्त करनेका निष्फल प्रयत्न कर रहा था। मानों यह सुख बहुत ज्यादा है, ऐसा समझकर उसकी धर्मपत्नीने यह फरमान निकाल दिया कि तुम्हें आजसे एक ही बार खाना है। पहले तो नेराने सुनी अनसुनी कर दी। परन्तु जब गंगलीने कहा कि "बहरे हो गए हो क्या? आजसे एक ही बार खानेको मिलेगा। अन्न निपट गया है—अन्न," तब उसे कुछ बोध हुआ। जैसे तैसे करके वह उठ बैठा। अकस्मात् अन्न कैसे निपट गया, यह उसकी समझमें नहीं आया।

"क...क...क...कैसे निपट गया?"

"तुम्हारा नसीब!"

"एक बार ख-ख-खाना होगा—" नेराका ओठ टेढ़ा होकर लटक गया; यह नया दुख ऐसा भारी लगा कि उसके विरुद्ध पुकार करनेकी भी उसे हिम्मत नहीं हुई। अब तक जो दो बार खानेको मिलता था, सो तो उसे केवल पानी पीकर उपवास करने जैसा लगता था।

"हाँ, एक बार—"

"च–च–च–चल न यहाँसे निकल चलें।" उसने गंगलीसे बिनती की। उसकी आधी सूजी हुई आँखोंसे आँसू ढलकने लगे। भूखके दुःखसे उसकी जीभ भी लड़खड़ाने लगी।

"कुछ लाज शर्म भी है निर्लज्ज!" तेलिनने आँखें निकालीं। "बहिन-जीको, बच्चोंको और सबको छोड़कर चले जाएँ? जन्म लेकर पेट भरनेके सिवा भी कुछ सीखा है? तुम्हें पाटनका भट किस बनिएने बना दिया? तुम्हारी माँने

पेटमें पत्थर ही पड़ा होता, तो अच्छा था, कपड़े धोनेके काम तो आता। ” गंगलीने अपना अभिमान प्रदर्शित किया। “बोलो, इस समय खाना है कि दोपहर बाद ?”

नेराने निराशासे गर्दन झुका ली। उसे मौतके सिवा दूसरा रास्ता न दीख पड़ा। “अभी।” झागोंवाले मुखसे शब्द निकले। कल रातको खानेके बाद दूसरी ही घड़ीसे उसे कड़ाकेकी भूख लग आई थी।

“फिर कल दोपहरतक कैसे रहा जाएगा ?”

“र-र-रह लूँगा।” कहकर नेराने पत्थर फट जाय ऐसा निःश्वास डाला; किन्तु उसकी स्त्रीके हृदयमें कोई दरार तक न पड़ी। वह जाकर खाना ले आई और पत्नी-धर्मसे प्रेरित होकर कुछ अपने भागमेंसे भी उसे दे दिया।

खाना आया, इसलिए नेरा भी बैठ गया और उसके सामने देखता रहा। उसकी आँखोंमें पागलपनका तेज आया, चेहरेपर लिप्साका विकृत हास्य फैला और कंठमेंसे हर्षकी घरघराहट हुई। वह पागल-सा हो गया।

गंगली उसके सामने तिरस्कारसे देखने लगी।

“चलो पेट भर लो। लो यह पानी, हाथ तो धो लो।”

किन्तु वह बोली, उससे पहले ही नेराने खाना शुरू कर दिया। डेढ़ रोटी, दो कड़छुली दाल, भात, प्याज और नमक—देखते देखते विला गये, अधिककी आशामें नेराने गंगलीकी ओर देखा।

“क-क-कुछ और—

“और क्या तुम्हारा सिर ! एक रोटी तुम्हारी थी और आधी मेरे हिस्सेकी, सो दे दी। अब कुछ नहीं है।”

“कल तो दो थीं।” नेराने आपत्ति की।

“आजसे एक ही मिलेगी।” गंगलीने गुस्सेसे कहा।

“क-क-कल तक क-कुछ नहीं ?” नेराने विस्मयसे पूछा।

“ज्यादा चाहिए तो अंगार है।” कहकर थाली लेकर गंगली चली गई। नेरा न जाने कब तक निराधार होकर देखता रहा; फिर दूरसे जैसा गिरि-गह्वरमें सुन पड़ता है ऐसा एक महा निःश्वास छोड़कर उसने मुँह धोया और पानी पिया।

कितने ही दिनोंसे उसकी क्षुधा संतुष्ट न हुई थी; आज तो वह केवल छेड़ी

ही गई और उसपर यह एक पूरे दिन निराहार रहनेकी विपत्ति आई। किसलिए ये मूर्ख लोग यहाँ पड़े हैं ? किसलिए उसे यहाँसे जाने नहीं देते ? वह इतना थक गया था कि अधिक विचार किये बिना ही झोंके खाने लगा।

उसे नींदमें हलवाईकी दूकानों, लड्डू और खीरकी ज्योनारों, मालपुओं और जलेबियोंके ढेरोंके स्वप्नपर स्वप्न आते रहे। हमेशा मुँहके सामने भरा हुआ थाल दीखता और पापिनी गंगली उसे छीन कर ले जाती—और वह जैसाका तैसा भूखा रह जाता। पेटमें मानो होली जल रही हो, ऐसा कुछ होता ही रहता।

वह थोड़ी देरमें जागा। दुःखमय स्वप्न भंग हुआ या नहीं, यह देखनेके लिए वह ऊँचा हुआ और उसे परिस्थितिका भान हुआ। सुख तो केवल स्वप्नमें ही था जब कि लड्डू और मालपुए देख देखकर मुँहमें पानी आ जाता था; जागने पर तो निर्जन गढ़ और अनन्तकाल तक निराहार, यही दो थे। पीड़ाओंकी परम्परासे कुचला गया हो, इस तरह उसे हिचकी आ गई। डेढ़ रोटी दोपहरके पहले खाई थी या नहीं, यह भी याद न रहा। उसकी ऐसी दशा थी जैसे उसके पेटमें कितने ही दिनोंसे अन्नका दाना भी न गया हो।

थोड़ी देर उसने ओठ चाटे और सूजी हुई आँखोंसे आकाशकी ओर देखा। उसके मुखपरकी रेखाओंसे ऐसा दिखता था कि वह निराहारकी वेदनाकी सृष्टि करनेके कारण सृष्टाके ही विरुद्ध पुकार कर रहा है। पेट दिया तो पेटभर खानेको क्यों नहीं देता ? थोड़ी देरमें उसने देवा नायकको उधरसे जाते देखकर पुकारा—" न–न–न–नायकजी !"

" क्यों ? " देवाने इस आलसीकी ओर कठोरतासे देखते हुए पूछा।

" आज द-द—दूसरी बार ख-ख-खानेको नहीं मिलेगा ? "

" नहीं।—" देवाने कहा।

मानो सिरपर प्राणघातक प्रहार हुआ हो, इस प्रकार नेराने सिर जमीनपर डाल दिया। इस आलसी और भुक्कड़की ओर देवाके मनमें इतना तिरस्कार था कि एक शब्द भी बोले बिना वह वहाँसे चला गया। उसकी चलती तो वह नीचे जाकर इस पट्टनी सैनिकको रेवापालकी भेंट कर आता।

थोड़ी देर नेरा पड़ा रहा। उसे ऐसा लगा कि ये सब उसे जान बूझकर

भूखों मार रहे हैं। उसे अपनी स्त्रीपर क्रोध आया। 'शं—' कहकर वह गाली देने जा रहा था किन्तु बहुत दुर्बलता मालूम हुई, इसलिए चुपचाप पड़ा रहा।

उसका मुख सूख गया और उसकी जीभ तालुसे चिपक गई। जैसे तैसे वह बैठा और घसिटता घसिटता कुएँके पास आया। वहाँ एक घड़ा आधा भरा पड़ा था, उसमें मुँह लगाकर वह सारा पानी पी गया।

उसे जरा ठीक लगा। पैरोंमें जरा जोर आया-सा लगा। वह खड़ा होने लगा; तो लड़खड़ा गया, और बड़ी मेहनतसे घुटनोंका सहारा लेकर अन्तमें खड़ा हो सका। सूर्य डूबने लगा था। संध्याकाल होनेपर खानेका वक्त आयगा, ऐसा उसे लगा—किन्तु इतनेमें ही उसे अपनी स्त्रीके शब्द याद आ गये। 'एक ही बार खाना होगा'। किन्तु एक बार भी कहाँ खाया? वह ज्यों त्यों करके भोजनशालाकी ओर गया। वहाँ बिलकुल शान्ति थी। रसोईघरकी कुण्डी चढ़ाकर मणिभद्र चला गया था। वहाँ कुछ न कुछ होगा, यह जानकर वह अंधकार होनेकी प्रतीक्षामें सिरपर हाथ रखकर दीवारसे टिककर बैठ रहा। कहीं गंगली न देख ले, इस भयसे वह कोनेमें दुबककर बैठा।

किसी भी तरह समय नहीं कट रहा था और पेटमें आग बढ़ती जा रही थी। उसे चक्कर आ रहे थे, इसलिए उसने माथेपर हाथ रख लिये, किन्तु आराम नहीं मिला। एक दो बार कोरी कै हुई। उसका जी घबराने लगा।

अँधेरा हुआ, इसलिए हिम्मत करके उठा और उसने रसोईघरकी कुंडी खोली। अन्दर अंधकार था। चोरकी तरह वह सब तरफ ढूँढ़ाढाँढ़ी करने लगा, किन्तु कुछ न मिला। मणिभद्रने नपा-तुला ही राँधा था।

वह निःश्वास डालकर चबूतरेपर लुढ़क पड़ा। उसका जी आकुल व्याकुल हो रहा था, इस समय उसे किसीकी परवा नहीं रही-थी। उसकी भूख उसके प्राण लेने बैठी है, बस इतना ही उसे भान था।

नेराने अवतार लेकर हमेशा जितना चाहिए उससे अधिक ही खाया था, कभी कम न खाया था। भूख उसके खयालमें एक शब्द भर था। भूखका कितना प्रताप है, इस समय उसे इसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ और उसके होश गायब हो गये।

कल दोपहरतक कैसे रहा जाएगा ? एकदम उसके उदरमें उथल-पथल होने लगी। मानो अनेक बिलाव पेटमें नख चुभा रहे हैं, ऐसा कुछ होने लगा । उसने कै करनेका प्रयत्न किया, पेटपर हाथ फेरा,— किन्तु वेदना बढ़ती ही गई ।

उसे एकदम याद आया । कोठारकी कोठरी पास ही थी । ओ हो कोठारकी कोठरी ! उसके सूखे हुए मुखमें पानी भर आया, किन्तु उसे आँबड़ मेहता, देवा और गंगलीका भय लगा । वे सब उसके प्राण ले लेंगे । वह बहुत देर बाट जोहता रहा । घड़ी दो घड़ी राह देखी, किन्तु वेदना बढ़ती ही गई । उसकी नजर कोठारके द्वारपर ही ठहरी हुई थी, वह वहाँसे किसी तरह भी न हटी ।

उसने सोचा कि एक दो फंकी मार लूँगा, तो कोई जान न पाएगा । वह लड़खड़ाते पैरों उठा, गिरा, फिर उठा । धीरे धीरे चारों पैरोंसे चबूतरेपर चढ़ा और कोठारके द्वारके सामने जा पहुँचा । उसने चारों तरफ देखा—सर्वत्र अंधकार था । कान लगाये—सब तरफ सन्नाटा था । वह थोड़ी देर पड़ा रहा, स्वभावसे शिथिल और भूखसे निराधार हुई अन्तःकरणकी वृत्तिने जरा डंक चुभाया । पर डंक इतना हल्का था कि उसकी वेदना भूखकी पीड़ाके सामने जरा भी नहीं जान पड़ी ।

वह एकदम उठा और दीवारसे हाथ टेककर खड़ा हुआ । किसी तरहकी आवाज नहीं आ रही थी । अधिक रात हो चली थी, इसलिए दूसरे सब भूख और श्रमसे थके निश्चिन्त होकर सो रहे थे । उसने धीरेसे कोठरीकी कुंडी खोली और वह चौंककर खड़ा हो गया । वह थोड़ी देर सुनता रहा किन्तु कोई आवाज न आई । उसने दरवाजा खोला और अंदर प्रवेश किया ।

वह क्या कर रहा था, इसका उसे स्पष्ट भान न था, किन्तु वह जो कुछ कर रहा था उससे उसकी भूख मिटेगी, ऐसा विश्वास था ।

वह चारों पैरोंसे चलकर अनाज खोजने लगा । आखिर एक कोनेमें उसे चार मटकियाँ हाथ लगीं ।

उसके मुखमेंसे लार टपकने लगी । अधीरताका पार न रहा । एक मटकीमें उसने हाथ डालनेका प्रयत्न किया, तो मुँह सँकरा होनेके कारण न जा सका । अँधेरेमें भी उसकी आँखें चमकने लगीं । उसने मटकी औंधी कर दी और अनाजकी मुट्ठी भर ली । मटकीमेंसे दाल निकली मालूम हुई तो मुट्ठी खोल दी.

और दूसरी मटकीसे उलझ गया। बिना देखे ही उसने मटकी उलटकर चावल फैला दिये। तुरन्त ही तीसरी मटकी उड़ेल दी और आटा बिखेर दिया। उस समय उसपर पागलपन सवार था, अविचारी विनाशकवृत्ति ही उसे प्रेरित कर रही थी। उसने चौथी मटकी भी उलट डाली। उसमेंसे भी आटा निकला। उसने अनाज और आटेका ढेर लगा दिया। क्षुधातुर नेशाकी कल्पना-शक्तिको इस तरह सारे अनाजका ढेर लगानेमें कुछ कुछ वैसा ही आह्लाद हुआ जैसा कलाकारको सर्जनात्मक आह्लाद होता है।

पागलकी तरह वह हँसा और इस ढेरमें हाथ डालकर उसे लाड़से बिखेरने लगा। इतनेमें बाहरसे किसीकी आहट मिली। वह चौंका, काँप उठा। उसे ऐसे लगा कि कोई बिल्ली भागी है। यहाँ अधिक देर न ठहरना चाहिए, ऐसा भी कुछ ख्याल आया।

भूखकी आकुलता बढ़ी। राँधूँ? कैसे राँधा जाए? क्या कच्चा खाया जा सकता है? ऐसे कई प्रश्न उठे। उसका मस्तिष्क एकदम भड़क उठा। ऐसा लगा, मानो कोई तार टूट गया है। जानवरों जैसी लोलुपतासे उसने उस ढेरमेंसे मुट्ठी भर भरकर खाना शुरू किया। वह खिलखिलाकर हँसा और खाता ही गया। कच्चा आटा, चावल और दाल आदि तेजीसे खत्म होने लगे। आखिर वह थका, उसके गलेमें कुछ बेचैनी-सी होने लगी। एक बार खाँसीका ठसका आ जानेसे मुँहमेंका सारा आटा फुर्र हो गया। उसने खाना शुरू किया किन्तु घबराहट हुई और गलेमें कुछ उतरा नहीं। उसके पेटमें उथल-पथल होने लगी। उठनेकी शक्ति रही नहीं और वह जहाँका तहाँ अनाजपर पड़ गया। थोड़ी देर हुई और कच्चा अन्न अपना परिचय देने लगा। उसने पेटमें और गलेमें ताण्डव नृत्य करना शुरू कर दिया। उसकी आँखें बावली हो गईं। वह उठने लगा तो गिर पड़ा। पड़ते ही कै हो गई। अनेक बरसोंसे चुपचाप गुलामी सहन करनेवाले शरीरने आखिर बलवा कर दिया और बलवेने तत्काल ही महा विप्लवका स्वरूप ले लिया।

मणिभद्र पिछले चबूतरेपर सोता था, वह एक दम जाग उठा। कोठारमें कोई बीमार पड़ा हो, इस तरहकी आवाज उसे सुन पड़ी। वह उठा और दौड़ता हुआ आया। कोठारमें कोई घबराकर मर रहा था। उसने मशाल जलाई और वह कोठारमें गया।

अनाज और आटेके ढेरको बखेरता, मानो नया तैराक समुद्रकी तरंगोंमें तड़फड़ा रहा हो, इस तरह अकुलाता, घबड़ाता नेरा तड़फड़ा रहा था...कोठार सार जैसा बन गया, और सारा अनाज अभक्ष्य हो गया। मणिभद्रके हाथोंमेंसे मशाल गिर पड़ी और वह देवाको जगानेके लिए दौड़ा।

३—माता या अर्धांगिनी

मंजरी अस्वस्थ निद्रामेंसे जागी। ऐसा लगता था कि बाहर कोलाहल हो रहा है। उसका हृदय धड़क उठा। उसने भी आज एक बार खाया था, इसलिए माथा दुख रहा था।

उसने बच्चोंकी ओर नजर की। महाश्वेता और वौसरी फूलकी कलियों जैसे एक दूसरेसे लिपटे सो रहे थे। क्षणभरके लिए माँका हृदय स्नेहसे भर आया।

साहससे उठकर उसने दीया जलाया। और पुकारा "गंगली!"

गंगली एकदम चौंक उठी। "क्या है बहिन?"

"कुछ गड़बड़ सुन पड़ती है?"

गंगली एकदम दौड़ती हुई ऊपर गई और खिड़कीसे नीचे झुककर देखने लगी। 'रसोईघरके आगे कुछ गड़बड़ है। ठहरिए, मैं तलाश करके आती हूँ।"

"नहीं," मंजरीने कहा, "तुम यहीं बच्चोंके पास बैठो। मैं ही जाती हूँ।" कहकर और कंधेपर एक वस्त्र डालकर तेजीके साथ रसोईघरकी ओर चल दी।

वहाँ मणिभद्र और देवा तड़फड़ाते हुए नेराको चबूतरेके नीचे लेटा रहे थे।

"मणिभद्र, क्या है?"

"अरी बहिन, तुम कहाँसे आ गई? लौट जाओ। यहाँ आने जैसी जगह नहीं है।"

"क्यों, क्या है?"

देवाने कहा, "कुछ नहीं, यह हरामखोर कोठारमें घुस गया था।"

मंजरीने तड़पते हुए नेराकी ओर देखा। वह कुछ कुछ होशमें था। कोठारमेंसे दुर्गन्ध आ रही थी। मंजरी कुछ समझी, चबूतरेपर चढ़ी, कोठारमें देखा। वहाँका

दृश्य ऐसा था कि चक्कर आ जाए। मंजरीको ग्लानि हुई और वह एकदम पीछे हट गई। उसका जी मचलाने लगा।

"बहिन, यहाँ तुम्हारा काम नहीं। तुम जाओ।" मणिभद्रने कहा।

"कितना अन्न बिगड़ा?" मंजरीको डर लगा।

"जो बच जाए सो ठीक।" मणिभद्रने खेदसे कहा। उसकी आवाजमें निराशा थी।

मंजरी समझी और वहाँसे चली गई। उसे लगा कि विधिने अंतिम प्रहार किया है। वह कुछ विचार न कर सकी।

अपने डेरेपर जाकर उसने गंगलीको भेजा। "जा, तेरा नेरा वहाँ तड़फड़ा रहा है। वह जाकर सारा कोठार बिगाड़ आया है।"

"मरे..." भृगुकच्छके तेली मुहल्लेके शब्द-लालित्यका प्रदर्शन करती हुई गंगली उठकर गई।

मंजरी हताश होकर बैठ गई। खानेमें कमी करके पन्द्रह दिन तक गढ़को टिकाये रखनेकी योजना धूलमें मिल गई। नेराने जो विनाश किया था, उसे थोड़ा तो उसने देखा था, और बाकीकी कल्पना कर ली थी। पंद्रह दिनकी जगह वह पाँच दिन भी टिकेगा या नहीं, यह सवाल था। "दैवने यह क्या सोचा है?" उसने पूछा और सिरपर हाथ रख लिया। भूख और निराशासे उसका मस्तक फटा जा रहा था। "नाथ! जल्दी न लौटोगे?" उसने आकाशकी ओर देखकर कातरतासे पूछा।

उसने बच्चोंके सामने देखा। कैसे लाड़ले रूपवान् बालक हैं! इस समय कैसे सुन्दर स्वप्न देख रहे होंगे! उनके छोटेसे हृदयमें माता-पिताके लिए श्रद्धा थी। उन्हें विश्वास था कि प्रतापी पिता अवश्य आ पहुँचेंगे। इस समय उक्त श्रद्धा और विश्वास कितने गलत हैं?

उसके निर्दोष बालक, उसका वीर पति, उसकी भावना, उसका प्रेम—इस समय सबकी आ बनी थी। बच्चे तड़प रहे हैं, पति या तो कैदमें सड़ रहा होगा या लड़ रहा होगा। उसकी भावना, उसका प्रेम, उसके सारे स्वप्न एक मूर्ख सैनिकने धूलमें मिला दिये। उसकी आँखोंमेंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी।

क्या खानेका सब खत्म हो जायगा? क्या ये सब भूखों मर जाएँगे? क्या उसका पति बचाने नहीं दौड़ेगा? सबका ऐसा अन्त होगा? उसने सिर पीट लिया, और न जाने कब तक रोती रही।

महाश्वेताके मुखपर हास्य छा रहा था। नीचे झुककर उसने चुंबन ले लिया। वह काँप उठी। कोई आकस्मिक घटना ही बचा ले, तो बच जाए। नहीं तो—'नाथ! नाथ! तुम्हें देख भी नहीं पाऊँगी।' उसके हृदयमेंसे 'हाय' निकल पड़ी।

यह तो कसौटीका असली मौका है, इस समय झुका कैसे जाए? यदि वह बच्चोंको लेकर बेनांके पास चली जाय तो अवश्य ही वह और बच्चे बच सकते हैं। उसकी नाक गर्वसे फूल उठी। लाड़ले बच्चे दुश्मनके यहाँ बेचारे और अभागे बनकर रहें? और वह—काककी पत्नी—संरक्षणके लिए याचना करे? उसकी बड़ी बड़ी आँखें गर्वसे चमक उठीं।

मैं स्वयं तो कभी गढ़ छोड़ूँगी नहीं। उसके ओठ गर्वसे बन्द हो गए। यह गढ़ काककी दुर्धर्षताका प्रतिनिधि है। यह जब तक खड़ा है, तब तक काक दुर्जय है। वह—काककी दुर्जयताकी अधीश्वरी–इस समय इसका शरण छोड़कर चली जाए? नहीं, काककी निष्कलंक कीर्तिकी अवतारके समान वह, जीते जी इसी गढ़में रहेगी।

किन्तु इन बच्चोंको तो यहाँसे ले ही जाना चाहिए। आँबड़ तो गढ़ छोड़कर शायद ही जाए। भृगुकच्छमें देवा या मणिभद्र छिपे रह सकें, यह संभव नहीं। तो क्या इन बच्चोंको तेलिनके भरोसे छोड़ दूँ? उसका कलेजा काँप उठा। उसके लाड़ले बच्चे इस असंस्कृत तेलिनकी शरणमें?

उसने अनेक विचार किए, किन्तु इसके सिवा दूसरा रास्ता न था। उसका हृदय फटने लगा। उसे हिचकियोंपर हिचकियाँ आईं। इन सुकोमल बालकोंको त्यागना पड़ेगा? क्या इनके मीठे मनोहर मुखड़े फिर नहीं देख पाऊँगी? उत्तर मिलनेके पहले ही वह रो पड़ी।

वह चुप रही। वह अपने पतिकी अर्धांगिनी थी। पतिकी कीर्तिके लिए मर जाना उसका कर्तव्य है, किन्तु इन बच्चोंको क्यों न बचाया जाए?

"पतिदेव! भूल होती हो तो क्षमा करना।" वह रोने लगी। "क्षमा माँगनेके लिए मैं शायद ही जीती रहूँ।"

उसने निश्चय किया कि बालकोंको तो भिजवा ही देना चाहिए। वह न जाने कब तक उनके सामने देखती रही। इतने वर्षों तक उनके मुखपर न देखी हुई रेखाएँ एकाग्र चित्तसे उसने अपने हृदयमें उतारीं। "मैं कैसी माता हूँ ? इन बच्चोंको अपने गर्वके कारण अनाथ बना रही हूँ। इनका क्या होगा?" फिरसे उसकी आँखोंसे टपाटप आँसू टपकने लगे। प्रश्न हुआ कि "मैं किसकी ? अपने दुर्गपालकी या जिन्हें जन्म दिया उन बच्चोंकी ?" न जाने कब तक वह चुपचाप बैठी रही। "जननी ही तुम्हारा रक्षण न करे, तो फिर कौन करेगा ? नहीं — नहीं—मैं तुम्हारी नहीं, उनकी हूँ। वे प्यारे हैं, इसलिए तुम प्यारे हो। तुम्हारे विना चल जायगा किन्तु उनके विना नहीं चलनेका......मेरे नाथने मुझे दोनों सौंपे हैं—अपनी कीर्ति और बच्चे। तो बच्चोंको जाने दूँ ? कीर्ति ! कीर्ति ! लोग आज याद करेंगे और कल भूल जाएँगे—लड़के भी आज हैं कल नहीं। हाय ! हाय !" उसने आक्रन्दन किया। "मैं माँ नहीं, डाकिन हूँ।"

"मैं कुमाता हूँ ? मुझे बच्चे अधिक लग रहे हैं, क्यों कि मैं माँ हूँ। मुझे कीर्ति प्यारी लगती है, क्यों कि मैं अर्धांगिनी हूँ। ओह ! मैं माँ बनूँ या अर्धांगिनी ? रेवा माता !" वह फिरसे रो पड़ी। "कुछ तो रास्ता सुझाओ।"

"माँ—माँ — माँ—किसलिए माँ बनूँ ? मैंने बाल्य-कालसे, काल्पनिक पतिके सपने लिये। अपने मनसे मैं जबसे जनमी तभीसे अपने वीरकी अर्धांगिनी हूँ। मेरा वीर—मेरा वीर आखिर आया, मुझे प्राणसे भी प्यारी गिनी, मेरा जीवन सफल हुआ। मेरे सपने सिद्ध हुए। वीर अंगकी मैं अर्धांगना हुई। मैं उनकी अर्धांगना हूँ—और कुछ भी होना नहीं चाहती। बालको, प्यारे बच्चो, मैं तुम्हारी माँ बादमें—अपने वीरकी अर्धांगिनी पहले। मैं मंजरी—काककी पत्नी—और कुछ नहीं।" उसने आँसू पोंछ डाले। "मेरे नाथ ! इस भवमें और भवभवमें—और कुछ नहीं। हाँ, अपने नाथकी वीरांगना !" वह खड़ी हो गई।

पूर्व दिशामें उषाका प्रकाश राजपीपलाके पहाड़ोंपर फैल रहा था।

४—माँका हृदय

मंजरी उठी और नहा धोकर मंदिरमें गई। उसके अस्वस्थ चित्तको स्वस्थताकी बहुत जरूरत थी।

न जाने कब तक उसने उमापतिकी आराधना की और स्तवनसे, पुष्पोंसे, बड़ी आजिजीसे उनकी मदद माँगी। धीरे धीरे उसके अन्तरमें शान्ति लौटने लगी। रातको जो भय निःसीम लग रहा था, वह इस समय शान्त मन्दिरमें न-कुछ-सा लगा। जो हो सो हो—उसने अपना, अपने बच्चोंका और पतिका भविष्य भोलानाथके हाथ सौंप दिया।

वह मंदिरके बाहर आई, तब आँबड़ मेहता उसकी राह देख रहा था। उसका चेहरा निस्तेज और आँखें चिन्ताग्रस्त थीं।

" बहिन, सुना ? " उसने खिन्न स्वरमें पूछा।

" हाँ भाई, मैंने सब देखा। मैं रातको ही उठकर देख आई। हमारा नसीब ही ओछा मालूम होता है। "

" अब क्या करें ! " आँबड़ने पूछा।

" कुछ खानेको बचा है ? "

" बड़ी मेहनतसे गंगली और मणिभद्रने धो-धाकर थोड़ी बहुत दाल और चावल अलग निकाले हैं और सूखने डाले हैं। "

" हाँ, उन्हें सेंकनेसे काम चल जाएगा। " शौचकी परम पुजारिणीने हिम्मतके साथ कहा।

" चलो, देख आएँ। "

म्लान-वदन दोनों धीरे धीरे रसोईघरमें गये। वहाँ सारी रात मेहनत करके गंगलीने उस जगहको धो-धाकर लीप-पोत दिया है और चबूतरेपर थोड़ेसे दाल चावल सुखाने डाले हैं।

" मणिभद्र, " आँबड़ने कहा। " यह इतना ही है ? "

" हाँ, बहिन, " निःश्वास डालकर मणिभद्र रसोईघरसे बाहर आया।

गंगली बच्चोंके लिए पानी गरम करनेके लिए चूल्हा चेता रही थी। वह आई और दूर बैठा हुआ देवा भी सबको देखकर आ पहुँचा।

सबके मुँहपर निराशा थी। सबके चेहरोंपर, आँखोंपर और आवाजमें यह चिन्ता स्पष्ट दीखती थी कि अब क्या होगा? बिना बोले ही सब समझ गये कि अब जीने मरनेका प्रसंग उपस्थित हो गया है।

मंजरीने आखिर गला साफ करके "सब एक ही बार खाएँ, तो भी यह दो दिनसे अधिक चलनेका नहीं है।"

भयंकर शान्ति फैल गई। इस शान्तिमें दम घुटा जा रहा था। उसे दूर करनेके लिए मणिभद्रने निःश्वास छोड़कर कहा, "बहुत चलेगा तो तीन दिन......हर हर भोलानाथ!"

"नेराका क्या हाल है?" मंजरीने पूछा।

"उसे छपरीमें डाल दिया है। उसका जी ठिकाने नहीं है।" तेलिनने जवाब दिया।

"अब क्या करें?" आँबड़ मेहताने पूछा। सबके मगजमें यही प्रश्न था; किन्तु कोई पूछ न सका था।

"भैया, तुमने मुझे नगरमें जाकर छुपनेकी सलाह दी थी न?" मंजरीने पूछा।

"हाँ।" मंजरी जिद छोड़ कर बच जाए, इस आशासे आँबड़का हृदय हर्षित हुआ। परं मनुष्य-हृदय विचित्र है। उसी क्षण मंजरीको ऐसा लगा कि वह गौरव-भ्रष्ट हो रही है। "तुम्हें—"

"नहीं।" मंजरीने बीचमें ही कहा।

"बच्चोंको यह गंगली नगरमें जाकर छुपा रक्खे तो?"

"—और तुम?" मणिभद्रने पूछा।

"भैया, मेरी चिन्ता करना व्यर्थ है" मंजरीने गर्वसे कहा। "मैं तो यहीं तुम्हारे भटराजके दुर्गमें रहूँगी।" देवाकी आँखोंमें अँधेरा आ गया। उसने छोटे बच्चेकी तरह हाथसे आँसू पोंछ लिये।

"आँबड़ मेहता, क्या सोचते हो?"

"बहिन, "आँबड़के हृदयमें सम्मानकी तरंगें उछलने लगीं। मेरी समझमें नहीं आता कि तुम मानवी हो या देवी। नाहक क्यों जिद कर रही हो? बच्चोंको जुदा कर रहीं हो और जान जोखिममें डाल रही हो।"

"भैया," मृदुतासे मंजरीने कहा। "मैंने सारी रात विचार किया है। अभी यह कोई नहीं जानता कि गंगली यहाँ आई है और तेलीवाड़ेमें मेरे बच्चोंको खोजने कोई जायगा नहीं। इसलिए सब निर्भय होकर रहेंगे। बाकी रहे हम लोग, सो कहीं भी छुपे रहेंगे।" कहकर उसने गर्वसे अपने तेजस्वी शरीरपर नजर डाली। "हम जाएँगे, तो उलटे बच्चे भी पकड़े जाएँगे।"

"मुझे तो जाना ही नहीं है। जब तक पाटनकी ध्वजा यहाँ फरकती है, तब तक पाटनका यह सत्ताधीश यहाँसे हिलनेवाला नहीं।"

मंजरीने भावनासे काँपते स्वरमें कहा, "भाई, तुम्हें दूसरेकी टेक रखनी है, पर मुझे तो अपनी भी आनका खयाल है। मैं कैसे जा सकती हूँ?"

"परन्तु तब होगा क्या?" मणिभद्रने पूछा।

"होना क्या है? कुछ दिनमें आँबड़ मेहता इस कुक्कुट-ध्वजका ध्यान करते करते देह छोड़ देंगे—और मैं दरियासे आती हुई—" मंजरीकी आवाज़ रुक गई। उसने खाँसकर गला साफ किया—"नावकी बाट देखते देखते देह छोड़ दूँगी।" मंजरीके फीके मुखपर दृढ़ता थी। दुःखमें, खेदमें, निर्बलता-में भी वह जैसीकी तैसी लक्ष्मीके समान तेजस्विनी थी।

"बहिन, जहाँ आप वहाँ मैं। हर हर भोलानाथ! मैं तुम्हारे चरणोंकी रज सिरपर चढ़ाकर मर जाऊँगा।" मणिभद्रने सूखी हँसी हँसकर कहा। आँबड़ मेहतासे कुछ बोला न गया। सारी दुनिया उसकी नजरके आगे तैरने लगी।

"गंगली, तुझसे हो सकेगा?"

गंगली इस तेजस्विनी स्त्रीकी ओर देखने लगी। उसका असंस्कारी हृदय सम्मान और सेवाभावसे उमड़ आया।

"माँ, तुम जरा भी न घबराओ। जब तक मेरे जीवमें जीव है, तब तक बच्चोंको सँभाले रहूँगी। किन्तु नगरमें जाऊँ कैसे?"

"चौकीसे बचकर निकल जाना तो सहज है।" देवाने कहा।

"तब कोई डर नहीं, रातको नगरमें जाना भी सहज है।" गंगलीने कहा।

"और इतनेमें दुर्गपाल आ पहुँचें तब तो फिर कुछ नहीं—" अमर आशा व्यक्त करते हुए मंजरीका मुँह मलक उठा। "परन्तु गंगली, तेरे नेराका क्या होगा?"

"माँ, उसकी जरा भी चिन्ता न करो," गंगलीने हँसकर कहा। "उसे कुछ भी न होगा। और हुआ तो नायक सब ठीक कर लेंगे।" मंजरी इस स्त्रीकी सेवा-वृत्ति और कठोर हृदय, दोनोंकी तुलना न कर सकी।

"चलो, मैं बच्चोंको जगा दूँ।" कहकर मंजरी वहाँसे चल दी। आँबड़ चुपचाप उसके साथ हो लिया। थोड़ी देरमें मंजरीने म्लानमुख हँसते हुए कहा, "भैया, चिन्ता क्यों कर रहे हो? रेवा माताने जो सोचा होगा वही तो होगा।"

"बहिन, किन्तु तुम्हें—"

"मुझे कुछ न होगा। तुम पाटनके लिए रहोगे और मैं अपने पतिके लिए मरते दम तक इस गढ़में रहूँगी। जाओ, नहाओ धोओ। इस प्रकार निराश क्यों होते हो?" कहकर मंजरी अपने डेरेपर गई।

आँबड़ देखता रहा। "क्या रूप है और क्या गुण हैं!" उसके मुखपर भक्ति-भाव छा रहा। "सचमुच रेवा माताकी अवतार है!" उसने नर्मदापर नजर डाली और वहाँसे चल दिया।

मंजरी ऊपर गई और सोते हुए बच्चोंकी तरफ थोड़ी देर देखती रही। उसके अन्तरमेंसे वात्सल्यकी सरिता पूरे जोरसे बह रही थी।

वह दोनों बच्चोंके बीच लेट गई, धीरेसे दोनोंके सिरोंके बीच अपना सिर डाल दिया और दोनोंपर हाथ फेरा। दोनों बच्चोंने आँखें खोलीं और माँका माथा देखकर वे हँस पड़े। मंजरीने पड़े पड़े ही दोनोंके सिर दोनों हाथोंमें लेकर छातीसे चिपका लिये।

"चलो, सो क्या रहे हो?" उसने हँसते हँसते कहा। उसका हास्य प्रयत्न-साध्य था, किन्तु बच्चे परख न सके। उसके आलिंगनमें मातृ-हृदयकी उछलती हुई उर्मियाँ थीं।

आज इन बच्चोंसे अंतिम बार मिल लेना है। आजसे ये दयाहीन पराई शरणमें चले जायँगे, और माताकी स्नेह-स्निग्ध दृष्टि इनपर कभी न पड़ेगी। अंतरकी वेदना अनुभव करती हुई वह बैठ गई और दोनोंसे फिर लिपट गई।

बालकोंको दाँतुन कराई, फिर नहलानेके लिए उन्हें कुएँपर ले गई। गंगलीने गरम पानी दिया। उसने उन्हें बार बार देखा। मसल मसलकर नहलाया। नहा

धोकर स्वच्छ और तेजस्वी बने हुए बच्चोंको फिर सगर्व देखा। अब नहलानेका अवसर फिर नहीं मिलेगा, यह विचार आते ही उसका अन्तर चिरने लगा। बच्चे देख न लें, इस प्रकार मस्तक नीचा किए उसने अपने आँसू पोंछ डाले और उन्हें चूम लिया।

उन्हें वह महादेवके मन्दिरमें ले गई और स्तवन गवाए।

"महाश्वेता बिटिया," उसने बच्चीसे कहा, "तुम्हें और वौसरीको आज गंगलीके साथ नगरमें जाना है।"

"और तुम?" महाश्वेताने दयनीय-सा मुँह माँकी ओर किया। वौसरी पूरी तरह समझा नहीं, किन्तु उसने आँखें फाड़कर जिज्ञासा प्रकट की।

"मैं यहीं रहूँगी।" मंजरीने कहा और कण्ठमें जो उफान-सा आ गया था उसे किसी तरह दबाया। "और जब तुम्हारे बापू आ जायँगे तब आ जाऊँगी, भला!"

"बापू कब आएँगे?" वौसरीने पूछा। मंजरीने उसे छातीसे लगा लिया।

"बेटा, कल आ जाएँगे।" मंजरीने उसके सिरपर हाथ फेरा।

"तब हम कल ही जाएँ तो?"

"नहीं बेटी, आज ही जाना है। तू तो सयानी है? यह तो लड़ाईकी बात है। गंगली तुम्हें सँभालकर रक्खेगी।"

"अपने घर?" वौसरीने पूछा।

"नहीं, गंगलीके घर। इसका घर ऐसा अच्छा है!"

मंजरी अधिक देर तक स्वस्थता न रख सकी। उसने किसी तरह आँसू रोके और बच्चोंको लेकर अपने डेरेमें आई। महाश्वेता माधुर्यका अवतार थी। क्या कहना चाहिए, यह उसे सूझा नहीं, किन्तु अश्रुपातसे सूजी हुई माँकी आँखें देखकर उसका छोटा-सा हृदय आहत हो गया। चोटी गुँथवाते समय उसके मगजमें न जाने कौन कौनसे विचार आए।

"माँ," उसने साहससे सिर ऊँचा करके पूछा, "बापू नहीं आए तो?—"

मंजरीका मुँह फीका पड़ गया। उसने ओठ दबाये। "नहीं क्यों आएँगे?" उसने हिम्मत दिखलाई। "देख बिटिया, तू बड़ी है, भाईको सँभालना, इसे दुख न देना।"

" माँ, मैं नहीं जाऊँगा । " वौसरीने कहा ।

" अरे, क्या पागल हो गया है ? माँ जो कहे वह करना चाहिए न ? "

" नहीं, मैं नहीं जाऊँगा । " बालकने कहा ।

मंजरीसे न रहा गया । उसकी हिचकी बँध गई ।

" माँ, तू क्यों रोती है ? " वौसरीने एकदम पूछा ।

" देख न बेटा, तू नहीं मानता इसलिए । " मंजरी रो पड़ी ।

" माँ, मानूँगा—मानूँगा । मैं जाऊँगा । " वौसरीने मंजरीकी गर्दन पकड़कर उसका सिर हिलाया । वह हँस रहा था । उसकी समझमें यह जानेकी बात कुछ खेल-सी लगी । माँ राजी हो और उसे मजा आए, ये दो बातें उसे बिल्कुल बुरी नहीं मालूम हुईं ।

" बड़ा समझदार है मेरा बेटा । चलो, हम कोटपर घूमने चलें । "

मंजरी बच्चोंको लेकर घूमने निकली । उसने बच्चोंको दौड़ाया, खिलाया, हँसाया । प्रत्येक क्षण उसे लग रहा था कि आज मातृपदका अंतिम दिन है । बच्चे थक गए और वह उन्हें डेरेपर ले आई ।

मंजरीने उन्हें सुला दिया । दोनों बच्चोंके प्राण अस्वस्थ थे, इससे वे थोड़ी थोड़ी देरमें जाग पड़ते, और नींदमें निःश्वास छोड़ते ।

मध्याह्न हुआ और मंजरीने भी कुछ खाया । हारी थकी देह सीधी करनेके लिए वह लेट गई । आज सारे गढ़में उदासी छा रही थी । कोई किसीसे बोलता न था । सब मंजरीकी आन्तर्व्यथा देखते और मौनसे ही उसके लिए सहानुभूति प्रकट करते थे ।

बच्चोंको छोड़कर मरना, यह बड़ा दुख है, बच्चोंको आँखोंके आगे मरते देखना उससे भी बड़ा दुख है, किन्तु स्वेच्छासे बच्चोंको दूर कर देनेकी व्यथा तो अकल्पनीय है । ज्यों ज्यों उन्हें दूर करनेका समय निकट आता गया, त्यों त्यों मंजरीके हृदयके तार खिंच खिंचकर टूटनेकी तैयारी करने लगे । उसके अन्तरमें व्यथा एक न थी, हज़ारों थीं । दुखकी घाणी पल-पलमें उसके प्राणोंको कुचल रही थी ।

बच्चोंको फिर नहीं देख पाना, उनका कलरव फिर नहीं सुनना, उनके हास्यमें फिर नहीं हँसना, यह तो एक व्यथा है ही; किन्तु जान-बूझकर अपने

हाथों उन्हें निराधार और दीन बनाकर स्नेहहीन जगतमें भटकनेके लिए छोड़ देना, यह दूसरी महान् व्यथा है। ये बच्चे किसके पास रोएँगे? किसके सामने हठ करेंगे? किसकी गोदीमें बैठेंगे? और वह स्वयं बच्चोंके रहते बाँझसे भी बदतर दशामें जा पड़ेगी। बच्चोंके बिना वह जियेगी कैसे?

उसने पृथ्वीपर मस्तक रखकर कनपटियोंको दबाया। "मुझे माँ कहकर कौन बुलाएगा? और कल तुम्हारा क्या होगा?" उसकी आँखोंमें आँसू भर आए। "मुझ जननीने तुम्हें जन्म दिया और आज इस तरह भटकनेको छोड़ दिया! मुझ जैसी अभागिनी कौन होगी?...कैसे सुन्दर हैं! ऐसे बच्चोंकी माता कितनी भाग्यशालिनी है?—" वह गुनगुनाई—

"धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनी भवन्ति।"

"हाँ, मैं इस समय धन्या हूँ, पर रातको हतभागिनी हो जाऊँगी। प्यारे बालको, किसी दिन याद करोगे?"

धीरे धीरे सूर्य अस्त होने लगा। मंजरी रो रोकर थक गई। बच्चे उठे। उन्हें फिरसे खिलाया, कपड़े पहनाए। वह उन्हें लेकर गढ़पर गई और पश्चिम दिशाकी ओर एकटक देखती रही। नदीके तटपर एक बगुला भी न था। उसे भय लगा।

"माँ, क्या देखती हो?"

"तुम्हारे बापू इसी रास्ते आनेवाले हैं।" सुन पड़े ऐसी आवाजमें मंजरीने कहा।

"आये?" वौसरीने पूछा।

"नहीं।"

वह बहुत देरतक नदीके सामने देखती खड़ी रही। बच्चोंके साथ बोलनेकी शक्ति उसमें न थी। फिर वहाँसे जाकर मन्दिरके चबूतरेपर जा बैठी।

सन्ध्या होते ही आँबड़ मेहता, मणिभद्र और गंगली सब आये।

"समय हो गया?"

"नहीं, जरा देर है। देवाजी तैयार होने गए हैं।"

"माँ, इस समय जाना है?" महाश्वेताने पूछा।

"हाँ बेटी। गंगली, तैयार हो गई?"

आँबड़ने कहा, " गंगली, ले यह कड़ा, तेरे काम आएगा। मेरा भाई बाहड़ मेहता है। खंभातमें तलाश करेगी तो मिल जायगा। उसे यह पत्र दे देना। तुझे वह बहुत मदद देगा।" गंगलीने चुपचाप कड़ा ले लिया और कमरमें बाँध लिया।

" जहाँ तक बने जल्दी ही पाटन जाकर त्रिभुवनपाल महाराजकी रानी काश्मीरा देवीको ये बच्चे सौंप आना।"

" अच्छा माँ, आप ज़रा भी फिकर न करें। भोलानाथकी कृपा होगी तो सब ठीक हो जाएगा।" तेलिनकी आँखोंमें आँसू आ गए।

वौसरीने जम्हाई ली। " थोड़ी देर हो जाए, तो हर्ज नहीं, इसे सुला दूँ।" कहकर मंजरी पीछे लौटी और थोड़ी दूर जाकर वौसरीको थपथपाकर सुलाने लगी।

मंजरीको उस समय ऐसा लगा जैसे वह अपने बच्चोंके गलेपर छुरी फेर रही हो। थोड़ी देरमें वौसरी सो गया।

" बेटी महाश्वेता," मंजरीने लड़कीसे कहा, " जाते समय रोना नहीं। तू तो बहादुर है न?"

" महाश्वेता रो पड़ी। " माँ, मुझे तुम्हारे विना कैसे अच्छा लगेगा?"

" अरे, तेरे बापूजी आए कि मैं आई। देख, तू तो बड़ी समझदार है। अपने भैयाको सँभालना और काश्मीरा देवीके यहाँ सयानी बनकर रहना। और तेरे बापू—" मंजरी बोल न सकी।

" देख, तेरे बापूजी आ जाएँ, तो उनकी सेवा करना मेरी बिटिया।"

—" और माँ तुम?" हिचकियाँ लेते हुए अधीरतासे महाश्वेताने पूछा।

" मै न आऊँ तो...मुझे...याद करना।" मंजरीको हिचकी आई। परन्तु उसने हिम्मत करके रोना रोक दिया और होठ दबाकर वौसरीको उठा लिया।

उसकी आँखोंमें स्थिर तेज आ गया। वह सिर ऊँचा रखकर दृढ़तासे दरवाजेके सामने गई और गंगलीको वौसरी सौंप दिया। " गंगली, मेरे ये लाड़में पले हुए फूल सँभालना।" मंजरीने निःश्वास छोड़ा। सबकी आँखें सजल हो गईं।

" देवा," आँबड़ने पूछा, " रास्तेमें अड़चन तो नहीं आयेगी? नहीं तो मैं चलूँ।"

"अन्नदाता, जरा भी चिन्ता न करें। गंगलीको बराबर पहुँचा दूँगा।" कहकर उसने जोरसे नाक साफ की।

देवाने खिड़की खोली और बाहर गया और चौसरीको ले लिया। फिर महाश्वेताको लिया। उस बहादुर छोकरीने एक शब्द बोले बिना ही केवल हाथसे ही मातासे आज्ञा माँगी।

उसके छोटे अनजान अन्तरमें इस समय न जाने क्या हो रहा था, कुछ समझमें नहीं आता था, केवल रोऊँ रोऊँ हो रहा था।

"बेटी, सँभालना!" मंजरीने कहा। देवाने खिड़की बंद कर दी और आँबड़ने अन्दरसे ताला लगा दिया।

मंजरी अधिक देर खड़ी न रह सकी। वह तेजीसे अकेली ही सिर ऊँचा किए गढ़के कंगूरोंपर चली गई।

इस अपार शोकमें उसे आश्वासन देनेकी किसीमें हिम्मत न थी।

५—देवा और नेराका सहवास

मंजरी कंगूरेपर चढ़ गई। नदीका पाट चाँदनीने रुपहले रंगसे रंग दिया था। निर्मल आकाशमेंसे शान्त चन्द्र मानव-पीड़ाकी विडम्बना करता हुआ देख रहा था।

जिस प्रकार हिंसककी आँखें देखकर उसका शिकार उन परसे अपनी नजर नहीं हटा सकता, उसी प्रकार मंजरी नदीमें पड़ती हुई चाँदनीकी परछाईं परसे नजर न हटा सकी। यह चाँदनी और उसकी परछाईं तो उसकी पुरानी सहेली थी। भृगुकच्छ आनेके पश्चात् कदाचित् ही कोई पूर्णिमा ऐसी गई होगी जिसका आह्लाद उसने न चखा हो। इस समय वह असह्य लगती थी, फिर भी आकर्षित करती थी।

एक प्रकारकी शून्यता उसके हृदयमें बसी हुई थी। वह विचार नहीं कर सकती थी, और भावोंका अनुभव भी न कर सकती थी। वह पत्थरकी मूर्तिकी

तरह खड़ी रही और कब तक खड़ी रही, इसका उसे पता न चला। उसकी निस्तेज आँखें नदीके कौमुदीमय पाटपर ठहरी रहीं।

नेराकी की हुई बरबादीमेंसे जो दाल-चावल बचे थे, उन्हें सेक, पीस कर जो राबड़ी बनाई गई थी केवल वही उसने दोपहरको पी थी। सारा दिन उसने उद्वेगमें काटा था। संध्याको स्वस्थता प्राप्त करनेके लिए उसने अपनेपर अत्याचार किया था। इस समय उसके पेट और सिरमें शारीरिक अशक्तिके चिह्न मालूम हो रहे थे। फिर भी उनकी परवा करने जितना होश उसे न था। दुःखने उसे मूढ़-सी बना दी थी।

एक रास्ता भूला हुआ पक्षी फड़फड़ करता हुआ, कोटसे टकरा कर उड़ गया। उसकी फड़फड़ाहट सुनकर मंजरी जड़तासे जागी। उसने घबरा कर चारों तरफ़ देखा, और धड़कता हुआ हृदय हाथसे दबाया। उसकी सभी भावनाएँ सचेत हो गईं और भूख, अस्वस्थता, निराधारता, वत्सलता और पति-विरहकी समग्र पीड़ाओंका उसे भान हुआ। कोटको पकड़कर वह खड़ी हो गई। उसके दुखका किनारा न दिखाई दिया।

वह धीरे धीरे महादेवके मंदिरमें गई, किन्तु कुछ चैन न मिला। जिस देवने उसकी यह दशा की उससे अधिक क्या कहा जाय, ऐसा कुछ विचार उसके मनमें आया।

थोड़ी देरमें मणिभद्र उसे खोजता हुआ आया। "बहिन, रात बहुत हो गई, अब सो जाओ, नहीं तो तबीयत खराब हो जाएगी।"

"हाँ भाई।" उसने बड़ी मुश्किलसे जवाब दिया। "आँबड़ मेहता सो गये?"

"नहीं, वे तो देवाकी राह देख रहे हैं।

"देवाजी, अभी तक नहीं आए?"

"नहीं।"

"क्यों, क्या हुआ?"

"नीचे सख्त पहरा है, इसलिए देर लगी होगी; परन्तु देवा चतुर है। सोचा हुआ बराबर करेगा।"

"और नेराका क्या हाल है? मैंने तो उसे देखा ही नहीं।"

"बहिन, उसकी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं।"

"क्यों।"

"उसे भयानक हैज़ा हो गया है। घड़ी दो घड़ीका ही पाहुना लगता है।"

"अरे रे रे!—और बेचारी गंगली—"

"वह सुखी हुई। अब तुम डेरेपर चलो और जरा आराम करो।"

"चलो, मैं आँबड़ मेहताकी खबर ले आऊँ।" कहकर मंजरी ओठ दबाकर चलने लगी कि एकदम उसके पेटमें ऐंठन हुई और वह बैठ गई। मणिभद्र मदद करने दौड़ा।

"कुछ नहीं।" हाँफती हाँफती मंजरी बोली और मणिभद्रको धैर्य बँधानेके लिए फीका हँसकर बोली, "सबने मुझे फूल जैसी सुकुमार बना रखी है, सो ऐसा तो होगा ही।"

मणिभद्र इस सुकुमार स्त्रीके साहसपर न्यौछावर हो गया। थोड़ी देरमें वह ओठ दबाकर सतर हुई, दीवार थामकर खड़ी हुई और मणिभद्रका हाथ पकड़कर दरवाजेकी ओर चली।

दरवाजेके सामने ही पेटको हाथसे दबाए उदा मेहताके सुकुमार कुँवर पाटनकी गौरव-रक्षा कर रहे थे। वे विचार कर रहे थे कि यदि मैंने पिताकी सलाह मानकर छोटे भाईकी तरह वार-त्योहार एकासन किए होते तो इस समय ऐसी दशा न होती। किन्तु सारी जिन्दगी चूँकि मौजसे बिताई थी, इस कारण इस समय भूखकी वेदना ज्यादा साल रही थी।

"भैया, कैसे हो?" मंजरीने जैसे तैसे सूखे हुए कंठमेंसे शब्द निकाले।

"ठीक हूँ।" पेट परसे हाथ हटाते हुए आँबड़ने कहा, "अब तुम सो जाओ।"

"देवाजी लौट आएँ, तो सो जाऊँ।"

"उसे तो देर लगेगी। जरा लेट लो।" मंजरीने देखा कि उससे यहाँ मर्यादाकी रक्षा करते हुए अधिक समय नहीं बैठा जायगा, इसलिए उसने कहा, "ठीक है, जब देवाजी आ जाएँ तब कहलवा देना।"

"अच्छा बहिन।"

चन्द्रमाके प्रकाशमें मणिभद्रके हाथपर हाथ रक्खे ज्यों त्यों कर चली जाती हुई

इस सुकुमार सुंदरीकी ओर आँबड़ स्नेह-स्निग्ध दृष्टिसे देखता रहा। "बेचारीकी क्या दशा है! भगवान इसके लायक भी शक्ति मुझे दे तो ठीक है।" इस दुःखी अवस्थामें भी उसे हिम्मत आई। सारी दुनियामें यह और मैं, इस समय निराधारीमें साथ हो गये हैं। यह निराधारता न होती तो हम कैसे मिलते?

मंजरी जाकर लेटी और उसे नींदका झोंका आया; किन्तु थोड़ी ही देरमें वह फिर जाग गई। दरवाजेके आगे कोई बातें करता मालूम हुआ। बच्चोंका क्या हुआ? वह एकदम उठी, पल्ला सिरपर डाला और नीचे उतरकर फुर्तीसे दरवाजेकी तरफ गई। देवा पृथ्वीपर पड़ा था और मशाल जलाकर आँबड़ उसे देख रहा था। मंजरीको धक्का-सा लगा। वह दौड़ी गई।

"क्या है?"

"कुछ नहीं बहिन, देवा गलेमें हाथ दिए बोल रहा था।

"बच्चे और गंगली सुखसे पहुँच गए। चौकी पार कर ली। किन्तु मैंने कहा था न?" उससे साँस नहीं ली जाती थी और मुँहसे फेन आ रहा था। उसके गलेके पास एक तीर लगा हुआ था। उसकी नोक दीखती थी।

"किन्तु यह तुम्हें क्या लगा?"

"बहिन, मैं वापस आ रहा था कि एक झाड़ीमें जरा खड़खड़ाहट हुई और किसी चौकीदारने तीर मार दिया। मैंने कहा था न—मेरे छप्परपर नहीं तो उल्लू क्यों बोलता?" देवाने सिर हिलाते हुए कहा। उससे स्पष्ट नहीं बोला जाता था, जीभ ऐंठ रही थी।

"देवाजी, तीर निकाल दूँ?" आँबड़ने कहा।

"नहीं, अन्नदाता—नहीं।" गर्दन नीचे डालकर देवाने कहा। "गहरा पैठ गया है। इसे निकाला कि मेरी—आ बनी। अभी नहीं। ओ—बहिन, भटराज भाई आएँ तो कहना कि देवाने भूल की—कोठारका अनाज फैंक दिया। मेरे भाई!-भाई!"-वृद्धकी पुतलियाँ चकर-मकर घूमने लगीं। मंजरी पास जाकर बैठ गई और पीठपर हाथ फेरने लगी। थोड़ी देरमें वृद्धकी मूर्च्छा कुछ कम हुई। उसने आँखें फाड़कर मंजरीके सामने देखा।

"बच्चे सुखमें हैं। सो रहे थे। उन्हें किसीने नहीं देखा। बहिन! भाई! ओ भाई!-बहिन," उसने गलेपर हाथ रखा। "पानी!" उसकी पुतलियाँ

फिरने लगीं। मणिभद्र दौड़कर पानी ले आया और अँगुलियोंसे देवाके मुखमें डाला। "बहिन, भोलानाथ भला करें! जाओ—तु—म जा—ओ। तुमसे नहीं देखा जायगा। हर—भोलानाथ।"

"तुम घबराओ मत।" मंजरीने कहा "कोई दवा लाऊँ?"

"बहिन, इसकी दवा...है नहीं...जाओ।" वृद्धने चिढ़कर कहा। "तुम जाओ। तुमसे नहीं देखा जायगा।"

मंजरी वृद्धको राजी करनेके लिए उठी और उसे मणिभद्रको सौंप दिया। "देवाजी, मैं जाती हूँ।"

"जाओ बहिन,—ओ—ओ—ओ," कहकर उसने फिर अपना गला पकड़ा।

मंजरी तेजीसे चली गई। उसका मस्तिष्क काम नहीं कर रहा था। उसे चक्कर आने लगे थे।

मंजरी गई कि देवाने तीर खींच निकालनेको कहा। आँबड़ने उसे धीरेसे निकाला कि घावमेंसे रक्तकी धारा बह निकली। वृद्धने मणिभद्रके हाथपर माथा रख दिया। उसके गलेमें थोड़ी देर घरघराहट हुआ और उसकी आँखें फट गईं। वह शव होकर पड़ गया।

"हर हर शंभो!" मणिभद्र बोला और मुर्देको पृथ्वीपर लिटाकर खड़ा हो गया।

"आँबड़ भाई, यमराजने घर देख लिया।"

आँबड़ फीका पड़ गया। ऐसी विटंबना, इतना दुख और इतने संकट आ सकते हैं, उसने कभी कल्पना भी न की थी। किन्तु आपत्तिमें उसका आत्मबल मुरझाया नहीं।

"मणिभद्र, जो पार्श्वनाथ भगवान करें, सो ठीक। इसे ले जाकर इसी समय जला आना चाहिए।"

"भाई, वह भी तो घड़ियाँ गिन रहा था।"

"कौन, नेरा?"

"हाँ।" दोनों चुपचाप जिस कोठरीमें नेरा पड़ा था, वहाँ गए। नेराको सख्त हैज़ा हुआ था और इस समय उसका स्वास दूरसे भी सुन पड़ता था।

दोनों छपरीके द्वारके सामने जा खड़े हुए। अन्दरसे आनेवाली दुर्गन्ध असह्य थी। नेराका 'एकदंडी' श्वास चल रहा था। यमके सानिध्यमें दोनों आदमी अपना दुःख भूल गये और उनके हृदय त्राससे बैठ गये। एक ही दिनमें उनका जीवन-स्रोत तेजीसे अन्तकी ओर बहा जा रहा था।

कोई आधी घड़ीमें नेराकी साँस बन्द हो गई। आँबड़ और मणिभद्र दोनों काँप गये।

"भाई," मणिभद्रने कहा। "आप उस तरफ लकड़ियाँ ठीक कीजिए, इतनेमें मैं इसे नहला दूँ। फिर दोनोंको चितापर चढ़ा देंगे।"

आँबड़ मेहता चुपचाप काम करने चले गये। उनका जोश भी ठण्डा हो गया। जीवन-भरमें जो नहीं बीता था, वह एक दिनमें उनपर बीत गया।

मणिभद्र कुएँपर जाकर पानी ले आया और किसी तरह उसने नेराके शवको साफ किया। आँबड़ मेहता आए तब दोनोंने उसके शवको चितापर चढ़ाया और देवाका शव भी लाकर रख दिया।

मणिभद्रने कुछ मंत्र पढ़कर चितामें आग लगा दी और आँबड़ मेहतासे कहा—"मुझे चक्कर आ रहे हैं। मैं जाता हूँ, मुझसे खड़े नहीं रहा जाता।"

"जाओ, सो जाओ। जरा लकड़ियाँ चेत जाएँ कि मैं भी आता हूँ।"

"मैं बहिनके डेरेके निचले खंडमें रहूँगा। मुझे बहिनसे दूर सोना ठीक नहीं लगता। उनकी तबीयत भी अच्छी नहीं हैं।" ज्यों त्यों कर चलते हुए आँबड़ने कहा।

"हाँ, यह ठीक है।"

मणिभद्रका शरीर मेहनत, व्रत और उपवासोंसे कसा हुआ था, इसलिए अशक्तिके सिवाय उसे कुछ न लगता था। किन्तु इस समयकी मेहनतसे तो वह भी थक गया था।

थोड़ी देर तक वह चिताकी ओर देखता रहा और जब आग बराबर सुलग गई, तब वह चल पड़ा। "चल रे जीव! अभीसे इस तरह थक जानेसे कैसे पूरा पड़ेगा! हर भोलानाथ! कौन जाने किस नक्षत्रमें मैं भृगुकच्छ... आया। अरे हाँ, तब सामने जती मिला था। हर—हर—हर—फिर और क्या चाहिए?"

देवाके नसीबमें नेराका सहवास लिखा था, वह मिथ्या न हो सका।

६—नाथकी आज्ञा

मंजरी जब डेरेपर आई तब उसका हृदय अस्वस्थताकी पराकाष्ठा अनुभव कर रहा था। उसने सब कुछ सहन किया था; किन्तु मृत्युके इस भयंकर दर्शनसे उसकी हिम्मत टूट गई। इस समय उसे कोई वेदना या दुःख नहीं था; किन्तु त्रास उसके रोम रोममें फैल गया था। सुख-साता और संरक्षणमें पली हुई वह सुंदरी आजकी घटनाओंसे मरनेको हो गई। उसके अंग अंगमें शीत व्याप गया। कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? किसकी शरण लूँ? उसे इन प्रश्नोंके उत्तर खोजनेका होश न था। वह विकराल निराशासे त्रस्त थी।

वह अपने डेरेपर आई और जब मणिभद्रका 'हरहर शंभो' सुना, तब काँप उठी। देवा मर गया और नेरा मरनेको बैठा है, अब कल किसकी बारी है? मणिभद्रकी, आँबड़की, या मेरी? वह बिस्तरपर लेट गई और कानोंपर हाथ दे लिये। "ओह!" इस जीवलेन त्रासमें रोनेका भी उसे होश न रहा। वह सो न सकी, उठ बैठी और खड़ी होकर खिड़कीमेंसे नदीकी ओर देखने लगी।

"माँ! माँ! तुम क्यों नहीं सुनतीं? क्या कर रही हो? अब हमारा क्या होगा? मेरे दुर्गपाल कहाँ—मैं कहाँ—बच्चे कहाँ?—दुर्गपाल! नाथ! तुम भी निर्दय हो गए? तुम कहाँ चले गए?—तुम्हें क्या हुआ? जयसिंहदेवने मरवा दिया?" उसके काँपते हुए हृदयमें नया धक्का लगा। "नहीं नहीं, किसकी मजाल है जो तुम्हारा बाल भी बाँका कर सके?"

"किन्तु मैं कहाँ जाऊँ? नाथ! नाथ! तुम मुझे क्यों छोड़ गए? तुम साथ होते तो मरना अच्छा लगता। तुम्हारी गोदमें सिर रखकर तो मरती . "

"क्या काल आ पहुँचा? उन्हें फिरसे न देख पाऊँगी? अपने बच्चोंको न खिला पाऊँगी? अकेली ही इस निर्जन गढ़में मर जाऊँगी? मेरे प्रियतम! तुम्हें देखे बिना मेरे प्राण कैसे जाएँगे?"

वह बोल न सकी। उसका गला भर आया, वह चिल्लाकर रो पड़ी। वह बैठ गई और मुख ढँककर रोने लगी। "नाथ–मेरे स्वामी—" इनके सिवाय दूसरे शब्द उससे न बोले गए।

वह बहुत देर तक रोई और पागलकी तरह बोलती रही। धीरे धीरे रोनेका आवेग कम हुआ और वह आक्रन्दन करके बोलने लगी।—

"नाथ ! नाथ ! यह क्या कर रहे हो ?

हा नाथ हा महाराज हा स्वामिन्कि जहासि माम् ।
हा हतास्मि विनष्टास्मि भीतास्मि निर्जने वने ॥
ननु नाम महाराज धर्मज्ञः सत्यवागसि ।
कथं विधंस्त्वं हि तथा सुप्तामुत्सृज्य मां गतः ॥
कथमुत्सृज्य गन्तासि वश्यां भार्यामनुव्रताम् ।
विशेषतो नापकृतः परेणापकृतो ह्यसि—[१] ।"

उसकी आवाज टूट गई और हिचकियाँ लेते लेते उसे मूर्छा आ गई ।

वह सारी रात अचेत अवस्थामें पड़ी रही । प्रातःकालका पवन जब नर्मदाके जलसे शीतल होकर बहने लगा तब वह जागी और जैसे ही जागी कि उठकर बैठ गई ।

उसका बदन दुख रहा था, माथा फट रहा था, रगोंमें रक्त ज्वरकी तेजीसे दौड़ रहा था । पिछले दिनकी घटनाओंका विचार आने पर उसके फीके होठ मुँद गए और निस्तेज आँखोंमें तेज आ गया ।

"मैं रोई, मैंने विलाप किया । बच्चोंको भेजते हुए एक सामान्य स्त्रीकी तरह मेरी छाती फट गई !" उसने अपनी तरफ तिरस्कारसे देखा । "मैं दीन बनी, लाचार बनी । मैंने तुम्हें दोष दिया—अपने नाथको दोष दिया । मुझे क्या हो गया ? अपने नाथको अविचारी और घातकी नल राजाकी पंक्तिमें रखा ! मुझे क्या हो गया ? मैंने दमयन्तीकी तरह निराधार होकर आक्रन्दन किया ?" उसकी भौंहें मिल गईं । "मेरी निर्बलता-मेरी अधोगतिका पार न रहा । मुझसे तो आँबड़ और गरीब बेचारा मणिभद्र अच्छा । अब तक इनकी आँखोंसे एक बूँद भी आँसू नहीं गिरा । नाथ ! तुमने मेरा कैसे विश्वास किया ? तुम वीर हो, मुझे वीरांगना समझा, पर मैं तो यहाँ रोने बैठ गई । मेरे वीर ! क्षमा करो । मुझे खबर न थी कि कविकुलशिरोमणिकी कन्या और तुम्हारी पत्नी इस प्रकार निर्बल हो जाएगी ।"

१—हे नाथ ! हे महाराज ! हे स्वामी ! तुम मेरा त्याग क्यों कर रहे हो ? मैं मारी गई, मैं नष्ट हुई—निर्जन वनमें मैं डरी । हे महाराज ! तुम धर्मज्ञ और सत्यवक्ता हो । —महाभारत, वनपर्व, अध्याय ६०

"नाथ! क्षमा करो। अब मैं निर्बलता नहीं दिखाऊँगी। मेरा संसारसे क्या सम्बन्ध? मुझे जीवन और मृत्युसे क्या मतलब? तुम और मैं—अमर वीरताकी दो चिनगारियाँ। तुम जहाँ हो देव, वहीं विजयी होओ। जीवनमें और मृत्युमें—और मैं तुम्हारी दासी—मैं भी विजयी होऊँगी। मुझे न तो दुश्मनका डर है और न यमराजका।"

उसने बाल सँवारे। साड़ी ठीक की। नीचे उतरनेका काम सहज न था, क्यों कि उसके पैर जमते न थे, किन्तु वह किसी तरह नीचे उतरी।

बलजोरीसे धीरे धीरे, किन्तु मजबूत डगें रखती हुई वह रसोईघरकी ओर गई। वहाँ आँबड़ और मणिभद्र बैठे बैठे बातें कर रहे थे। वे मंजरीको देखकर चौंके।

एक दिन-रातमें ही वह सूख गई थी। उसकी सफेद चमड़ी संगमरमरसे भी सफेद हो गई थी। केवल उसके मुखपर जरा-सी ज्वरकी लाली दीखती थी। उसकी आँखोंके आसपास काले वर्तुल पड़ गये थे। उसकी बावली जैसी आँखें अपार्थिव तेजसे जल रही थीं। वह सावधानीसे, किन्तु बड़ी मेहनतसे डग रखती थी। वह पहलेकी तेजस्विनी सुन्दरी और मतवाली मंजरीकी क्षीण परछाईं जैसी लगती थी।

"आँबड़ने आगे आकर पूछा, "बहिन, कैसी हो?"

"अच्छी ही तो हूँ भैया!" उसके उच्चारणमें आवाजको स्थिर करनेका प्रयत्न जान पड़ता था।

"बैठो बहिन।" कहकर मणिभद्रने चौकी रख दी। मंजरी वस्त्र सँभालकर धीरेसे बैठ गई।

"नेराका क्या हाल है?"

"वह भी गया।"

"दोनोंका अग्नि-संस्कार कर दिया?"

"हाँ।"

मंजरी कृत्रिम हँसीसे बोली, "हम आठ थे, अब तीन रह गये।"

"बहिन, हम एक विचार कर रहे थे।" आँबड़ने गला साफ करते हुए कहा।

"क्या?"

"दो दिनमें अन्न बिल्कुल खत्म हो जायगा और तब हम तीनों भी इसी रास्ते जायँगे। उसके बाद गढ़ पड़ेगा।"

मंजरी देखती रही, किन्तु कुछ बोली नहीं।

"इसकी अपेक्षा हम यहाँसे भाग निकलनेका कोई रास्ता पकड़ें तो कैसा?" आँबड़ने पूछा।

मंजरी विस्मित हुई। उसकी बड़ी बड़ी आँखोंमें तिरस्कार दिख पड़ा, उसके हाथ काँप उठे।

"भाई आँबड़, मणिभद्र और तुम दोनोंमेंसे जिसे जाना हो वह जाए।" उसने तिरस्कारसे कहा। "इतना याद रखना कि मणिभद्रको तो भीख माँगकर जिन्दगी पूरी करनी है, किन्तु तुम्हारा क्या होगा? उदा मेहताके लड़केको तो सारी जिंदगी शर्ममें डूब कर मरना होगा।" बोलते बोलते मंजरीकी साँस फूल आई, इससे वह रुक गई।

"किन्तु बहिन, यहाँ रहनेमें तो कोई लाभ नहीं दीखता।" आँबड़ने डरते डरते कहा।

"लाभ!" मंजरीने जरा खाँसकर बोलना शुरू किया। उसकी निर्बल आवाजमें भी सच्चे प्रताप और संस्कारकी प्रतिध्वनि सुन पड़ी। "भाग जाओगे तो लाभ होगा, स्त्री मिलेगी, बापका धन मिलेगा, खुशामदी लोग बड़ा भी कहेंगे। किन्तु अकेले हाथों भृगुकच्छका गढ़ टिकाये रखनेका यश नहीं मिलेगा, और यदि कहीं दुश्मनके हाथों पड़ कर मरे, तो माँकी कोंख लजाएगी और यहाँ"—मंजरी फिर खाँसी, "और यहाँ मर जाओगे तो...जब तक एक भी गुजराती रहेगा तब तक तुम्हारी कीर्ति अमर रहेगी।"

"बहिन, किन्तु इस तरह जिन्दगी बरबाद कर देना—"

"भैया!" कठोरतासे मंजरीने कहा। "कायरके लिए जीवन और मृत्यु होती है, वीरके लिए तो एक कीर्ति ही है।"

"किन्तु बहिन," आँबड़ने कहा, "तुम्हारी तबीयत बिल्कुल गिर गई है। गढ़का जो होना है वह हो किन्तु आपको कुछ हो जाय, तो दुर्गपाल और दुनियाके सामने हम क्या मुख दिखायेंगे?"

"मेहता," मंजरीने कहा, "कल तो मैं पागल थी। तुम्हें जान बचानी हो, तो खुशीसे जाओ। किन्तु मैं—जबतक मेरे दुर्गपाल न आ जायँ अथवा गढ़ न पड़

जाए तब तक, यहाँसे जीती नहीं जाऊँगी।" वह थोड़ी देर मौन रही। उसकी कनपटीकी शिराएँ जोरसे धड़कती दिखती थीं। मेरे लिए जीवन क्या और मृत्यु क्या ?–मैं–शेषनागको भी मात देनेवाले महारथीकी अर्धांगिनी हूँ।" उसकी आँखें फट गईं। "मैं तो यहीं रहूँगी और अपने दुर्गपालकी बाट देखूँगी। यदि मर जाऊँगी तो मृत्युमें भी अपने प्रचण्ड वीरका वामांग—इस गढ़पर... उसकी कीर्तिके समान ज्वलंत और अडिग..." वाक्य पूरा न हो सका और खाँसीका दौरा हो गया। किसी तरह जब खाँसी रुकी, तब मंजरीने अपनी साड़ीके पल्लेसे मुँह पोंछा, देखा कि उसपर रक्त आ गया है। उसके नथुने भी फटे जा रहे थे।

"बहिन, यह मुँहसे रक्त निकला !" मणिभद्रने कहा।

"मुझे जरा पानी दो।"

मणिभद्रने पानी दिया।

"मैं डेरेपर जाऊँगी। मेरा हाथ पकड़ो। मेरी आँखोंमें अँधेरी आ रही है।"

मणिभद्र मंजरीका हाथ पकड़कर उसे डेरेपर ले गया और बिछौनेपर लिटा दिया। वह और आँबड़ अपना दुख भूलकर मंजरीकी शुश्रूषामें लग गये। दोनोंके हृदयमें अकथनीय चिन्ता उत्पन्न हो गई। दोनोंको लगा कि मणिभद्रने जैसा कहा था सचमुच ही यमराजने घर देख लिया है।

मंजरीको ज्वर चढ़ने लगा, और थोड़ी देरमें सन्निपात जैसे लक्षण दिखने लगे। मणिभद्र और आँबड़ने पारी पारीसे वहीं बैठनेका निश्चय किया।

मंजरी थोड़ी देर चुप पड़ी रहती और फिर कुछ अस्पष्ट-सा बड़बड़ाती। उस बकवासमें ज्यादातर काकके संबोधन रहते।

मणिभद्र नहाकर मंजरीके लिए राबड़ी बना लाया और किसी तरह थोड़ी-सी उसके गलेमें उतार दी, किन्तु थोड़ी ही देरमें उसने कै कर दी।

"मणिभद्र, अपनी तो आ बनी।" आँबड़ने कहा।

"भाई, मैंने तो बहिनको यहाँसे निकाल ले चलनेकी तजवीज की थी। पंद्रह वर्ष हुए जब बहिनको देखा, तभी मैंने इनकी सेवामें प्राण दे देनेका निश्चय किया था। आज वह निश्चय सफल हुआ।"

"पंद्रह वर्ष हुए ?"

"हाँ, मेरे गुरु इनके नाना हैं। इतने वर्ष मैंने ज्यों त्यों निकाले और आखिर मेरे नसीबमें लिखा था, सो यहाँ आ गया। हर हर महादेव!" कहते कहते मणिभद्रकी छाती भर आई।

"ठीक कहते हो भैया!" आँबड़ने मणिभद्रके पैरपर स्नेहसे हाथ रखते हुए कहा। "ये क्या स्त्री हैं? देवी हैं।" मंजरीके विषयमें उससे और कुछ कहते नहीं बनता था।

आँबड़की आँखें सजल हो गईं। मणिभद्रने सहानुभूतिसे उसका हाथ दबाया। पाटनके धनाढ्य मंत्रीके बिगड़े हुए कुँवरने और जूनागढ़के भटकते हुए ब्राह्मणने एक देवीकी भक्तिमें मातृभाव अनुभव किया। उस समय यह भक्तिकी पात्री बेहोशीमें अपने प्रोषित पतिका नाम रट रही थी।

दोपहरके बाद थोड़ी देर तक मंजरी शान्त और निश्चेष्ट पड़ी रही। उसे थोड़ी थोड़ी देरमें खाँसी आती थी, इससे परिचर्या करनेवालोंकी चिन्ता बढ़ती थी।

संध्याको ज्वर उतार पर आया और उसने आँखें खोलकर पूछा, "आ गये?"

मणिभद्र और आँबड़ दोनोंने एक दूसरेको देखा। "अभी आएँगे।" मणिभद्रने कहा।

मंजरीने फिर आँखें बंद कर लीं। मणिभद्र फिरसे राबड़ी बनाकर लाया और उसे देनेका प्रयत्न किया, परंतु वह पेटमें टिकी नहीं। दुस्सह ज्वर और उन्मत्त कल्पनाके पंखोंपर चढ़कर मंजरी सन्निपातकी सृष्टिमें विहार कर रही थी। वह एक ही नाम रटती थी, एक ही मूर्ति ढूँढ़ती थी। उसने तीनों भुवन खूँद डाले, किन्तु दुर्गपाल नहीं मिला। उसका उद्वेग बढ़ा, अधीरता भी बढ़ी, किन्तु उसके नाथका पता न चला। "नाथ! नाथ!" बस इतना ही वह बोलती थी।

वह लाल ज्वालासे भयानक बने हुए अंधकारमय प्रदेशमें त्रस्त होकर लौटी। उसे कोई खींचे लिये जा रहा था। वह केवल "मेरे नाथ!" बोलती थी। न जाने कहाँसे एक प्रचण्ड स्वरूप उसकी लाल आँखोंसे दीख पड़ा, जो काला था। उसका मुख कुछ कुछ देवासे मिलता था। आँखोंमें खून था, मुँहपर कठोरता थी। मंजरीको कंपकँपी आ गई। उसने उड़ती हुई आवाजमें कहा, "नाथ!"

आसपास ज्वालामय अंधकार चक्कर खाकर घूमता रहा और बीचमें विकरालसे विकराल होता हुआ वह स्वरूप पाससे पास आता गया। उसने मंजरीको आनेका इशारा किया। आँखोंसे या हाथसे, यह समझमें नही आया।

मंजरीको क्रोध आया—ऐसा क्रोध कि उसकी साँस रुँधने लगी। "मेरे नाथकी आज्ञाके बिना तू बुलानेवाला कौन?" वह आकार ज्यादा भयानक हुआ। मंजरी गर्वसे हँसी—वह तो शेषनाग और भैरवको पराजित करनेवाले काककी अर्धांगना थी। "मेरे नाथकी आज्ञा!" उसने गहराईमेंसे घोषणा की। "नाथकी आज्ञा" की यह भयंकर ध्वनि तीनों भुवनमें गूँज उठी और उस अंधकारके त्रासदायक वातावरणमेंसे—मानो विनष्ट होती हुई सृष्टिकी कड़कड़ाहट सुन पड़ती हो, उसमेंसे—क्षणक्षणमें सर्वव्यापी होते हुए उस भयंकर स्वरूपके विशाल मुखमेंसे, प्रचण्ड सर्वग्राही प्रतिशब्द हुआ "नाथकी आज्ञा!" और ब्राह्मण-श्रेष्ठ पूर्वजोंके तपोबलके प्रभावसे, दुर्धर्ष और दुर्जय प्रतापी अपने वीरकी अडिगतासे और अपने गगनभेदी गर्वके गौरवसे उछलते हुए हृदय और रंगोंसे उसने जवाब लौटाया "नाथकी आज्ञा!" और तांडव नृत्यका आरंभ करते हुए त्रिपुरारिके डमरू और घुँघरुओंकी विनाशक गर्जनामेंसे—उखड़ते हुए पर्वत, फटती हुई पृथ्वी और टकराते हुए ग्रहोंके प्रलय तूफानके उठते हुए तुमुल नादोंमेंसे—नदीकी शंख जैसी अपार्थिव और हृदयभेदक ध्वनि सुन पड़ी; "आज्ञा ले आओ।"

एकदम जोर लगाकर मंजरी उठ बैठी। "यह ले आई।" उसने चारों तरफ देखा और कहा—"नाथ! कहाँ हो?" उसकी आँखें फट गई। "नाथ!" कहकर उसने साड़ी सँभाली। वह उठी और सीढ़ियाँ उतरने लगी।

आँबड़ मेहताके पेटमें दर्द था। उसे सोने भेजकर मणिभद्र कोनेमें बैठा था। थोड़ी ही देर हुई कि उसे नींदका झोंका आया था। मंजरीको सीढ़ियाँ उतरते देखकर वह चौंका "बहिन! बहिन!"

"आज्ञा ले आऊँ।" कहकर मंजरी तेजीसे उतरकर बाहर निकली।

"किसकी?" मणिभद्र उसके पीछे हाँफता हुआ दौड़ा। उसका हृदय कहना नहीं मान रहा था।

"मेरे—नाथ—"

आगे आगे मंजरी और पीछे पीछे मणिभद्र, इस प्रकार दोनों चले। मंजरी शववत् किन्तु स्वस्थतासे झपटकर चल रही थी। उसकी बावरी आँखें गढ़के पश्चिमी कंगूरेपर ठहरी हुई थीं।

"बहिन! बहिन!" मणिभद्रने कहा। उसे ऐसा लगा कि धरती काँप रही है। मंजरीने उत्तर नहीं दिया। वह बड़बड़ाई—"नाथ! ओ नाथ!" वह ज्यों ही पश्चिमके कंगूरे पर पहुँची कि उसका पाँव डगमगाया, और मणिभद्र उसे सँभाले, इसके पहले ही वह पत्थरपर गिर पड़ी। मणिभद्र उसके पास जा बैठा। मंजरी बेहोश थी और उसके माथेसे रुधिर बह रहा था।

मणिभद्र घबराया। उसने आँबड़ मेहताको आवाज देनेके लिए सिर उठाया। थोड़ी दूरपर जमीन एकदम ऊँची हुई और धीरेसे देवा नायककी प्रेतात्मा पृथ्वीमेंसे मशाल लेकर ऊपर आती दीख पड़ी!

अज्ञान ब्राह्मणके हाथ पैर ढीले हो गये। वह मुट्ठी बाँधकर भागा। "अरे बापरे!" की पुकार घिग्घी बँध जानेसे उसके कंठमें ही रह गई।

७—प्रेम-समाधिका अंत

मीनलदेवीके रिसालेको छोड़कर काकने यथाशक्य उतावलीसे लाटीका रास्ता पकड़ा।

सोरठकी साँड़नियोंने भी जो एक घड़ीमें एक योजन चलती थीं—ऐसा अधीर सवार कभी न देखा था। सूर्यके प्रखर तापमें, संध्याकी शान्तिमें और चाँदनी रातमें भी सवार बराबर बढ़ता जा रहा था। उसे थकावट न लगती थी और दूसरे किसीको लगती होगी, इसका भान न था।

भूख लगनेपर काक थोड़ी ही देरमें खा लेता और चलती हुई साँड़नीपर नींद ले लेता। उसकी अधीरता शान्त न होती।

आखिर वह लाटी जा पहुँचा। वहाँ दामा नायक, सामंत, कावा मल्लाह और उसके अनेक खलासी राह देख रहे थे। उन्होंने एक जहाज़ भी देख रखा था। मुंजाल मेहताका आज्ञापत्र लेकर काक सोमनाथ पाटनके दुर्गपालसे मिला और उसने तुरन्त वह जहाज़ प्राप्त कर लिया।

काक कालके जैसा डरावना, चुप और गंभीर था—एक शब्दसे, आँखके एक पलकसे हुक्म देता था। उसके आदमियोंको यह गंभीरता समझमें न आई; किन्तु उनपर उसका असर हुआ। मानो समुद्रके पानीसे बैर निकाल रहे हों, ऐसी अधीरता और जोशसे उन्होंने जहाज़ चलाना शुरू किया।

यह खयाल करके कि नदीके मुखके सामने लक्खी गाँवमे रेवापालका थाना होना चाहिए, काकने जहाज़को समुद्रमें ही रहने दिया और आधी रातके बाद वह स्वयं, दामा और सामंत तैरकर नदीमे आ गए। कावा मल्लाह तीन खलासियोंके साथ एक नावमें बैठकर चुपचाप पीछे आया और उसने लक्खी गाँवको बरकाकर काक, दामा और सामंतको साथ ले लिया। उन्होंने काकके कहे अनुसार नावमें पंद्रह दिनका भोजन, गोह, कुदाली, फावड़ा और सब्बल साथमें रख लिए।

लक्खी गाँवसे भाड़भूत तककी मुसाफिरी बहुत कठिन निकली। इस किनारेपर तो उतरा नहीं जा सकता था, और सामनेसे आनेवाली नाव नजदीक आकर मिल न जाए, इसका भी ध्यान रखना था। ज्वार और भाटेका समय भी देखना था। उजली रात थी, इसलिए कहीं कोई देख न ले, यह भी खयाल रखना पड़ता था। कितनी ही बार नजर चुकानेके लिए सामने किनारे तक नाव ले जानी पड़ती थी। काक अधीर तो हो गया था, किन्तु उसकी सावधानता कम न हुई थी। रात और दिन बराबर गिनने पड़ते और ज्यों ज्यों समय बीतता था चिन्ता बढ़ती जाती थी।

किसी तरह वे भाड़भूत पहुँचे। उसके और भड़ौंचके बीच छोटे छोटे गाँव थे, इसलिए किसीका ध्यान खींचे बिना ही वे किनारे किनारे नाव ले जा सके।

कृष्णपक्ष शुरू हो गया था, इसलिए संध्याकालके बादके अँधेरेसे फायदा उठाकर वे कोटके नीचे जा पहुँचे। गढ़के पश्चिम ओरके कंगूरेके नीचे पत्थरपर वह और दामा उतरे, और नाव आसपास घुमाकर जाँच पड़ताल कर आये। सब कुछ शान्त और निर्जन था। चन्द्रमाका उदय हो रहा था।

यह दुर्धर्ष कोट कैसे लाँघा जाय; किसीकी समझमें न आया; किन्तु काक निश्चिन्त था। मौका आनेपर गढ़से निकल भागनेके कितने ही चोर-रास्ते उसने बनाये थे। उनमेंसे एक रास्ता पश्चिमी कंगूरेके नीचे नदीपर निकलता था।

इस रास्तेका पता उसे, सोमेश्वरको और देवाको ही था। जिस रास्ते बाहर निकल सकते हैं उसी रास्ते अन्दर क्यों नहीं जा सकेंगे ?

काकने सबको यहाँ आनेका उद्देश्य बतला दिया था। एक खलासी नावमें बैठा रहा, और बाकी सबने अपनी अपनी कमरमें अनाज बाँधकर हाथमें एक एक औजार ले लिया।

काकने ध्यानसे देखा और काले पत्थरोंमें कुछ ऊँचाईपर चोर-रास्तेको पहिचाना। तुरन्त ही उसने गोहको फेंका और वहाँ थमा दिया। फिर सब आदमियोंसे कुछ दूर हटकर खड़े रहनेको कहा और गोहसे बँधी हुई रस्सी पकड़कर वह ऊपर चढ़ गया और बड़े परिश्रमसे एक मोखेमें पैर टिकाकर दीवारमें जमे हुए झाड़को पकड़कर खड़ा रहा। मोखा छोटा दीख पड़े, इसलिए उसमें एक बड़ा पत्थर यों ही रख दिया गया था। पहले उसे ढीला किया और फिर सावधान रहनेकी हाँक मारकर ढकेल दिया। पत्थर पानीमें जा गिरा और काक नीचे खड़े हुए आदमियोंको ऊपर आनेके लिए कहकर स्वयं उस छोड़ी हुई सुरंगमें घुसा।

सुरंगमें जाकर जब उसने मशाल जलाई तब सुरंगनिवासी जीव-जन्तु और पक्षियोंने चारों दिशाओंमें भागना शुरू किया। डरावनी चीखें मारते हुए चमगादड़ोंके दलके दल गोलाकार घूमने लगे। धीरे धीरे सब आदमी ऊपर आए और जीव-जन्तु रौंधते हुए एकके पीछे एक चलने लगे। काककी दृष्टि अचूक थी, भौंहें मिली हुई थीं, और कदम स्थिर थे। वह भूतनाथ भैरव जैसा दीखता था और वहाँका वातावरण प्रेतलोकसे भी अधिक भयानक लग रहा था। काकके अनुयायियोंका भी जी घबराने लगा।

सुरंगमें चलते चलते सीढ़ियाँ आ गईं। सीढ़ियोंके ऊपर जीनेकी छोटी खिड़कीपर एक पत्थर ढाँक रक्खा था, जो ऊपरसे खुलता था। सब सब्बल और कुदालकी मददसे, पत्थर हटानेमें जुट गये। थोड़ी ही देरमें जब पत्थर ढीला हो गया तब छः आदमियोंने पूरा जोर लगाकर उसे उठाया। ऊपर जमी हुई जमीनकी पतली पर्त खिसक गई और पत्थर उखड़ गया।

काक हाथमें मशाल लिये ऊपर चढ़ा। पहले तो गढ़का भाग निर्जन दीख पड़ा; परन्तु फिर उसे एक आदमी भागता हुआ नजर आया। वह उसके पीछे दौड़ा और थोड़ी ही छलांगोंमें उसे पकड़ लिया।

" कौन है ? " काकने पूछा ।

मणिभद्रके होश हवास उड़े हुए थे। वह काकको पहिचान न सका। परन्तु काकने उसका मुँह ऊँचा किया और पहिचान लिया।

" कौन, मणिभद्र ! मुझे पहचाना नहीं ? भाग क्यों रहा है ? मैं काक हूँ।" मणिभद्रका होश ठिकाने न था।

" अरे मूरख, मैं तो काक हूँ, भूत नहीं।"

" कौन दुर्गपाल ? " मणिभद्र काकसे लिपट गया।

" हाँ भाई, हाँ। तुम्हारी बहिन कहाँ है ? "

" उस कंगूरेके पास बेहोश होकर पड़ी है। सन्निपात हो गया है।" काकको शान्ति मिली कि वह ठीक समयपर आ पहुँचा। " और बच्चे ? " एकदम कंगूरेकी ओर मुड़ते हुए उसने पूछा।

" अनाज नहीं रह गया था, इसलिए उन्हें नगरमें भेजकर छिपा दिया है।" काकको सन्तोष हुआ।—" और देवाका क्या हुआ ? "

" कल देवलोक हो गया।"

" और कौन है ? "

" आँबड़ मेहता, उस तरफ भूखके मारे पड़े हैं।"

" और कौन है ? "

" कोई नहीं।"

" झामा, इन सबकी खानेकी व्यवस्था कर।" कहकर काक कंगूरेपर बैठ गया और मंजरीके मुँहपर हाथ फेरने लगा। उसका हृदय धड़कता था। फिर उसके माथेसे बहता हुआ रक्त पोंछ कर उसने उसे उठा लिया।

" कहाँपर रहते हो ? "

" चलो, बतलाऊँ।" मणिभद्र आगे हो गया।

काक मंजरीको उठाकर डेरेपर ले गया और बिस्तरपर लिटाकर उपचार करने लगा। और सब वहाँसे चले गये।

काकने अपनी प्रियतमाको देखा। उसके हृदयमें उमंगें समाई नहीं। कितने ही दिनोंसे उसकी चिन्ताका पार न था। मंजरीको देख पानेकी आशा वह छोड़ बैठा था किन्तु अन्तमें वह मिली। उसने उसका मस्तक अपनी गोदीमें ले लिया और वह उसके मुँदे हुए नेत्रोंकी ओर देखने लगा।

किन्तु ज्यों ज्यों वह ध्यानसे देखता गया त्यों त्यों उसका हृदय बैठने लगा मंजरीका शरीर गल गया था, और उसकी त्वचापर कालिमा-सी आ गई थी उसके होठ कुम्हलाकर जरा डरावने-से हो गए थे। उसकी आँखोंके आसपास काले दाग दीखते थे। तो भी अनन्त आशा उसे हिम्मत बँधाने लगी।

उसने उसके माथेपर हाथ फेरा। वह अंगारकी तरह जल रहा था। गलेकी एक नस फड़कती थी।

मंजरीने एकदम आँखें खोल दीं। उसने काकको देखा—पहिचाना।

"नाथ! नाथ! आ पहुँचे मेरे प्रियतम!" वह एकदम जोर लगाकर बैठ गई। "सचमुच आ गए, मैं होशमें हूँ? आगए?" उसने काकपर हाथ फेरा।

"हाँ—मैं ही हूँ। तुम शान्त होओ। सो रहो। देखो, मैं आ पहुँचा।" काकने उसे फिर सुलानेका प्रयत्न किया।

"आ गये? मैं जानती थी, कि तुमसे विना मिले मैं मरनेवाली नहीं। मैंने यमराजसे साफ कह दिया था कि अपने नाथकी आज्ञाके बिना नहीं जाऊँगी।"

वह काकसे लिपट-गई और उन्मत्तकी तरह बोलने लगी। "दुर्गपाल! स्वामी! मुझे अब आखिर तक न छोड़ना। मुझे यहीं अपनी गोदीमें मरने देना।"

"परन्तु तुम्हें कुछ न होगा।"

मंजरी हँसी और जोरसे काकसे लिपट गई। "मृत्यु राह देख रही है प्रियतम! एक घड़ी दो घड़ीके लिए शान्ति कैसी? नाथ, अपना हाथ दो। मुझे कैसा अच्छा लगता है! मुझे बाँहोंमें ले लो। मेरे पास आओ। अमृत बरसाती चाँदनीका वह सुख कब मिलेगा? अब समय थोड़ा है।"

"हाँ, मैं ले रहा हूँ।" काकने उसे बाँहोंमें ले लिया। उसका हृदय धक धक कर रहा था।

मंजरीने कहा, "मैं तुम्हारी ही वाट देख रही थी।" और फिर काकके मुखपर हाथ फेरा। "मैंने यमको भी मना कर दिया। नाथ! ओ नाथ! बोलो न?"

"हाँ, बोलता हूँ। देखो, तुम घबरा क्यों रही हो?"

"मैं घबराती नहीं।"

"सौभाग्यनाथ मम! बच्चे मजेमें हैं। उन्हें भेज दिया है। देखना। मैं

तो चली।" वह थोड़ी देर थकावटकी मारी पड़ी रही।

"नाथ! नाथ!" वह फिर बोलने लगी। "मुझे जाना अच्छा नहीं लगता, जाते हुए मुझे कष्ट होता है। हमारे संसारका—मनोरथोंका क्या होगा? तुम्हारी कीर्ति कौन गाएगा? और तुम थके माँदे कहाँ जाओगे?" मंजरीको खाँसी आई और खाँसी बन्द हुई कि रक्त-भरे झाग निकल आए। काकने घबड़ाकर मणिभद्रको पुकारा।

"किसलिए बुलाते हो? हम अकेले ही रहें। मेरे प्राण! पास आओ, आओ न?" आवाज मंद पड़ गई और मंजरीको चेत न रहा।

मणिभद्र राबड़ी बनाकर लाया था। उसे वहीं रख देनेको कहकर काकने और सारा हाल पूछा। मणिभद्रने सब इतिहास कह सुनाया।

"यह कैसी आवाज आ रही है?" काकने पूछा। वह मंजरीका सिर बिस्तरपर रखकर खिड़कीमेंसे देखने लगा।

उत्तरकी ओर क्षितिजपर कुछ गड़बड़ हो रही थी, उसीकी आवाज थी। ऐसा लगता था कि वहाँ आग लगी है।

"जो कुछ भी हो—" कहकर वह फिर मंजरीके पास आ बैठा और उसके मुखमें थोड़ा-सा पानी डाला। होठ बंद करके उसने विचार करना छोड़ दिया। उसको अपना आना न आना समान लगा। मंजरी एकदम चौंककर जागी।

"मैं वीरकी अर्धांगना, शेषके विजेताकी पत्नी, मैं गढ़ छोड़ दूँ?"

"मंजरी! मंजरी!" काकने कहा और उसका सिर फिर अपनी गोदमें ले लिया। राबड़ी मुखमें डालनी चाही किन्तु मंजरीने सिर हटा लिया। उसकी आवाज मंजरीके कानमें गई। "मेरे नाथ!" उसने मंद स्वरमें कहा "मैं अच्छी हूँ, मुझे आज्ञा दो, आज्ञा—आ....ज्ञा..... स्वामी...मेरे कंत...आ.. ज्ञा......" वह फिर बेहोश हो गई और काकने उसके मुँहमें पानी डाला।

वह दो तीन घड़ी इसी तरह बेहोश पड़ी रही और उसकी रगें धड़कती रहीं। वह फिर जागी और बहुत ही क्षीण स्वरमें बोली, "कहाँ गये? जाती हूँ। तुम्हारी...हाँ—तुम्हारी..."

और उसकी ऊर्ध्व श्वास चल पड़ी। काकने उसे आलिंगन दिया—चुंबन दिया और मरती प्रियतमाको हृदयमें चित्रित किया। उसका हृदय टूट गया।

उसके मस्तिष्कमें भिन्न भिन्न भावोंके तूफानने एक क्षणके लिए अन्धकार

फैला दिया। वह तुरन्त ही प्रयत्न करके मनको ठिकाने लाया। भावोंके तूफानको निरंकुश होने देना उसके स्वभावमें न था।

"मणिभद्र, नहलानेका पानी ला।" काकने पुकारा। किन्तु मणिभद्रके आनेसे पहले ही मंजरीके शरीरने अंतिम प्रयत्न किया और उस नारीश्रेष्ठका केवल शव ही काकके हाथोंमें रह गया।

८—स्वातंत्र्य-यज्ञकी समाप्ति

काकने उत्तर दिशाके क्षितिजपर जो हलचल देखी थी वह रेवापालके लश्कर की थी।

लाटका थोड़ा बहुत भाग कब्जेमें करके रेवापालका लश्कर विश्वामित्रीके किनारे पड़ाव डालकर पड़ा था। जिस तरह अनचीती आँधी आ जाती है, उसी तरह पाटनकी सेना उसपर टूट पड़ी।

लाटके विद्रोहकी खबर पाकर चाँपानेर, खंभात, कर्णावती, और खेटकपुरके पट्टनी लश्कर आगे बढ़े और गोध्रेके पास सब आ मिले। मुंजाल मेहताने सोमेश्वर और वाग्भटको नया लश्कर लेकर भेजा था। उन्होंने पट्टनी सेनाकी सरदारी ली और वे मंजिल दर-मंजिल चलते हुए विश्वामित्रीपर आ पहुँचे जहाँ रेवापालका पड़ाव था।

पाटनकी सेना अनुभवी और व्यवस्थित थी किन्तु रेवापालकी नई और अव्यवस्थित। दोनोंके बीच तुमुल युद्ध हुआ। आखिर रेवापालकी हार हुई। उसकी कितनी ही सेना तो बिखर गई और कितनी ही भृगुकच्छकी ओर भागी। सोमेश्वर और बाहड़का ध्येय भृगुकच्छका गढ़ था, इसलिए उन्होंने रेवापालका पीछा किया। बिखरते, मिलते, उलझते, कुटते, पिटते, मरते, गिरते, रेवापालके अनुयायी आधी रातको भृगुकच्छ आ पहुँचे। सेना क्षीण हो गई थी और पीछे चौगुनी पट्टनी सेना दबाती आ रही थी। रेवापाल नगरमें आ पहुँचा। पराजित सेना और बस्तीके लोगोंमें घबराहटका पार न रहा।

रेवापालको कुछ सूझा नहीं कि क्या करे। अब उसे पाटनकी शक्तिका ख्याल

आने लगा। उसने पद्मविजय धनुषको कुँदना ब्रह्मानन्द स्वामीके पास भेजा। सेनापति ध्रुवसेन भगवाँ उतार दें, तभी लोगोंमें कुछ हिम्मत आनेकी आशा थी।

वचनबद्ध ध्रुवसेनने निःश्वास डालकर भगवाँ उतार दिया और कवच धारण कर वे रेवापालकी सहायताके लिए आए। बस्तीके लोगों और हताश सेनामें कुछ जान आई। तब ध्रुवसेन और रेवापालने मंत्रणा की और सवेरे भृगुकच्छके दुर्जय गढ़पर कब्जा करके उसमें घुस जानेका निश्चय किया। जैसे ही पौ फटी कि रेवापाल और उसके आदमी गढ़की ओर चल पड़े। वे खाईकी तरफ गये, वहाँसे ऊपर नजर डाली और काँप उठे।

सामने गढ़मेंसे निकलकर दो आदमी अर्थी उठाए आ रहे थे। उनके कुछ पीछे चार पाँच आदमी और थे। आगेके उठानेवालेने केवल गीली धोती पहन रखी थी। सबने उसकी ओर देखा—पहिचाना और मानो बिजली पड़ गई हो इस प्रकार वे सब चौंक उठे। जिसे जूनागढ़में मरा समझ लिया था, वही भृगुकच्छका दुर्गपाल आग बरसाती हुई आँखोंसे सबको डराता हुआ, नीचे उतर रहा था।

सब घबरा गये और खड़ेके खड़े रह गये। कोई कुछ न समझ सका। काक आगे बढ़ा और बिना पानीकी खाईमेंसे होकर इस किनारेपर आया। किसीने रेवापालको खबर दी, तो वह आगे आया और काकको देखकर मूढ़ हो गया। यह कहाँसे? रेवापालके हृदयमें निराशा और बैरकी आग जलती थी। इस समय उस आगका भक्ष्य बन गया पाटनकी सत्ताका यह स्तंभ—उसकी योजनाओंका विनाशक। उसने काकको कैद करनेका निश्चय कर लिया।

"कहाँ जाता है?"

काकने शव पृथ्वीपर रख दिया और कंधेपर पड़ा हुआ कपड़ा धीरेसे कमरमें बाँध लिया। "जहाँ तेरे और मेरे बाप दादे जलकर भस्म हो गये वहाँ—दशाश्वमेधपर—जहाँ बलिराजको वामनने दबोचा था वहाँ।"

उसकी भयंकर आवाजसे सबके कलेजे काँप गये। उसकी आँखें ऐसी मालूम हुईं कि बाहर निकल पड़ेंगी।

रेवापालने ओठ चबाये। उसके मुखका घाव लाल हो गया। "लाटके द्रोही!

खबरदार एक डग भी आगे बढ़ाया तो ! इसे पकड़ लो ! " कहकर उसने अपने अनुयायियोंको इशारा किया ।

काकने केवल संबोधन ही सुना । उसके हाथोंमें विनाश उछल रहा था और मस्तिष्कमें प्रलय-मारुतकी सनसनाहट हो रही थी । उसकी कुचली हुई भावनायें किसी भी तरह व्यक्त होनेके लिए तड़फड़ा रही थीं । उसने दाँत कटकटाए—पास खड़े हुए एक सैनिकके हाथमेंसे गठीला लट्ठ छीन लिया और रेवापाल उसकी ओर मुड़े, उसके पहले ही—या उसके अनुयायी उसकी आज्ञाका पालन करें इसके पूर्व ही—उसके सिरपर जोरसे खींच मारा। यह चोट कुल्हाड़ीकी चोटके समान जोरसे पड़ी, वृक्षकी डालके टूटने जैसा कड़ाका हुआ, और लाटकी स्वतंत्रताका पुजारी निर्जीव लकड़ीकी तरह जमीनपर गिर पड़ा। लोगोंमें हाहाकार मच गया ।

" चांडाल, तूने मेरी स्त्रीको मरने दिया—वचनका पालन नहीं किया और अब उसका अग्नि-संस्कार भी नहीं करने देता ? " काकने चिल्लाकर कहा। उसकी फटी हुई गर्जना भूखे शेरकी तरह त्रासदायक थी।

लोग डरकर पीछे हट गये । काक उनकी ओर गुर्राया । " तुम्हारे भृगुकच्छकी शृंगार—मंजरी—गढ़में भूखके मारे मर गई है, उसका अग्नि-संस्कार कर लेने दो । फिर मेरा जो कुछ करना हो, कर लेना । " कहकर काकने लट्ठ फेंक दिया ।

मणिभद्रने मंजरीका मुँह खोला, और वहाँ इकट्ठे हुए लोगोंके अंतर उद्वेगके मारे काँप उठे । किसीने निकटसे, किसीने दूरसे, देवीसदृश दैदीप्यमान, सरस्वतीकी अवतार, और सुसंस्कृत इस दुर्गपालकी पत्नीको देखा था, और हरएकके हृदयमें उसके लिए मान था । उसके तेज, उसके रूप, उसके यौवन और उसकी विद्याकी स्मृतियोंपरसे उसे मृत समझना अशक्य था । उसके शवको पड़े देखकर लोग लाटके स्वातंत्र्यका विग्रह भूल गये, मृत रेवापालको भी भूल गये और खेद अनुभव करने लगे । कितनोंने आँसू पोंछना शुरू किया और कितने ही हिचकियाँ न रोक सके ।

काक बेपरवा था । खाड़ीमें थोड़ी दूरपर पानी था, वहाँ जाकर उसने स्नान किया और गीले वस्त्रों फिर शवको दशाश्वमेध तीर्थ ले जानेके लिए

आया। लोगोंने मार्ग दे दिया और शोक, भय तथा अनिश्चितताके बीच झोंके खाते हुए वे सब काकके पीछे पीछे श्मशानकी ओर चले।

एक वृद्ध वणिक दूरसे, आधी मिची हुई आँखोंसे, यह दृश्य देख रहा था। उसने काकको देखा, रेवापालको गिरते देखा, मरी हुई मंजरीको देखा और लोगोंकी भावनायें देखीं। उसने हृदयपर पड़े हुए आघातको दूर किया। वह समझ गया कि लाटका स्वातन्त्र्य पूरा हो गया। उसने विचार किया कि यह अवसर खोने जैसा नहीं है। पास खड़े हुए घोड़ेपर वह सवार हुआ और भृगुकच्छके गढ़के दरवाजेकी ओर गया। बंद दरवाजेके बाहर सोमेश्वर और बाहड़की सेना आ पहुँची थी और घेरा डालनेकी तजबीज कर रही थी।

वृद्धने दरवानसे दरवाजा खोलनेको कहा।

"क्यों?"

"मुझे पहचानते नहीं? मैं हूँ नगरसेठ तेजपाल। अरे पागल, मेरा पुत्र रेवापाल मारा गया। गढ़मेंसे आदमी लेकर काक आया है, बाहर पट्टनी सेना आ पहुँची है। क्या मरनेके लिए दरवाजे बंद रखते हो?" दरबान समझ गया। मुत्सद्दी तेजपालको सब पहचानते थे। उसने दरवाजा खोल दिया।

तेजपाल नगरसेठने पट्टनी सेनाके सेनापतिको खोज निकाला और सोमेश्वरको देखकर रेवापाल और मंजरीकी मौतकी हकीकत सुना दी। शोकग्रस्त सोमेश्वर और वाग्भट्ट लश्कर लेकर नगरमें पैठे और कुछ आदमियोंको नगरपर कब्जा करनेका काम सौंपकर दशाश्वमेध गये।

चिता धकधक जल रही थी और हाथमें बाँस लिये चिताको कुरेदता हुआ भयंकर काक स्थिर दृष्टिसे अग्निकी ज्वालामें अपनी प्रियतमाका मुख देख रहा था।

सोमेश्वरने हथियार फेंक दिये, पास गया और चिताकी ओर आँसूभरी आँखोंसे देखने लगा।

वाग्भट्टने वहाँ बैठे हुए एक श्मशान-यात्रीसे आँबड़ मेहताकी खबर पूछी। मणिभद्रने पृथ्वीपर एक ओर घुटनोंमें सिर डाले पड़े हुए मनुष्यकी ओर अँगुलीसे इशारा किया। वाग्भट्ट उधर गया। मैले वस्त्र और निस्तेज शरीर, हिचकियाँ लेते हुए, इस निराधार प्राणीको अपने मौजी भाईके रूपमें पहिचाननेमें उसे देर लगी।

"भैया," वाग्भटने उसे बुलाया।

आँबड़ने अपने रो रोकर सूजे हुए मुखको ऊँचा किया और वह आँसूभरी आँखोंसे देखने लगा।

" कौन बाहड़ ? "

" भैया, यह क्या ?

" बाहड़, आखिर वे न जियीं।" आँबड़ने निःश्वास छोड़कर कहा। वाग्भट सब समझ गया।

" कौन--"

" मेरी देवी—मेरी बहिन।"

वाग्भटको लगा कि उसके भाईका मस्तक फिर गया है।

चिता जली, आग बुझी, अस्थियोंका नर्मदामें विसर्जन हुआ और एक अक्षर बोले बिना काक सबके साथ श्मशानसे वापस आया।

नगरमें बात फैल गई थी, इसलिए रास्तेमें विलाप करती हुई स्त्रियाँ मिलीं। एक स्त्री दो बच्चे लेकर खड़ी थी। लड़कीने काकको देखकर पुकारा "बापू!"

काकने नजर फेरी और महाश्वेता और वौसरीको देखा। वह उछला और एक छलांग मारकर उसने बच्चोंको लेकर छातीसे चिपटा लिया। निर्दोष बच्चे पिताके मिलनेसे हँसने लगे।

उपसंहार

[illegible] कुक्कुट-ध्वज लहरा रहा था। चारों ओर 'जय सोमनाथ' की घोषणा गूँज रही थी।

संवत् ११६९ की आषाढ़ सुदी प्रतिपदाकी पुण्यतिथि थी। उस दिन राजवलि-विराजित, वर्बरक-जिष्णु, परमभट्टारक, महाराजाधिराज जयसिंहदेव वर्मा निश्चित किये हुए महोत्सवके लिए भृगुकच्छमें पधारे थे। उस दिन सोरठ और लाटकी जीतके उपलक्ष्यमे महोत्सव किया जानेवाला था और नर्मदाके तटवर्ती सोमनाथ महादेवके मंदिरपर कलश चढ़ाया जानेवाला था। उस दिन जयसिंहदेव वर्मा 'त्रिभुवन-गण्ड' की प्रतापी पदवी धारण करनेवाले थे और उस महाप्रतापी

नरपतिके पराक्रमोंकी अमर कीर्ति विक्रमराजाकी कीर्तिके बराबर हो जानेमें उस दिनसे ' सिंह ' नामका संवत्सर चालू किया जानेवाला था।

भृगुकच्छमें बड़ी धूमधाम थी। किसीने कभी पट्टनी या लाटीय लश्करका ऐसा ठाठ, पट्टनी और लाटीय धनिकोंका ऐसा आडम्बर देखा सुना नहीं था। स्त्री और पुरुष सजधजकर हँसते फूलते फिर रहे थे।

हर एक गाँव और शाखाके ज्योतिषियोंने मध्याह्नके बाद तीन घड़ी, छत्तीस पल और बारह विपल पर कलश चढ़ानेका, पदवी धारण करनेका और संवत्सर स्थापित करनेका शुभ मुहूर्त निश्चित किया था।

गाँवका एक भाग—साम्बा बृहस्पतिका बाड़ा—ऊजड़ जैसा लगता था। वहाँपर मनुष्य जाते आते तो थे, परन्तु उत्साहके बिना और धीरे धीरे।

वहाँ गत रातको पाटनकी सफेद पगड़ीवाला ऊँचा और बूढ़ा राजपुरुष आया था। उसके साथ कीमती शालमें लिपटा हुआ एक दूसरा पुरुष भी चुपचाप आया था। उनमेंसे एक थे महा अमात्य मुंजाल और दूसरे स्वयं जयसिंहदेव महाराज। वे आये और इस एकांत घरमें रहनेवाले काकसे मिल कर चले गये। वे निराश होकर लौटनेवाले आदमियों जैसे लगे।

गाँवमें खबर फैल रही थी कि काक संन्यास लेकर काशीकी ओर जानेवाले हैं; इससे सबके मन ऊँचे नीचे हो रहे थे।

ऐसी भी अफवाह थी कि राजमहलमें सारी रात अनेक प्रकारके सलाह मशवरे होते रहे हैं और यह माना जाता है कि वे सब काकके सम्बन्धमें थे।

सुबह दो आदमी साम्बा बृहस्पतिके बाड़ेमें आये—एक वृद्ध संन्यासी और दूसरी एक स्त्री। बाड़ा निर्जन था। एक अनुचरने इन दोनोंको देखा और उसके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे ब्रह्मानंद सरस्वती और रानी लीलादेवी थी।

वे दोनों अनेक घड़ियोंके बीत जानेपर बाहर निकले।

" गुरुदेव, आज आपने मुझे और पाटणको जीवित-दान दिया।"

" बेटी, आज मैंने लाटको मरनेसे बचाया। " पद्मनाभ महाराजके वृद्ध सेनापतिने संन्यासीको शोभा दे ऐसी शान्तिसे जवाब दिया।

उपसंहार

थोड़ी देरमें दो युवक कुछ घुड़सवारोंकी टुकड़ी और पाल... ले... साम्बा बृहस्पतिके बाड़ेमें आये। दोनों रूपवान् थे।

एक आगे आया, "भटराज, मैं अंदर आऊँ?"

"कौन आँबड़?" काकने कहा। इन दोनोंमें पिता-पुत्र जैसा सम्बन्ध हो गया था।

"हाँ।" आँबड़ने कहा, "यह मेरा भाई वाग्भट है।"

"आओ।"

"भटराज, मेरा भाई एक याचना करनेके लिए आया है।"

"क्या?"

शरमाते हुए वाग्भटको चुप रहने देकर आँबड़ मेहताने धीरेसे कुछ कहा। काकके मुँहपर जरा हँसी आ गई।

"जो गाया करती थी वही न?—

बाहड़ मेहता खूब किया।
काक भट्टको बाँध लिया॥"

काकने याद कराया।

"हाँ।"

"परन्तु यह बात—"

"भटराज, परशुराम आपके सिवाय और किसीकी बात नहीं मानते।" एक लाड़ले लड़के जैसी स्वतन्त्रतासे आँबड़ने कहा, "और मेरा भाई कवि है; कहीं पागल हो जायगा तो—"

"अच्छा, देखूँगा।"

"भटराज," वाग्भट बोला, "मैं भवभवमें आपका उपकार नहीं भूलूँगा।"

काक दोनोंकी ओर देखता रहा। कहाँ उदा महेता, कहाँ उसके पुत्र और कहाँ उसका ऋणानुबन्ध! उसे विधिका वैचित्र्य देखकर हँसी आ गई।

× × × ×

दोपहरको राजाकी सवारी निकली।

महाराजकी अंबाड़ीके पीछे महा अमात्य मुंजाल और भटराज काक बैठे थे।

मध्याह्नके बाद ३ घड़ी, छत्तीस पल और बारह विपलके मंगल मुहूर्तमें सोमनाथ भगवानके मंदिरपर कलश चढ़ा, जयसिंहदेवने 'त्रिभुवन-गंड' की पदवी धारण की और 'सिंह' संवत्सर स्थापित हुआ।

प्रतापी जयसिंहदेव महाराजकी कीर्ति और समृद्धि देखकर वहाँ इकट्ठा हुआ गुजरात और लाट पागल हो गया।

उदार महाराजने पदवियाँ दीं।

भटराज काकको सेनापतिकी, आँबड़, बाहड़, सोमेश्वर और दूसरे असंख्य वीरोंको भटराजकी पदवी मिली।

सब ओर जयजयकार होने लगा।

रातके समय परशुराम दण्डनायकके घर एक छोकरा गा रही थी—

बाहड़ मेहता खूब किया।
काक भट्टको रिझा लिया॥

पाटनके महाराजाधिराजकी कीर्ति दसों दिशाओंमें फैल गई।

समाप्त